UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186274

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 342.54 A 98 H Accession No. G.H. 2866

Author अय्यर, एस. रामस्वामी

Title हमारा कानून १९५६

This book should be returned on or before the date last marked below.

हमारा कानून

[भारतीय विधि-विधान की सरल जानकारी]

●

लेखक

एस० रामास्वामी अय्यर

अनुवादक

महावीरदास जैन

●

१९५६

सत्साहित्य प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

Checked 1963

प्रथम संस्करण
मूल्य
पाँच रुपये

Checked 1969

मुद्रक
सुरेन्द्र प्रिन्टर्स लि०,
दिल्ली

प्रकाशकीय

किसी भी स्वतन्त्र देश के कानूनों का परिज्ञान उसके नागरिकों को होना चाहिए। उससे उन्हें पता चलता है कि उनके अधिकार एवं कर्त्तव्य क्या हैं और यदि वे उनका ठीक से पालन नहीं करेंगे अथवा अधिकारों की सीमा का उल्लंघन करेंगे तो उन्हें क्या दंड भोगना पड़ेगा।

हिन्दी में एक ऐसी पुस्तक का अभाव बहुत समय से अनुभव किया जा रहा था, जिससे हमारे कानून की जानकारी पाठकों को हो सके। प्रस्तुत पुस्तक उसी अभाव की पूर्ति के लिए लिखी गई है। जनसाधारण के लिए भी वह उपयोगी हो, इस दृष्टि से भारतीय कानूनों को ज्यों-का-त्यों न देकर उनका सार दिया गया है।

पाठकों को यह जानकर हर्ष होगा कि इस पुस्तक के लिखने की प्रेरणा लेखक को हमारे सुविख्यात राजनेता श्री राजाजी से प्राप्त हुई थी। मूल पुस्तक अंग्रेजी में 'एवरीबडीज बुक आव ला' के नाम से निकली है और अंग्रेजी के पाठकों में खूब लोकप्रिय हुई है। प्रस्तुत पुस्तक उसी का हिन्दी रूपान्तर है। अनुवाद में इस बात का ध्यान रखा गया है कि भाषा और शैली सरल रहे, फिर भी पारिभाषिक शब्दावली को एकदम छोड़ सकना अशक्य था।

हमारा राष्ट्र ज्यों-ज्यों आगे बढ़ रहा है, उसके कानूनों में तेजी से परिवर्तन एवं संशोधन हो रहा है। इस पुस्तक के छपते-छपते कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गये। उनका उल्लेख पुस्तक के अंत में परिशिष्ट १ में किया है। इसी प्रकार राज्यों के पुनर्गठन का नया कानून शीघ्र ही पास होने वाला है। उसके अनुसार राज्यों की सीमाओं और शासन में क्या-क्या परिवर्तन होंगे, उनका उल्लेख परिशिष्ट २ में कर दिया गया है। कोशिश ऐसी की गई है कि पाठकों को कानून की नवीनतम जानकारी मिल जाय। परिशिष्ट ३ में पुस्तक में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों तथा उनके पर्यायवाची अंग्रेजी शब्दों की विस्तृत सूची दे दी गई है, जिससे पाठकों को क्लिष्ट शब्दों के समझने में यदि कहीं कठिनाई आवे तो अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों की मदद से उसे दूर कर लें।

पुस्तक के लेखक स्वयं एक वकील हैं। इसलिए उसकी प्रामाणिकता के बारे में दो मत नहीं हो सकते।

हमें विश्वास है कि पाठकों में इसका स्वागत होगा।

—मंत्री

दो शब्द

भारतवासी स्वभाव से ही कानून का आदर और पालन करते हैं। वे कानून जानने के लिए इच्छुक भी हैं। कानून का उन्हें ज्ञान होना आवश्यक भी है, और आज यह आवश्यकता आज़ादी से पहले की अपेक्षा कहीं अधिक है। ब्रिटिश शासनकाल में कानून अधिकतर शासकों का बनाया हुआ था। अब यह खुद भारतवासियों ने बनाया है। यह उनके चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा, उनकी बढ़ती हुई आवश्यकताओं के अनुसार, लगातार बनाया, बदला तथा परिवर्द्धित किया जा रहा है। उनके प्रतिनिधि इस काम को भली प्रकार तभी पूरा कर सकेंगे जबकि उन्हें खुद आज के कानून की मुख्य-मुख्य बातें ज्ञात हों और वे उसके विकास में होशियारी के साथ रुचि लें। उनके लिए कानून का ज्ञान एक और, बल्कि कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण, कारण से आवश्यक है। कानून राज्य द्वारा बनाये गए आचरण के नियमों को दिया गया ही एक दूसरा नाम है। यदि वे कानून को जानते हों और उसके प्रयोजन तथा उद्देश्य से परिचित हों तो वे इसका और भी अधिक आदर करेंगे और आचरण के इन नियमों का पालन करेंगे। यह पुस्तक इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए लिखी गई है और अपने अठारह अध्यायों में कानून के क्षेत्र में आने-वाली बहुत-सी बातों की एक तस्वीर पेश करती है। हम अपने अधिकारों तथा कर्त्तव्यों के बारे में भारत के नागरिक होने की हैसियत से ही नहीं, बल्कि विश्व-समाज के सदस्य होने के नाते, दिलचस्पी रखते हैं, इसलिए अन्तिम अध्याय में अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों तथा दोनों विश्व-संस्थाओं—संयुक्त राष्ट्र संघ और अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय—का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। हाल ही में भारत के कानून में कुछ बड़े और महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन किये गए हैं। उसी हिसाब से इस पुस्तक में दिये गए कानून के सार में भी अबतक की सारी बातें शामिल कर दी गई हैं।

हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है और देश में इसके ज्ञान का तेजी से प्रसार हो रहा है। 'सस्ता साहित्य मंडल' ने इस पुस्तक के अंग्रेजी संस्करण में दी गई सामग्री को हिन्दी भाषा में प्रस्तुत कर जनता की बड़ी सेवा की है। इस पुस्तक को निकालने के लिए मैं इस संस्था के प्रतिनिधियों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक जिस महान् उद्देश्य के लिए निकाली गई है, उसे पूरा करेगी।

नई दिल्ली।

भूमिका

यह हमारी खुशकिस्मती है कि हम कानून के शासन में रह रहे हैं। हमारे भारतीय गणराज्य का संविधान देश के कानून को हम सब—सरकारी मंत्रियों और अफसरों तथा नागरिकों, के लिए समान रूप से सर्वोच्च बनाता है। कानून की यह सर्वोच्चता कायम रहे, यह देखना न्यायांग का काम और कर्त्तव्य है। प्रजातांत्रिक ढंग की सरकार का सार भी इसीमें है। कानूनी तरीकों के बारे में लोगों के दिमाग में कई प्रकार के ख़याल मौजूद हैं। इस बात का पूरी तरह से अहसास नहीं किया जाता कि कानून दरअसल और बुनियादी तौर पर नैतिकता के सर्वोच्च आदर्शों और समाज के सब अंगों के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार पर ही आधारित होता है। कानून बनाने का मंशा यह होता है कि वे सबके लिए न्यायपूर्ण और समान हों।

यह बात नहीं कि सिर्फ़ हमारा राजनैतिक ढांचा ही कानून की बुनियादों पर आधारित है, बल्कि उन पर हर समाज का सामाजिक और आर्थिक ढांचा खड़ा हुआ है।

अदालतों में वकालत करते हुए यह तथ्य मेरे सामने कई बार आया कि किसी-न-किसी तरह समाज के हर तबके के लोग अदालतों में पहुंचते हैं। तरह-तरह के लोगों—मियां और बीवी, माँ-बाप और उनके बच्चे, संरक्षक और संरक्षित, वकील और उनके मवक्किल, डाक्टर और उनके मरीज, व्यापारी और उनके ग्राहक—के बीच के सभी झगड़े-झमेले फैसलों के लिए अदालतों में पहुँचते हैं। तिस पर भी हम यह महसूस नहीं करते कि हमारी जिंदगी कानून की सर्वोच्चता से किस कद्र जुड़ी हुई है।

कानून के मौलिक सिद्धान्तों की जानकारी अनेक दृष्टिकोणों से वांच्छित है। यह बात हमें हजारों साल पीछे ले जाती है, क्योंकि जहां इसमें मामूली फरक हो सकते हैं वहां मानवीय-संबंधों तथा संपत्ति को निर्धारित करनेवाले दीवानी और फौजदारी सभी कानूनों के बुनियादी उसूल इसी

ढांचे पर चलते रहे हैं, और फिर कानून की जानकारी तो नैतिक सिद्धान्तों की ही शिक्षा है। इसके अलावा एक ऐसे समाज मे, जिसमें जनतांत्रिक संस्थाएं मौजूद हों, यह जरूरी है कि हर नागरिक इन बुनियादी उसूलों को जाने। ऐसा करके वह कानून के लागू करने में, और उसे लागू करने के लिए अधिकृत व्यक्तियों की सहायता कर सकता है। अदालतों मे झूठी गवाहियों की शिकायत आमतौर पर सुनी और करी जाती है। लेकिन यह महसूस नहीं किया जाता कि इसका अधिकांश कारण यह है कि रोज़ाना की ज़िंदगी मे कानूनी शासन के तईं एक नागरिक के नाते हममें सहयोग का अभाव है।

एक अर्से से मेरी यह राय रही है कि स्कूलों तथा कालेजों मे हर विद्यार्थी को कानून के बुनियादी उसूलों की शिक्षा दी जानी चाहिए। इसे केवल कानूनी-कालेज का ही काम नहीं मानना चाहिए। बेशक, कानून की पेचीदगियां जानना तो वकील ही का काम है। लेकिन हर नागरिक को अपने तौर पर उसके मुख्य उसूलों की जानकारी होनी चाहिए। इसके लिए यह जरूरी है कि सरल भाषा मे इन उसूलों को समझानेवाली प्रारम्भिक किताबे लिखी जायं। ये किताबें हिन्दुस्तान की हर प्रादेशिक-भाषा में तैयार की जानी चाहिएं। मुझे खशी है कि हिन्दी में इस तरह की एक किताब तैयार कर ली गई है और सस्ता साहित्य मण्डल द्वारा प्रकाशित होने जा रही है। मुझे आशा है, पाठकों के लिए यह लाभदायक सिद्ध होगी।

-कैलास नाथ काटजू

विषय-सूची

प्रास्ताविक १-८

कानून की परिभाषा, क्षेत्र तथा उद्देश्य १, कानून की भाषा ३, राज्य की परिभाषा और उसके तीन तत्त्व ४, कानून की उपयोगिताएँ ५, भारत का सामान्य कानून ६, कानून के स्रोत ७।

१. भारत का संविधान ९-४१

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ९, देशी राज्यो का एकीकरण तथा समाप्ति १०, सविधान की रूपरेखा ११, **क**, **ख** तथा **ग** भाग के राज्य १२, नागरिकता १३, मूल अधिकार तथा राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धान्त १४, भारत का राष्ट्रपति १७, उम्मीदवार की योग्यताएँ १७, भारत का उप-राष्ट्रपति १८, मन्त्रि-परिषद् १९, संघ-ससद २०, संसद-सदस्यो का चुनाव २०, संसद् के दोनों सदनो के पदाधिकारी २२, राष्ट्रपति का अध्यादेश जारी करने का अधिकार २३, न्यायाग २३, **क** राज्य कार्यकारी, राज्यपाल २३, **क** राज्य के विधानमण्डल २४, राज्यो के न्यायाग २६, **ख** राज्यो का प्रशासनिक गठन २७, **ग** राज्यो का प्रशासनिक गठन २७, **घ** भाग के राज्य २७, संघ-सरकार की शक्तियाँ २८, संघ-सूची २८, समवर्त्ती-सूची २८, राज्य-सूची २९, राज्य-सूची मे दिये विषयों के बारे में संसद का अधिकार ३०, वित्त-व्यवस्था (क) कर लगाना ३१, (ख) विनियोग ३४, जन (सार्वजनिक) सेवाएँ ३६, लोक-सेवा-आयोग ३७, निर्वाचन आयोग ३७, कतिपय वर्गो के लिए विशेष सरक्षण ३८, सरकारी भाषा ३९, आपात-उपबध ३९, संविधान-सशोधन की प्रक्रिया ४१।

२. विधि-निर्माण ४२-५४

सामान्य परिभाषाएँ ४२, संविधान के प्रवर्तन के पूर्व प्रचलित

८. **सामान्य अधिकारों की क्षति** १४४-१६९

शारीरिक क्षति १४६, संपत्ति की क्षति १४९, घरेलू संबंधों की क्षति १५३, प्रतिष्ठा की क्षति १५३, द्वेष-मूलक अभियोग १५७, छल १५७, हानिकारक झूठ १५८, संविदा (कांट्रेक्ट) भंग करना १५८, षड्यंत्र १५८, विविध अपकार १५९, उत्तर-दायित्व की श्रेणियाँ १५९, प्रमाद (असावधानी) १६०, कारण और परिणाम १६१, मालिक का उत्तरदायित्व १६३, प्रतिवाद (बचाव या सफाई) १६४, आत्म-प्रतिसमाधान १६६ वादी या प्रतिवादी की मृत्यु १६७।

९. **संविदा** १६८-१८३

परिभाषा तथा प्रयोजन १६८, वायदा, करार और संविदा की व्याख्या १६९, संविदा-भंग के प्रतिकार १७६।

१०. **विशेषसंविदा** १८४-१९९

क्षति-निवारण (तारण) १८४, गारंटी १८४, निक्षेप १८५, आधान १८६, एजेंसी १८७, साझा १८८, माल-विक्रय १९१, नीलामी-बिक्री १९३, स्वामी और सेवक १९३, वाहक १९४, रेलवे वाहक १९६, समुद्र-मार्ग वाहक १९६, वायु-मार्ग-वाहक १९७, बीमा १९८।

११. **संपत्ति** २००-२३०

संपत्तिगत अधिकार २००, संपत्तिगत अन्य अधिकार २०२, संपत्ति का हस्तातरण २०४, विक्रय २०७, बंधक २०८, पट्टा २११, विनिमय २१३, प्रतिग्रह (उपहार, दान देना) २१३, कर्ज का हस्तांतरण २१३, न्यास (ट्रस्ट) २१५, उपकरण या आमुक्ति २१७, लायसेंस (अनुज्ञा) २२०, परिक्षीणता २२१, भूमि का अर्जन २२५, मुद्रांक (स्टाम्प) २२५, रजिस्ट्री २२८।

१२. **वाणिज्य तथा उद्योग** २३१-२५०

परक्राम्य आलेख २३२, कम्पनियां २३८, कम्पनी का निर्माण २३८, अन्य संघ २४०, सहकारी समाज २४१, श्रमिक संघ २४२, रजिस्टर्ड समाज २४२, कर्मचारी क्षतिपूर्ति २४३, कार-

खाने (फैक्टरियां) २४३, एकस्व (पेटेण्ट) २४४, व्यापार-चिह्न २४५, प्रतिलिप्याधिकार (कॉपीराइट) २४५, छापा-खाना (मुद्रणालय) २४५, औद्योगिक विवाद २४७, कर (टैक्स) २४८।

१३. पारिवारिक कानून २५१-२९२

परिवार और पारिवारिक कानून २५१, पारिवारिक कानून के सामान्य नियम, विवाह २५१, संभरण (गुजारा) २५३, धर्म-परिवर्तन २५४, अवयस्कता और संरक्षता २५४, उत्तराधिकार २५६, हिन्दुओं का पारिवारिक कानून २५८, पश्चिमी बंगाल के बाहर संयुक्त-परिवार-कानून २५८, पश्चिमी बंगाल में संयुक्त परिवार कानून २६१, दत्तक-ग्रहण (गोद लेना) २६१, वैध दत्तक ग्रहण की आवश्यक शर्तें २६२, विवाह २६२, विवाह विघटन की व्यवस्था २६४, संभरण (गुजारा) २६७, सरक्षता २६७, उत्तराधिकार और दाय २६८, पश्चिमी बंगाल के अति-रिक्त शेष भारत में हिन्दू पुरुष के दाय-ग्रहण के नियम २६८, पश्चिमी बंगाल में हिन्दू पुरुष का दाय-ग्रहण २७०, हिन्दू-स्त्री का दायग्रहण २७१, दाय से अपवर्जन (वंचित करना) २७१, परहस्तकरण (अन्य को देने) का अधिकार २७२, ऋण-शोधन २७२, मुस्लिम पारिवारिक कानून २७३, इस्लामी कानून के स्रोत २७४, विवाह २७५, शून्य और अनियमित विवाह २७६, महर २७६, संभरण (भरण-पोषण) २७७, तलाक २७८, पितृत्व २७९, अवयस्कता (नाबालिगपन) और संर-क्षता २७९, उत्तराधिकार २८०, सुन्नी मुसलमान के उत्तरा-धिकारी २८०, शिया मुसलमान के उत्तराधिकारी २८१, प्रति-ग्रह २८२, वसीयत २८२, वक्फ २८२, पारसियों का पारि-वारिक कानून २८३, विवाह २८३ विवाह संबंधी वाद २८४, उत्तराधिकार २८५, ईसाई पारिवारिक कानून २८६, विवाह २८६, वैवाहिक विवाद २८७, उत्तराधिकार २९०, निवास (निश्चित वास) २९१।

१४. भूमि-कानून २९३-२९७

सामान्य परिभाषाएँ २९३, भू-राजस्व एकत्र करने के तरीके २९४, रैयतवाड़ी क्षेत्रों मे मालिक के अधिकार २९५, जमीन, नदी, नाले आदि की मिल्कियत २९६ ।

१५. सम्पदा शुल्क २९८-३०४

परिभाषा, आवश्यकता तथा उद्देश्य २९८, सम्पदा शुल्क का निर्धारण २९९, हिन्दू संयुक्त परिवार के मृत सदस्य की संपत्ति पर लगनेवाला सम्पदा शुल्क ३००, हस्तांतरित होनेवाली संपत्ति पर शुल्क ३०१, मृतक की न मानी जानेवाली संपत्ति ३०२ ।

१६. व्यवहार न्यायालयों की प्रक्रिया ३०५-३२४

मुकदमा, निवेदन तथा प्रारंभिक निवेदन ३०५, क्षेत्राधिकार के नियम ३०६, वाद की आवश्यक शर्तें ३०८, सम्मन ३०९, विचार ३११, वाद का समझौता ३१३, पंच-फैसला ३१३, अपील (पुनर्विचार), पुननिरीक्षण और पुनर्विलोकन ३१४, निर्णय की अंतिमता ३१६, व्यय ३१७, वादों की विशेष श्रेणियां ३१७, पक्षों की मृत्यु ३१७ दावे का नियोजन (प्रतिहस्ताकन) ३१८, डिगरी का निष्पादन (क्रियान्वन) ३१८, बंदीकरण (गिरफ्तारी) तथा निरोध (नजरबंदी) ३२०, संपत्ति की कुर्की और बिक्री ३२०, न्यायालय-शुल्क (कोर्ट-फीस) ३२१, काल-सीमन की बाधा ३२२ ।

१७. आपातकालीन कानून ३२५-३२९

परिभाषा तथा स्थायी कानून से भेद ३२५, कुछ विशिष्ट आपात्-विधियाँ ३२६, निवारक नजरबंदी कानून ३२६, प्रेस अधिनियम ३२८।

१८. अन्तर्राष्ट्रीय कानून ३३०-३३१

परिमाण तथा क्षेत्र ३३० ।

परिशिष्ट १ कानून मे नवीन परिवर्तन एवं संशोधन ३३१

परिशिष्ट २ 'राज्य पुनर्गठन विधेयक' ३३४

परिशिष्ट ३ पारिभाषिक शब्दावली ३३९

प्रास्ताविक

कानून (विधि) का जानना प्रत्येक व्यक्ति के हित की बात है। अंग्रेजी की कहावत प्रसिद्ध है—"कानून का न जानना बचाव की कोई दलील नहीं है।" दूसरे शब्दों में, हर व्यक्ति कानून का जानकार माना जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि कोई भी व्यक्ति कानून भंग करने के बाद उसके परिणाम से यह कहकर नहीं बच सकता कि उसे कानून का ज्ञान नहीं था। यदि वह अपराध करता है, दूसरे के शरीर या सम्पत्ति को हानि पहुंचाता है अथवा अपने किये हुए कानूनी करार को पूरा नहीं करता तो, उसे हरजाना देना होगा या दंड भुगतना पड़ेगा। अदालत में उसका यह कहना व्यर्थ होगा कि उसे इस बात का पता नहीं था कि कानून उसे वैसा करने से मना करता है। इस प्रकार हर साधारण व्यक्ति का कानून से संबंध होता है, किन्तु कुछ व्यक्तियों का कानून से विशेष संबंध भी हो सकता है। हो सकता है कि किसी व्यक्ति के पास सम्पत्ति हो, वह कर देता हो, स्वयं नौकरी करता हो या दूसरे को नौकर रखता हो, उसे किसी अन्य के विरुद्ध दावा या अपने विरुद्ध किये गए दावे का प्रतिरोध करना पड़े। संभव है, वह एक अवैतनिक दंडनायक (आनरेरी मजिस्ट्रेट) हो, फौजदारी अदालत में सभ्य (जूरी) का सदस्य या दोषाकनकर्ता (असेसर) हो, किसी मंदिर, मस्जिद या अन्य सार्वजनिक दान-संस्था का प्रन्यासी (ट्रस्टी) हो, किसी नाबालिग का संरक्षक, संसद् राज्य-विधान-सभा, स्थानीय बोर्ड (लोकल बोर्ड) या नगरपालिका (म्यूनिसिपैलिटी) का सदस्य अथवा राज्य की असैनिक (सिविल) या प्रतिरक्षा (डिफेंस) सेवा (सर्विस) का सदस्य हो। इन तथा अन्य परिस्थितियों में कानून का जानना और उसके अनुसार आचरण करना उसके अपने हित की बात होगी।

कानून की परिभाषा, क्षेत्र तथा उद्देश्य

विधि या कानून क्या है? पाठक इस शब्द से इतने परिचित हैं कि उसकी व्याख्या अनावश्यक प्रतीत होती है। किंतु तनिक विचार करने पर इसकी आवश्यकता स्पष्ट हो जायगी। कानून शब्द का प्रयोग हम विभिन्न अर्थों और विभिन्न प्रसंगों में करते हैं। हम 'प्रकृति के कानून', 'ईश्वरीय-विधि', 'नैतिक विधि', 'यंत्र-विधि' और यहाँतक कि 'बिज खेल के विधान' (नियम) तक की बात करते हैं। किन्तु जब हम केवल कानून या भारत के कानून अथवा अन्य किसी देश के कानून का नाम लेते हैं तो उसका अर्थ भिन्न होता है। वहां कानून से तात्पर्य उन विविध प्रकार के नियमों से होता है, जिनके अनुसार सामान्यतः हमारा आचरण होता है और जिन्हें राज्य अपनी अदालतों के जरिये लोगों पर लागू करता है। यदि आवश्यक हो तो

राज्य इस काम मे बल का भी प्रयोग करता है। एक दृष्टान्त लीजिए—प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे काम से बचना चाहिए जिससे किसीके शरीर या सम्पत्ति की हानि हो। यह आचरण का एक सामान्य नियम है, जिसका सभी को पालन करना चाहिए। राज्य की अदालतें जब नियम-भग करनेवाले अपराधी को दड देती हैं या पीड़ित व्यक्ति को हरजाने के रूप में पैसा दिलवाती हैं, तब वे इसी नियम को लागू करती हैं। यदि अपराधी प्रतिरोध करता है तो राज्य उस प्रतिरोध को नष्ट करने के लिए शक्ति का प्रयोग करेगा। यदि कदाचित् अपराधी बलवान् व्यक्ति हो अथवा व्यक्तियों का समूह हो तो राज्य को अपनी समस्त शक्ति का प्रयोग कर अपने कानून को सार्थक करना होगा।

उपर्युक्त नियम तो उन अनेक नियमों में से एक का दृष्टान्त-मात्र है जिनके अनुसार लोगों को अपने आचरण में एक-दूसरे के प्रति प्रवृत्त होना चाहिए। ये नियम नागरिकों के कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के सबध मे दिये गए राज्य के आदेश हैं। यदि हम इन्हें जरा और बारीकी से देखें तो ज्ञात होगा कि इनसे एक बहुत महत्त्वपूर्ण परिणाम निकलता है। ये नागरिकों के पारस्परिक अधिकारों और कर्त्तव्यों को जन्म देते हैं। आचरण-संबधी एक नियम प्रत्येक नागरिक को आदेश देता है कि वह बिना किसी न्यायोचित कारण के किसी के शरीर या सम्पत्ति को हानि न पहुचाये। दूसरे शब्दों मे यह प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य ठहराता है कि वह अपने सह-नागरिक के शरीर या सम्पत्ति को हानि न पहुचाये और तदनुसार वह प्रत्येक नागरिक को अधिकार देता है कि कोई उसके शरीर और सम्पत्ति को हानि नहीं पहुचायगा। इसी प्रकार अन्य नियमों का उद्देश्य यह है कि वे नागरिकों से उनके कर्त्तव्यों का पालन करवाए और उसके द्वारा नागरिकों के पारस्परिक अधिकारों की रक्षा करें।

कानून में वे नियम भी आते हैं जिनके द्वारा इन आदेशों को कार्यान्वित किया जाता है। उदाहरण के लिए कुछ नियमों द्वारा कानून की अवमानना के फलस्वरूप दड व अन्य परिणामों की व्यवस्था की जाती है। कुछ अन्य नियम इस बात की व्यवस्था करते हैं कि अमुक अधिकार किस प्रकार प्राप्त किये जाते हैं। दृष्टान्त के रूप मे, हो सकता है दो व्यक्ति एक मृत सबधी की सम्पत्ति के उत्तराधिकार के लिए परस्पर विरोधी दावे करें और उसे हस्तगत करने के लिए उद्यत हों। ऐसी स्थिति में कानून का वह नियम जो किसी की सम्पत्ति के कब्जे में बाधा उपस्थित करनेवाले को रोकता हैं, तभी लागू किया जा सकता है जब एक ऐसा नियम और हो, जो यह निश्चित कर सके कि ऐसे दावेदारों में विधि-सगत दावेदार कौन है। इसीलिए उत्तराधिकार के कानून की आवश्यकता पड़ती है। कुछ नियम इस बात का निर्देश मात्र करते हैं कि अमुक काम किस प्रकार किये जायगे, वे उन कामों को करने का आदेश नहीं देते। उदाहरण के लिए यदि वसीयत करनी हो तो वह एक लिखित दस्तावेज द्वारा की जानी चाहिए, जिसपर वसीयत करनेवाले के

हस्ताक्षर हों और जिसे दो साक्षियों द्वारा प्रमाणित किया जाय। इस प्रकार के नियम की सड़क पर अंकित निर्देश-चिह्न से तुलना की जाती है। यह चिह्न सही रास्ता तो बताता है, किन्तु उसपर चलने के लिए किसी को बाध्य नहीं करता। इस बात की व्यवस्था के लिए कि अदालतें अपराधियों को किस प्रकार दंड दें और नागरिकों के बीच झगड़ों का किस प्रकार निपटारा करें, बहुत-से कानूनों की आवश्यकता है। कानून का संबंध केवल अलग-अलग नागरिकों के आपसी अधिकारों व कर्त्तव्यों से ही नहीं है, बल्कि इससे भी है कि राज्य का गठन किस प्रकार हो और वह जनता पर कैसे शासन करे। देश के कानून का यह भाग उसका 'संविधान' कहलाता है। इस रूप में हमारे पास भारत का संविधान है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कानून का एक महत्त्वपूर्ण भाग होता है।

जब हम भारत के या अन्य किसी देश के कानून की बात करते हैं तो हमारा मतलब इन्हीं सब तथा अन्य बहुत-से नियमों के संकलन से होता है। उन सबका एक ही चरम लक्ष्य होता है, और वह है जनता के पारस्परिक आचरण को नियमित बनाकर राज्य के हित का संवर्द्धन करना।

कानून की भाषा

कानून के संबंध में जो पहली बात हम देखते हैं वह यह है कि हम उसका अर्थ शब्दों द्वारा समझना पड़ता है और उन शब्दों के प्रायः एक-से अधिक अर्थ होते हैं। यह बात हम स्वयं 'कानून' शब्द के बारे में ही देख चुके हैं। अब हम देखेंगे कि 'राज्य' शब्द भी ऐसा ही अनेकार्थ बोधक शब्द है। जैसे-जैसे हम आगे बढ़ेंगे, हमारे सामने ऐसे और बहुत-से शब्द आयेंगे। अनेकार्थ बोधक शब्दों का प्रयोग हमेशा असुविधाजनक होता है और कानून में तो विशेष रूप से, क्योंकि कानून एक गंभीर विषय है और उसे गलत समझनेवाले व्यक्ति को सजा भुगतनी या आर्थिक हानि उठानी पड़ सकती है। फिर भी ऐसे शब्दों का प्रयोग अनिवार्य है, क्योंकि कानून में हमें ऐसे भावों को व्यक्त करना होता है जो विशिष्ट रूप से कानून से संबंधित हैं और यह अभिव्यक्ति उन शब्दों द्वारा होती है जिनका साधारण बोलचाल में एक या दूसरा अर्थ होता है। इससे बचा भी नहीं जा सकता। इसका एकमात्र विकल्प यह है कि कानून के लिए एक विशिष्ट शब्दावली बनाई जाय। लेकिन इससे यह होगा कि संसद् द्वारा बनाये गए अधिनियम ऐसे अपरिचित शब्दों से भरे होंगे कि साधारण नर-नारी के लिए वे डाक्टरी नुस्खे के समान होंगे। यह बड़ी भयंकर बात होगी क्योंकि यह कानून का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले व्यक्ति को डरा देगी। इसलिए हमें आम बोल-चाल की भाषा के शब्दों से ही गुज़ारा करना चाहिए और हर बार यह ध्यान रखना चाहिए कि अमुक प्रसंग में अमुक शब्द का क्या अर्थ है।

'राज्य' एक रोचक शब्द है और हम अक्सर उसका प्रयोग विभिन्न प्रसंगों में भिन्न-भिन्न अर्थों में करते हैं। इसका मुख्य अर्थ सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न राज्य का

वाचक है, किंतु इसका प्रयोग उस राज्य का बोध कराने में भी करते हैं जो स्वयं संपूर्ण सत्ता न रखता हो, बल्कि किसी दूसरे राज्य के अधीन हो। दोनों ही स्थितियों में 'राज्य' तीन तत्वों का समुच्चय होता है—प्रदेश, जनता और सरकार (शासन)। यदि राज्य संपूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न है तो राष्ट्र की जनता की निष्ठा या राजभक्ति केवल इसी के प्रति होती है, किसी अन्य राज्य के प्रति नहीं। इसकी सरकार इसके प्रदेश और जनता पर सर्वोपरि अधिकार रखती है तथा अन्य किसी सरकार के अधीन नहीं होती।

राज्य की परिभाषा और उसके तीन तत्त्व

भारतीय गणराज्य एक संपूर्ण प्रभुत्वसंपन्न राज्य है। इस समय संसार में ऐसे लगभग पचास राज्य हैं जिन्होंने भूमि को अपने अलग-अलग प्रदेशों में बाँटा हुआ है। संपूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न राज्य की एक अपनी विशेषता यह है कि उसकी सरकार के पास अपने प्रदेश की रक्षा और प्रजा में शांति और कानून की व्यवस्था बनाये रखने के लिए आवश्यक बल-प्रयोग या उसकी व्यवस्था का पूरा अधिकार होता है। अशांति में रक्षा के बाद ही सरकार प्रजा की भलाई के दूसरे बड़े-बड़े काम कर सकती है। अपने मुख्य या गौण कार्यों को पूरा करने के लिए राज्य को कानून बनाने और उन्हें प्रवर्तित करने (लागू करने) का अधिकार प्राप्त है। 'राज्य' शब्द का प्रयोग ऐसे राज्य का बोध कराने के लिए भी किया जाता है जो संपूर्ण प्रभुत्वसंपन्न नहीं होता। भारतीय गणराज्य को भारत-संघ कहा जाता है और उसमें कई राज्य हैं। प्रत्येक राज्य, जैसे, बंबई या मद्रास राज्य, का अपना प्रदेश, अपनी जनता और अपनी सरकार है, किन्तु वह संघ के अधीन है। राज्य का प्रदेश और जनता संघ के प्रदेश और जनता के भी भाग हैं और उसकी सरकार राज्य सरकार के विशिष्ट कामों को ही करती है, जबकि संघ की सरकार प्रतिरक्षा सहित अन्य कामों को भी करती है। अपने से संबंध रखनेवाले काम करने के लिए उसे कानून बनाने और उन्हें जनता पर लागू करने का अधिकार प्राप्त है। इसी प्रकार के राज्यों से मिलकर संयुक्त राज्य अमरीका बना है। भारत में ब्रिटिश शासनकाल में ऐसे देशी राज्य थे जिनके शासक इंगलिस्तान के सम्राट को अपना अधिराज मानते थे। 'राज्य' शब्द वैसे भी अनेकार्थ-बोधक है और उसका प्रयोग भिन्न-भिन्न तथा वास्तव में परस्पर विरोधी अर्थों में होता है, फिर भी हमारी कुछ ऐसी आदत पड़ गई है कि हम उसके तीनों भागों का अलग-अलग बोध कराने में उसी का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार जब हम किसी राज्य के कल्याण की बात करते हैं तो वहां 'राज्य' से अभिप्राय उसकी जनता से होता है, जब राज्य में प्रवेश की बात करते करते हैं तो वहां तात्पर्य उसके प्रदेश से होता है और जब हम राज्य के युद्ध या संधि घोषित करने की बात करते हैं तब वहां उसका संकेत 'राज्य' की सरकार से होता है।

प्रदेश का नाम राज्य के नाम या उसकी सरकार के लिए भी प्रयुक्त होता है—

उदाहरणार्थ उस समय, जब हम कहते हैं कि 'इंगलैण्ड संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य है' या 'इगलैण्ड ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी'।

मनुष्य के लिए कानून और राज्य की आवश्यकता और उनके प्रति उसकी अधीनता विचार के लिए मनोरजक विषय है। मनुष्य रोटी से ही जिन्दा नही रहता। उसकी और भी जरूरतें होती हैं। वह सबसे एकाकी जीवन-यापन नही कर सकता, उसे अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क-साहचर्य की आवश्यकता होती है। वह परिवार, कबीले, समुदाय व राज्य आदि समूहों मे सगठित होकर उनसे सम्पर्क स्थापित करता है। किन्तु वह ऐसा तभी कर सकता है जब कि वह और दूसरे व्यक्ति आचरण के उन नियमो का पालन करे जो उनके बीच व्यवस्थित सबधो की स्थापना करते है। हम जानते है कि ताश के ब्रिज या अन्य खेल द्वारा तनिक आनद लेने के लिए भी हमें कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है। यदि हम ऐसा न करे तो खेल द्वारा जो आनद हम प्राप्त करना चाहते है वह खत्म हो जाता है। जब बड़ी सख्या मे लोग किसी देश मे रहना चाहते है और सहनागरिको के रूप मे साथ रहने के फायदे उठाना चाहते है तो यही बात होती है। ये फायदे क्या है? पहला और सबसे बड़ा फायदा है उनके शरीर, घर और उनकी चीजो की सुरक्षा। इस फायदे को वे बाह्य शत्रुओ से रक्षा के लिए और आपस मे व्यवस्था बनाये रखने के लिए सगठित होकर प्राप्त करते हैं। ऐसा करने के बाद वे बड़े-से-बड़े पैमाने पर भौतिक या शारीरिक सुख, ज्ञानार्जन, मस्तिष्क व आत्मा का विकास और लोक-हित जैसे अन्य फायदों को पाने के लिए एक-दूसरे को योग दे सकते है। मनुष्य को अपने सुख के लिए इन सबकी आवश्यकता होती है और वह उन्हे तभी प्राप्त कर सकता है जब वह और उसके सह-नागरिक शाति और मेल से रहे और आचरण के सर्वसम्मत आदर्शो का पालन करे। अत: हर देश और काल मे विविध विषयो के सबंध मे लोगो के अनेक नियम रहे हैं। आज हम इन नियमो को कानून, धर्म, नैतिकता, सामाजिक या व्यावसायिक चलन, शील और विनय आदि विभिन्न श्रेणियो मे विभक्त करने लगे हैं। इन सभी नियमो का उद्देश्य एक ही है, और वह यह कि मनुष्य का मिलकर रहना सभव और सफल हो सके। उदाहरण के लिए कुछ नियमो का उद्देश्य यह होता है कि वे एक व्यक्ति के दूसरे व्यक्ति के प्रति शारीरिक हानि पहुचाने, सम्पत्ति को हड़पने और कानूनी करार को तोड़ने आदि जैसे असामाजिक आचरणो को रोके। हम उन्हे कानूनी नियम कहते है। राज्य इन नियमो को अदालतो के जरिये लागू करता है। कुछ नियम ऐसे है जिनके द्वारा झूठ और कृतघ्नता जैसे अन्य असामाजिक आचरण रोके जाते है। इन्हें हम नैतिकता के नियम कहते है। हम नही चाहते कि राज्य और उसकी अदालतें इन नियमो का उल्लंघन करनेवाले अपराधियों को सजा दें। उनके प्रति अपनी नाराजगी प्रकट करने के लिए हम दूसरे तरीके काम मे लाते हैं।

कानून की उपयोगिताएं

इस प्रकार हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि मनुष्य को आचरण के बहुत-से नियमों की आवश्यकता होती है और उनमें से कुछ कानून या विधि कहलाते हैं। उन्हें कानून इसलिए कहा जाता है, क्योंकि उन्हें भंग करनेवाले को शारीरिक या अन्य प्रकार का दंड देकर भी लागू करना जरूरी समझा जाता है। कानून को लागू करने और इसके लिए आवश्यक बल का प्रयोग करने का उपकरण राज्य ही है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य के लिए कानून और राज्य की आवश्यकता है, किन्तु अपने सह-नागरिकों के साहचर्य में अपने सुख-रूपी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इस दिशा में वह बहुत आगे नहीं बढ़ा है। संसार के विभिन्न भागों में मनुष्य यद्यपि राज्य-शासनों की अधीनता तो स्वीकार कर चुका है तथापि विश्व के समस्त व्यक्तियों या जन-समूहों पर उसके कानून लागू कर सकने में समर्थ एक विश्व-सरकार या विश्व-राज्य के शासन के अधीन रह सकने में असफल रहने के कारण उसका अस्तित्व और सुख निरन्तर खतरे में पड़ता रहता है। जबतक यह नियम एक विश्व-सरकार द्वारा, यदि आवश्यक हो तो बल-प्रयोग द्वारा, लागू नहीं किये जायेंगे, तबतक न तो व्यक्ति इन नियमों का पालन करेगा और न उनके वे समूह ही, जिन्हें सरकार (शासन) अथवा राज्य कहते हैं।

'कानून' शब्द का प्रयोग उन्हीं नियमों के लिए होता है जो किसी राज्य द्वारा लागू किये जाते हैं। यद्यपि हम राष्ट्रों के कानून या अन्तर्राष्ट्रीय कानून की बात करते हैं तथापि राज्यों के पारस्परिक आचरण के नियम इस शब्द के अन्तर्गत नहीं आते। इसका कारण यह है कि उन्हें लागू करने के लिए अभी तक कोई विश्व-राज्य नहीं है। इसी आवश्यकता को पूरा करने के लिए विश्व के सभ्य राष्ट्रों ने संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की है।

अतः भारत का कानून उन विविध प्रकार के नियमों से मिलकर बना है, जिन्हें अपनी जनता पर लागू करने का अधिकार भारत संघ तथा उससे संबद्ध राज्यों को है।

भारत का सामान्य कानून

यह कानून कैसे बना और किसने बनाया, इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए हमें उन चार वर्गों की चर्चा करनी होगी जिनसे भारत का कानून बांटा जा सकता है। उनमें पहला और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कानून वह है जो भारतीय संविधान में निहित है। अन्य तीन हैं—विधान अर्थात् बनाये गए कानून, भारत के सर्वोच्च न्यायालय तथा राज्यों के उच्च न्यायालयों के निर्णय, और प्रथा, रिवाज या चलन। भारत का संविधान उसका सर्वोच्च कानून है, क्योंकि भारत के कानूनों में उसकी सत्ता सर्वोपरि है और अन्य सभी कानून उसके उपबंधों के अनुसार ही बनाये और लागू किये जा सकते हैं। यह संविधान भारत की संविधान-सभा द्वारा बनाया गया है जो खुद भारतीय जनता के प्रतिनिधियों की सभा थी। 'विधान' अर्थात् बनाये गए कानून का मतलब

उस कानून से है, जिसे वे प्राधिकारी (सत्ता-अधिकारी) बनाते हैं जिन्हे संविधान द्वारा वैसा करने के अधिकार दिये गए हैं । इन प्राधिकारियो मे प्रमुख भारत संघ की संसद् और राज्यो की विधान-सभाए हैं । उनके द्वारा बनाया गया कानून 'एक्ट' या 'अधिनियम' कहलाता है, और उसे 'अधिनियमित विधि' या 'अधिनियमित कानून' कहते हैं । इसे 'संविधि' अथवा 'अधिकरणित विधि' भी कहते हैं । भारत के सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) द्वारा अपने निर्णयो मे घोषित या स्पष्टीकृत कानून भारत के समस्त न्यायालयों के लिए, और किसी राज्य के उच्च न्यायालय (हाई कोर्ट) द्वारा घोषित अथवा स्पष्टीकृत कानून उस राज्य के अन्य सभी न्यायालयों के लिए, अनिवार्यतः मान्य होते हैं । दूसरे शब्दों मे, मुकदमो के फैसले के बीच इन वरिष्ठ न्यायालयों द्वारा जिन कानूनो की रचना होती है अन्य न्यायालयो को चाहिए कि वे उसी प्रकार के मामलो-मुकदमो मे उनके आधार पर ही निर्णय करे । इसलिए इस प्रकार के कानून को 'वाद-विधि' या 'नजीर' कहते हैं । ये कानून न्यायालयो द्वारा उस प्रकार से नही बनाये जाते जिस प्रकार संसद् बनाती है, क्योंकि न्यायालय कोई नया कानून नही बना सकते । वे बने-बनाये कानून को स्पष्ट रूप मे घोषित ही कर सकते है और किसी खास विवाद मे उसे लागू कर सकते हैं । किन्तु ऐसा करने मे वे जनता और अन्य न्यायालयों के मार्ग-दर्शन के लिए बहुत-से नियमो को रूप प्रदान करते हैं । प्रथा, रिवाज या चलन ऐसे नियम को कहते हैं जिसका लोग एक लम्बे समय से पालन करते आये हो । कानून का यह सबसे पुराना रूप है, किन्तु आधुनिक कानून मे उसका स्थान मामूली है । लगभग सभी महत्त्वपूर्ण मामला के संबंध मे आज विधान के रूप मे कानून मौजूद है, किन्तु थोड़े से विषय ऐसे भी है जिनके संबंध मे आज भी प्रथा या चलन ही कानून है । उदाहरण के लिए हिन्दू और मुसलमानो की धार्मिक रीतियो और विवाह तथा उत्तराधिकार से संबंधित कानून अधिकतर इन सम्प्रदायों मे प्रचलित प्रथा के अनुसार ही है । किन्तु हिन्दू विवाह विधेयक के अधिनियमित हो जाने से अब यह आशा की जा सकती है कि हिन्दुओं की पारिवारिक विधि के क्षेत्र मे यह विधेयक प्रथाओं का स्थान ले लेगा ।

कानून के स्रोत

पाठको के लिए यह जानना रोचक होगा कि जहा प्राचीन काल मे कानून का मुख्य स्रोत प्रथा या चलन ही था, वहा आधुनिक काल मे कानून जिन तीन अन्य रूपो मे मिलता है वे आज की परिस्थितियो मे जनित प्रथा के ही आधुनिक रूप है । बहुत पुराने जमाने मे ही मनुष्य को कानून की आवश्यकता का पता है । हमारी ही तरह प्राचीन जातियो के भी अपने कानून थे । अपने कानूनो को वे कानून-प्रदायको से ग्रहण करते थे, जो प्रायः राजा, योद्धा, पण्डे-पुजारी या पैगम्बर होते थे । हिन्दुओ के कई कानून-प्रदायक थे, जो ऋषि-मुनि थे और उनमे सबसे प्रसिद्ध मनु थे ।

आज हम अपने कानून अपने विधान-सभा-सदस्यों से, जो उनका निर्माण करते हैं, ग्रहण करते हैं, या अपने न्यायाधीशों से ग्रहण करते हैं, जो उनका निर्वचन करते हैं। प्राचीन कानून-प्रदायकों के कानून उस जमाने की प्रथाओं और रीतियों का संग्रह थे जो या तो उस समय प्रचलित थे या जो उनके अनुसार प्रचलित होने चाहिए थे। इन कानूनों को लोग दैवी अभिव्यक्ति मानते थे और अपने धर्म का अंग समझते थे। इस प्रकार प्राचीनकाल में कानून के प्रति आदर-भाव पैदा किया गया। वर्तमान संसार की परिस्थितियों ने एक ऐसे शक्तिशाली राज्य की आवश्यकता पैदा करदी है जो अपनी जनता के मामलों का नियमन करे और अपने कानून बनानेवालों व निर्वचन करनेवालों द्वारा कानून बनाने तथा उसे लागू करने के उत्तरदायित्व को सभाल सके।

आगे के पृष्ठों में हम भारतीय जन-जीवन तथा जन-कल्याण पर प्रभाव डालने वाले भारतीय कानून का अध्ययन करेंगे।

हमारा कानून

: १ :

भारत का संविधान

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

१५ अगस्त १९४७ को भारत में ब्रिटिश शासन का अंत हो गया और भारतीय इतिहास में एक नये युग का जन्म हुआ। ब्रिटिश शासनकाल में भारत उस सारे प्रदेश का नाम था जो एक तरफ अफगानिस्तान से ब्रह्मा तक, और काश्मीर से कन्याकुमारी अन्तरीप तक फैला हुआ है। इस प्रदेश पर ब्रिटिश शासन को दो काल-विभागों में बांटा जा सकता है। सन् १८५८ तक यह शासन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ में रहा, जिसके प्रादेशिक अधिकार सत्रहवीं शताब्दी में कुछ थोड़ी-सी बस्तियों से आरम्भ होकर अठारहवीं शताब्दी के मध्य के बाद तेजी से बढ़े। १८५८ में भारत की हुकूमत कम्पनी के हाथों से लेकर ब्रिटिश क्राउन[1] (ताज) को सौंप दी गई। इसका अर्थ यह हुआ कि इंगलैण्ड के सम्राट या साम्राज्ञी, जो भी हों, भारत के अधिराज (संपूर्ण प्रभुत्वसंपन्न शासक) बन गए और भारतीय मामलों पर अपने मंत्रियों द्वारा नियंत्रण रखने लगे। यह नियंत्रण भारत के दो भागों में, जो 'ब्रिटिश भारत' व 'देशी राज्य' कहलवाते थे, अलग-अलग प्रकार से किया जाता था। ब्रिटिश भारत के संबंध में ब्रिटेन की पार्लमेंट (संसद्) समय-समय पर बनाये गए अपने कानूनों के द्वारा, जिन्हें 'गवर्नमेंट आव इण्डिया एक्ट' कहते थे, यह निर्णय करती थी कि कौन-कौन से प्राधिकारी किस-किस तरह सरकार का काम-काज चलाव। इन प्राधिकारियों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्राधिकारी गवर्नर-जनरल होता था, जो भारत सरकार का प्रमुख था। उसकी नियुक्ति ब्रिटिश सरकार करती थी और वह अपने कर्त्तव्य का पालन उसीके आदेश व नियंत्रण में रहकर करता था। देशी राज्य, जिनमें प्रत्येक का एक शासक होता था, संख्या में ५६२ थे और उनका विस्तार देश का लगभग आधा क्षेत्र-फल और उनकी जनसंख्या देश की लगभग एक-तिहाई जनसंख्या थी। ये शासक इंगलैण्ड के सम्राट या साम्राज्ञी को अपना अधिराज मानते थे। दूसरे शब्दों में ब्रिटिश सरकार उनके लिए सर्वोपरि सार्वभौम सत्ता थी। वे अपने वैदेशिक मामलों में उसके

---

१. ब्रिटिश शासन की सर्वोच्च सत्ता का प्रतीक

नियंत्रण में थे। किन्तु शासन के बहुत खराब होने की स्थिति को छोड़कर अन्य स्थितियों में घरेलू मामलों में वे स्वतन्त्र थे। अपनी प्रजा के साथ उनका संबंध सर्वसत्ताधारी राजाओं का था। प्रत्येक राज्य की अपनी सरकार और अपना कानून था, जो बाकी राज्यों और ब्रिटिश भारत से भिन्न होता था। इस प्रकार लगभग एक शताब्दी तक ब्रिटिश सरकार और पार्लामेण्ट ने भारत सरकार पर अधिकार और नियंत्रण रखा।

भारतीय जनता की स्वतन्त्रता की माग और १९४७ में शासकों द्वारा उसके स्वीकृत किये जाने के लिए भारतीय जनता के संघर्ष से सब परिचित हैं। उस वर्ष भारत में ब्रिटिश शासन समाप्त करने के लिए दोनों पक्षों के नेताओं में आवश्यक बातों पर एक समझौता हुआ और उन्होंने यह भी निश्चय किया कि उस शासन का उत्तराधिकारी कौन हो। ये बातें १५ अगस्त १९४७ को इस प्रकार अमल में लाई गईं—भारत तथा पाकिस्तान के नाम से दो संपूर्ण प्रभुत्वसंपन्न राज्य स्थापित किये गए। भारत में पूर्वी बंगाल, पश्चिमी पंजाब, सिंध, उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रांत और बिलोचिस्तान को छोड़कर ब्रिटिश भारत का बाकी हिस्सा शामिल था। इन छोड़े गए प्रांतों से पाकिस्तान बना। ये दोनों राज्य ब्रिटिश क्राउन के डोमिनियन (स्वायत्त औपनिवेशिक राज्य) बन गए, जिसका तात्पर्य यह हुआ कि उन्होंने ब्रिटेन के सम्राट को अपना अधिराज माना, किन्तु वे अपने घरेलू और विदेशी मामलों के प्रबंध में पूर्ण स्वतन्त्र रहे। देशी राज्यों को इन दोनों डोमिनियनों में से किसी एक में मिलने की स्वतन्त्रता थी। प्रत्येक डोमिनियन में एक संविधान-सभा को—जो प्रांतों की विधान सभाओं के सदस्यों द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों से बनाई गई थी—उस डोमिनियन की भावी सरकार का रूप निश्चित करने का काम सौंपा गया। ब्रिटिश पार्लामेंट ने भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम, १९४७, नामक एक कानून पास कर यह घोषणा की कि १५ अगस्त, १९४७ से ब्रिटिश सरकार भारत और पाकिस्तान के शासन की जिम्मेदार नहीं होगी और उसे उनके मामलों में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं होगा तथा देशी राज्यों पर ब्रिटिश क्राउन का अधिराज्य भी समाप्त हो जायगा।

देशी राज्यों का एकीकरण तथा समाप्ति

अगस्त १९४७ से दिसंबर १९४९ के बीच भारत-डोमिनियन में उसके आस-पास के सभी देशी राज्य उसमें शामिल हो गए। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक देशी राज्य के शासक ने एक सम्मिलन पत्र लिखा, जिसके अनुसार उसने उस पत्र में लिखे मामलों में भारत सरकार का आधिपत्य मानने की स्वीकृति दी। डोमिनियन की तरफ से गवर्नर जनरल ने उसे स्वीकार किया। फलतः भारत में अब १५ अगस्त १९४७ को ब्रिटिश शासन से मिले प्रदेशों के अतिरिक्त सब देशी राज्यों के प्रदेश भी शामिल हैं, और अब सारे भारत का शासन और कानून एक है। यह स्वयं ही एक बड़ी घटना थी; किन्तु इसके साथ और भी घटनाएं

घटी। बहुत-से देशी राज्य साथ के प्रांतों में विलीन होकर या केन्द्रीय शासन के अधिकार में ले लिये जाने से समाप्त हो गए और उनके शासकों ने एक बंधे भत्ते के बदले अपने राज्य छोड़ दिये। तीन देशी राज्यों को छोड़कर शेष ने अपने संघ बना लिये। इस प्रकार देशी राज्यों की संख्या ५६२ के स्थान पर तीन राज्य और पांच संघ रह गई।

भारत की संविधान-सभा ने, जिसमें प्रांतों के अतिरिक्त इन देशी राज्यों के प्रतिनिधि भी शामिल थे, भारतीय संविधान बनाने का कार्य पूरा किया और उसे २६ नवम्बर १९४९ को स्वीकार किया।

भारतीय संविधान २६ जनवरी १९५० से अमल में आया। संविधान निम्न प्रस्तावना से आरंभ होता है :

"हम भारत के लोग, भारत को *एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य* **बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को :**

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक *न्याय*,
विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की *स्वतंत्रता*,
प्रतिष्ठा और अवसर की *समता*
प्राप्त कराने के लिए,
तथा उन सबमें
व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की
एकता सुनिश्चित करने वाली *बन्धुता*
बढ़ाने के लिए

दृढ़ संकल्प होकर *अपनी इस संविधान-सभा में* **आज तारीख २६ नवम्बर १९४९ ईस्वी को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"**

इस प्रकार भारत का संविधान भारतीय जनता के उस निर्देश का प्रतीक है, जिसके अनुरूप उसके राज्य का गठन और प्रबंध किया जाय। स्वाधीन जनता का निर्देश ही उसका कानून है। भारत का संविधान उसका सर्वोच्च कानून है, क्योंकि यह उन प्राधिकारियों को जन्म देता है जो उसके कानून को बना तथा लागू कर सकते हैं। राज्य की समस्त जनता—अमीर या गरीब, सरकारी या गैर-सरकारी—इसके प्रति निष्ठा व राजभक्तिबद्ध है और वह इससे जीवन, स्वाधीनता, घर तथा संपत्ति की सुरक्षा प्राप्त करती है। वह संविधान में आये हुए या उसके उपबंधों के अन्तर्गत लागू कानूनों को मानने के लिए कर्त्तव्य-बद्ध है और ऐसा न करने पर अदालत के सामने जवाबदेह है। यह बात नागरिकों और सरकारी प्राधिकारियों पर समान रूप से लागू होती है। इन प्राधिकारियों को ऐसी कोई छूट प्राप्त नहीं जो कानून द्वारा

न मिली हो। वे कानून से ऊपर नहीं है बल्कि उसके अधीन हैं, क्योंकि उन्हें अपनी सत्ता कानून से मिली है और उसीसे वे अपने अधिकार प्राप्त करते हैं। ये सब निष्कर्ष 'विधि शासन' या 'विधान की सर्वोच्चता' नामक सिद्धांतों से निकलते हैं। यही सिद्धांत संविधान का आधार है और उसके महान् उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक है।

संविधान की रूपरेखा

संविधान के आरंभ के कुछ शब्द भारतीय जनता के अपने को एक गणतंत्र में संगठित करने और उसके द्वारा अपने एक युग पुराने इतिहास और राजाओं के शासन की अधीनता से वो परम्परा को समाप्त करने के निर्णय को प्रकट करते हैं। अतः २६ जनवरी १९५० को भारतीय गणतंत्र का उद्घाटन कोई साधारण घटना नहीं है। उस दिन भारत में ब्रिटेन के सम्राट व उसके पूर्वजों का १८५८ से चला आया आधिपत्य समाप्त हो गया। एक स्वतंत्र गणराज्य के रूप में भारत ने राष्ट्र-मंडल (ब्रिटिश कॉमनवैल्थ) में रहना स्वीकार किया है, जिसका प्रधान ब्रिटेन का शासक है। राष्ट्रमंडल इस समय स्वतंत्र राष्ट्रों की स्वेच्छा से बनी एक संस्था के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

भारत-गणराज्य सम्पूर्ण प्रभुत्वसंपन्न—सर्व सत्ताधारी—है, क्योंकि वह किसी अन्य शक्ति या राज्य के प्रति निष्ठाबद्ध नहीं और अपने मामलों का खुद मालिक है। यह लोकतंत्रात्मक है, क्योंकि इसका शासन जनता के अपने चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा चलाया जाता है।

संविधान के प्रथम अनुच्छेद में इस देश के अंग्रेजी नाम के साथ भारत भी रखा गया है और कहा है—"इण्डिया अर्थात् भारत राज्यों का एक संघ (यूनियन) होगा"। दूसरे शब्दों में भारत एक फडरेशन अथवा फेडरल संघ है जिसे भारत-संघ कहा जाता है और जिसकी सब इकाइयों को राज्य कहा जाता है।

'क' 'ख' तथा 'ग' भाग के राज्य

राज्यों को तीन भागों में[1] रखा गया है—प्रथम अनुसूची के 'क', 'ख', और 'ग', भाग। आगे हम इन राज्यों को 'क', 'ख', 'ग', राज्यों के नाम से पुकारेंगे। आरंभ में 'क' राज्य संख्या में नौ थे अर्थात्—आसाम, बिहार, बंबई, मध्यप्रदेश (जिसे पहले मध्यप्रदेश और बरार कहते थे), मद्रास, उड़ीसा, पंजाब (जो पहले पूर्वी पंजाब के नाम से ज्ञात था), उत्तर-प्रदेश, (जो पहले संयुक्त प्रान्त के नाम से ज्ञात था) और पश्चिमी बंगाल। आंध्र राज्य बन जाने के बाद अब उनकी संख्या १० हो गई है। 'ख' भाग के राज्य संख्या में ८ हैं—अर्थात् हैदराबाद, जम्मू और

---

१. राज्य-पुनर्गठन-आयोग के प्रतिवेदन से अब राज्यों की 'क', 'ख', 'ग', श्रेणियां समाप्त हो जायेंगी और सब राज्य एक ही वर्ग में आजायेंगे।

काश्मीर, मैसूर, मध्यभारत, पटियाला और पूर्वी पंजाब की रियासतों का संघ, राजस्थान सौराष्ट्र और तिरुवाकुर-कोचीन। **'ग'** भाग में दस राज्य हैं—अर्थात् अजमेर, भोपाल, बिलासपुर कुर्ग, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, कच्छ, मणिपुर, विन्ध्य प्रदेश और त्रिपुरा। भारत के राज्य-क्षेत्र में इन तीनों भागों के राज्यों का क्षेत्र, प्रथम अनुसूची के **'घ'** भाग में उल्लिखित अंडमान और निकोबार द्वीप, और वे क्षेत्र जो कभी भविष्य में अर्जित किये जायं—सम्मिलित होंगे। संसद को इस बात का अधिकार है कि वह संविधान में की गई व्यवस्था के अनुसार एक नये राज्य को संघ में मिला ले या राज्यों की सीमाएं अथवा उनके नाम बदलकर या उन्हीं में से नये राज्य बनाकर भारतीय राज्य-क्षेत्र के उपर्युक्त विभाजन को बदल दे।

फेडरल राज्य की एक मुख्य विशेषता यह है कि फेडरेशन और राज्यों की अलग-अलग सरकारें होती हैं और उनकी अपनी अलग शक्तियां, संपत्ति, वित्त और सेवाएं (सर्विस) होती हैं। उनके नामों से अदालतों में उनपर मुकदमा चलाया जा सकता है। फेडरल सरकार या भारत संघ की सरकार या जिसे हम आमतौर पर भारत सरकार कहते हैं, तमाम राज्यों की जनता के लिए अपने सुपुर्द किये गए विषयों पर कानून बनाती है और उन्हें लागू करती है जबकि प्रत्येक राज्य की सरकार अपने राज्य की जनता के लिए अपने सुपुर्द किये विषयों पर कानून बनाती है और उन्हें लागू करती है। १ अप्रैल १९३७ तक भारत सरकार फेडरल सरकार न होकर एकात्मक सरकार थी, क्योंकि ब्रिटिश भारत के प्रांतों की सरकार केन्द्रीय सरकार की केवल अधीनस्थ शाखाएं थीं, अलग सरकार नहीं। इस दिन भारत सरकार ने फेडरेशन का रूप ग्रहण किया और गवर्नरों के शासन कहलाने वाले ग्यारह प्रांतों की सरकारें उस फेडरेशन का निर्माण करनेवाली इकाइयां बन गईं। फेडरल राज्य के अन्य उदाहरण संयुक्त राज्य अमरीका और कनाडा हैं और एकात्मक राज्य के उदाहरण इंगलिस्तान (युनाइटेड किंगडम) और फ्रांस हैं। फेडरल राज्य का महत्त्व इसी बात में है कि वह देश के विभिन्न भागों में रहनेवाले लोगों को अपने स्थानीय व प्रादेशिक मामलों का स्वयं प्रबंध करने में और साथ ही राष्ट्रीय उद्देश्यों के लिए पारस्परिक सहयोग देने में समर्थ बनाये।

नागरिकता

इसके बाद संविधान में उन व्यक्तियों को गिनाया किया गया है जिन्हें संविधान लागू होने के दिन, अर्थात् २६ जनवरी १९५०, से भारत के नागरिक समझा जाय। इस तिथि के बाद भी उनकी वही स्थिति होगी, किन्तु संसद आगे चलकर कानून द्वारा उसे बदल सकती है। उनमें सबसे बड़ा वर्ग, जिसमें भारत के अधिकांश व्यक्ति शामिल हैं, उन लोगों का है जो भारत में पैदा हुए हैं और जिनका अधिवास, अर्थात् स्थायी निवासस्थान यहीं है। दो और स्थितियों में कोई भी व्यक्ति भारत का नागरिक हो सकता है—प्रथम, जब उसका अधिवास तो भारत में हो किन्तु उसका जन्म

भारत में न हुआ हो, बशर्ते कि उसके माता-पिता में से किसी एक का जन्म भारत में हुआ हो; दूसरे, जबकि भारत में उसका अधिवास हो और २६ जनवरी १९५० से कम-से-कम पाच वर्ष पूर्व से वह भारत मे सामान्यतः निवास करता रहा हो। ऐसा व्यक्ति भी भारत का नागरिक बन सकता है जो विभाजन से पूर्व अविभाजित (अर्थात् पाकिस्तान सहित) भारत में पैदा हुआ हो या जिसके माता-पिता या दादा-दादी या नाना-नानी में से कोई एक भारत में पैदा हुआ हो और जो सामान्यत किसी अन्य देश में निवास कर रहा हो। वह उस देश मे स्थित भारत के कूटनीतिक अथवा वाणिज्य प्रतिनिधि के पास अपने-आपको उक्त रूप मे पजीबद्ध (रजिस्टर) कराके या ऐसे प्रतिनिधि को विहित प्रकार से २६ जनवरी १९५० से पहले या बाद मे दिये गए आवेदन पत्र द्वारा भी ऐसा कर सकता है। ऐसा कोई व्यक्ति, जिसने स्वेच्छा से किसी विदेशी राज्य की नागरिकता प्राप्त कर ली हो, उक्त उपबधो के अतर्गत भारत का नागरिक नही हो सकता। पाकिस्तान से प्रवास कर भारत आनेवाले लोगो की नागरिकता के लिए भी व्यवस्था की गई है। यदि कुछ शर्तो का समाधान हो जाय तो २६ जनवरी १९५० को ऐसा व्यक्ति भारत का नागरिक समझा जायगा। ये शर्त हैं :

वह, या उसके माता-पिता या दादा-दादी या नाना-नानी मे से कोई एक विभाजन के पूर्व के भारतीय क्षेत्र, यथा लाहौर अथवा कराची मे पैदा हुए हो; वह १९ जुलाई १९४८ से पहले प्रवास कर चुका हो और प्रवास की तिथि से सामान्यत भारत में रहता हो; यदि वह १९ जुलाई १९४८ के बाद भारत आया हो तो वह २६ जनवरी १९५० से पूर्व एक अधिकृत पदाधिकारी को दिये आवेदन-पत्र पर उस पदाधिकारी द्वारा भारत के नागरिक के रूप मे पजीबद्ध कर गया हो, किन्तु साथ में यह भी आवश्यक है कि आवेदन-पत्र देने से पूर्व वह भारत में कम-से-कम ६ महीने रह चुका हो। जो व्यक्ति १ मार्च १९४७ के बाद भारत छोड़कर पाकिस्तान चला गया हो, वह भारत का नागिरक नही होगा, किन्तु यदि वह पुनर्वास अथवा स्थायी वापसी की अनुज्ञा (परमिट) के अन्तर्गत भारत वापस आया हो और १९ जुलाई १९४८ के बाद भारत आनेवाले व्यक्ति पर लागू होनेवाली व्यवस्था के अनुसार पंजीबद्ध किया जा चुका हो, तो वह भारत का नागरिक हो सकता है।

मूल अधिकार तथा राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांत

सरकार के प्राधिकारियों तथा उनकी शक्तियो के निर्देश करने से पहले संविधान में भारत के नागरिकों के लिए दो बड़ी महत्त्वपूर्ण और हितकर बातो की व्यवस्था की गई है। पहली बात यह है कि संविधान में नागरिको के कुछ विशिष्ट अधिकारों की एक घोषणा द्वारा रक्षा की गई है। वह घोषणा यह है कि राज्य ऐसा कोई कानून नही बनावेगा जो इन अधिकारो का अपहरण करता हो या उन्हे कम करता हो। ऐसा कोई भी वर्तमान या बाद में बनाया गया कानून, जो इन अधिकारों से असंगत हो अपनी असंगति की सीमा

तक अमान्य और निरर्थक होगा और उससे पीड़ित नागरिक को अदालतों में उचित प्रतिकार प्राप्त है। इन अधिकारों को मूल अधिकार कहा जाता है। इस पुस्तक के अगले अध्याय में इनकी चर्चा की गई है।

संविधान में आगे चलकर उन बहुत-से सिद्धांतों को रखा गया है जिनका राज्य को देश के प्रशासन में पालन करना चाहिए। ये राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांत कहलाते हैं। कोई अदालत इस विषय में संविधान के उपबंधों को लागू नहीं कर सकती, किन्तु उनमें रखे गए सिद्धांत देश के शासन के मूल नियम हैं और यह राज्य का कर्त्तव्य है कि कानून बनाते समय वह उनको क्रियान्वित करे। इस प्रकार राज्य के जिम्मे किये गए कर्त्तव्य नैतिक हैं, कानूनी नहीं। उक्त प्रसंग में 'राज्य' का अर्थ राज्य के प्राधिकारियों से है, और उसमें भारत सरकार और भारत की संसद, राज्यों की सरकारें और विधानमंडल, तथा भारत में या भारत सरकार के नियंत्रणगत सभी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी शामिल हैं। सबसे बड़ा और आधारभूत सिद्धांत यह है कि राज्य एक उचित सामाजिक व्यवस्था के प्रचलन और उसके यथासंभव संरक्षण द्वारा लोक-कल्याण का संवर्द्धन करेगा। एक उचित सामाजिक व्यवस्था वह है जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर छा जाता है। खासतौर पर राज्य अपनी नीति का संचालन इस प्रकार करेगा कि वह निम्नलिखित की प्राप्ति करा सके :

जीविका के समुचित साधन के लिए प्रत्येक नागरिक—स्त्री तथा पुरुष—के समान अधिकार।

समाज के सम्पदा-साधनों के स्वामित्व और नियंत्रण का इस प्रकार बंटवारा, जिससे सामान्य हित की सर्वोत्तम रूप से साधना हो।

उस आर्थिक व्यवस्था की रोक-थाम, जिससे धन और उत्पादन साधनों का सर्वसाधारण के लिए अहितकारी केंद्रण होता हो।

स्त्रियों और पुरुषों—दोनों—को समान कार्य के लिए समान वेतन।

श्रमिक पुरुषों के स्वास्थ्य और शक्ति तथा बालकों की सुकुमार अवस्था के दुरुपयोग का निवारण तथा उन परिस्थितियों का निवारण, जिनके कारण नागरिकों को विवश होकर ऐसे रोजगारों में जाना पड़ता है जो उनकी आयु या शक्ति के प्रतिकूल हैं।

शैशव और किशोर अवस्था का शोषण तथा उसके नैतिक और आर्थिक परित्याग से संरक्षण।

ग्राम पंचायतों का संगठन, ताकि वे स्व-शासन की इकाइयां बन सकें।

काम पाने, शिक्षा पाने तथा बेकारी, बुढापा, बीमारी तथा अंगहानि और अभाव की अन्य हालतों में सार्वजनिक सहायता पाने का अधिकार।

काम की समुचित और मानवोचित परिस्थितियां तथा प्रसूति सहायता।

सब श्रमिको को कृषि, उद्योग या अन्य प्रकार के धंधों मे काम, निर्वाह योग्य मजदूरी, शिष्ट जीवन-स्तर तथा अवकाश का सपूर्ण उपभोग सुनिश्चित करानेवाली काम करने की परिस्थितिया तथा सामाजिक ओर सास्कृतिक सुयोग।

ग्रामो मे कुटीर उद्योगो को वैयक्तिक अथवा सहकारी आधार पर बढाना।

नागरिको के लिए भारत के समस्त प्रदेशो मे एक सामान्य व्यवहार सहिता (सिविल कोड) का बन्दोबस्त।

संविधान के लागू होने से दस वर्ष के भीतर चौदह वर्ष तक की आयु के सब बालको के लिए मुक्त और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था।

जनता के निम्न वर्गो, विशेष रूप से अनुसूचित जातियो एवं आदिम जातियो के शिक्षा-सबधी व आर्थिक हितो की विशेष सावधानी से उन्नति तथा सामाजिक अन्याय और सब प्रकार के और शोषण से उनका सरक्षण।

जनता का आहार-पुष्टि-स्तर तथा जीवन-स्तर ऊचा करना और लोक-स्वास्थ्य का सुधार। मादक पेय और स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद औषधियो के औषधियो से भिन्न रूप में प्रयोग का निषेध।

कृषि और पशुपालन का आधुनिक और वैज्ञानिक ढग से सगठन, विशेषत: गायो व बछडों तथा अन्य दुधारू और वाहक ढोरो की नस्ल का परिरक्षण और सुधार तथा उनके वध का निषेध।

कलात्मक या ऐतिहासिक महत्त्व के प्रत्येक स्मारक स्थान या चीज की लूटे जाने, बिगाड़ने, नष्ट करने, हटाने, बेचे जाने या निर्यात किये जाने से रक्षा।

राज्य की लोकसेवाओ में न्यायाग (न्यायपालिका) को कार्याग (कार्यकारी) से अलग करना।

अन्तर्राष्ट्रीय शाति और सुरक्षा को बढावा देना।

राष्ट्रो में उचित और सम्मानपूर्ण संबधो को बनाये रखना।

संगठित राष्ट्रो के परस्पर व्यवहार मे सधि-वचनो और अन्तर्राष्ट्रीय कानून के प्रति आदर पैदा करना।

अन्तर्राष्ट्रीय विवादो में विवाचन (मध्यस्थ-निर्णय) द्वारा समझौते को प्रोत्साहन।

इसके बाद सविधान मे भारत सरकार तथा राज्य सरकारो की विभिन्न सत्ताओ (प्राधिकारो) अथवा अंगों का उल्लेख किया गया है।

ये सत्ताएं अथवा अंग तीन प्रकार के है—कार्यकारी अथवा कार्याग, विधिकारी अथवा विधायनी या विधानांग, और न्यायिक अथवा न्यायपालिका या न्यायांग।

कार्यकारी सरकार राजस्व उगाहती तथा उसे खर्च करती है, सेवाओं (सर्विस) का उपयोग करती है, सुरक्षा सेनाए व पुलिस रखती है तथा कानून द्वारा नियत अन्य कार्य करती है। विधिकारी सत्ता अथवा विधानमंडल कानून का निर्माण

करता है, और न्यायालय जैसे न्यायिक अंग अपने सामने आनेवाले विवादों में कानून की व्याख्या करते हैं तथा उसे लागू करते हैं।

यद्यपि सरकार अथवा शासन में ये तीनों अलग-अलग अंग शामिल हैं, तथापि हम 'सरकार' शब्द का प्रयोग साधारणतया केवल कार्यकारी अंग के लिए ही करते हैं—जैसे तब, जब हम यह कहते हैं कि सरकार कोई स्कूल या अस्पताल चलाती है। सरकार की सत्ताओं तथा उनके कार्यों का यह त्रिमुखी विभाजन आधुनिक सरकारों का एक स्वीकृत लक्षण है। यह विभाजन सरकार की कार्यकुशलता के लिए ही आवश्यक नहीं है अपितु इसलिए भी आवश्यक है कि एक ही जगह सब शक्तियां केंद्रित न हो जाय और इससे उनके दुरुपयोग की सम्भावना न हो।

इन अंगों में पहला स्थान भारत के राष्ट्रपति का है। राज्य में यह सर्वोच्च अधिकारी होता है। संघ की कार्यकारी शक्ति उसमें निहित होती है और यह उसका

भारत का राष्ट्रपति

प्रयोग संविधान के अनुसार खुद आप या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा करता है। किन्तु इस शक्ति और संविधान द्वारा स्पष्ट रूप से दी गई दूसरी शक्तियों का प्रयोग वह अपने विवेक से नहीं, बल्कि संसद् (विधानमंडल) के प्रति उत्तरदायी मन्त्रि-परिषद् की सलाह से करता है। इसलिए वास्तव में इन शक्तियों का प्रयोग मंत्री ही करते हैं। फिर भी भारत सरकार के सभी कार्यकारी आदेश राष्ट्रपति के नाम में जारी किये जाते हैं। इस प्रकार उसकी स्थिति संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति (प्रेसीडेण्ट) से भिन्न है। संयुक्त राज्य अमरीका का राष्ट्रपति शासन स्वयं चलाता है, न कि विधानमंडल के उत्तरदायी मन्त्रियों के द्वारा। भारत के राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक गण द्वारा किया जाता है, जिसमें संसद् के दोनों सदनों और राज्यों की विधान-सभाओं के निर्वाचित सदस्य होते हैं। चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधान की प्रणाली के अनुसार होता है तथा ऐसे चुनाव में मतदान गुप्त पर्ची द्वारा होता है। कोई भी व्यक्ति भारत के राष्ट्रपति पद के चुनाव के लिए उस समय तक पात्र नहीं हो सकता जबतक कि वह भारत का नागरिक न हो, ३५ वर्ष की

उम्मीदवार की योग्यताएं

आयु का न हो चुका हो और लोक-सभा के लिए सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता न रखता हो। यदि वह भारत सरकार के या किसी राज्य सरकार के अथवा इन सरकारों में से किसी के द्वारा नियन्त्रित किसी स्थानीय अथवा अन्य सत्ता के अन्तर्गत किसी लाभ-पद (वैतनिक पद) पर हो तो वह निर्वाचन का पात्र नहीं है। यदि वह भारत संघ का राष्ट्रपति या उप-राष्ट्रपति है या किसी राज्य का राज्यपाल या राज-प्रमुख है अथवा संघ या किसी राज्य का मंत्री है तो उसे लाभ-पद पर आसीन नहीं समझा जायगा। राष्ट्रपति चुने जाने के बाद वह अन्य कोई लाभ-पद धारण नहीं कर सकता। वह संसद् के किसी सदन अथवा किसी राज्य विधानमंडल के किसी सदन

का सदस्य नही बन सकता। यदि ऐसा कोई सदस्य राष्ट्रपति बन जाता है तो अपना पद ग्रहण करने के पश्चात् यह समझा जायगा कि उसने अपना पूर्व पद छोड़ दिया है। वह पाच वर्ष तक राष्ट्रपति के पद पर रहेगा। किन्तु त्यागपत्र देने अथवा हटाये जाने की अवस्था मे वह उस पद को समय से पहले छोड देगा। उप-राष्ट्रपति को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित पत्र द्वारा वह अपना पद त्याग सकता है। हटाने का कार्य संसद के किसी एक सदन द्वारा संविधान के अतिक्रमण के लिए राष्ट्रपति पर दोषारोपण के पश्चात् महाभियोग चलाकर किया जा सकता है। यह दोषारोपण एक प्रस्ताव द्वारा किया जाना चाहिए। प्रस्ताव पेश करने से पहले कम-से-कम चोदह दिन का लिखित नोटिस, जिस पर उस सदन के कुल सदस्यों के एक-चौथाई सदस्यो के हस्ताक्षर हो, प्रस्ताव पेश करने की इच्छा की सूचना के रूप मे दिया जाना चाहिए। कुल सदस्यो के कम-से-कम दो-तिहाई बहुमत से वह पास किया जाना चाहिए। ससद् के किसी सदन द्वारा इस प्रकार दोषारोपण के पश्चात दूसरे सदन को उसकी जाच करनी या करानी चाहिए। इस जाच के पश्चात् यदि प्रस्ताव दूसरे सदन के कम-से-कम दो-तिहाई सदस्यो के बहुमत से पास हो जाय और यह घोषित करे कि दोषारोपण सही है, तो उस प्रस्ताव का प्रभाव राष्ट्रपति को अपने पद से हटाया जाना होगा। राष्ट्रपति द्वारा अपने पद-सबधी अधिकारो और कर्त्तव्यों के पालन में किये गए या किये जाने वाले कार्यो के सबंध मे उसपर किसी अदालत में कोई दीवानी या फौजदारी मुकदमा नही चलाया जा सकता। इसका मतलब यह नही कि संविधान के अतिक्रमण के संबंध में लगाये गए दोषारोपण की जाच करने के लिए संसद के किसी सदन द्वारा नियुक्त कोई न्यायालय, अधिकरण या संस्था उसके राष्ट्रपति-सबंधी आचरण पर विचार नही कर सकती। राष्ट्रपति को दी गई छूट से सघ या राज्य की सरकार के विरुद्ध मुकदमा चलाने मे कोई बाधा नहीं आती। इसके अलावा राष्ट्रपति को अपने व्यक्तिगत रूप में भी छूट प्राप्त है। उसके कार्यकाल में उसके विरुद्ध कोई फौजदारी मुकदमा दायर नही किया जा सकता और न उसे गिरफ्तार किया जा सकता है या जेल भेजा जा सकता है। व्यक्तिगत रूप में उसके विरुद्ध दीवानी मुकदमा तभी चलाया जा सकता है जब मुकदमे के पूरे विवरण के साथ उसे दो महीने का लिखित नोटिस दिया गया हो।

भारत का उप-राष्ट्रपति

भारत का एक उप-राष्ट्रपति होता है। वह राज्यसभा का पदेन सभापति होता है और अन्य कोई लाभ-पद धारण नही कर सकता। राष्ट्रपति की मृत्यु, पदत्याग अथवा पद से हटाये जाने या अन्य कारण से हुई उस पद की रिक्तता की अवस्था में उप-राष्ट्रपति उस समय तक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा जबतक कि संविधान में की गई रिक्तता-पूर्ति की व्यवस्था के अनुसार निर्वाचित नया राष्ट्रपति अपना पद ग्रहण नही कर लेता। राष्ट्रपति की बीमारी या अन्य किसी कारण से अस्थायी अनुपस्थिति

के काल में उप-राष्ट्रपति राष्ट्रपति का कार्य करेगा किन्तु, इस प्रकार राष्ट्रपति के पद पर कार्य करते समय उप-राष्ट्रपति राज्य-सभा के सभापति का कार्य नहीं करेगा। उप-राष्ट्रपति का निर्वाचन संसद के दोनों सदनों के सदस्य एक संयुक्त अधिवेशन में, आनुपातिक प्रतिनिधान पद्धति के द्वारा करते हैं और मतदान गुप्त पर्ची द्वारा किया जाता है। कोई ऐसा व्यक्ति, जो भारत का नागरिक नहीं है, ३३ वर्ष की आयु पूरी नहीं कर चुका है, और राज्य-सभा की सदस्यता के लिए निर्वाचन की योग्यता नहीं रखता, वह उप-राष्ट्रपति नहीं चुना जा सकता। राष्ट्रपति के संबंध में लाभ का पद धारण करने से निर्वाचन के लिए पैदा होनेवाली पूर्व लिखित योग्यता उप-राष्ट्रपति के संबंध में भी लागू होती है और उसके संसद के या किसी राज्य विधानमंडल के सदस्य होने का उपबन्ध भी उसी प्रकार है। उप-राष्ट्रपति के कार्यकाल की अवधि पाँच वर्ष होगी, किंतु पदत्याग या हटाये जाने की अवस्था में वह अपने पद को इस अवधि से पूर्व छोड़ देगा। अपने हस्ताक्षर सहित राष्ट्रपति को संबोधित पत्र द्वारा वह अपना पद-त्याग कर सकता है और राज्य-सभा के तत्कालीन सदस्यों की बहुसंख्या द्वारा पास किये गए प्रस्ताव, जिसके संबंध में लोक-सभा की स्वीकृति भी प्राप्त हो चुकी हो, के द्वारा उसे हटाया जा सकता है।

राष्ट्रपति को उसके कार्यों में मदद और परामर्श देने के लिए एक मंत्रि-परिषद् होती है, जिसका अध्यक्ष प्रधान मंत्री होता है। प्रधान मंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा, और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति प्रधान मंत्री के परामर्श पर राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। मंत्री उस समय तक अपना पद धारण करते हैं जब तक राष्ट्रपति चाहें। मंत्रि-परिषद् लोक-सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है।

मन्त्रि-परिषद्

ये उपबन्ध ऐसी शासन-प्रणाली प्रचलित करने के लिए हैं, जो इंगलैण्ड में कैबिनेट प्रणाली[1] के नाम से विख्यात और प्रचलित है। भारत में लागू की गई यह प्रणाली निम्न प्रकार से काम करेगी—राष्ट्रपति उस दल के नेता को मंत्रि-परिषद् बनाने के लिए बुलायगा, जिसका उसकी राय में लोक-सभा में बहुमत हो। यदि वह व्यक्ति ऐसा करने के लिए तैयार हो जाता है तो वह प्रधानमंत्री बन जाता है और उसके द्वारा चुने गए उसके साथी अन्य मंत्रियों का पद ग्रहण करते हैं। वे संविधान के अन्तर्गत कार्यकारी शासन के काम करते हैं और अपने कार्य-पालन की रीति के लिए वे लोक-सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं। वे सदन के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होते हैं और इसलिए किसी एक या अधिक मंत्रियों के कार्य के लोक-सभा में अस्वीकृत होने पर लोक-सभा का विश्वास खो सकते हैं। वे तभीतक अपने पद पर आरूढ़ रहते

---

१. **कैबिनेट-प्रणाली, जिसके अनुसार समस्त मंत्री सामूहिक रूप से और अलग-अलग भी लोक-सभा (हाउस ऑव कॉमन्स) के प्रति उत्तरदायी होते हैं।**

है जबतक उन्हे सदन के बहुमत का समर्थन प्राप्त रहता है। राष्ट्रपति यह देखकर कि अब उनका समर्थन नही रहा उन्हे पद-त्याग के लिए कह सकता है या बरखास्त कर सकता है। इस प्रकार उनका शासन लोक-इच्छा द्वारा प्रभावित रहता है।

भारत सघ की कार्यकारी शक्ति के क्षेत्र मे वे सब विषय आ जाते है, जिनके संबध मे ससद् को कानून बनाने का अधिकार है। किंतु इसमे 'क' और 'ख' भाग के राज्यों के वे विषय नही आते जिनके सबध मे कानून बनाने के अधिकार राज्य-विधानमडलो को प्राप्त है। हा, यदि सविधान मे या संसद् द्वारा बनाये गए किसी कानून म इसके विपरीत व्यवस्था हो, तब यह नियम लागू नही होता। सघ की कार्यकारी शक्ति के लागू होने की सीमा मे वे अधिकार, सत्ता और क्षेत्राधिकार भी आ जाते है, जिनका प्रयोग भारत सरकार किसी भी सधि या समझौते के अनुसार करती है।

संघ-संसद्

सघ के लिए एक संसद् की व्यवस्था है। यह ससद् राष्ट्रपति और दोनो सदनो से मिलकर बनती है जिन्हे क्रमशः राज्य-सभा और लोक-सभा कहते है। राज्य-सभा में १२ सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नामजद किये हुए होते हैं और २३८ तक राज्यों के प्रतिनिधि होते है। राष्ट्रपति द्वारा नामजद व्यक्ति ऐसे व्यक्ति होते है जिन्हे साहित्य, विज्ञान, कला और समाज-सेवा सरीखे विषयो मे विशेष योग्यता या अनुभव प्राप्त होता है। प्रत्येक राज्य के लिए स्वीकृत तथा उसके प्रतिनिधियो द्वारा भरे जाने वाले स्थानो का उल्लेख चौथी अनुसूची में किया गया है। 'क' और 'ख' राज्यो के प्रतिनिधियो का चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधान की पद्धति के अनुसार उनकी विधान-सभाओं के निर्वाचित सदस्यो द्वारा किया जाता है। 'ग' भाग के राज्यो के प्रतिनिधि ससद् द्वारा बनाये गये कानून द्वारा निर्धारित रीति के अनुसार चने जाते हैं।

संसद्-सदस्यों का चुनाव

लोक-सभा के सदस्यों की अधिक-से-अधिक सख्या ५०० होती है और ये सदस्य राज्यो के मतदाताओ द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुने जाते है। इसके लिए राज्यो को प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रो मे बाट दिया गया है और प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र से चुने जानेवाले सदस्यो की संख्या इस प्रकार निर्धारित की गई है कि हर ५ लाख जनसख्या के पीछे एक सदस्य से अधिक न चुना जाय। लोक-सभा के स्थानो का निर्वाचन-क्षेत्रो में बटवारा यथासभव जनसख्या के आधार पर किया गया है। चुनाव वयस्क-मताधिकार के आधार पर होता है, अर्थात् हर व्यक्ति, जो भारत का नागरिक है और जो एक निश्चित तिथि तक २१ वर्ष की आयु पूरी कर चुका है तथा सविधान या और किसी कानून के अन्तर्गत निवास की शर्त पूरी न करने के कारण दिमाग ठीक न होने के कारण, अपराध, भ्रष्टाचार, या अवैध आचरण के कारण उत्पन्न होने वाली अयोग्यता से मुक्त है, वह चुनाव में अपना नाम मतदाता के रूप में दर्ज करा सकता है। हर प्रादेशिक

निर्वाचन-क्षेत्र म मतदाताओ की एक सामान्य सूची होगी। कोई भी व्यक्ति धर्म, जाति, वर्ण, लिग या इनमे से किसी के आधार पर मतदाताओ की सूची में शामिल होने के लिए अपात्र नही होता। और कोई भी व्यक्ति इनमे से किसी आधार पर किसी विशेष सूची में अपने आपको शामिल नही करा सकता है। अलबत्ता लोक-सभा मे अनुसूचित जातियो और अनुसूचित आदिम जातियो के लिए कुछ स्थान प्रत्येक राज्यकी कुल जनसख्या और उनकी सख्या के आधार पर सुरक्षित है। यदि राष्ट्रपति यह समझे कि सदन में आंग्ल-भारतीय का समुचित प्रतिनिधान नही है, तो वह दो आंग्ल-भारतीय सदस्य तक नामजद कर सकता है। स्थान सुरक्षित रखने और नामजद करने की यह व्यवस्था २६ जनवरी १९५० से १० वर्ष की अवधि तक चलेगी। कोई भी व्यक्ति, जो भारत का नागरिक नही है, ससद का सदस्य नही चुना जा सकता। यदि उसकी आयु ३० वर्ष से कम है तो वह राज्य-सभा के लिए तथा यदि २५ वर्ष से कम है तो वह लोक-सभा के लिए नही चुना जा सकता। संसद् द्वारा बनाये गए कानूनो द्वारा और योग्यताएं भी निर्धारित की जा सकती है। ससद् की सदस्यता की कुछ योग्यताएं निम्नलिखित है :

कोई भी व्यक्ति दोनो सदनो का सदस्य नही हो सकता। ससद् कानून द्वारा उसमे दोनो स्थानो मे से एक स्थान रिक्त करने की व्यवस्था करती है। कोई भी सदस्य एक साथ ससद् तथा राज्य विधानमंडल का सदस्य नही हो सकता। दोनो के लिए सदस्य चुने जाने पर यदि वह राष्ट्रपति द्वारा बनाये गए नियम के अधीन निश्चित तारीख तक राज्य विधानमंडल की सदस्यता को नही छोडता है, तो उसे संसद में अपना स्थान खाली करना पडता है। निम्नलिखित स्थितियो में कोई भी व्यक्ति सदस्य चुने जाने या सदस्य बने रहने के लिए अयोग्य हो जाता है :—

यदि कोई व्यक्ति ससद् के कानून द्वारा स्वीकृत पदो या सघ या राज्य के मत्रि-पदो को छोडकर भारत सरकार मे, या अन्य राज्य सरकारो में किसी लाभ-पद को धारण करता है; यदि उसका दिमाग ठीक नही है और एक उपयुक्त न्यायालय द्वारा उसे ऐसा ठहराया गया है; यदि वह दिवालियेपन की स्थिति से कानूनी रूप में मुक्त नही है; यदि वह भारत का नागरिक नही है अथवा उसने किसी विदेशी राज्य की नागरिकता स्वेच्छा से प्राप्त कर ली है या वह किसी विदेशी राज्य के प्रति निष्ठा या लगाव स्वीकार कर चुका है।

ससद् के एक कानून द्वारा यह अधिनियमित कर दिया गया है कि सघ या राज्य-सरकार मे राज्य-मत्री, उप-मंत्री या ससद्-सचिव (पार्लामेंटरी सेक्रेटरी) के पदो पर पदस्थ होने से कोई व्यक्ति सदस्य बने रहने के लिए अयोग्य नही हो जाता। उक्त अयोग्यताओ का उल्लेख सविधान में किया गया है। ससद् द्वारा कानून के अंतर्गत बनाई गई और भी अयोग्यताएं हो सकती है। यदि कोई सदस्य सविधान में निर्दिष्ट स्वीकृति प्राप्त करने अथवा पद की शपथ लेने से पूर्व किसी सदन में सदस्य के रूप में

बठता है, या मत देता है, अथवा यह जानते हुए ऐसा करता है कि वह सदस्यता की अयोग्य नही रखता, अथवा उसके लिए अयोग्य ठहरा दिया गया है या संसद् के कानून द्वारा वैसा करने से मना किया गया है, तो उसपर, हर उस दिन के लिए, जिस दिन वह सदस्य के रूपमे किसी सदन में बैठता है या मत देता है, ५०० रुपये के हिसाब से जुर्माना किया जा सकता है, जो सघ के प्रति कर्ज के रूप में वसूल किया जायगा। किंतु इस कारण ससद् की कार्यवाही अवैध नही ठहराई जायगी।

राज्य-सभा को भग नही किया जायगा, किंतु जहातक सभव होगा हर दो वर्ष बाद यथाशीघ्र उसके एक-तिहाई सदस्य ससद् के इस सबंध में बनाये गए कानून के अनुसार संकट कालीन अवकाश प्राप्त करते जायगे। लोक-सभा, यदि उसे समय से पूर्व भंग नही कर दिया जाता तो, अपनी प्रथम बैठक के लिए निश्चित तारीख से पाच वर्ष तक कार्य करेगी, अधिक नही। आपात की घोषणा के पश्चात् उस काल में संसद् कानून द्वारा अपने कार्यकाल को एक बार में एक वर्ष के लिए बढा सकती है, किंतु आपात की समाप्ति की घोषणा के पश्चात् वह ६ महीने की अवधि से अधिक अपना कार्यकाल नही बढा सकती।

संसद् के दोनों सदनों के पदाधिकारी

भारत का उप-राष्ट्रपति राज्य-सभा का पदेन सभापति होता है। राज्य-सभा जितनी जल्दी हो सके अपने सदस्यों में से ही एक उप-सभापति चुन लेती है और जब-जब उप-सभापति का स्थान खाली होता है तो कोई और सदस्य उप-सभापति चुन लिया जाता है। लोक-सभा भी, जितनी जल्दी संभव हो, अपने सदस्यो मे से एक अध्यक्ष (स्पीकर) और एक उपाध्यक्ष (डिप्टी स्पीकर) चुन लेती है और जब-जब इनमें से किसी का स्थान खाली होता है तब कोई और सदस्य उस स्थान के लिए चुन लिया जाता है। प्रत्येक दिन अलग-अलग प्रत्येक बैठक में या दोनो सदनो की प्रत्येक सम्मिलित बैठक मे प्रत्येक प्रश्न का निर्णय अध्यक्ष, सभापति या उस पद पर बैठे हुए व्यक्ति को छोडकर उस बैठक में उपस्थित और मत देनेवाले सदस्यो के बहुमत द्वारा किया जाता है। किन्तु यह नियम सविधान के उस उपबन्ध के अधीन है जिसमें कुछ खास मामलो के बारे में खास बहुमत की अपेक्षा की व्यवस्था की गई है। अध्यक्ष या सभापति या उस रूप में कार्य करनेवाला व्यक्ति पहले तो मत नही देगा, किन्तु यदि दोनो पक्षो में मतो की सख्या समान हो तो वह अपना निर्णायक मत (कास्टिंग वोट) देता है। किसी भी सदन की बैठक गणपूर्ति (आवश्यक सदस्य संख्या की पूर्ति) होने पर ही हो सकती है और यह गणपूर्ति (कोरम) जबतक ससद् के किसी कानून द्वारा अन्यथा निर्धारित न की जाय, तबतक सदन के कुल सदस्यों की संख्या का दसवां भाग होगी। यदि बैठक में किसी समय बैठने के लिए आवश्यक सदस्य-सख्या न रहे तो अध्यक्ष या सभापति का यह कर्त्तव्य होता है कि जबतक गणपूर्ति न हो जाय तबतक वह बैठक

स्थगित रखे या उस समय तक के लिए उठा रखे ।

कानून बनाने का सामान्य अधिकार तो संसद् को ही है, किन्तु उस समय को छोड़कर जबकि दोनों सदनों के अधिवेशन चालू हों, राष्ट्रपति अध्यादेश (आर्डिनेंस) जारी कर सकता है। ऐसा करने के लिए यह जरूरी है कि वह यह समझे कि ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है कि वह उक्त कार्यवाही करने के लिए बाध्य हो गया है। इस प्रकार जारी किये गए आर्डिनेंस का वही बल और प्रभाव होगा जो संसद द्वारा पास किये गए अधिनियम (ऐक्ट) का होता है। किन्तु इसे संसद के दोनों सदनों के सामने रखा जाता है और संसद् की बैठक फिर शुरू होने के छः सप्ताह की समाप्ति पर, या इस अवधि से पूर्व, यदि दोनों सदन प्रस्तावों द्वारा उसका अनुमोदन न करें तो वह जारी नहीं रहेगा। सदनों का सम्मेलन अलग-अलग तारीखों पर बुलाया गया हो तो छः सप्ताह के समय की गिनती बादवाली तारीख से की जाती है। राष्ट्रपति अपने द्वारा जारी किया गया कोई भी आर्डिनेंस किसी भी समय वापस ले सकता है। वह ऐसे किसी विषय पर आर्डिनेंस जारी नहीं कर सकता, जिसके संबंध में संविधान के अन्तर्गत संसद् को कानून बनाने का अधिकार नहीं है।

राष्ट्रपति का अध्यादेश जारी करने का अधिकार

भारत का सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) भारत का सबसे बड़ा न्यायालय है। इसमें एक मुख्य न्यायपति और सात अन्य न्यायाधीशों से अधिक नहीं होने हैं, किन्तु संसद कानून द्वारा न्यायाधीशों की संख्या बढ़ा सकती है। इस न्यायालय तथा अन्य न्यायालयों की रचना तथा इनके कार्यों के संबंध में चौथे अध्याय में विस्तार से चर्चा की गई है। फिर भी यहां इतना कहा जा सकता है कि सर्वोच्च न्यायालय को केवल समस्त भारत के नागरिकों के पारस्परिक कर्त्तव्य और अधिकार संबंधी विवादों का निर्णय करने का ही अधिकार नहीं है, किन्तु राज्यों अथवा राज्याधिकारियों के पारस्परिक तथा उनके और नागरिकों के बीच पैदा होनेवाले विवादों के संबंध में भी निर्णय करने का अधिकार है। इसलिए इस न्यायालय पर संविधान की व्याख्या और उसकी रक्षा करने की एक बड़ी और कड़ी जिम्मेदारी है।

न्यायांग

संविधान में आगे उसकी प्रथम अनुसूची में उल्लिखित 'क' 'ख', 'ग' और 'घ' भाग के राज्यों की कार्यकारी, विधिकारी और न्यायिक सत्ताओं का निर्देश दिया गया है।

'क' भाग के हर राज्य में एक राज्यपाल (गवर्नर) होता है जिसमें राज्य की कार्यकारी शक्ति निहित होती है और वह उसका संविधान के अनुसार प्रयोगस्वयं अथवा अपने नीचे के पदाधिकारियों द्वारा करता है। उसकी नियुक्ति राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुहर सहित जारी किये गए एक अधि-पत्र (वारण्ट)

'क' राज्य कार्यकारी राज्यपाल

द्वारा करता है। वह अपने पद पर रहता है जब तक राष्ट्रपति चाहे। इस उपबंध के अधीन वह पद ग्रहण करने के दिन से पांच वर्ष तक अपने पद पर रहता है, किन्तु वह इससे पूर्व चाहे तो राष्ट्रपति के नाम अपने हस्ताक्षर सहित पत्र भेजकर पद-त्याग कर सकता है। कोई भी व्यक्ति, जो भारत का नागरिक नहीं है, और जिसने पैंतीस वर्ष की आयु पूरी नहीं की है, राज्यपाल नहीं बनाया जा सकता। राज्यपाल संसद् के किसी सदन या 'क' भाग के किसी राज्य के विधानमंडल का सदस्य नहीं हो सकता। यदि ऐसा व्यक्ति राज्यपाल नियुक्त हो जाय तो यह समझा जायगा कि राज्यपाल पद ग्रहण करने के समय से उसने अपनी उक्त सदस्यता छोड़ दी है। राज्यपाल लाभ का अन्य कोई पद ग्रहण नहीं करेगा। मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में एक मन्त्रिपरिषद होती है, जो राज्यपाल को उसके कार्यों में सलाह देती है। तथापि कुछ विषयों में उसे अपने विवेक से कार्य करने का अधिकार है, अन्यथा वह उसी प्रकार अपने मंत्रियों द्वारा राज्य की सरकार चलाता है जिस प्रकार राष्ट्रपति संघ की सरकार चलाता है। राज्य सरकार द्वारा समस्त कार्यकारी आदेश उसी के नाम से जारी किये जाते हैं। मुख्य मंत्री की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है और शेष मन्त्रियों की नियुक्ति मुख्य मंत्री की सलाह पर राज्यपाल द्वारा। मंत्री राज्यपाल जब तक चाहे तब तक ही अपने पद पर पदस्थ रह सकते हैं। मंत्रीपरिषद् संयुक्त रूप से राज्य विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होती है। अतः स्पष्ट है कि संघ में प्रचलित मन्त्रिमंडल शासन की प्रणाली ही इन राज्यों में भी प्रचलित है। राज्य को जिन विषयों के संबंध में कानून बनाने का अधिकार है वे सभी विषय उसकी कार्यकारी शक्ति की सीमा में आते हैं किन्तु ऐसे किसी भी विषय पर, जिसके संबंध में किसी राज्य-विधान-मंडल तथा संसद् दोनों को कानून बनाने का अधिकार है, राज्य की कार्यकारी शक्ति संविधान द्वारा अथवा संसद्-निर्मित किसी कानून द्वारा, संघ या उसके सत्ताधिकारियों को दी गई कार्यकारी शक्ति के अधीन ही रहेगी।

'क' राज्य के विधान-मण्डल

'क' भाग के हर राज्य में एक विधानमंडल होता है जो राज्यपाल और किसी राज्य में एक और किसी में दो सदनों से मिलकर बनता है। जिन राज्यों के विधान मंडलों में दो-दो सदन हैं उनके नाम हैं—बिहार, बंबई, मद्रास, पंजाब, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल। ये दोनों सदन विधान-परिषद् और विधान-सभा कहलाते हैं; किन्तु जहां एक ही सदन होता है वहाँ उसे विधान-सभा ही कहते हैं। यदि राज्य की विधान-सभा अपनी समस्त सदस्य-संख्या के बहुमत से और सभा में उपस्थित और मत देनेवाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से यह पास कर दे कि उस राज्य की विधान-परिषद् खत्म कर दी जाय या उस राज्य के लिए विधान-परिषद् की व्यवस्था की जाय, तो संसद् कानून बनाकर ऐसा कर सकती है। प्रत्येक राज्य की विधान-सभा का निर्माण प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा चुने गए सदस्यों से होता है। इसकी सदस्य-संख्या

किसी भी दशा में पाचसौ से अधिक और चारसौ से कम न होगी। इसके अलावा प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्र को इस आधार पर प्रतिनिधान मिलेगा कि हर पचहत्तर हजार की जनसख्या के पीछे एक सदस्य से अधिक न हो। आसाम के स्वायत्त-जिलो और शिलांग के प्रतिनिधान के सबध मे विशेष उपबध है। हर राज्य में जनसख्या के अनुपात मे विभिन्न निर्वाचन-क्षेत्रो के प्रतिनिधान की समता सुनिश्चित करने के लिए भी उपबध है। लोकसभा के चुनाव के संबध में ऊपर वयस्क-मताधिकार और मतदाताओ की सूची के जिन उपबंधो का उल्लेख किया गया है वही विधान-सभाओ के चुनावो के सबध मे भी उपलब्ध है। विधान-सभाओं में अनुसूचित जातियो और आदिम-जातियो के लिए स्थान सुरक्षित रखने और आग्ल-भारतीय जाति के सदस्यो को नामजद करने के सबध मे तथा आसाम की विधान-सभा मे उसके स्वायत्त जिलों के लिए स्थान सुरक्षित करने के उपबध भी है। ये उपबध ससद् के लिए निर्दिष्ट उपबधो के सदृश्य ही है। जिस राज्य मे दो सदन हो उसमें विधान-परिषद् के सदस्यो की सख्या उसकी विधान-सभा के सदस्यो की सख्या के चौथे भाग से अधिक नही होगी किन्तु कम-से-कम सख्या चालीस निश्चित की गई है। संसद् जबतक अन्य व्यवस्था न करे तबतक राज्य की विधान-परिषद् की रचना इस प्रकार होगी :

(१) कुल सदस्यो की संख्या का यथाशक्य तीसरा भाग उन निर्वाचक समूहो द्वारा चुना जाता है जिनमें नगरपालिकाओ, जिला बोर्डो तथा अन्य स्थानीय सत्ताओ के सदस्य और ससद् द्वारा बनाये गए कानून मे कहे गए अधिकारी शामिल हों।

(२) यथासभव बारहवा भाग राज्य मे रहनेवाले ऐसे व्यक्तियो मे मिलकर बने हुए निर्वाचक समूहो द्वारा चुना जाता है, जो भारत राज्य क्षेत्र में किसी विश्व-विद्यालय के कम-से-कम तीन वर्ष के स्नातक है अथवा जो ससद् के कानून-द्वारा वैसे स्नातक के समान विहित योग्यता कम-से-कम तीन वर्ष से प्राप्त किये हुए हो।

(३) यथासंभव बारहवा भाग ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बने निर्वाचक-समूहो द्वारा चना जाता है जो कम-से-कम तीन वर्ष से राज्य की ऐसी पाठशालाओं में पढा रहे हों जो माध्यमिक स्तर से नीचे की न हो और जो ससद् द्वारा बनाये गए किसी कानून द्वारा विहित हो।

(४) यथासभव तीसरा भाग राज्य की विधान-सभा द्वारा सभा की सदस्यता से बाहर के व्यक्तियों में से चुना जाता है।

(५) बाकी सदस्य राज्यपाल द्वारा उन व्यक्तियो मे से नामजद किये जाते हैं जिन्हे राज्यपाल साहित्य, विज्ञान, सहकारी आन्दोलनों या सामाजिक सेवा के सदृश विषयों के विशेष ज्ञान या अनुभव से युक्त समझता है। संसद् की सदस्यता की योग्यता तथा अयोग्यता के उपबंध विधानमण्डलों के सबध में भी लागू होते है।

समय से पूर्व विघटित न की जाय तो प्रत्येक विधान-सभा पांच वर्ष तक काम करती है किन्तु यदि आपात की घोषणा की गई हो, और वह अवस्था चल रही हो, तो ससद् कानून के द्वारा उसका कार्यकाल एक बार में एक वर्ष बढ़ा सकती है, किन्तु आपात की समाप्ति के बाद यह अवधि अधिक-से-अधिक ६ महीने होगी। विधान-परिषद् विघटित नहीं की जा सकती किन्तु उसके सदस्यो का यथाशक्य एक-तिहाई भाग हर दो वर्ष की समाप्ति पर जितनी जल्दी हो सके ससद् द्वारा इस सबध में बनाये गए कानून के अनुसार निवृत्त हो जाता है।

प्रत्येक विधान-सभा अपने दो सदस्यो को क्रमशः अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुनती है और जब इनमें से कोई स्थान खाली होता है तो वह किसी और सदस्य को उस स्थान के लिए चुन लेती है। प्रत्येक विधान-परिषद् अपने दो सदस्यो को क्रमश सभापति और उप-सभापति चुन लेती है और जब-जब इन दोनो में से कोई स्थान खाली हो तब-तब वह किसी और सदस्य को उस स्थान के लिए चुन लेती है।

बहुमत द्वारा निर्णय करने की, अध्यक्ष के निर्णायक मत देने के अधिकार की, और गणपूर्ति की जो बातें ऊपर ससद् के सबध मे कही गई है वे ही राज्य विधानमंडलो के संबध में भी लागू होती है।

आमतौर पर राज्य की विधान-सभा राज्य के लिए कानून बनाती है किंतु जब विधान-सभा या दो सदनवाले राज्यो मे विधान-सभा और विधान-परिषद्, दोनो के अधिवेशन चल रहे हो, उस समय को छोडकर राज्यपाल अन्य किसी समय अध्यादेश जारी कर सकता है। जिन परिस्थितियो मे और जिस प्रकार वह ऐसा कर सकता है वे वही है जिनका उल्लेख ऊपर राष्ट्रपति के सबध में किया जा चुका है। कुछ स्थितियो में वह अपने इस अधिकार का प्रयोग राष्ट्रपति से बिना पूछे नही कर सकता। उदाहरण के लिए तब, जब वह ऐसा अध्यादेश जारी करना चाहता हो जिसम वही उपबध हो जिन्हे विधेयक (बिल) के रूप म विधानमडल में प्रस्तावित करने के लिए राष्ट्रपति से पहले अनुमति लेनी जरूरी हो। राज्यपाल उसी व्यवस्था के सबध में अध्यादेश जारी कर सकता है, जिसके लिए राज्य का विधानमडल कानून बना सकता हो।

राज्यों के न्यायांग

हर राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय (हाईकोर्ट) की व्यवस्था है। इसमें एक मुख्य न्यायपति और अन्य न्यायाधीश होते है जिनकी नियुक्ति राष्ट्रपति समय-समय पर आवश्यकतानुसार करता है। प्रत्येक उच्च न्यायालय के न्यायाधीशो की अधिकतम संख्या राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित की जाती है।

'क' राज्य के संबध में जो उपबध ऊपर दिये गए है वे ही कुछ रद्दोबदल के साथ **'ख'** भाग के राज्यों के बारे में लागू होते है। **'ख'** भाग के राज्य में राज्यपाल के स्थान पर राजप्रमुख होता है। उसका कार्य भी राज्यपाल के कार्य के सदृश ही

होता है। इसके विधानमंडलों में राजप्रमुख के अतिरिक्त केवल एक ही सदन होता है, किन्तु मैसूर राज्य में दो सदन हैं। २६ जनवरी १९५० से दस वर्ष के समय तक 'ख' भाग के राज्य राष्ट्रपति के सामान्य नियन्त्रण में कार्य करेंगे और राष्ट्रपति द्वारा समय-समय पर दिये गए आदेशों का पालन करेंगे। ये उपबंध जम्मू और काश्मीर राज्य के सबंध में लागू नहीं होते। इसके सबंध में संसद कुछ विषयों के बारे में कानून बना सकती है यथा—रक्षा और विदेशी मामले या ऐसे अन्य मामले जिनके सबंध में इस राज्य की सरकार की रजामन्दी से राष्ट्रपति अपने आदेश द्वारा निर्देश करें। राष्ट्रपति एक लोक-सूचना निकालकर घोषणा कर सकता है कि यह उपबंध अब लागू नहीं होगा या अमुक परिवर्तन के साथ लागू होगा। किन्तु ऐसा वह इस राज्य का संविधान बनाने के लिए बुलाई गई राज्य की संविधान सभा की सिफारिशों पर ही कर सकता है। जम्मू और काश्मीर के सदरे-रियासत को इन उपबन्धों के प्रसंग में अपने राज्य का राजप्रमुख ही समझा जायगा।

'ख' राज्यों का प्रशासनिक गठन

राष्ट्रपति की कानूनी कार्यवाहियों से छूट के उपबंध राज्यपाल अथवा राजप्रमुख के संबंध में भी लागू होते हैं।

'ग' भाग के राज्यों का शासन राष्ट्रपति द्वारा चलाया जाता है तथा वह इस बारे में उस सीमा तक, जितनी कि वह उचित समझे, अपने द्वारा नियुक्त किये जाने वाले मुख्यायुक्त (चीफ कमिश्नर) या उप-राज्यपाल (लेफ्टीनेण्ट गवर्नर) अथवा पड़ौसी राज्य की सरकार के द्वारा कार्य करता है। संसद कानून द्वारा ऐसे राज्य में विधानमंडल के रूप में कार्य करने के लिए एक ऐसी संस्था जो नामजद की गई हो, चुनी गई हो या जिसका कुछ भाग नामजद किया गया और कुछ चुना गया हो या सलाहकार या मंत्रि-परिषद, अथवा दोनों, जिनके निर्माण, शक्तियों और कार्यों के संबंध में उस कानून में निर्देश हो, बना सकती है और बनाये रख सकती है। संसद कानून द्वारा ऐसे किसी राज्य के लिए उच्च न्यायालय बना सकती है अथवा राज्य के ऐसे किसी न्यायालय को इस संविधान के प्रयोजनों के लिए उच्च न्यायालय घोषित कर सकती है। उदाहरण के लिए, जबतक संसद कानून द्वारा अन्यथा व्यवस्था नहीं करती तबतक कुर्ग की विधान-परिषद् वह सब कार्य और शक्ति-प्रयोग करती रहेगी, जो वह अब करती है।

'ग' राज्यों का प्रशासनिक गठन

प्रथम अनसूची के 'घ' भाग में उल्लिखित राज्य-क्षेत्र, यानी अंडमान और निकोबार द्वीप और ऐसे किसी अन्य राज्य-क्षेत्रों का शासन, जो प्रथम अनुसूची में उल्लिखित न हो, राष्ट्रपति के हाथ में होता है तथा वह इस बारे में जिस सीमा तक उचित समझे अपने द्वारा नियुक्त किये जानेवाले मुख्यायुक्त (चीफ कमिश्नर) या अन्य अधि-

'घ' भाग के राज्य

कारी द्वारा कार्य करता है। वह ऐसे राज्य-क्षेत्र की शान्ति और सुशासन के लिए विनियम बना सकता है और ऐसे विनियमो का ससद् द्वारा इस क्षेत्र के लिए बनाये गये कानून जैसा ही असर होता है। **'क'** और **'ख'** भाग में उल्लिखित किसी राज्य के अन्तर्गत अनुसूचित क्षेत्रो और अनुसूचित आदिम-जातियो तथा आसाम राज्य के अन्तर्गत आदिम जातीय क्षेत्रो के प्रशासन के सबंध में विशेष उपबंध रखे गये है।

सविधान में आगे क्रमश: सघ और राज्य सरकारो की शक्तियो का वर्णन किया गया है।

संघ सरकार की शक्तियाँ

संसद् को समस्त भारत या उसके किसी भाग के लिए सविधान में दिये गए विषयो के सबध मे कानून बनाने का अधिकार है और राज्य के विधानमडल को इसी प्रकार निर्दिष्ट विषयो के सबंध मे समस्त राज्य के लिए या राज्य के किसी भाग के लिए कानून बनाने का अधिकार है। जैसाकि हम देख चुके है, सघ की कार्यकारी शक्ति की सीमा में वे सब मामले आ जाते है जिनके सबध मे ससद् को कानून बनाने का अधिकार है और इसी प्रकार राज्य की कार्यकारी शक्ति की सीमा में वे सभी विषय आ जाते है जिनके सबध में राज्य विधानमडल को कानून बनाने का अधिकार है। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि सविधान ने किन-किन विषयो को ससद् और विधानमडलो की विधि-निर्माण शक्ति के क्रमिक क्षेत्रो मे रखा है।

संघ-सूची

सघ-सूची में दिये गए किसी भी विषय पर कानून बनाने का संसद् को विशिष्ट अधिकार है। इनमे से कुछ विषय ये है—प्रतिरक्षा, प्रतिरक्षा-सेनाए, विदेशी मामले, युद्ध और सधि, रेल-मार्ग, समुद्री जहाजरानी और यातायात वायु मार्ग, डाक और तार, चलार्थ (करेन्सी), टंकण (सिक्का बनाना), विदेशो के साथ वाणिज्य-व्यापार, कम्पनियाँ, बैंक, बीमा, सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों की रचना व सगठन। संघ-सूची में निर्दिष्ट करो के सबध मे इस अध्याय में आगे चर्चा की जायगी।

समवर्ती-सूची

समवर्ती सूची मे दिये गए किसी भी विषय के सबध मे ससद् और **'क'** तथा **'ख'** भाग के सभी राज्यो को कानून बनाने का अधिकार है। इनमे से कुछ विषय ये है—फौजदारी प्रक्रिया, किसी राज्य की सुरक्षा से संबंधित प्रयोजनो के लिए निवारक नजरबन्दी, सार्वजनिक व्यवस्था को कायम रखना, समाज के लिए आवश्यक संभरण (सप्लाई) और सेवाओ (सर्विसो) को कायम रखना, कृषि-भूमि के अतिरिक्त अन्य सपत्ति का हस्तान्तरण, सविदे (ठेके, कांट्रेक्ट), अभियोज्य दोष[1], शहादत और दीवानी

---

१ **एक्शनेबुल रांग**—ऐसे अपकार अथवा दोष, जिनपर कानूनी कार्यवाही की जा सके।

प्रक्रिया, आर्थिक और सामाजिक योजना, मजदूर संघ (ट्रेड यूनियन), औद्योगिक और श्रमिक विवाद, संसद् द्वारा संघ के नियन्त्रणगत उद्योगों के उत्पादन के संबंध में वाणिज्य-व्यापार, कारखाने, किताबें, छापेखाने, सर्वोच्च न्यायालय के अतिरिक्त अन्य न्यायालयों के क्षेत्राधिकार व शक्तियां। २६ जनवरी १९५० के बाद पांच वर्ष तक संसद को कुछ और विषयों के संबंध में इस प्रकार कानून बनाने का अधिकार था कि वे भी समवर्ती सूची में उल्लिखित हों। उदाहरणार्थ—राज्य के भीतर कुछ वस्तुओं का वाणिज्य-व्यापार, जैसे—ऊनी और सूती वस्त्र, कपास, कागज, खाद्य पदार्थ, कोयला और लोहा, इस्पात और अभ्रक, और ऐसी वस्तुओं का उत्पादन, संभरण तथा वितरण। समवर्ती सूची के किसी विषय के संबंध में किसी राज्य द्वारा बनाये कानून का संसद् द्वारा बनाये गए अथवा प्रचलित किसी कानून से विरोध हो तो राज्य द्वारा बनाया गया कानून विरोधी की सीमा तक अवैध तथा बेकार होगा। किन्तु संसद् के किसी पहले कानून का या चालू कानून को काटने-वाला कानून यदि राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए रख लिया जाय और राष्ट्रपति उसपर अपनी स्वीकृति दे दें, तो वह उस राज्य के कानून के रूप में चालू हो सकेगा।

राज्य-सूची में गिनाये किसी विषय के संबंध में कानून बनाने का विशिष्ट अधिकार 'क' या 'ख' भाग के राज्यों का ही है। इसमें कुछ विषय ये हैं—सार्व-जनिक व्यवस्था—जिसमें असैनिक (सिविल) शक्ति की सहायता के लिए संघ की जल, स्थल या वायु सेनाओं का प्रयोग शामिल नहीं है. पुलिस, न्याय-प्रशासन, सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के अतिरिक्त अन्य न्यायालयों की रचना व संगठन, कारागार, स्थानीय शासन. जन-स्वास्थ्य, सफाई, मादक पेय, कृषि भूमि संबंधी अधिकार, वन, मछली क्षेत्र, संसद् द्वारा संघ के नियन्त्रण के लिए सुरक्षित उद्योगों को छोड़कर अन्य उद्योग, ऐसे उद्योगों के उत्पादन को छोड़कर अन्य के उत्पादन का राज्य के भीतर वाणिज्य-व्यापार, साहूकारी, शर्त लगाना और जुआ, राज्य का लोक ऋण। राज्य-सूची में उल्लिखित करों के संबंध में इस अध्याय में आगे चर्चा की जायगी।

प्रथम अनुसूची के 'क' और 'ख' भाग में उल्लिखित राज्य-क्षेत्रों को छोड़कर अन्य किसी राज्य-क्षेत्र के संबंध में संसद् किसी भी विषय पर कानून बना सकती है। समवर्ती सूची और राज्य-सूची में न आये हुए किसी भी विषय के संबंध में कानून बनाने की अनन्य शक्ति केवल संसद को ही है और इस शक्ति में उन करों के लगाने के लिए करारोपण कानून बनाने की शक्ति भी शामिल है जिसका उल्लेख इनमें से किसी सूची में नहीं है।

यद्यपि सामान्य रूप में राज्य-सूची में दिये गए विषयों के संबंध में कानून बनाने की शक्ति केवल 'क' या 'ख' भाग के राज्यों को ही है तथापि कुछ स्थितियों में संसद को भी वह शक्ति प्राप्त हो सकती है। एक ऐसी स्थिति वह है जबकि राज्य-

सभा ने अपने उपस्थित और मत देनेवाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से ऐसा प्रस्ताव पास कर दिया हो जिसमें यह घोषणा की गई हो कि राष्ट्र के हित में यह आवश्यक या कार्य-साधक है कि प्रस्ताव में उल्लिखित राज्य-सूची के अमुक विषयों के सबध में ससद् कानून बनाये। ऐसा प्रस्ताव उसमें निर्दिष्ट अवधि तक या अधिक-से-अधिक एक वर्ष तक चल सकेगा, किन्तु यदि इसी रीति से उसे फिर पास कर दिया जाय तो वह एक वर्ष तक और चल सकेगा। इस प्रस्ताव का समय समाप्त होने पर इससे मिली हुई ससद की उक्त शक्ति भी समाप्त हो जायगी। ऐसी अन्य परिस्थिति, जिसमें ससद् को इस प्रकार की शक्तिया प्राप्त हो, आपात की घोषणा के लागू होने की स्थिति म उत्पन्न होती है। ऐसी स्थिति में ससद् को राज्य-सूची में उल्लिखित किसी भी विषय पर कानून बनाने की शक्ति होगी। इस शक्ति के पालन में ससद् द्वारा बनाये गए सभी कानून या प्रस्ताव, घोषणा के खत्म होने के बाद छ मास पूरे हो जाने पर प्रभावहीन हो जाते हैं। यद्यपि ससद को उपरोक्त दो स्थितियों मे राज्य-सूची मे दिये गये विषयो के सबध मे किसी राज्य के लिए कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है, तथापि इससे राज्य-विधानमडल के ऐसे विषयो में कानून बनाने में बाधा नही पडती ; किन्तु यदि ऐसा कानून ससद द्वारा इस विषय मे बनाये गए कानून से असगत हो तो ससद् का कानून ही मान्य होगा। ससद को किसी भी अन्य देश अथवा देशा के साथ हुई किसी सधि, करार अथवा अभिसमय, या किसी भी अतर्राष्ट्रीय सम्मेलन, साहचर्य अथवा अन्य निकाय मे किये गए किसी निश्चय की पूर्ति कराने के लिए भारत के सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भी भाग के लिए कोई कानून बनाने की शक्ति भी प्राप्त है।

राज्य-सूची में दिये विषयों के बारे मे संसद् का अधिकार

प्रत्येक राज्य की कार्यकारी शक्ति का प्रयोग इस प्रकार होना चाहिए कि उसका संसद् द्वारा बनाये गए कानूनो तथा उस राज्य पर लागू होनेवाले वर्तमान कानूनो के साथ पूर्ण समन्वय सुनिश्चित हो सके। उसका प्रयोग इस प्रकार भी होना चाहिए कि उसमे संघ की कार्यकारी शक्ति के पालन में अडचन या विपरीत प्रभाव न पडे। संघ की कार्यकारी शक्ति के क्षेत्र में वे निर्देशआ जाते हैं जिनको इन प्रयोजनो के लिए किसी राज्य को देना भारत सरकार को आवश्यक लगे। किसी राज्य को ऐसे संचार-साधनो[1] के निर्माण और कायम रखने—जिन्हें उस निर्देश में राष्ट्रीय अथवा सैनिक महत्त्व का घोषित किया गया हो—और राज्य में रेल-मार्गों की रक्षा के लिए आवश्यक कार्यवाही करने के संबंध में दिये गए निर्देश भी इसमें आ जाते हैं। 'ख' भाग के जिन राज्यों के पास २६ जनवरी १९५० से तुरन्त पूर्व कुछ

---

१. डाक, तार, टेलीफोन आदि।

सशस्त्र सेनाएं थी, वे जबतक ससद कोई और व्यवस्था न करे, तबतक राष्ट्रपति द्वारा समय-समय पर जारी की गई आज्ञाओं के अधीन उन्हे कायम रख सकते हैं। ये सशस्त्र सेनाए सघ के सशस्त्र सैन्य बल की ही अंग होंगी। ससद कानून बनाकर नदी-नालों, तालाबो आदि के पानी के उपयोग, बटवारे और नियत्रण या किसी अन्तर्राज्यिक नदी या घाटी के सबंध मे विवादो और शिकायतो के अधिनियमन की व्यवस्था कर सकती है। उस कानून मे यह उपबंध रखा जा सकता है कि ऐसे विवादो या शिकायतों के सबध में सर्वोच्च न्यायालय या कोई अन्य न्यायालय अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग नही करेगा। यदि किसी समय राष्ट्रपति जनता के हित मे आवश्यक समझे तो वह एक आज्ञा निकालकर इन कार्यो के लिए एक परिषद बना सकता है। राज्यो के बीच आपसी विवादो के सबध मे जाच करने और परामर्श देने के लिए, ऐसे विषयो की छानबीन करने के लिए, जिनमें सभी या कुछ राज्यो अथवा सघ और कुछ राज्यो का सामान्य हित हो, तथा ऐसे किसी अन्य विषय तथा उससे सबधित नीति और कार्य के और अच्छे समन्वय के लिए सिफारिश करने के लिए ऐसी परिषद् बनाते समय राष्ट्रपति उसके सगठन, कर्त्तव्यो और प्रक्रिया का भी निश्चय करता है।

वित्त-व्यवस्था

(क) कर लगाना

अब हम संविधान में संघ और राज्यो के लिए की गई वित्त-व्यवस्था की चर्चा करेंगे जो एक महत्त्वपूर्ण विषय है। इस व्यवस्था का एक सामान्य प्रभाव यह है कि सघ-सरकार तथा राज्य-सरकारें ससद् या विधानमडलो मे बैठे हुए जनता के प्रतिनिधियों की अनुमति से ही राजस्व ले सकती है और उसे खर्च कर सकती है। इस संबध म पहला उपबंध यह है कि बिना कानूनी अधिकार के न कोई कर लगाया जायगा न उगाहा जायगा। अन्य प्रकार से लगाया गया कोई भी कर गैरकानूनी होगा और किसी व्यक्ति को उसे भरने के लिए मजबूर नही किया जा सकता। कर लगाने से पहले कुछ अन्य अपेक्षाओं की पूर्ति आवश्यक है। कर लगाने वाली सरकार को सविधान द्वारा कर लगाने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिए। हम यह देख चुके है कि कानून बनाने की शक्तियां सघ और राज्यो के बीच बटी हुई हैं। सघ-सूची मे वे कर गिनाये गए हैं जिनके सबंध में भारत सरकार कानून बना सकती हैं और राज्य-सूची में वे कर उल्लिखित हैं, जिनके सबंध में राज्य सरकार कानून बना सकती हैं। सघ-सूची मे उल्लिखित करो में से कुछ निम्नलिखित है :

१. कृषि-आय के अतिरिक्त अन्य आय पर कर।

२. निर्यात शुल्क (एक्सपोर्ट ड्यूटी) सहित सीमा-शुल्क (कस्टम)।

३. निम्न दो अपवादों के अतिरिक्त तम्बाकू तथा भारत में निर्मित अथवा उत्पादित अन्य वस्तुओं पर उत्पादन (आबकारी) कर।

(क) मानवीय उपयोग के लिए मद्यसारिक (अलकोहलिक) पेय तथा—
(ख) अफीम, भाग तथा अन्य मादक द्रव्य तथा मादक ओषधियां।

किन्तु मद्यसार (अलकोहल) युक्त औषधीय तथा प्रसाधनीय सामग्रियां अथवा (ख) के अन्तर्गत कोई भी अलकोहलयुक्त वस्तु अपवाद नहीं है।

४. निगम कर (कारपोरेशन टैक्स)।

५. कम्पनियों की पूंजी पर कर।

६. कृषि-भूमि के अतिरिक्त अन्य सपत्ति के बसध में सपदा-शुल्क तथा उत्तराधिकार शुल्क।

७. रेलवे, समुद्र अथवा वायु-मार्ग द्वारा वस्तुओं अथवा यात्रियों के परिवहन पर सीमा कर।

८ मुद्राक शुल्क (स्टाप ड्यूटी) के अतिरिक्त स्टाक एक्सचेंज[1] और वायदा बाजार के सौदों पर कर।

९. हुण्डियों चेकों, वचन-पत्रों (प्रॉमिसरी नोटों), लदाव पत्रों[2], प्रत्यय पत्रों (लेटर ऑव क्रैडिट), बीमा पत्रों, शेयर हस्तातरण (ट्रासफर) ऋण पत्रों (डिबन्चरों) प्रतिहस्त-पत्रकों[3] तथा रसीद पर लगनेवाले विभिन्न मुद्राक शुल्क।

१०. समाचार-पत्रों की खरीद, बिक्री तथा उनमें प्रकाशित विज्ञापनों पर कर।

राज्य-सूची में उल्लिखित करों में निम्न हैं :

१. भू-राजस्व (मालगुजारी)।

२. कृषि-आय पर कर।

३. कृषि-भूमि के सबध में सम्पत्ति और उत्तराधिकार शुल्क।

४. भूमि और भवनों पर कर।

५. ससद द्वारा कानून से खनिज विकास के संबध में लगाई गई सीमाओं के भीतर रहते हुए खनिज अधिकार पर कर।

६. राज्य में उत्पन्न होने वाले मद्यसारिक पेयों और अफीम पर उत्पादन शुल्क।

७ किसी स्थानीय क्षेत्र में उपयोग, प्रयोग या बिक्री के लिए वस्तुओं के प्रवेश पर कर।

८. बिजली के उपयोग या बिक्री पर कर।

९ समाचार-पत्रों को छोड़कर अन्य वस्तुओं की खरीद और बिक्री पर कर।

---

१. वह बाजार जहाँ कम्पनियों के शेयर आदि सौदा और लेन-देन होता है।

२. बिल ऑव लेडिंग—माल की लदाई तथा ढुलाई से संबंधित पत्र।

३. प्रति-हस्त-पत्रक (प्राक्सी—वह पत्र, जिसमें एक व्यक्ति को दूसरे की जगह हाथ उठाने या मत देने या प्रतिनिधि करने का अधिकार होता है।

१०. समाचार पत्रों में छपनेवाले विज्ञापनों को छोड़कर अन्य विज्ञापनों पर कर।

११. सड़कों और राज्य-भूमि की सीमाओं के अन्तर्गत जल-पथों द्वारा ले जाये जानेवाले माल और यात्रियों पर कर।

१२. गाड़ियों, पशुओं और नौकाओं पर कर।

१३. मार्ग-कर।

१४. पेशों, व्यापारों, धन्धों और नौकरियों पर कर।

१५. प्रति-व्यक्ति कर (कैपिटेशन टैक्स)।

भारत सरकार को राज्य-सूची में उल्लिखित और राज्य सरकारों को संघ-सूची में उल्लिखित कर लगाने का अधिकार नहीं है। यदि कोई सरकार ऐसा करती है तो वह कार्य अवैध है। संविधान में राज्यों को संघ द्वारा लगाये गए कुछ करों को वसूल करने की क्षमता प्रदान की गई है और संघ के कुछ करों से हुई आमद को राज्यों को दिये जाने की व्यवस्था है। उदाहरण के लिए 'क' और 'ख' भाग के राज्यों के संबंध में यह व्यवस्था है कि वे अपने-अपने राज्य में संघ द्वारा लगाये गए मुद्रांक (स्टाम्प) शुल्कों को वसूल करेंगे और उसकी आमद उन्हीं को दे दी जायगी। संघ-सूची के और भी कुछ ऐसे कर हैं—जैसे कृषि-भूमि को छोड़कर अन्य भूमि के संबंध में सम्पत्ति और उत्तराधिकार शुल्क, रेल, समुद्र या वायु-मार्ग से ले जाये गए माल और यात्रियों पर सीमान्त कर, रेल के यात्री-भाड़े और माल-भाड़े पर कर, समाचार-पत्रों की खरीद और बिक्री पर तथा उनमें छपनेवाले विज्ञापनों पर कर—जिन्हें भारत सरकार लगावेगी और वसूल करेगी, किन्तु उन्हें उन राज्यों को ही दे दिया जायगा जिनमें वे लगाये गए होंगे। राज्यों में करों की इस आमद को संसद् द्वारा बनाये गए कानून के अनुसार बाटा जायगा। कृषि से होनेवाली आय को छोड़कर अन्य आय पर लगाये जानेवाले करों का उल्लेख संघ-सूची में किया गया है और उन्हें भारत सरकार लगाती तथा वसूल करती है। किन्तु इस आय से होनेवाली आमद (खर्चा आदि काट कर—नेट) का कुछ हिस्सा राज्यों में बांट दिया जाता है। यह हिस्सा निश्चित करने और राज्यों में उसके बांटने के तरीके राष्ट्रपति अपने आदेश द्वारा निश्चित करता है किन्तु वित्त-आयोग नियुक्त करने के बाद राष्ट्रपति अपना आदेश आयोग की इस संबंध में की गई सिफारिशों पर विचार करने के बाद देता है। संविधान में निर्धारित किया गया है कि राष्ट्रपति २६ जनवरी १९५० के बाद दो वर्ष के भीतर और उसके बाद हर पांच वर्ष के बाद, या यदि वह आवश्यक समझे तो उससे पूर्व ऐसा आयोग नियुक्त करे। संघ की किसी सम्पत्ति पर राज्य केवल उसी सीमा तक कर लगा सकता है जिस सीमा तक संसद् का कानून उसे इजाजत दे। संघ सरकार किसी राज्य की सम्पत्ति या आय पर कर नहीं लगा सकती, किन्तु यदि कोई राज्य व्यापार या रोजगार करता हो तो संघ

सरकार उस व्यापार या रोजगार के संबंध में और उससे होनेवाली आय तथा उसमें लगाई जानेवाली सम्पत्ति पर संसद के कानून के मुताबिक कर लगा सकती है। इसलिए यदि कोई राज्य सरकार कोई कारखाना या मोटर परिवहन (ट्रांसपोर्ट) चलाती है तो उससे होनेवाली आय पर उसी प्रकार कर लगाया जा सकता है जिस प्रकार किसी व्यक्ति के निजी व्यापार की आय पर लगाया जाता है। कर लगाने के संबंध में संविधान में दिये और उपबंधों में वे शामिल हैं जो राज्यों के कुछ विषयों पर कर लगाने की सीमा पर प्रतिबंध लगाते हैं। राज्यों द्वारा लगाये जानेवाले ऐसे कर हैं—माल की खरीद और बिक्री पर कर, वृत्तियों या पेशों पर कर, बिजली की बिक्री और उसके उपयोग पर कर, संसद् के कानून द्वारा स्थापित किसी प्राधिकारी द्वारा किसी अन्तर्राज्यीय नदी या नदी-घाटी के विकास या नियमन के लिए उसके द्वारा एकत्रित, उत्पादित या इस्तेमाल में लाये गए जल या बिजली पर कर।

अब हम सार्वजनिक राजस्व में से विनियोग की व्यवस्था करनेवाले संविधान के उपबंधों की चर्चा करेंगे। भारत सरकार द्वारा प्राप्त किया गया समस्त राजस्व,

(ख) विनियोग

राज-हुण्डियों (ट्रेजरी बिलों) के प्रचलन पर लिया गया ऋण, और दिये गए ऋणों या अग्रिम राशियों की वापसी से प्राप्त होने वाली धन-राशि, ये सब मिलकर 'भारत का एकीकृत कोष' या 'संचित-निधि' कहलाते हैं। प्रत्येक राज्य में भी ऐसा कोष होता है। इनके अलावा भारत सरकार द्वारा या उसकी तरफ से तथा इसी प्रकार राज्य सरकार द्वारा या उसकी तरफ से प्राप्त की जानेवाली धनराशियाँ भारत या संबंधित राज्य के सार्वजनिक खाते में डाल दी जाती हैं। भारत या राज्य की संचित निधि में से कोई धन-राशि बिना कानूनी व्यवस्था के अनुसार और संविधान में उल्लिखित प्रयोजन और रीति को छोड़कर अन्य किसी प्रयोजन के लिए या अन्य किसी रीति द्वारा नहीं निकाली जा सकती। संसद, एक कानून द्वारा एक आकस्मिक (अचानक पड़ने वाली जरूरत के लिए) कोष की स्थापना कर सकती है, जिसे "भारत की आकस्मिकता निधि" या "भारत का आकस्मिकता कोष" कहा जाता है। जो धनराशियां या रकमें उसमें जमा की जायंगी उनका निर्देश और उनके संबंध में व्यवस्था उसी कानून द्वारा की जायगी। यह कोष रोजमर्रा की जरूरत के लिए पेशगी के रूप में दिये गए धन से स्थापित कोष है जिसमें से अस्थायी रूप से पेशगी रकम दी जा सकती है। यह कोष राष्ट्रपति के अधिकार में रहता है और इसमें से अप्रत्याशित खर्चे पूरे किये जा सकते हैं जिनके संबंध में संविधान की व्यवस्था के अनुसार बाद में संसद की मंजूरी लेनी पड़ती है। हर राज्य के लिए भी ऐसा एक कोष है।

अपनी कार्यकारी शक्ति की सीमा के अंतर्गत भारत सरकार संसद द्वारा इस संबंध में पास किये गए कानूनों के अधीन अपने संचित कोष की प्रतिभूति (सीक्योरिटी)

देकर कोई कर्ज ले सकती है अथवा प्रत्याभूति (गारण्टी) दे सकती है। प्रत्येक राज्य अपनी कार्यकारी शक्ति के अन्तर्गत, राज्य विधानमंडल द्वारा बनाये गए कानूनों द्वारा निश्चित की गई सीमा और दी जानेवाली गारण्टी के अधीन अपने संचित कोष की प्रतिभूति देकर भारतीय राज्य-क्षेत्र में ऋण उगाह सकता है। भारत सरकार संसद् के किसी कानून की शर्तों के अधीन किसी राज्य को ऋण या उसके द्वारा लिये जानेवाले ऋण के सम्बन्ध में प्रत्याभूति दे सकती है। इस प्रकार ऋण के रूप में दी जानेवाली राशि संचित कोष में से दी जायगी।

भारत सरकार के वित्त प्रस्तावों की संसद द्वारा स्वीकृति और राज्य सरकार के वित्त प्रस्तावों की उस राज्य के विधानमंडल द्वारा स्वीकृति प्राप्त करने के संबंध में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया का संविधान में निर्देश किया गया है। राष्ट्रपति प्रत्येक वित्तीय वर्ष के संबंध में संसद के दोनों सदनों के समक्ष उस वर्ष के लिए अनुमानित आमद और खर्च का लेखा उपस्थित करवाता है। इस लेखे को वार्षिक वित्त-विवरण कहते हैं। इसमें अनुमानित खर्च के नीचे ये धनराशियां अलग-अलग दिखाई जायगी—(क) संविधान में जिन खर्चों का भार संचित कोष पर डाला गया है, उनके संबंध में धनराशियां; और (ख) अन्य प्रस्तावित धनराशियां जो संचित कोष में से ली जायगी। इसके अलावा राजस्व के खाते में होनेवाले खर्च को अन्य खर्च से अलग रखा जायगा। संविधान में जिन खर्चों का भार संचित कोष पर डाला गया है, वे ये हैं—राष्ट्रपति का वेतन और भत्ते तथा उसके पद से संबंधित अन्य खर्च, लोकसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष तथा राज्य-सभा के सभापति और उप-सभापति के वेतन और भत्ते का खर्च, ऐसे ऋण-भार जिनका दायित्व भारत सरकार पर है, और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन, भत्ते और पेंशनों का खर्च। अनुमानित खर्च का जितना भाग संचित कोष से लिया जाता है उस पर संसद् के सदन बहस तो कर सकते हैं, पर उन पर संसद् मतदान नहीं कर सकती। अनुमानित खर्च के शेष भाग को अनुदान की मांगों के रूप में लोकसभा में रखा जायगा और वह उसे मंजूर, नामंजूर या कम कर सकती है। अनुदान की कोई मांग राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना नहीं रखी जा सकती। इसके बाद संचित कोष में से खर्चों के भुगतान के लिए धनराशियां लेने की व्यवस्था करनेवाला एक विनियोग विधेयक (बिल) उपस्थित किया जाता है जिसमें पहले संसद् द्वारा स्वीकृत अनुदान की मांगों को पूरा करने के लिए अपेक्षित धनराशि के विनियोग की, और बाद में उन खर्चों के संबंध में धनराशियों के विनियोग की, जिनकी पूर्ति का भार संविधान द्वारा संचित कोष पर डाला गया है, व्यवस्था की जाती है। इस विधेयक को संसद अनिवार्यतः पास करती है। उक्त कोष से कानून द्वारा स्वीकृत विनियोग के बिना कोई धनराशि नहीं निकाली जा सकती। राजस्व की वसूली और उसके व्यय संबंधी विधेयकों, जैसे वित्त विधेयकों को प्रस्तावित और पास करने से

संबधित व्यवस्था की अगले अध्याय में चर्चा की गई है।

राज्य के सञ्चित कोष में से विनियोग के लिए धन-राशियां लेने की प्रक्रिया संबंधी उपबंध वही हैं जिनका उल्लेख अभी किया गया है। इसमें राज्यपाल या राजप्रमुख राष्ट्रपति का और राज्य विधान-सभा लोक-सभा का काम करती है।

भारत-भर में व्यापार करने और आवागमन पर कोई रोक-टोक नहीं है। किन्तु ससद जनहित की दृष्टि से देश के किसी भाग में या राज्यों के बीच वाणिज्य, व्यापार और आवागमन पर आवश्यक प्रतिबंध लगा सकती है। ससद या किसी राज्य का विधानमण्डल एक राज्य को दूसरे राज्य से विशेषता देनेवाला या एक का दूसरे से विभेद करनेवाला कानून नहीं बनायगा। किन्तु ससद् यदि अपने कानून द्वारा यह घोषणा करे कि देश के किसी भाग में चीजों की कमी के कारण ऐसा करना आवश्यक है, तो वह ऐसा कर सकती है। विधानमण्डलों को भी सविधान में दी गई शर्तों के अधीन अन्य राज्यों से अपने राज्य में आनेवाले माल पर कर लगाने की छूट है। **'ख'** भाग के राज्यों के लिए एक विशेष व्यवस्था यह है कि वे, यदि उनका और भारत सरकार का ऐसा कोई समझौता हो चुका हो तो, उस राज्य के निर्यात और आयात के सबंध में कर की वसूली जारी रख सकते हैं। ऐसा वे समझौते में की गई काल-अवधि के लिए ही कर सकते हैं, जो २६ जनवरी १९५० के बाद अधिक-से-अधिक दस वर्ष के लिए होगी।

सघ की अपनी सेवाएं (सर्विस) होंगी और राज्यों की अपनी। लेकिन देश की रक्षा का भार सघ के ऊपर है, इसलिए 'प्रतिरक्षा सेवाएं'—सेना—सघ की ही होगी, राज्यों की नहीं। इन सेवाओं की भर्ती और उनकी शर्तों आदि के सबध में उन सेवाओं से सबंधित विधान-मडल विनियम बनायगे। जबतक ऐसे विनियम या कानून नहीं बनते, तबतक संघ-सेवाओं के सबध में राष्ट्रपति और **'क'** या **'ख'** भाग के राज्यों के सबंध में उनके राज्यपाल या राजप्रमुख नियम बना सकते हैं। लेकिन ससद एक या अधिक ऐसी अखिल-भारतीय सेवाएं (आल इण्डिया सर्विसें) भी प्रारम्भ कर सकती है जो सारे देश और राज्यों के लिए सामान्य हों और वह ऐसी सेवाओं की अवधि और शर्तों आदि से सबंधित नियम भी बना सकती है। किन्तु ऐसा तभी किया जा सकता है जबकि राज्य-सभा किसी बैठक में उस समय उपस्थित और मत देनेवाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत के प्रस्ताव द्वारा यह घोषित करदे कि ऐसा करना राष्ट्र के लिए आवश्यक और लाभदायक है।

जन—सार्वजनिक—सेवाएं

समस्त सेवाओं के लिए सामान्य रूप से लागू होनेवाली भरती और सेवा की शर्तों से संबधित कुछ आम सिद्धात सविधान में दिये गए हैं। संघ या राज्य की किसी सेवा में नियुक्ति के संबंध में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के विशेषाधिकारों पर विचार करते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि

उसमे प्रशासन की कार्यकुशलता बनाये रखने में अन्तर न पड़े। संघ की रेलवे, सीमा शुल्क (कस्टम्स) और तार (टेलीग्राफ) सेवाओं में आग्ल-भारतीय जाति के व्यक्तियों की भरती २६ जनवरी १९५० के बाद दो वर्ष तक उसी आधार पर की गई थी जिस पर १५ अगस्त १९४७ से ठीक पहले की जाती थी किन्तु इसके बाद उनके लिए स्थानों के सुरक्षित रखने की यह सुविधा हर दो वर्ष के बाद १० प्रतिशत कम होने लगी और दस वर्ष बाद पूर्णतया समाप्त हो जायगी।

संघ की सैनिक या असैनिक (सिविल) सेवाओं या अखिल भारतीय सेवाओं या उनसे संबंधित किसी पद पर कोई भी व्यक्ति राष्ट्रपति जब तक चाहे तब तक आरूढ़ रह सकता है। कोई भी व्यक्ति, जो किसी राज्य की असैनिक सेवा (सिविल सर्विस) का सदस्य है, या जो राज्य मे किसी असैनिक पद पर आसीन है, वह राज्यपाल या राजप्रमुख जब तक चाहे तब तक अपने पद पर रहता है। दूसरे शब्दों मे, संघ या राज्य सरकारों को यह अधिकार है कि वे यदि आवश्यक समझें तो इन सेवाओं के किसी सदस्य को बर्खास्त या सेवा से मुक्त कर सकती हैं। ऐसा करने पर उन पर बर्खास्त किये गए या पद-मुक्त किये गए व्यक्ति द्वारा अनुचित बर्खास्तगी का मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। सरकारों को यह शक्ति इसलिए दी गई है कि वे इसके द्वारा जनता के हितों की सेवा मे किसी सदस्य के बने रहने से रक्षा करें। फिर भी असैनिक सेवा के संबंध मे ऊपर बनाये गए नियम से संबंधित कुछ विशेष उपबंध हैं। संघ या राज्य की असैनिक सेवा का कोई सदस्य उसे नियुक्त करनेवाले अधिकारी से नीचे के किसी अधिकारी द्वारा नहीं हटाया या बर्खास्त किया जा सकता। उसके विरुद्ध की जानेवाली कार्यवाही के विरुद्ध कारण उपस्थित करने का अवसर दिये बिना भी उसे हटाया या बर्खास्त नहीं किया जा सकता और न उसका पद घटाया जा सकता है। किन्तु यह उपबंध उस समय लागू नहीं होता जब उसके आचरण के संबंध में लगाये गये अभियोग ही पुष्टि हो चुकी हो या जब ऐसा करना उपयुक्त और संभव न हो।

संविधान मे, संघ और राज्यों के लिए एक-एक लोक सेवा-आयोग (पब्लिक सर्विस कमीशन) की व्यवस्था भी की गई है और यह भी कहा गया है कि संबंधित

लोक-सेवा आयोग

सरकारों को चाहिए कि वे असैनिक सेवा में भरती और उसके सदस्यों के विरुद्ध अनुशासन संबंधी कार्यवाही के मामलों में आयोग की सलाह लें।

निर्वाचक सूचियों की तैयारी और संसद तथा राज्य विधानमंडलों के चुनावों पर नियंत्रण रखने के लिए संविधान मे एक निर्वाचन आयोग (इलेक्शन कमीशन)

निर्वाचन-आयोग

की नियुक्ति की व्यवस्था है। इसमें यह भी व्यवस्था है कि संसद इन मामलों के नियमन के लिए कानून भी बना सकती है। इसके अनुसार संसद् ने सन् १९५० में 'जन-प्रतिनिधान-

अधिनियम' नामक अधिनियम (एक्ट) पास किया। १९५१ में इसी नाम का एक और अधिनियम पास किया गया। हाल ही में १९५५ में—इसी सबध में एक और विधेयक (बिल) पर बहस हो रही थी। पहले अधिनियम (१९५०के प्रतिनिधान अधिनियम) मे विभिन्न निर्वाचन-क्षेत्रो, निर्वाचको की योग्यताओ तथा निर्वाचक सूचियो की तैयारी की पद्धति का निर्देश किया गया था। दूसरा प्रतिनिधान अधिनियम चुनावो के नियमन के लिए था तथा इसमे उनसे सबधित सभी बातो की व्यवस्था की गई थी, जैसे—उम्मीदवारो की योग्यताओं-अयोग्यताओ, उम्मीदवारो की नामजदगी, मतदान तथा निर्वाचन-न्यायाधिकरणो द्वारा चुनाव-विवादो के फैसले। प्रस्तावित प्रतिनिधान अधिनियम इन सब बातो के अतिरिक्त चुनाव-पद्धति के दोषो आदि को भी दूर करने के लिए रखा जा रहा है। देश के प्रथम चुनाव १९५२ के आरम्भिक भाग मे पूरे हुए थे और इस प्रकार प्रथम ससद् तथा राज्य-विधानमडलो का निर्माण हुआ था।

संविधान मे कुछ ऐसे वर्गो के हितो के सबध मे विशेष ध्यान रखा गया है जिन्हे देश की वर्तमान परिस्थितियो मे विशेष सरक्षण की आवश्यकता है। ऐसे वर्ग

कतिपय वर्गों के लिए विशेष संरक्षण

हैं—अनुसूचित जातिया, आसाम के स्वायत्त जिलो की और देश के दूसरे भागो की अनुसूचित आदिम जातिया और आग्ल भारतीय जाति। इन्हें विधानमडलो और संघ तथा राज्यो की दूसरी सेवाओ मे प्रतिनिधान सबंधी जो संरक्षण दिए गए हैं उनकी चर्चा ऊपर हो चुकी है। आग्ल-भारतीय जाति के लिए शिक्षण-सबधी अनुदानो की जो विशेष व्यवस्था है वह सविधान के लागू होने से दस वर्ष तक जारी रहेगी और २६ जनवरी १९६० से हर तीन वर्ष बाद उन अनुदानो मे दस प्रतिशत की कमी की जायगी। संरक्षण सबंधी जो अन्य व्यवस्थाए हैं वे इन बातो से सबंध रखती है—राष्ट्रपति द्वारा एक ऐसे विशेष अधिकारी की नियुक्ति, जो अनुसूचित आदिम जातियो और अनसूचित आदिम जातियो के लिए सविधान मे दिए गए सरक्षणो से संबधित मामलो की जाच करे और उनके पालन के सबंध मे राष्ट्रपति को रिपोर्ट दे, विशेष अधिकारी द्वारा उक्त रिपोर्ट का ससद् के प्रत्येक सदन मे पेश किया जाना; राष्ट्रपति द्वारा एक ऐसे आयोग की नियुक्ति जो उसको अनुसूचित क्षेत्रो के प्रशासन और अनुसूचित आदिम जातियो के कल्याण के सबध मे रिपोर्ट दे, किसी राज्य मे रहनेवाली अनुसूचित जातियो के हित सवर्द्धन के लिए उस राज्य को आदेश देने की संघ की कार्यकारी शक्ति; तथा पिछडे वर्गो की सामाजिक और शिक्षण परिस्थितियो की जाच करने के लिए और उन्हे सुधारने के उद्देश्य से सिफारिशें करने के लिए आयोग की नियुक्ति।

सविधान में संघ और राज्यों की सरकारी भाषा के सबंध मे विशद निर्देश हैं संघ के लिए देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी सरकारी भाषा होगी। किन्तु २६ जन

वरी १९५० से आगामी १५ वर्षों तक अंग्रेजी भाषा का प्रयोग सभी सरकारी कामो के लिए पहले की तरह ही जारी रक्खा जायगा। सविधान म दिये गए अन्य उपबधो के अधीन इस व्यवस्था मे हेर-फेर किया जा सकता है । ससद् भी १५ वर्ष के बाद अंग्रेजी भाषा के प्रयोग को जारी रखने के सबध में व्यवस्था कर सकती है। प्रत्येक राज्य में हिन्दी या वहा प्रचलित अन्य भाषाओ में से किसी एक को सरकारी भाषा माना जायगा, लेकिन जबतक राज्य विधानमडल अंग्रेजी के विपक्ष मे कोई व्यवस्था न करे तबतक अंग्रेजी जारी रहेगी। सघ के सरकारी काम मे भारतीय अको का प्रयोग, उनके अन्तर्राष्ट्रीय रूप मे किया जायगा, किन्तु १५ वर्ष बाद ससद् अको के देवनागरी रूप को अपना सकती है। जबतक ससद् अन्यथा व्यवस्था न करे, तबतक सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय, और समस्त विधेयको (बिलो), अधिनियमो (एक्टो), अध्यादेशो (आर्डिनेंसो), और सविधान या किसी कानून के अधीन जारी किये गए किन्ही आदेशो, नियमो, विनियमो और उपविधियो की भाषा अंग्रेजी चलती रहेगी। किन्तु राज्यो और राज्यगत उच्च न्यायालयो के लिए यह व्यवस्था इस सबंध मे दिये गए सविधान के उपबधो के अधीन परिवर्तनीय होगी। सविधान मे यह कहा गया है कि सघ हिन्दी भाषा का प्रचार और अभिवृद्धि करे और उसका इस प्रकार विकास करे कि वह हिन्दुस्तानी व अन्य प्रमुख प्रादेशिक भाषाओ के रूप, शैली और मुहावरो को अपनाये। सविधान मे यह आदेश भी दिया गया है कि राष्ट्रपति २६ जनवरी १९५० के पाच वर्ष बाद और तदनन्तर दस वर्ष बाद ऐसे आयोग स्थापित करेगा जो भाषा और अको तथा हिन्दी को अपनाने की दिशा में की गई उत्तरोत्तर प्रगति के सबध मे उसके सामने सिफारिशे रखे।

सरकारी भाषा

इसके बाद सविधान मे आपात की घोषणा और उस काल मे सविधान के कुछ उपबंधो को विलम्बित करने (कुछ समय के लिए प्रचलन मे हटाने) का उपबंध है। यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाय कि ऐसा गभीर आपात उपस्थित है—भले ही वह युद्ध या विदेशी आक्रमण या आन्तरिक उपद्रव के कारण हो—जिससे समस्त देश या उसके किसी भाग की सुरक्षा को खतरा पैदा हो गया है तो वह आपात की घोषणा कर सकता है। यह घोषणा ससद के प्रत्येक सदन के सामने रखी जानी चाहिए। यदि उस अवधि के समाप्त होने से पूर्व ससद् के दोनो सदन प्रस्तावो द्वारा उसे समर्थन न दे सकें तो यह घोषणा दो महीने की अवधि के बाद समाप्त समझी जायगी। यदि घोषणा के समय ससद् विघटित कर दी गई हो अथवा घोषणा के बाद दो माह के भीतर वह विघटित कर दी जाय, तो ससद की फिर बैठक आरम्भ होने के ३० दिन के भीतर ससद् द्वारा उस घोषणा का अनुमोदन होना चाहिए, अन्यथा ३० दिनों की समाप्ति पर वह लागू नही रहेगी। राष्ट्रपति एक और घोषणा

आपात-उपबंध

निकालकर अपनी पहली घोषणा समाप्त कर सकता है। आपात की घोषणा के परिणाम निम्नलिखित हैं :

जब घोषणा चालू हो तब कुछ मूल अधिकार मुल्तवी कर दिये जायगे जैसा कि अगले अध्याय मे स्पष्ट किया गया है। दूसरे शब्दो में राज्य मूल अधिकारो में कमी करने के लिए कानन बना सकेगा। सघ-सरकार किसी राज्य-सरकार को यह आदेश दे सकती है कि वह (राज्य-सरकार) अमुक ढग से अपनी कार्यकारी शक्ति का प्रयोग करे ओर ससद् सघ-सरकार और उसके अधिकारियों को उन विषयो के संबध में अधिकार और कर्त्तव्यो के पालन के लिए प्रवृत्त कर सकती है जो सघ-सूची मे नही है। राष्ट्रपति संकटकाल मे सघ ओर राज्यो के बीच राजस्व के विभाजन सबधी उपबन्धो को प्रचलन मे हटा सकता है। ऐसी एक स्थिति यह है जिसमे सघ-सरकार को एक या अधिक राज्य सरकारो के कुछ या सभी कृत्यो व उत्तरदायित्वो का निर्वाह करना पड सकता है। ऐसी स्थिति और भी हो सकती है। यदि किसी राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख की रिपोर्ट मिलने पर या अन्य प्रकार से राष्ट्रपति को निश्चय हो जाय कि ऐसी परिस्थिति पैदा हो गई है कि राज्य की सरकार का सविधान के अनसार सचालन नही किया जा सकता तो राष्ट्रपति एक घोषणा द्वारा उस राज्य की, ओर उसके राजप्रमुख या राज्यपाल की सत्ता और समस्त कार्यो को अपने हाथ मे ले सकता है और ससद् को उस राज्य के लिए विधानमंडल के रूप मे कार्य करने का अधिकार दे सकता है। राष्ट्रपति द्वारा इस प्रकार अधिकृत ससद् राष्ट्रपति को उस राज्य के विधानमडल के अधिकार सौप सकती है अथवा राष्ट्रपति को यह अधिकार दे सकती है कि वह उन अधिकारों को अपने निर्देश से किसी अन्य व्यक्ति को दे दे। इन परिवर्तनो द्वारा उस राज्य के उच्च न्यायालय की स्थिति में अन्तर नही पडता। यदि वह दो माह की समाप्ति से पूर्व ससद् का अनुमोदन प्राप्त न कर ले तो सकटकाल या आपात की यह घोषणा दो महीने तक प्रचलन मे रहेगी। अनुमोदन के पश्चात् वह ६ महीने तक चालू मे रह सकती है। ऊपर बताई गई स्थिति का एक उदाहरण तब सामने आ सकता है जब सघ द्वारा अपनी कार्यकारी शक्ति के अन्तर्गत दिये गए किसी आदेश का कोई राज्य पालन न कर सका हो या उसके अनुसार चल न सका हो। आपात की एक तीसरी स्थिति और है जिसके बारे मे सविधान में उपबंध है। यदि राष्ट्रपति को यह निश्चय हो जाय कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जिससे सरकार की वित्तीय स्थिरता या साख को खतरा है तो वह आपात घोषणा कर सकता है। इस घोषणा के प्रचलन-काल में राष्ट्रपति राज्यो को आदेश द्वारा वित्तीय औचित्य के कुछ नियमो का पालन करने के लिए कह सकता है—जैसे राज्य की सेवाओ में कार्य करनेवाले व्यक्तियों के वेतन और भत्तों में कटौती और राज्य विधानमंडल द्वारा पास किये जाने के पश्चात् राज्य के बजट का राष्ट्रपति के विचारार्थ भेजना।

संघ का यह कर्त्तव्य है कि वह प्रत्येक राज्य की बाह्य अतिक्रमण या आंतरिक उपद्रवों से रक्षा करे और यह देखे कि प्रत्येक राज्य की सरकार संविधान के अनुसार ही चल रही है। यद्यपि संघ के इस कर्त्तव्य का उल्लेख संविधान के अंत में किया गया है फिर भी इसे प्रथम महत्त्व का स्थान प्राप्त है। देश को बाहरी या भीतरी शत्रुओं से बचाना राज्य का मुख्य कार्य होता है। इस कार्य के समुचित सम्पादन का जनता के लिए बहुत महत्त्व है, इसलिए यह कार्य संघ को ही सौंपा जा सकता है न कि उसके किसी भाग को। इसी प्रकार यह देखने का कार्य भी संघ के ही सुपुर्द है कि राज्य के अधिकारी अपना कार्य संविधान के अनुसार ही करें। ये कर्त्तव्य इतने कठिन और उत्तरदायित्वपूर्ण हैं कि शांति और जनता की भलाई के लिए संविधान द्वारा भारत-संघ को इतनी विस्तृत शक्तियां देने की बात स्पष्ट हो जाती है।

संविधान-संशोधन की प्रक्रिया

संविधान के अंत में संविधान की संशोधनसंबंधी व्यवस्था का निर्देश किया गया है। कोई भी संशोधन एक विधेयक के द्वारा किसी भी सदन में प्रस्तावित किया जा सकता है। ऐसा विधेयक प्रत्येक सदन द्वारा उसके समस्त सदस्यों की बहुसंख्या द्वारा—जो उपस्थित और मत देनेवाले सदस्यों की दो-तिहाई बहुसंख्या से कम न हो, पास किया जाना चाहिए। तदनन्तर वह स्वीकृति के लिए राष्ट्रपति के पास जाना चाहिए। इस स्वीकृति के बाद, संविधान को, पास हुए विधेयक के अनुसार संशोधित समझा जायगा। संविधान के विशेष महत्त्व के कुछ उपबंधों के संशोधन के लिए एक और शर्त रखी गई है कि संसद द्वारा पास किये जाने के पश्चात और राष्ट्रपति के पास स्वीकृति के लिए भेजने से पूर्व ऐसा संशोधन **'क'** और **'ख'** भाग के कम-से-कम आधे राज्यों के विधानमंडलों द्वारा अनुमोदित किया जाना चाहिए। ये उपबंध इन बातों के संबंध में हैं—राष्ट्रपति की निर्वाचन-पद्धति, संघ या राज्य-सरकार की कार्यकारी शक्ति की सीमा, सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों की रचना और शक्तियां, संघ और राज्यों में विधि-निर्माण-शक्तियों का बंटवारा और तत्सम्बन्धी तीनों सूचियां, संसद में राज्यों का प्रतिनिधान और अन्त में संविधान में संशोधन करने की प्रक्रिया।

अबतक संविधान में चार संशोधन किये गए हैं। इनमें से कुछ की चर्चा दूसरे अध्याय में की गई है।

अबतक संविधान द्वारा निर्दिष्ट सरकार की सर्वोच्च सत्ताओं का ही वर्णन किया गया है। स्थानीय शासन—जैसे नगरपालिकाओं, जिला बोर्डों और पंचायतों-की रचना आदि—राज्यों के विधानमंडलों द्वारा बनाये गए कानूनों के आधार पर किया जाता है। इनके सदस्य अपने-अपने क्षेत्र के चुने हुए लोग होते हैं। वे सौंपे गए प्रशासनीय कर्त्तव्यों का पालन करते हैं, जैसे सड़कों, स्कूलों और अस्पतालों का खोलना और उनका चलाना, इसके लिए कर लगाना व राजस्व लेना आदि।

: २ :

विधि-निर्माण

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि संविधान संसद् और राज्य विधान-मंडलों को समस्त भारत या उसके भागों के लिए विधि-निर्माण (कानून बनाने) की शक्ति प्रदान करता है। इस अध्याय में हम यह देखेंगे कि वे कानून बनाते कैसे हैं। संसद् या विधान-मंडलों द्वारा बनाया गया कानून 'एक्ट' या 'अधिनियम' कहलाता है। पास होने से पूर्व प्रस्तावित कानून 'बिल' या 'विधेयक' कहलाता है। पास हो जाने पर वह अधिनियम बन जाता है। किसी विषय के संबंध में एक विशद कानून को 'कोड' या 'संहिता' कहते हैं, जैसे भारतीय दण्ड संहिता (इंडियन पेनल कोड)। किसी भी अधिनियम में उसके उद्देश्य की पूर्ति के लिए किसी अधिकारी या सत्ता विशेष को उसके अन्तर्गत नियम बनाने का अधिकार दिया जा सकता है। नियम बनाने की इस व्यवस्था के अनुसार जब नियम बन जाते हैं तब वे स्वयं अधिनियम के समान ही महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं। राष्ट्रपति और किसी राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख द्वारा किया गया अध्यादेश (आर्डिनेंस) कुछ समय तक के लिए ही होता है और जबतक वह जारी रहता है, जबतक वह अधिनियम जैसा ही बल रखता है। उपर्युक्त रीतियों में से किसी भी रीति द्वारा बनाया गया कानून सभी संबंधित व्यक्तियों के लिए अनिवार्य होता है। उसका पालन सबके लिए अनिवार्य है। यदि उनका पालन न किया जाय तो कानून द्वारा अधिकृत न्यायालय या कोई भी अन्य अधिकृत सत्ता उसका प्रचलन करवायगी और उसकी अवज्ञा करनेवाले व्यक्ति को उसके आचरण के लिए निर्दिष्ट दंड या उस का जुर्माने की सजा दी जायगी।

सामान्य परिभाषाएं

संविधान में यह व्यवस्था है कि २६ जनवरी १९५० से ठीक पहले चालू कानून—जबतक वे किसी उपयुक्त अधिकारी या सत्ता द्वारा परिवर्तित या भंग नहीं कर दिये जाते तबतक उस तारीख के बाद भी चालू रहेंगे। किन्तु इसके साथ एक महत्त्वपूर्ण शर्त यह भी है कि ऐसे कानून संविधान के किसी उपबंध के प्रतिकूल नहीं होने चाहिएँ। कानून के उसी प्रकार चालू रहने का अर्थ यह होता है कि संसद् और राज्य विधानमंडलों को भारतवासियों के लिए हर कानून फिर से नहीं बनाना पड़ेगा। नई परिस्थितियों के अनुसार नये कानून बनाने का ही उनके पास बहुत काम है। अंग्रेजी शासन की एक सदी के दौरान में

संविधान के प्रवर्तन के पूर्व प्रचलित विधियों के बारे में विशेष व्यवस्था

और १५ अगस्त १९४७ के बाद के ढाई वर्षों में बनाये गए जो कानून सविधान के लागू होने के समय चालू थे, वे तबतक चालू रहेंगे जबतक ससद् या राज्य विधान-मंडल उन्हे बदलना आवश्यक न समझे। आगे के अध्यायो म जिस कानून की समीक्षा की गई है उसका अधिकांश भाग वह है जो अंग्रेजी शासन के १५० वर्षों मे बना और १५ अगस्त १९४७ को चालू था। केवल दो ऐसे मुख्य विषय हैं जिनके सबध मे भारतीय कानून का अधिनियमन नही हुआ है और जिसे न्यायिक निर्णयो के द्वारा विकसित होने के लिए छोड़ दिया गया है। ये दोनो विषय हे :

१ सामान्य अधिकारो को क्षति या आघात (अध्याय ९), और

२. मुस्लिम पारिवारिक विधि (अध्याय १४)।

इस पुस्तक मे जिस अधिनियमित कानून का सक्षिप्त विवरण दिया गया है, वह २६ जनवरी १९५० से पहले केवल ब्रिटिश भारत के प्रातो पर ही लागू था, भारतीय रियासतो पर नही। इसलिए यह **'ख'** भाग के राज्यों पर लागू नही होता था। किन्तु सम्पूर्ण भारत मे सर्वत्र समान कानून लाग करने के तेज क्रम को देखते हुए यही लगता है कि इन राज्यो पर भी शीघ्र ही वही या उसी प्रकार के कानून लागू हो जायगे जैसे कि **'क'** और **'ग'** भागो के राज्यो पर लागू है।

विधि-निर्माण की कुछ सामान्य शर्तें

ससद् या किसी भी राज्य विधानमडल को कानून बनाते समय सविधान में विहित कुछ अपेक्षाओं का पालन करना पडता है। यदि वह ऐसा न करे तो उसका कानून अवैध होगा और अदालतो द्वारा उसकी उपेक्षा की जायगी। पहली अपेक्षा यह है कि जिस क्षेत्र मे कानून चलन मे आए उस तथा जिस विषय मे वह कानून सबधित हो उस विषय के बारे मे कानून बनाने के लिए विधि-निर्मात्री सक्षम हो। दूसरी अपेक्षा यह है कि विधि-निर्माण मे उसे एक निश्चित प्रक्रिया का अनसरण करना चाहिए। तीसरी यह कि कानून सविधान के उपबधो का उल्लघन न करे।

संसद तथा विधानमंडलों के क्रमिक क्षेत्र तथा कानून पेश करने की प्रक्रिया व धन विधेयक की परिभाषा

ससद् समस्त भारत के लिए कानून बना सकती है। वह ऐसा भी कानून न बना सकती है जिसमे किसी विदेशी प्रदेश मे अपराध करनेवाले भारतीय पर भारत मे मुकदमा चलाने और उसे दड देने का व्यवस्था हो। राज्य विधानमडल राज्य के लिए ही कानून बना सकती है, उसके बाहर के किसी प्रदेश के लिए नही, ससद उन विषयो के सबध में विधि-निर्माण कर सकती है जो सविधान के अनुसार उसके अधिकार मे है। (देखिए अध्याय १)। यदि वह उन विषयो से भिन्न किसी और विषय पर कानून बनाती है, जैसे ऐसे किसी विषय पर जो केवल राज्य विधानमडल के विशिष्ट अधिकार क्षेत्र मे हो तो ऐसा कानून अवैध होगा। राज्य-विधानमडल राज्यो के लिए निर्धारित विषयो पर ही कानून बना सकता है। ससद् में किसी

कानून को पेश करने और पास करने की प्रक्रिया इस प्रकार है—सामान्यतः विधेयक संसद् के किसी भी सदन में किसी एक सदस्य द्वारा पेश किया जाता है। लेकिन धन-विधेयक (मनी-बिल) की बात दूसरी है। धन-विधेयक राज्य-सभा में पेश नहीं किया जा सकता। यदि किसी विधेयक में किन्हीं विषयों से संबंधित सभी या कुछ खास उपबंध मात्र हों तो उस विधेयक को धन-विधेयक कहा जाता है। इन उपबंधों में से कुछ निम्न हैं :

किसी कर का लगाना, समाप्ति, पुनरीक्षण (रिवीजन), बदलना या विनियमन, भारत सरकार द्वारा धन का उधार लेना अथवा कोई प्रतिभूति (गारण्टी) देना, भारत सरकार द्वारा लिये गए अथवा लिये जाने वाले किन्हीं भी वित्तीय आभारों से संबंधित कानून का संशोधन, भारत की संचित निधि (कन्सॉलिडेटेड फण्ड) अथवा आकस्मिकता निधि (कण्टिजेंसी फण्ड) की अभिरक्षा; ऐसी किसी निधि में धन डालना अथवा उसमें से धन निकालना; किसी व्यय को भारत की संचित निधि पर भारित व्यय घोषित करना, ऐसे व्यय की राशि बढ़ाना और भारत की संचित निधि या भारत के सरकारी हिसाब (पब्लिक एकाउण्ट) मध्ये धन प्राप्त करना।

ऐसे विषयों की व्यवस्था करनेवाला कोई विधेयक राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना पेश अथवा प्रस्तावित नहीं किया जा सकता। जब कोई विधेयक संसद् के दोनों सदनों द्वारा पास कर दिया जाता है और उसे राष्ट्रपति की अनुमति मिल जाती है तो वह कानून बन जाता है। जब कोई विधेयक संसद के दोनों सदनों द्वारा बिना किसी संशोधन के, या केवल उन्हीं संशोधनों के साथ जो दोनों सदनों को स्वीकार हो, मान्य हो जाय तो उसे संसद द्वारा पास किया माना जाता है। यदि धन-विधेयक के अतिरिक्त अन्य किसी विधेयक के संबंध में दोनों सदनों में परस्पर मतभेद हो तो निम्न प्रक्रिया लागू होगी। राष्ट्रपति दोनों सदनों की सम्मिलित बैठक बुलायेगा। यदि इस सम्मिलित बैठक में उपस्थित और मत देनेवाले सदस्यों की बहुसंख्या उसे पास कर दे तो वह दोनों सदनों द्वारा पास समझा जायगा। लोकसभा द्वारा पास किये जाने के बाद धन-विधेयक राज्य-सभा के पास उसकी सिफारिशों के लिए भेजा जाना चाहिए। राज्य-सभा को विधेयक के प्राप्त होने की तारीख से १५ दिन के भीतर उसे अपनी सिफारिशों के साथ लोक-सभा को वापस कर देना चाहिए। तदनन्तर लोकसभा को यह अधिकार है कि वह राज्य-सभा की सभी या कुछ सिफारिशों को स्वीकार कर ले या अस्वीकृत करदे। ऐसा किये जाने के पश्चात् विधेयक लोक-सभा द्वारा स्वीकृत रूप में, या अपने प्रारम्भिक रूप में कानून बन जाता है। यदि राज्य-सभा १४ दिन के भीतर उसे लोकसभा को वापस न करे तो भी वह कानून बन जाता है। जब कोई विधेयक दोनों सदनों से पास हो जाता है तो वह राष्ट्रपति के सामने रखा जाता है और राष्ट्रपति उसपर अपनी

स्वीकृति देने या स्वीकृति रोक रखने की घोषणा करता है। राष्ट्रपति को यह भी अधिकार है कि वह धन-विधेयक को छोड़कर अन्य किसी विधेयक को अपने इस संदेश के साथ संसद को वापस करदे कि वह उस विधेयक पर या उसके किन्हीं निर्दिष्ट उपबंधों पर पुनर्विचार करे, और राष्ट्रपति द्वारा सिफारिश किये गए कुछ संशोधनों को अपनाने के औचित्य पर विचार करे। संसद को चाहिए कि वापस आये हुए विधेयक पर तदनुसार विचार करे। फिर यदि वह उसे संशोधनों के साथ या बिना संशोधनों के पास करदे और उसे राष्ट्रपति के सामने उसकी स्वीकृति के लिए रखे तो राष्ट्रपति के लिए उसपर स्वीकृति देना अनिवार्य हो जाता है। वह अपनी स्वीकृति रोक नहीं सकता और इसके बाद विधेयक कानून बन जाता है। विधेयक पर स्वीकृति देने के अधिकार के प्रयोग में यह अपेक्षा की जाती है कि राष्ट्रपति मंत्री-परिषद् की सलाह के अनुसार चलेगा, न कि उसके विरुद्ध। संसद में विधेयक पास करने की प्रक्रिया ही मोटे तौरपर राज्य विधानमंडलों में विधेयक पास करने के लिए लागू होती है। किन्तु इसमें एक महत्वपूर्ण अन्तर होता है। धन-विधेयक को छोड़कर अन्य किसी विधेयक के संबंध में राज्य विधान-सभा तथा विधान-परिषद् में मतभेद हो जाय तो अगर विधान-सभा उसे उसी या उसके बाद के अधिवेशन में दूसरी बार पास करदे तो वह विधेयक कानून बन जाता है। धन-विधेयक के पास करने की प्रक्रिया संसद की प्रक्रिया की भांति ही है। यदि राज्य में विधानमंडल के दो सदन हैं तो धन-विधेयक का आरम्भ विधान-सभा में ही किया जा सकता है, विधान-परिषद् में नहीं। विधेयक को अधिनियम बनाने के लिए राज्यपाल या राजप्रमुख की स्वीकृति आवश्यक है। यदि राज्यपाल या राजप्रमुख की राय में किसी विधेयक से किसी न्यायालय की संविधान के अन्तर्गत शक्तियों में कमी आती हो तो वह उस विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ रक्षित कर सकता है। राष्ट्रपति की स्वीकृति पाने के बाद वह कानून बन जायगा।

संसद और राज्य विधानमंडलों का कर्तव्य है कि उन्होंने, संविधान में दिये गए अधिकारों के अन्तर्गत कार्य सम्पादन के जो नियम बनाये हैं उनका वे पालन करें। यह नियम अन्य बातों के साथ विधेयक के पेश करने और उसपर विचार करने की रीति के लिए भी उपबंध रखते हैं। उदाहरण के लिए, विशेष अवस्थाओं को छोड़कर प्रत्येक विधेयक को विचार की तीन अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है जो प्रथम, द्वितीय और तृतीय वाचन की अवस्थाएं कहलाती हैं और एक प्रवर समिति (सिलेक्ट कमेटी) द्वारा उसकी जांच की जाती है।

इसकेबाद वह सर्वोपरि अपेक्षा है कि प्रत्येक कानून को संविधान के उपबंधों के अनुरूप होना चाहिए, न कि उनके प्रतिरूप। विशेषतया, उसे मूल-अधिकारों से संबंधित उपबंधों का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। अब इन उपबंधों का स्पष्टीकरण किया जायगा।

सविधान कुछ अधिकार प्रदान करता है जिन्हें मूल अधिकार कहते हैं और इस बात की घोषणा करता है कि राज्य ऐसा कोई कानून नही बनायगा जो इन अधिकारो को छीनता हो अथवा इन्हें कम करता हो और प्रत्येक कानून, जो ऐसा करेगा, वह अधिकारो के उल्लंघन की मात्रा तक निरर्थक (वॉइड) होगा। २६ जनवरी, १९५० से पूर्व भी निर्मित तथा लागू हुआ कोई भी कानून, जो इन मूल अधिकारो से असगत है, अपनी असगति की मात्रा तक निरर्थक होगा।

मूल अधिकार संबंधी उपबंध

'राज्य' शब्द में भारत सरकार और भारत की ससद्, प्रत्येक राज्य की सरकार और विधानमडल तथा भारत में अथवा भारत सरकार के नियत्रणगत समस्त स्थानीय या अन्य सत्ताए सम्मिलित है। 'विधि' अथवा 'कानून' शब्द मे अध्यादेश (आर्डिनेस), आदेश (आर्डर), उप-विधि (बाई-लॉ), नियम, विनियम, अधिसूचना (नोटिफिकेशन) और कानून का बल रखनेवाली प्रथा या चलन सम्मिलित है। इन अधिकारो में हस्तक्षेप करनेवाले कानून के प्रतिबध मे एक महत्त्वपूर्ण छूट है। संसद को अधिकार है कि वह कानून द्वारा यह निश्चित कर सके कि सशस्त्र बलो (सेनाओ) के सदस्यो अथवा सार्वजनिक व्यवस्था कायम रखने के लिए जिम्मेदार बलो (सेवाओ) के सदस्यो को ये अधिकार किस मात्रा तक उपलब्ध हो और उनके लिए कहातक निर्बधित (सीमित) अथवा निराकृत (कम) हो। इन अधिकारो का ऐसा निर्बधन अथवा निराकरण करना इसलिए आवश्यक हो सकता है कि इन व्यक्तियो द्वारा कर्त्तव्यो का उचित पालन और उनमें अनुशासन बना रहना सुनिश्चित हो सके। उदाहरण के लिए इन व्यक्तियो को सार्वजनिक सभाओ मे भाषण देने, मजदूर-सगठन (ट्रेड-यूनियन) बनाने या राजनैतिक सघो में शामिल होने की इजाजत नही है। इन अधिकारो को निम्नलिखित सात विभागो मे रखा गया है। पाठक देखेगे कि इन अधिकारो में से कुछ भारत के सभी व्यक्तियो को—चाहे वे नागरिक हो या न हो—उपलब्ध है, जबकि अन्य अधिकार केवल नागरिको को ही प्राप्त है।

१. समता अधिकार

भारत के राज्य क्षेत्र के भीतर राज्य किसी भी व्यक्ति को कानून के समक्ष समता अथवा कानूनो के समान सरक्षण से वंचित नही करेगा। राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, जाति, वर्ण, लिग, जन्म-स्थान अथवा इनमे से किसी के आधार पर कोई विभेद नही करेगा। केवल इनमें से किसी के आधार पर कोई नागरिक दूकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों तथा सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों मे प्रवेश के अथवा पूर्ण या आशिक रूप में राज्य-कोष से पोषित या साधारण जनता के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नानघाटों, सड़कों तथा सार्वजनिक

समागम स्थानों के उपयोग के बारे म किसी भी निर्योग्यता, दायित्व, निर्बंधन अथवा शर्त के अधीन नही होगा। किन्तु इससे राज्य को स्त्रियो और बालको के लिए विशेष उपबध बनाने या व्यवस्था करने मे बाधा नही होगी। राज्याधीन नौकरियो या पदो पर नियुक्ति के सबध में सब नागरिको के लिए अवसर की समता होगी। केवल धर्म, जाति, वर्ण, लिग, पैदाइश, जन्मस्थान, निवास अथवा इनमे से किसीके आधार पर कोई नागरिक राज्याधीन किसी नौकरी या पद के लिए न अपात्र होगा और न विभेद का पात्र होगा। किन्तु इसके सबध मे कुछ विशेषताएं अथवा अपवाद है। संसद् को यह छूट है कि वह सविधान की प्रथम अनुसूची में उल्लिखित राज्यो में से किसीके अधीन किसी एक या अनेक वर्गो की नौकरियों या किसी एक पद की नियुक्ति के सबंध मे नियुक्ति से पूर्व सबंधित राज्य मे निवास की अपेक्षा सबधी व्यवस्था करनेवाला कोई कानून बना सकती है। राज्य को यह भी छूट है कि वह किसी पिछडे हुए नागरिक वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधान उसकी राय मे राज्याधीन सेवाओ (सर्विस) में पर्याप्त नही है, नियुक्तियों या पदो के रक्षण के लिए व्यवस्था करे। अस्पृश्यता का अन्त किया गया है और किसी भी रूप मे उसका आचरण निषिद्ध ठहराया गया है। राज्य, सेना या विद्यासबधी उपाधि के अतिरिक्त ओर कोई उपाधि प्रदान नही कर सकता। कोई ऐसा व्यक्ति भी, जो भारत का नागरिक नही है—किन्तु राज्य के अधीन किसी लाभ या विश्वास का पद धारण किए हुए है, राष्ट्रपति की स्वीकृति के बिना किसी विदेशी राज्य से कोई खिताब स्वीकार नही कर सकता। कोई व्यक्ति, चाहे वह भारत का नागरिक हो या न हो, उक्त पद पर आसीन होने की स्थिति मे किसी विदेशी राज्य से राष्ट्रपति की अनुमति के बिना कोई भेंट, उपलब्धि या पद स्वीकार नही कर सकता।

२ स्वातन्त्र्य-अधिकार

सभी नागरिको को निम्न सात खण्डों में दिये गए ये स्वातंत्र्य-अधिकार प्राप्त है :

(१) बोलने और विचार प्रकट करने की स्वतत्रता का अधिकार।

(२) शातिपूर्ण और बिना हथियारो के एकत्रित होने का अधिकार।

(३) सस्था या सघ बनाने का अधिकार।

(४) भारतीय क्षेत्र में सर्वत्र अबाध घूमने का अधिकार।

(५) भारत के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का अधिकार।

(६) सम्पत्ति के अर्जन खर्च करने, धारण और व्ययन का अधिकार।

(७) किसी वृत्ति, पेशे, व्यापार या कारबार को ग्रहण करने का अधिकार।

किन्तु ये अधिकार एकदम निर्बाध नही है। संविधान में यह कहा गया है कि

जनहित की दृष्टि से उनपर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए बोलने और विचार प्रगट करने की स्वतंत्रता के अधिकार को ले लीजिये। इसपर मान-हानि, न्यायालय की अवमानना, अश्लील प्रकाशन अथवा राज्य की सुरक्षा पर आघात करनेवाले या उसे उलटनेवाले, या विदेशी राज्यो से मित्रतापूर्ण सबधो पर प्रतिकूल प्रभाव डालनेवाले आचरण का निषेध करने और उनके संबंध म दण्ड-व्यवस्था करनेवाले कानूनो द्वारा निर्बधन (प्रतिबध) लगाया जा सकता है। इन निर्बधनो की जरूरत सार्वजनिक व्यवस्था और नैतिकता के हितो मे है। कोई कानून ऐसा हो सकता है जो सार्वजनिक व्यवस्था के हेतु सार्वजनिक सभा करने पर राज्य को समुचित निर्बधन लगाने की क्षमता प्रदान करे अथवा इसी हेतु या नैतिकता की रक्षा के लिए सस्थाएं या सघ बनाने पर ऐसे निर्बधन लगाए; इसी प्रकार ऐसा भी कानून हो सकता है जो आम जनता के, या अनुसूचित जातियो के हित के लिए ऊपर (४), (५), (६) खण्डो मे वर्णित अधिकारो पर निर्बधन लगाने की राज्य को क्षमता प्रदान करे। इसी प्रकार ऐसा भी कानून हो सकता है जो आम जनता के हित के लिए ऊपरलिखित अधिकारो मे अतिम अधिकार के सबध मे ऐसे निर्बधन लगाये अथवा उन्हे लागू करने के लिए आवश्यक वृत्तिक (पेशे सम्बन्धी) या शिल्पिक (टेकनिकल) अर्हताओ की अपेक्षा की व्यवस्था करे। राज्य को कानून द्वारा यह अधिकार भी दिया जा सकता है कि वह किसी व्यापार या उद्योग को खुद या अपनी या अपने द्वारा नियत्रित किसी निगम (कारपोरेशन) द्वारा चलाये और उसमे नागरिको का संपूर्ण या आशिक अपवर्जन हो। इसके अतिरिक्त जब सविधान के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा की आपात की घोषणा प्रवर्तन मे हो तो उस समय इन उपबन्धो द्वारा राज्य को ऐसे किसी कानून को बनाने या कार्यकारी कार्यवाही से नही रोका जा सकता जो राज्य इन उपबन्धो के न होने पर बनाने या उठाने मे समर्थ है। अतः आपात के काल मे हो सकता है कि नागरिको के उक्त अधिकार खटाई मे पड जायं या वे उन्हे उपलब्ध न हो सकें।

व्यक्तिगत स्वाधीनता के परित्राण

अब हम व्यक्तिगत स्वाधीनता के अधिकार के परित्राणों (संरक्षणों) पर विचार करेंगे। किसी भी व्यक्ति को केवल उसी अपराध के लिए दण्ड दिया जा सकता है जो अपराध के समय प्रवृत (चालू) किसी कानून के अतिक्रमण के फलस्वरूप हो और जिसका अतिक्रमण अपराध माना गया हो। साथ ही किसी व्यक्ति को कानून मे विहित दण्ड से अधिक नही दिया जा सकता। किसी भी व्यक्ति पर एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक बार अभियोग नही चलाया जा सकता और दण्ड नही दिया जा सकता। किसी अपराध के लिए अभियुक्त किसी भी व्यक्ति को अपने ही विरूद्ध साक्षी (गवाह) बनाने के लिए मजबूर नही किया जा सकता। कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अतिरिक्त अन्य किसी भी रीति से किसी भी व्यक्ति को उस

के जीवन अथवा व्यक्तिगत स्वाधीनता से वंचित नहीं किया जा सकता। इस कथन के अर्थ को इस प्रकार भी व्यक्त किया जा सकता है—किसी भी सत्ता या अधिकारी की इच्छा मात्र से—चाहे वह राज्य में कितना ही ऊंचा, महत्त्वपूर्ण अथवा प्रभावशाली क्यों न हो—कोई व्यक्ति दंडित अथवा बंदी नहीं किया जा सकता; उसे तभी दंडित अथवा बंदी किया जा सकता है जब कि समुचित रीति से पास किया कानून दंड अथवा कारावास को अधिकृत करदे और जब ऐसे कानून द्वारा विहित अपेक्षाओं का पालन हो जाय। आगे चलकर इसी पुस्तक के छठे अध्याय में हम देखेंगे कि कानून कुछ व्यक्तियों को यह अधिकार देता है कि वे दूसरों को गिरफ्तार तथा बंदी कर सकें और इस प्रक्रिया का निर्देश करता है कि ऐसा किस प्रकार किया जाय। लेकिन संविधान में ऐसी दो सर्वोपरि अपेक्षाओं का निर्देश है, जिनका कोई भी कानून उल्लंघन नहीं कर सकता। प्रथम यह है कि गिरफ्तार किये गए किसी भी व्यक्ति को यथासम्भव शीघ्र उसकी गिरफ्तारी का कारण बताए बिना हिरासत में नहीं रखा जा सकता, न उसे अपनी पसन्द के वकील से सलाह लेने या उसके द्वारा सफाई पेश करने के अधिकार से वंचित किया जा सकता है। दूसरी यह कि इस प्रकार गिरफ्तार या हिरासत में रखे गए व्यक्ति को गिरफ्तारी के २४ घंटे के भीतर-भीतर सबसे पास के मजिस्ट्रेट के सामने अनिवार्यतः पेश करना चाहिए और उस मजिस्ट्रेट की आज्ञा के बिना उस व्यक्ति को २४ घंटे से अधिक हिरासत में नहीं रखना चाहिए। गिरफ्तारी के स्थान से मजिस्ट्रेट की अदालत तक जाने में लगनेवाला समय उन २४ घंटों में शामिल नहीं है। किंतु ये दो अपेक्षाएं अन्य देश के शत्रु[1] की गिरफ्तारी या नजरबन्दी के संबंध में लागू नहीं होती। निवारक निरोध (नजरबन्दी) की व्यवस्था करनेवाले किसी कानून के अन्तर्गत भी गिरफ्तारी या नजरबन्दी के संबंध में ये अपेक्षाएं लागू नहीं होतीं। निवारक नजरबन्दी से अभिप्राय सरकारी आज्ञा द्वारा की गई किसी व्यक्ति की उस नजरबन्दी से है जो उसकी कार्यवाही या हरकतों से पैदा होनेवाले खतरे का निवारण करने के लिए की गई है। हम सब जानते हैं कि आज के उथल-पुथल के दिनों में ऐसे कानूनों को जरूरी माना जाता है, किन्तु इन कानूनों के अधीन नजरबंद किये जानेवाले व्यक्तियों की स्वाधीनताओं के संरक्षण के लिए संविधान में निम्नलिखित उपबंध है :

दो अवस्थाओं को छोड़कर ऐसा कोई भी कानून किसी भी व्यक्ति को तीन महीने से अधिक की अवधि के लिए नजरबंदी की आज्ञा नहीं दे सकता। ये दोनों अवस्थाएं ये हैं :

१. ऐसे व्यक्तियों से, जो उच्च न्यायालय (हाईकोर्ट) के न्यायाधीश हैं, रह

---

१. **एलियन, ऐसे अन्य देश का वासी जिससे शत्रुता हो।**

चुके हैं अथवा न्यायाधीश नियुक्त होने की योग्यता रखते हैं, मिलकर बनी मंत्रणा-परिषद् (सलाहकार समिति) तीन महीने की अवधि की समाप्ति के पूर्व यह रिपोर्ट दे दे कि उसकी राय मे अधिक अवधि के लिए नजरबंदी के पर्याप्त कारण मौजूद हैं; किन्तु यह अतिरिक्त काल ससद् द्वारा बनाये जानेवाले कानून द्वारा विहित अधिकतम अवधि से अधिक नही होना चाहिए।

२. नजरबदी ससद् द्वारा बनाये जानेवाले किसी भी कानून के अंतर्गत की जा सकती है, जो अन्य बातो के अतिरिक्त यह विहित करेगा कि किसी कानून के द्वारा कोई अतिरिक्त नजरबदी किन परिस्थितियो मे और किस वर्ग या वर्गों म की जा सकती है और ऐसी नजरबंदी की अधिकतम अवधि कितनी हो सकती है।

ससद् ऐसा अधिनियम बना चुकी है। इस अधिनियम को "निवारक नजरबदी अधिनियम, १९५०,"[1] कहते है। आजकल निवारक नजरबदी (सशोधन) अधिनियम, १९५४, प्रचलित है। (विस्तृत विवरण के लिए अध्याय ६ देखिए)। नजरबन्द किये गए व्यक्ति के पक्ष में एक और संरक्षण यह है कि जो सत्ता या अधिकारी अपनी आज्ञा द्वारा उसे नजरबन्द करेगा वह उसे यथाशक्य शीघ्रता के साथ ही वैसी आज्ञा का कारण बतायगा और उस आज्ञा के विरुद्ध आवेदन करने के लिए उसे शीघ्रातिशीघ्र अवसर देगा। किन्तु यदि वह सत्ता या अधिकारी यह समझे कि कारणो का बताना जन-हित के विरुद्ध है तो वह उन्हे बताने के लिए बाध्य नही है।

३. शोषण के विरुद्ध अधिकार

मानव का पण्य[2] और बेगार[3] तथा इसी प्रकार जबरदस्ती लिया अन्य श्रम निषिद्ध है और इस उपबध का कोई भी उल्लघन दडनीय अपराध माना गया है। किन्तु इससे राज्य को सार्वजनिक प्रयोजन के लिए अनिवार्य सेवा लागू करने मे रुकावट नही होगी, और ऐसा करने में राज्य केवल धर्म, जाति, वर्ण या वर्ग या इनमे से किसी के आधार पर कोई भेद नही करेगा। चौदह वर्ष से कम आयु वाले किसी बालक को किसी कारखाने अथवा खान मे नौकर नही रखा जायगा और न किसी दूसरी खतरे की नौकरी में लगाया जायगा।

सब व्यक्तियों को अन्तःकरण की स्वतंत्रता तथा धर्म के निर्बाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान अधिकार होगा। किन्तु यह अधिकार सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य का अतिक्रमण नही कर सकता।

---

१. प्रिवेंटिव डिटेंशन एक्ट, १९५०

२. ट्रैफिक इन ह्यूमन बीइंग्स—मनुष्य का क्रय-विक्रय

३. बिना मेहनताना दिये जबरन काम लेना

यह संविधान के मूल अधिकार विषयक उपबंध का भी अतिक्रमण नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए इसका प्रयोग अस्पृश्यता, अथवा धर्म या जाति के आधार पर

४. धर्म-स्वातन्त्र्य का अधिकार

किसी तालाब या स्नान-घाट पर जाने से लोगों को वंचित रखने का निषेध करने वाले नियम की उपेक्षा में नहीं किया जा सकता। धर्म को मानने की स्वतंत्रता में सिखों के लिए कृपाण धारण करना या उसे लेकर चलना शामिल है। प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय को या उसके किसी विभाग को धार्मिक तथा पारमार्थिक संस्थाओं को खोलने का और उन्हें चलाने का, अपने धार्मिक मामलों का स्वयं प्रबंध करने का, चल और अचल सम्पत्ति प्राप्त करने और उसके परिभोग (स्वामित्व) का तथा कानून के अनुसार ऐसी सम्पत्ति के प्रशासन का अधिकार है। यह अधिकार भी सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य संबंधी अपेक्षाओं के अधीन है। किसी व्यक्ति को ऐसे कर देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता जिनसे होनेवाली आय खासतौर पर किसी धर्म या धार्मिक सम्प्रदाय के संवर्द्धन या पोषण के खर्च में लगाई जाती है। राज्यकोष से ही पूरी तरह चलनेवाली किसी शिक्षण संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती। राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त अथवा राज्यकोष से सहायता प्राप्त करनेवाली किसी शिक्षण संस्था में पढ़नेवाला कोई व्यक्ति बिना स्वेच्छा के, या यदि वह नाबालिग हो तो बिना अपने संरक्षक की इच्छा के, उस संस्था में दी जानेवाली धार्मिक शिक्षा ग्रहण करने के लिए, अथवा उस संस्था में होनेवाले किसी पूजा-पाठ में शामिल होने के लिए, मजबूर नहीं किया जा सकता।

नागरिकों के किसी वर्ग को, जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाये रखने का अधिकार है। धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक

५. संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार

वर्गों को अपनी शिक्षा-संस्थाएं स्थापित करने का अधिकार है। राज्य द्वारा पोषित अथवा राज्यकोष से सहायता पानेवाली किसी शिक्षा-संस्था में प्रवेश से किसी नागरिक को केवल धर्म, जाति, वर्ण, भाषा अथवा इनमें से किसी के आधार पर वंचित नहीं रखा जायगा, परन्तु इस नियम के फलस्वरूप शिक्षण-संस्थाओं में नागरिकों के शिक्षा तथा सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों के लिए स्थान-रक्षण में रुकावट पड़ती थी। इसलिए संविधान में प्रथम संशोधन से राज्य के लिए यह संभव हो गया है कि वह इन वर्गों अथवा अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों के सदस्यों के लिए विशेष उपबंध बना सके।

कानूनी अधिकार के बिना किसी व्यक्ति को उसकी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जा सकता। सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए सम्पत्ति पर कब्जा करने या उसका अर्जन करने का अधिकार देनेवाले किसी भी कानून को मुआवजे की

व्यवस्था करनी चाहिए और या तो उसे मुआवजा निर्धारित कर देना चाहिए या मुआवजे को निर्धारित करने तथा देने के सिद्धातो और प्रक्रिया का उल्लेख कर देना चाहिए। इन उपबधो में 'सम्पत्ति' शब्द में चल तथा अचल सम्पत्ति तथा किसी वाणिज्यिक अथवा औद्योगिक उपक्रम या उस उपक्रम की मालिक किसी कम्पनी मे कोई अश (शेयर) भी शामिल है। मुआवजा निर्धारित करने तथा तत्सबधी सिद्धातो और प्रक्रिया का उल्लेख करने की उपरोक्त अपेक्षा इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि जो कानून इसके अनुसार नही होता, उसकी मान्यता को अदालत मे चुनौती दी जा सकती है।

६. सम्पत्ति का अधिकार

यदि कोई कानून मुआवजे की व्यवस्था भी कर दे तो भी न्यायालय को यह घोषित करने का अधिकार है कि मुआवजा पर्याप्त नही है। सार्वजनिक प्रयोजनो के लिए किसी व्यक्ति की सम्पत्ति का अर्जन करने के लिए राज्य को सामान्यत: जो मुआवजा देना पडता है वह उस सम्पत्ति का बाजारी मूल्य तथा इसके अतिरिक्त उस मूल्य का पन्द्रह प्रतिशत और उस व्यक्ति को अपनी सम्पत्ति छोड़ने के लिए मजबूर किये जाने के अतिरिक्त प्रतिकर (सोलेटियम) के रूप मे, होता है। लेकिन आजकल राज्य समाज-कल्याण की विशाल योजनाओं का सूत्रपात कर रहा है और ऐसे प्रयोजनो के लिए अर्जित सम्पत्ति के लिए उपरोक्त रीति से पूरा मुआवजा देना सभव नही है। इसका एक उदाहरण है जमीदारी सम्पदाओं के उन्मूलन और राज्य द्वारा उनके अधिग्रहण की व्यवस्था करने वाला कानून। ऐसे कानून देश में कई राज्यों द्वारा पास किये गए है, और क्योकि ये कानून उन्मूलित जमीदारी सम्पत्तियो के भूतपूर्व जमीदारो को बाजारी मूल्य पर पूरा मुआवजा देने की व्यवस्था नही करते, इसलिए इस बात का भय था कि कही इस आधार पर ये कानून अदालतो द्वारा अमान्य घोषित न कर दिये जावे। १९५१ में पास किये गए सविधान के प्रथम सशोधन द्वारा इन कानूनों को मान्य घोषित किया गया। १९५५ मे किया संविधान का चौथा संशोधन इससे भी ज्यादा आगे चला गया है। यह सशोधन घोषित करता है कि सार्वजनिक प्रयोजनो के लिए सम्पत्ति का अर्जन करने के लिए मुआवजे की व्यवस्था करने वाले किसी कानून के औचित्य को इस कारण चुनौती नही दी जा सकती है कि उस कानून द्वारा निर्धारित मुआवजा पर्याप्त नही है। अत: मुआवजे की पर्याप्तता अथवा मात्रा के बारे मे संसद् की सम्मति अतिम है और वह न्यायालयो के नियंत्रण में नही है। इसी प्रकार किसी राज्य विधानमडल द्वारा निर्मित कानून मे प्रकट की उसकी सम्मति भी अंतिम है। लेकिन इसके लिए एक आवश्यक शर्त है, और वह यह कि कानून राष्ट्रपति के विचार के

सम्पत्ति के अर्जन के प्रतिकार-संबंधी उपबंध

लिए रक्षित कर लिया जाय और उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल जाय। संविधान की यह अपेक्षा कि सार्वजनिक प्रयोजन के लिए राज्य द्वारा सम्पत्ति पर कब्जा करने या उसका अर्जन करने के कानून में उसके स्वामी को मुआवजा देने की व्यवस्था की जानी चाहिए, अर्जन के कुछ मामलों में लागू नहीं होती। उदाहरण के लिए लोक-स्वास्थ्य की उन्नति के लिए या जीवन और सम्पत्ति की खतरे से रक्षा के लिए बनाया गया कोई कानून। चौथे संशोधन के कारण उपरोक्त मान्यता कुछ अन्य प्रकार के कानूनों के लिए भी अप्रचलित हो जाती है—जैसे, किसी सम्पदा, अर्थात् ऐसी सम्पत्ति जिस पर स्वामित्व तथा नियंत्रण के अधिकार किसी जमींदार के पास है, के अर्जन की व्यवस्था करनेवाला कानून, सम्पत्ति का समुचित प्रबन्ध निश्चित करने के लिए किसी सम्पत्ति के प्रबन्ध पर किसी निश्चित अवधि के लिए कब्जे की व्यवस्था करनेवाला कानून कम्पनियों अथवा निगमों (कारपोरेशनों) के प्रबन्ध-अभिकर्त्ताओं (मैनेजिंग एजेंटों), संचालकों (डायरेक्टरों) अथवा अन्य पदाधिकारियों के अधिकारों की समाप्ति अथवा उनमें संशोधन की व्यवस्था करनेवाला कानून।

७. संवैधानिक प्रतिकारों का अधिकार

संविधान में दिये गए मूल अधिकारों के प्रचलन के लिए सर्वोच्च न्यायालय या संसद् द्वारा अधिकृत किसी अन्य न्यायालय को प्रचलित करने के अधिकार की गारण्टी दी गई है। उच्च न्यायालय तथा संसद द्वारा अधिकृत अन्य न्यायालय को इस संबंध में निर्देश या आदेश या लेख (रिट), जिनके अन्तर्गत बन्दी-प्रत्यक्षीकरण[1], परमादेश,[2] प्रतिषेध,[3] अधिकारपृच्छा[4] और उत्प्रेषण[5] के लेख भी शामिल हैं, निकालने की शक्ति प्राप्त है। बंदी-प्रत्यक्षीकरण-लेख (रिट ऑव हेबियस कॉरपस) के द्वारा न्यायालय किसी व्यक्ति को, जो किसी अन्य व्यक्ति को कारागार में रख रहा है, यह सिद्ध करने के लिए कहता है कि उसका यह कार्य कानूनी तौर पर जायज है। यदि उसका बन्दी रखना जायज नहीं है तो न्यायालय उसे तुरन्त मुक्त कर देने का आदेश देगा। परमादेश द्वारा न्यायालय एक सार्वजनिक पदाधिकारी (पब्लिक आफीसर) को अपने उस सार्वजनिक कर्त्तव्य का पालन करने के लिए कहता है, जिसका पालन करने के लिए वह कानूनी तौर पर बाधित है। प्रतिषेध लेख के द्वारा न्यायालय किसी अन्य न्यायालय या न्यायाधिकरण (ट्राईब्यूनल) को किसी ऐसे मामले के संबंध में फैसला देने से रोक सकता है, जिसकी उसे शक्ति नहीं है। अधिकार-पृच्छा लेख के द्वारा न्यायालय किसी पदाधिकारी से यह पूछ सकता है कि वह यह बताये कि अमुक कार्य को करने का उसे

---

1. *habeas corpus* 2. *mandamus* 3. *prohibition* 4. *quo warranto* 5. *ceritorari* 6. *writ*

क्या अधिकार था । उत्प्रेषण-लेख द्वारा न्यायालय किसी न्यायिक पदाधिकारी (जुडिशियल आफीसर) को किसी मामले के कागजात अपने पास भेजने के लिए कह सकता है ताकि वह उस मामले में न्याय कर सके । यह तो स्पष्ट ही है कि मूल अधिकारो के समस्त उपबंधो मे वही उपबंध सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है जो ऐसे व्यक्ति के लिए उपचार सुनिश्चित करे, जिसके अधिकारो का उल्लघन हुआ है, क्योकि अधिकारो का तभी मूल्य है जब उनका प्रयोग किया जा सके अथवा उन्हें प्रवर्तित किया जा सके । अधिकारो को प्रवर्तित करने की रीति यही है कि उक्त न्यायालयो का द्वार खटखटाया जाय, क्योकि इन न्यायालयो का कर्त्तव्य है कि वे पीडित व्यक्ति चाहे वह कितना ही छोटा क्यो न हो—और राज्य के उन अधिकारियो के बीच, जिन्होने उसके अधिकारो का अतिक्रमण किया है, न्याय करें । न्यायालयो को प्रचालित करने के इस अधिकार पर दो बन्धन रखे गए है । एक तो यह कि यदि किसी क्षेत्र मे अशाति के कारण सैनिक कानून (मार्शल ला) लागू हो तो संसद उस कानून द्वारा उस क्षेत्र में शाति की पुनस्थापना के लिए व व्यवस्था बनाये रखने के लिए किये गए किसी भी व्यक्ति के कार्य को सरक्षित कर सकती है या मार्शल-ला के अधीन नियुक्त अदालतो द्वारा दी गई सजाओ को वैध करार दे सकती है । दूसरा यह कि सविधान के उपबंधो के अनुसार जब राष्ट्रपति द्वारा घोषित आपात की घोषणा प्रचलित हो तो राष्ट्रपति एक आदेश द्वारा उसमे निर्दिष्ट मूल अधिकारो के सबध मे न्यायालयो को प्रचालित करने के अधिकार को या न्यायालयो में चल रही कार्यवाही को स्थगित कर सकता है । ऐसा आदेश, जारी होने के पश्चात् जितनी जल्दी हो सके, ससद के दोनो सदनो के सामने रखा जाना चाहिए । इन विशेष स्थितियो को छोडकर सविधान मे प्राप्त मूल अधिकारो मे से किसी भी अधिकार का अतिक्रमण करनेवाले किसी कानून से पीडित व्यक्ति अपने अधिकार को प्रस्थापित करने के लिए समुचित कार्यवाही द्वारा न्यायालय को प्रचालित कर सकता है । इसके अतिरिक्त यह भी है कि इन अधिकारो का अतिक्रमण करनेवाला कोई भी कानून निन्दनीय है । जिस व्यक्ति के अधिकारो का उससे उल्लघन होता हो वह व्यक्ति उसे मानने से इन्कार कर सकता है और न्यायालय भी उसे प्रवर्तित करने से इन्कार कर देगा । अपने अधिकार से बाहर बनाये गए प्रत्येक कानून की यही दशा होगी ।

: ३ :

अधिकार और कर्त्तव्य

मनुष्य-जाति शाति और मेलजोल से तभी रह सकती है जब वह आपस मे आम सहमति से स्वीकृत आचरण के नियमो का अनुसरण करे। आचरण के नियम मनुष्य को किसी चीज को करने या न करने का आदेश देते हैं। दूसरे शब्दों मे वे उसके लिए कर्त्तव्य निर्धारित करते है। यह कर्त्तव्य-निर्धारण किसी अन्य व्यक्ति के हित के लिए भी हो सकता है। इससे इस अन्य व्यक्ति का अधिकार अस्तित्व मे आता है। इस प्रकार मानव-साहचर्य की सफलतता इसी मे निहित है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्त्तव्यो का पालन करे और इस प्रकार वह दूसरे के अधिकारो का आदर करे। जो व्यक्ति ऐसा नही करता उसे दड देकर राज्य इस लक्ष्य को प्राप्त करने का यत्न करता है। किन्तु इस प्रकार बहुत कम कर्त्तव्यो और अधिकारो को प्रवृत्त किया जा सकता है। इनका कानून के अंतर्गत कर्त्तव्य और अधिकार कहा जाता है। अन्य अधिकार और कर्त्तव्य कानून की सीमा के बाहर है। उन्हे नैतिकता, धर्म या सामाजिक परम्पराओ की मान्यता प्राप्त हो सकती है, किन्तु कानून उन्हें मान्यता प्रदान नही करता। सत्य बोलना हमारे प्राथमिक और सबसे बड़े कर्त्तव्यों मे से एक है, किन्तु असत्य भाषण करने वाले पर सदैव न्यायालय में मुकदमा नही चलाया जा सकता या दड नही दिया जा सकता। हाँ, कुछ प्रसंगो मे ऐसा हो सकता है। उदाहरण के लिए न्यायालय मे शपथ ग्रहण करने के बाद गवाह को मिथ्या-भाषण करने पर झूट साक्ष्य के लिए दडित किया जा सकता है। इसी प्रकार, दया, दान, पड़ोसीपन की भावना और करुणा, सभी नैतिक सहिताओ द्वारा हमारे लिए आदिष्ट कर्त्तव्य है तथापि न्यायालयो के लिए उन्हे व्यवहार में प्रचलित करना सम्भव नही। कानूनी कार्यवाही द्वारा उन्हे प्रवृत्त करना असुविधाजनक होगा और हो सकता है कि उसका परिणाम बुराइयो को रोकने के बजाय और भीषण बुराइयाँ पैदा करना हो। उन्हें जनमत, सामाजिक या पारिवारिक विचार के जोर या संबधित व्यक्तियो की अपनी सद्बुद्धि पर छोड़ दिया गया है। इसलिए ये ऐसे कर्त्तव्य हैं जो केवल नैतिक या सामाजिक ही है—कानूनी नही। लेकिन कई बार एक कानूनी कर्त्तव्य नैतिक और सामाजिक कर्त्तव्य भी होता है और एक कानूनी अपराध नैतिक व सामाजिक अपराध भी होता है।

परिभाषा तथा क्षेत्र

पहले हम व्यक्तियो के कर्त्तव्यो और अधिकारो का विवेचन करेगे और बाद में राज्य के कर्त्तव्यो और अधिकारो का। कानून के लिए यह गौरव की बात है कि वह केवल व्यक्तियो के लिए ही नही वरन स्वय राज्य के आचरण को भी नियमित करता है। जैसा कि पहले हम देख चुके है, राज्य के निर्माण का उद्देश्य यह है कि वह जनता के लिए कानून बनाये व उन्हे प्रचलित करे, किन्तु राज्य तभी समुचित रूप से चल सकता है जब वह अपने बनाये हुए कानूनो का स्वयं आदर करे।

व्यक्ति के कर्तव्य और अधिकार

'व्यक्ति' का साधारण अर्थ है—मानव 'पुरुष' 'स्त्री' या 'बच्चा'। इसमें माता के गर्भ मे स्थित बच्चा भी शामिल है, क्योकि उसके भी अधिकार हो सकते है—जैसे मृत पिता की सम्पत्ति के उत्तराधिकार का अधिकार। 'व्यक्ति' शब्द एकवचन मे प्रयुक्त होता हुआ भी बहुवचन का बोधक है। एक से अधिक व्यक्ति या समस्त जनता किसी एक अधिकार से युक्त या किसी एक कर्त्तव्य से बधे हुए हो सकते है।

प्रत्येक व्यक्ति कानून के अन्तर्गत अपने सभी अधिकारो का प्रयोग कर सकता है। किन्तु यदि वह नाबालिग हो तो उसके साथ कुछ निर्योग्यताएं लग जाती हैं। ऐसा व्यक्ति सविदा (काण्ट्रेक्ट), सम्पत्ति का हस्तान्तरण या दीवानी अदालत मे मुकदमा दायर नही कर सकता। ये कार्य उसके हित के हो तो उसकी ओर से उसके सरक्षक द्वारा किये जा सकते है। नाबालिग व्यक्ति वसीयत नही कर सकता और न उसका सरक्षक उसकी ओर से वसीयत कर सकता है। भारत में वयस्कता-आयु १८ वर्ष है। दो विशेष स्थितियो मे यह आयु २१ वर्ष रखी गई है। इनमें से एक वह है जिसमे कि नाबालिग के १८ वर्ष की अवस्था प्राप्त करने से पूर्व उसके लिए या उसकी सम्पत्ति के लिए अदालत द्वारा सरक्षक नियुक्त कर दिया गया हो, और दूसरी वह, जिसमे उसके बालिग होने से पूर्व ही उसके सम्पत्ति के प्रबन्ध का अधिकार कोर्ट आव वार्ड्स[1] द्वारा अपने हाथ मे ले लिया गया हो।

कानून के अन्तर्गत 'व्यक्ति' मे 'निगम' (कारपोरेशन) भी शामिल हैं। निगम इस तरह से बनती है—किसी सामान्य उद्देश्य के लिए जब कई व्यक्ति मिलते है तो उसके कार्यसाधन मे यह आवश्यक और सुविधाजनक होता है कि व्यक्तियो के इस साहचर्य को उसका निर्माण करनेवाले व्यक्तियों के अलग अस्तित्व से पृथक समझा जाय। कुछ सदस्यो की मृत्यु या त्यागपत्र द्वारा अलग हो जाने पर भी ऐसा साहचर्य चलता रह सकता है। यह अपने सदस्यों की सम्पत्ति से भिन्न अपनी अलग सम्पत्ति रख सकता है। यह साहचर्य ये सब कार्य तभी कर सकता है जबकि वह अपने को निगमित (इनकारपोरेटेड) करले या वह निगम बन जाय।

---

१ संरक्षक-विभाग या संरक्षक-न्यायालय।

कुछ निगमें विशेष अधिनियमो द्वारा स्थापित की जाती हैं। विश्वविद्यालय, नगर-पालिका, रिजर्व बैंक आदि ऐसी निगमो के ही उदाहरण हैं। निगम का एक सामान्य उदाहरण भारतीय कम्पनी अधिनियम (इण्डियन कम्पनीज एक्ट) के अन्तर्गत पजीयन (रजिस्ट्रेशन) द्वारा स्थापित की गई व्यापारिक कम्पनी प्रस्तुत करती है।

हिन्दू मन्दिरो की मूर्तियो को सम्पत्ति प्राप्त करने और उसका स्वामित्व करने की योग्यता से युक्त व्यक्ति समझा जाता है। मन्दिर के लिए विधिवत् नियुक्त मैनेजर के द्वारा वह मूर्त्ति अदालत मे कानूनी कार्यवाही कर सकती ह या उसके खुद के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही की जा सकती है।

कानून के अन्तर्गत व्यक्ति के दो प्रकार के कर्त्तव्य माने गए है—सार्वजनिक और निजी। सार्वजनिक कर्त्तव्य समस्त जनता के प्रति या राज्य के प्रति कर्त्तव्य होता है। ऐसा एक कर्त्तव्य है अपराध से दूर रहना। निजी कर्त्तव्य किसी अन्य व्यक्ति के प्रति कर्त्तव्य होता है, और उसके साथ किये हुए सविदे को पूरा करना। दोनो कर्त्तव्य मिले हुए भी हो सकते है और जो आचरण सार्वजनिक अपराध हो, वह निजी या वैयक्तिक भी हो सकता है। यदि **क ख** पर वार करता है या उसे लूटता है तो **क** का आचरण एक सार्वजनिक अपराध है और इसके लिए राज्य उसे फौजदारी अदालत मे सजा दिलाता है, किन्तु साथ ही **क ग** पर दीवानी अदालत में भी मुकदमा चला सकता है, क्योकि **क** ने उसके व्यक्तित्व और सम्पत्ति की सुरक्षा का अतिक्रमण किया है।

सार्वजनिक तथा निजी कर्त्तव्य

व्यक्ति के सार्वजनिक कर्त्तव्यो में पहला कर्त्तव्य अपने राज्य के प्रति उसकी निष्ठा और भक्ति का है। इस कर्त्तव्य से उत्पन्न होनेवाले कुछ आभार इस प्रकार हैं : उसे राज्य का तख्ता पलटने, उसके विरुद्ध लडाई छेडने और उसके शत्रुओ से मिलने का प्रयत्न नही करना चाहिए। उसके लिए राज्य के कानूनो का पालन अनिवार्य है, उसे अपराध से दूर रहना चाहिए, विधिपूर्वक लगाये गये कर चुकाने चाहिए, स्वयं शाति रखनी चाहिए और उसे बनाये रखने मे राज्य की मदद करनी चाहिए। जब कानूनी तौर पर उसका कोई सार्वजनिक कर्त्तव्य निश्चित किया जाय या उसे सेना में भर्ती होने को कहा जाय तो उसे उसका पालन करना चाहिए। इन आभारों का अतिक्रमण करने पर उसे कानून के अनुसार दंडित किया जा सकता है। राज्य के विरुद्ध युद्ध करना सबसे भयकर अपराध है और उसके लिए भारतीय दड संहिता (इण्डियन पेनल कोड) में मृत्युदंड रखा गया है। कानून के स्पष्ट आदेशों को भग करने पर अपराध की गुरुता के अनुसार दंड दिया जाता है। प्रत्येक अपराध ऐसे ही किसी आदेश की अवमानना का फल होता है। हमारे यहा भारतीय दंड संहिता के अतिरिक्त सार्वजनिक हितों में निषिद्ध ठहराए गए विभिन्न प्रकार के आचरण के लिए दंड की व्यवस्था करनेवाले कई अन्य विशेष कानून भी

हैं। यदि कोई व्यक्ति कर न चुकाये तो कर लगाने वाला कानून ही दंड की भी व्यवस्था करता है—जैसे कर-वसूली के लिए उसकी जायदाद का हस्तगत करना। यदि उसे किसी को फौजदारी अदालत में ज्यूरी के सदस्य के रूप में काम करने को कहा जाय और वह न करे तो इसके लिए उस पर जुर्माना किया जा सकता है।

कुछेक अवसरों पर एक नागरिक को निष्ठा (वफ़ादारी) की शपथ ग्रहण करने के लिए कहा जाता है—उदाहरण के लिए, जब वह राष्ट्रपति, राज्यपाल, मंत्री, संसद्, राज्य विधानमंडल या नगरपालिका के सदस्य आदि के पद ग्रहण करता है। यह शपथ इसके कानूनी कर्त्तव्यों में कोई वृद्धि नहीं करती। किन्तु यदि वह शपथ न ले तो उसके कर्त्तव्य तो पहले जैसे ही रहते हैं लेकिन वह उक्त पद ग्रहण करने के लिए अयोग्य घोषित कर दिया जाता है।

नागरिक को संविधान और सामान्य कानून के अन्तर्गत राज्य के विरुद्ध कुछ अधिकार प्राप्त होते हैं। राज्य के विरुद्ध अधिकारों में प्रत्येक बालिग को, जो नियोग्य न ठहरा दिया गया हो, संसद् या अपने निवास के राज्य के विधानमंडल के चुनावों में मत देने का अधिकार भी है। संविधान के अन्तर्गत उसे कुछ मूल अधिकार भी प्राप्त हैं और राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह ऐसा कोई कदम न उठाये जिससे वे भंग हों या उनके बारे में कोई कठिनाई पैदा हो। सामान्य कानून के अन्तर्गत उसे जो अधिकार किसी भी निजी (प्राइवेट) व्यक्ति के विरुद्ध प्राप्त हैं वही उसे राज्य के विरुद्ध भी प्राप्त हैं। जैसे उसे यह अधिकार मिला हुआ है कि राज्य कानूनी कारण के बिना उसे, उसके शरीर, सम्पत्ति, या प्रतिष्ठा को हानि नहीं पहुंचायेगा। यदि राज्य, उसकी सत्ताएं या उसके अन्य अधिकारी उसे हानि पहुंचायेंगे तो उनके विरुद्ध उसके पास वही अदालती इलाज है जो हानि पहुंचानेवाले किसी और व्यक्ति के विरुद्ध है। किन्तु यदि वे (राज्य या राज्याधिकारी) संविधान या सामान्य कानून के अन्तर्गत दिये गए अधिकारों का ही प्रयोग करते हैं तो वे उसके लिए उत्तरदायी या दण्डनीय नहीं हैं। नागरिक को किन्हीं खास अधिनियमों के अंतर्गत भी अधिकार प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ, उसे नगरपालिका अधिनियम (म्युनिसिपिल एक्ट) के द्वारा नगरपालिका के चुनावों में मतदान करने का अधिकार प्राप्त होता है।

किसी अन्य व्यक्ति के प्रति एक व्यक्ति के अधिकार तथा कर्त्तव्य सामान्य भी हो सकते हैं और किन्हीं खास व्यक्तियों के संबंध में विशेष भी हो सकते हैं। कानून के अंतर्गत कुछ प्रसिद्ध अधिकार शरीर, स्वाधीनता, सम्पत्ति, ख्याति (नेकनामी) तथा घर की सुरक्षा के अधिकार हैं। इन अधिकारों को 'सामान्य अधिकार' इसलिए कहा जाता है कि कोई भी व्यक्ति किसी भी अन्य व्यक्ति के विरुद्ध इन्हें प्रतिपादित कर सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है कि कानूनी आधार के बिना किसी व्यक्ति द्वारा उसके शरीर को हानि न पहुंचायी जाय, उसकी स्वाधीनता प्रति-

बधित न की जाय, उसकी मानहानि न की जाय और उसके बाल-बच्चे उससे अलग न किये जायं। प्रत्येक व्यक्ति का इसके अनुरूप कर्त्तव्य है कि वह किसी अन्य व्यक्ति को इस प्रकार की हानिया न पहुचावे। सामान्य अधिकारो के अन्य उदाहरण ये हैं—उपासना (पूजा) का अधिकार, किसी व्यवसाय, क्लब या सभा का सदस्य होने के नाते मिली हुई विशेष सुविधाओ का अधिकार। इसके अतिरिक्त अधिनियम के द्वारा प्रस्थापित अधिकार भी होते है, जैसे, ट्रेड मार्क (व्यापारिक चिह्न), पेटेण्ट (एकस्व) अथवा कॉपीराइट (प्रतिलिप्याधिकार) का अधिकार। इसके अलावा सविधान के अतर्गत प्रत्येक नागरिक को कुछ अधिकार प्राप्त है। यदि वह बालिग हो तो उसे ससद् और विधानमडल के चुनावो मे मत देने का अधिकार है। सविधान मे दिये गए मूल अधिकारो का भाव यह है कि किसी व्यक्ति को उसके धर्म, रग या जाति के आधार पर बिना किसी निर्दिष्ट कारण के किसी सार्वजनिक मनोरजन के स्थान, उपाहारगृह (रेस्तरा) होटल, दूकान, कुए या तालाब से हटाया नही जा सकता और यदि ऐसा किया जायगा तो वह अदालत से शिकायत कर सकता है। इसी आधार पर किसी व्यक्ति को किसी सार्वजनिक पद या शिक्षण-संस्था से वचित नही किया जा सकता। ये सभी नागरिको को सामान्य रूप से प्राप्त अधिकारो के उदाहरण है। इसके विपरीत कुछ खास व्यक्तियो के आपसी कर्त्तव्य और अधिकार भी हो सकते है। यदि **क ख** के साथ माल देने का ठेका करता है तो उस ठेके को पूरा करने का कर्त्तव्य और उसे पूरा करवाने का समवर्त्ती अधिकार केवल **क** और **ख**, के बीच ही अस्तित्व मे है। यदि कर्त्तव्य का पालन न किया जाय तो **क ख** पर उस ठेके को भग करने के लिए हरजाने का मुकदमा चला सकता है, किन्तु वह किसी तीसरे व्यक्ति, **ग** पर मुकदमा नही चला सकता। इसी प्रकार कुछ खास व्यक्तियो मे उनके खास तरह के पारस्परिक सबधो के आधार पर अधिकार और कर्त्तव्य उत्पन्न हो सकते है। उदाहरण के लिए पति और पत्नी, माता-पिता और सन्तान, सरक्षक और सरक्षित, प्रन्यासी (ट्रस्टी) और न्यास (ट्रस्ट) के उपकारग्राही (बेनीफिशीयरी), वसीयत के अन्तर्गत वसी (वसीयत करनेवाला) और वारिस, कम्पनी के सचालक (डायरेक्टर) और भागीदार (शेयरहोल्डर), मालिक और नौकर के पारस्परिक सबध। ये थोड़े ही उदाहरण है। उन सभी सबधों की सूची बनाना सभव नही; जिनसे खास व्यक्तियो में खास तरह के अधिकार और कर्त्तव्य उत्पन्न होते है। इन सबधो को जन्म देनेवाले कानून सदा बढ़ते रहते है और इनसे पैदा होनेवाले प्रत्येक अधिकार अथवा कर्त्तव्य का स्वरूप उसे जन्म देनेवाले कानून के स्वरूप पर आधारित होगा।

उपरोक्त अधिकार और कर्त्तव्य समुचित कार्यवाही द्वारा अदालतों द्वारा प्रचलित किये जा सकते है। यदि कोई व्यक्ति जनता के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन नही करता तो वह अपराध करता है और इसके लिए उसे फौजदारी अदालत

द्वारा दंड दिया जायगा जिसके लिए कार्यवाही आमतौर पर राज्य अर्थात् भारत-सघ या किसी एक राज्य की ओर से तथा विशेष परिस्थितियो मे

प्रतिकार

अभियोक्ता (अभियोग लगानेवाले व्यक्ति) की ओर से की जाती है। इस कार्यवाही को अभियोजन या अभियोग-कार्यवाही (प्रॉसिक्यूशन), और जिसके विरुद्ध यह कार्यवाही की जाती है उसे अभियुक्त (एक्यूज्ड) कहते है। यदि एक व्यक्ति दूसरे के प्रति कर्त्तव्य को भग करता है तो दूसरा व्यक्ति दीवानी अदालत मे जाकर उसका उपाय या प्रतिकार कर सकता है। दीवानी कार्यवाही (सिविल प्रोसीडिंग) के सामान्य रूप को व्यवहार-वाद वाद या दावा (सूट) कहते है। वाद चलाने वाले को वादी (मुद्दई, प्लैंटिफ) और विरोधी व्यक्ति को प्रतिवादी (मुद्दालेह, डिफेन्डेण्ट) कहते है। कुछ विशेष वादो मे दीवानी अदालत में किये जाने वाले प्रतिकार को 'प्रार्थना', 'याचिका', या 'निवेदन' (पेटीशन) कहते है, और उसे उपस्थित करनेवाले को 'याचक', 'प्रार्थी' या 'निवेदक' (पेटीशनर) कहते है और विरोधी व्यक्ति को 'प्रतिप्रार्थी', 'प्रत्यावेदक' या 'उत्तरकर्त्ता' (रसपोन्डेण्ट) कहते है। उपरोक्त सामान्य अधिकारो मे से किसी का अतिक्रमण होने पर त्रस्त व्यक्ति हरजाने के लिए दावा कर सकता है। उदाहरण के लिए, वह आक्रमण या मानहानि के लिए ऐसा कर सकता है। सविदा भग करने से होनेवाले नुकसान का सामान्य प्रतिकार प्रतिक्षति या हरजाना है। किसी सविदे का पूर्ण पालन भी एक प्रतिकार हो सकता है। इस कथन का अर्थ यह है कि अदालत सविदा भग करनेवाले पक्ष को अपने सविदे का पालन करने का निर्देश दे। अन्य प्रतिकार ये है—किसी कर्ज की वसूली या वादी से गैर-कानूनी तौर पर हस्तगत की गई चल या अचल सम्पत्ति की वसूली के लिए दावे; उपद्रव या कटक जैसे किसी अविरल अपकार को रोकने के लिए आज्ञप्ति (इजक्शन); प्रतिवादी द्वारा अनुचित रूप से दिये सम्पत्ति के अधिकार (टाइटिल) पर वादी का अधिकार घोषित करना, साझे का विघटन (भग करना); तथा दाम्पतिक अधिकारो की प्रतिस्थापना। प्रत्येक राज्य के उच्च न्यायालय (हाईकोर्ट) को अधिकार है कि वह राज्य मे सार्वजनिक (सरकारी) या निजी कैद मे गैरकानूनीतौर पर बद व्यक्ति की रिहाई का आदेश दे दे। ऐसे आदेश को बदी प्रत्यक्षीकरण लेख (रिट आफ हेबियस कारपस) कहते है। इस लेख तथा संविधान के अन्तर्गत अन्य मूल अधिकारो को प्रचलित करने के लिए अन्य लेखो को जारी करने की शक्ति भारत के सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) तथा राज्यो में वहां के उच्च न्यायालयो को प्राप्त है। सामान्य कानून के अन्तर्गत इन प्रतिकारो के अलावा विशेष कानूनों के अन्तर्गत अन्य प्रतिकार भी है। उदाहरणार्थ, किसी कम्पनी के हिस्सेदार (शेयरहोल्डर) द्वारा कम्पनी को खत्म करने के लिए प्रार्थना-पत्र देने का प्रतिकार।

अधिकार तथा प्रतिकार आवियोज्य हैं। कानून का महान सिद्धांत यह है कि 'जहां अधिकार है वहां प्रतिकार भी है।' यदि किसी व्यक्ति का वैधानिक अधिकार किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा भंग किया जाय तो वह उस पर मुआवजे के लिए दावा कर सकता है—भले ही मुआवजे की रकम थोडी या मामूली ही क्यो न हो। इस प्रकार यदि **क** पर **ख** द्वारा आक्रमण किया जाय या उसके स्थान में अनधिकार प्रवेश किया जाय तो **क ख** पर हरजाने का दावा कर सकता है, भले ही उसका कोई खास या बिल्कुल नुकसान न हुआ हो। यह इसलिए है कि उसे जो अपने शरीर व सम्पत्ति सबधी सुरक्षा का अधिकार प्राप्त है, उसका **ख** ने भग किया है। यदि कानून प्रतिकार की व्यवस्था न करे तो कोई अधिकार नही रह सकता। कई स्थितियो मे एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के आचरण से नुकसान उठाना पड सकता है, किन्तु फिर भी वह कोई हरजाना वसूल नही कर सकता। इसका कारण यह है कि कानून उसे ऐसी स्थितियो मे होनेवाले नुकसान की शिकायत करने का अधिकार नही देता। नीचे दिये गए दो उदाहरणो से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

१. **क** एक जगह दूकान खोलकर अपनी जीविका चलाता है। **ख** भी उसी जगह दूकान खोलकर वैसा करने की कोशिश करता है। इस दूसरी दूकान की वजह से होनेवाले नुकसान के लिए **क** हरजाने का दावा नही कर सकता, क्योंकि राज्य और कानून की यह नीति है कि सभी व्यक्ति बिना किसी रुकावट के होड या मुकाबला कर सकते है, चाहे उससे कुछ खास व्यक्तियो को नुकसान ही क्यो न हो।

२ **क** ने अपनी जमीन पर मकान बनाया है और उसे **ख** की खाली पडी जमीन के ऊपर से होकर रोशनी और हवा मिलती है। **ख** भी अपनी जमीन पर मकान बना लेता है जिससे **क** के कुछ कमरो मे अधेरा हो जाता है और वे उसके लिए बेकार हो जाते है। किन्तु **क ख** पर हरजाने का दावा नही कर सकता। यह नियम इसलिए आवश्यक है कि ज़मीन के मालिक अपनी सम्पत्ति के प्रयोग में समर्थ हो सकें। पर यदि **क** के मकान को **ख** की जमीन पर से होकर हवा और रोशनी २० वर्ष तक बिना किसी रुकावट के मिलते रहे है तो **ख** का आचरण तर्कसंगत नही बैठता और तब **क** को **ख** के विरुद्ध अधिकार तथा प्रतिकार प्राप्त है। इसलिए जब हम कानून में मान्यता-प्राप्त किसी कर्त्तव्य या अधिकार की चर्चा करते है तो वह एक व्यक्ति के किसी अन्य व्यक्ति के प्रति ऐसे पारस्परिक कर्त्तव्य और अधिकार की चर्चा होती है जिसके भग होने की दशा में न्यायालय में उसका समुचित प्रतिकार मिलता है।

सार्वजनिक हितों के लिए आवश्यकता पडने पर इस सामान्य नियम में, कि अधिकार के अतिक्रमण के लिए प्रतिकार भी है, कुछ अपवाद भी किये जा सकते है। उदाहरणार्थ, हम देख चुके है कि संविधान भारत के राष्ट्रपति तथा राज्यों के राज्यपालों व राजप्रमुखो को अपने पद-सबंधी कर्त्तव्यों के निर्वहन से सबधित कानूनी

कार्यवाहियों से, तथा पदावधि के दौरान में फौजदारी कार्यवाहियो से, छूट प्रदान करता है। हम आगे चलकर देखेगे कि निवारक नजरबंदी की शक्तियों के निर्वहन में जिन अधिकारियों का आशय नेक इरादे से कार्य करना है, वे यदि गलत कार्य भी कर जायं तो भी कानून उन्हे कानूनी कार्यवाही से अभय (सुरक्षा) प्रदान करता है।

यहा यह बताना आवश्यक है कि उपरोक्त अधिकारों में से कुछ नागरिकों तथा गैर-नागरिको, दोनो को समान रूप मे प्राप्त है और कुछ केवल नागरिको को ही प्राप्त है। भारत में रहनेवाले प्रत्येक अन्यदेशीय को अपने शरीर, ख्याति और अपनी सम्पत्ति के सबंध में कानूनी सरक्षण प्राप्त है। उसपर यदि कोई हमला करे, उसकी मानहानि करे या उसकी किसी चीज का अपहरण करे तो वह व्यक्ति अदालती कार्यवाही कर सकता है। उसे व्यापार करने व सम्पत्ति को खरीदने-बेचने के अधिकार है, किन्तु कानून उसे इन अधिकारो से वचित कर सकता है। इन अधिकारो के बदले वह जबतक भारतीय क्षेत्र में रहता है तबतक भारत सरकार के प्रति वफादार रहना पडता है। इसलिए उसे राजद्रोह या अन्य अपराधो के लिए दड दिया जा सकता है। मित्र अन्यदेशीय को जो अधिकार प्राप्त है उनमे से कोई भी अधिकार शत्रु-अन्यदेशीय को—अर्थात् उस देश के नागरिक को जो भारत से युद्ध की स्थिति म हो—प्राप्त नही है। वह केन्द्रीय सरकार की अनुमति के बिना कोई अदालती कार्यवाही, व्यापार या सम्पत्ति धारण नही कर सकता। यद्यपि मित्र अन्यदेशीय को उक्त अधिकार प्राप्त होते है तथापि उसे कुछ ऐसे अधिकार प्राप्त नही होते जो केवल भारतीय नागरिकों को ही प्राप्त होते है। उदाहरण के लिए एक नागरिक को कुछ राजनैतिक अधिकार प्राप्त होते है, जैसे संसद, राज्य विधानमंडलो, नगरपालिकाओ या स्थानीय बोर्डो के चुनावो में मत देने, उसके चुनाव लडने और राज्य की असैनिक और प्रतिरक्षा सेवाओ (सिविल और डिफेन्स सर्विस) मे कार्य करने के अधिकार। इसके अतिरिक्त उसे भारतीय राज्यक्षेत्र में प्रवेश करने, रहने और घूमने का अधिकार प्राप्त है। विदेश मे रहते समय उसे अपनी सरकार द्वारा सरक्षण का अधिकार प्राप्त है। किसी अन्यदेशीय को इनमें से कोई अधिकार प्राप्त नही है, किन्तु वह ससद् के कानून के निर्देशानुसार भारत का नागरिक बन सकता है। भारत में रहनेवाले मित्र अन्यदेशीय को यदि सरकार या उसका कोई अधिकारी गैर-कानूनी तरीके से हानि पहुँचाये तो वह एक नागरिक की भाति ही सरकार पर दावा कर सकता है। किन्तु यदि वह भारत से बाहर रहता हो और उसे सरकार की ओर से कोई हानि पहुंची हो तो वह सरकार पर दावा नही कर सकता। उदाहरण के लिए, यदि भारत सरकार किसी ऐसे विदेशी क्षेत्र पर अधिकार का आदेश देती है, जिसमें उसका (मित्र अन्यदेशीय का) स्वार्थ हो, तो वह (मित्र अन्यदेशीय) इस काम से होनेवाली हानि के लिए भारत सरकार के विरुद्ध दावा नही कर सकता।

हां, यदि कोई भारतीय निजी तौर पर उसे या उसकी सम्पत्ति को क्षति पहुंचाता है तो इसका उसे प्रतिकार मिल सकता है।

पहले अध्याय में हमने उनमें से कुछ कर्त्तव्यों की चर्चा की थी जो संविधान के अन्तर्गत राज्य के निश्चित किये गए हैं। इन कर्त्तव्यों का एक उदाहरण है मूल अधिकारों में हस्तक्षेप न करना। दूसरा उदाहरण यह है कि भारत-संघ को प्रत्येक राज्य की बाहरी आक्रमण से तथा भीतरी उपद्रवों से रक्षा करनी चाहिए। इन कर्त्तव्यों के अतिरिक्त कुछ ऐसे कर्त्तव्य भी हो सकते हैं जो संविधान द्वारा प्रवृत्त न किये जाकर संसद् या राज्य-विधानमंडलों द्वारा निर्मित कानूनों द्वारा प्रवृत्त किये गए हैं। इन उल्लिखित कर्त्तव्यों के अतिरिक्त राज्य का एक सामान्य कर्त्तव्य यह है कि वह कानून के अनुसार कार्य करे। दूसरे शब्दों में, कानून की आज्ञा-पालन का कर्त्तव्य सभी के लिए समान है, जिसमें स्वयं राज्य व राज्य के अधिकारी भी आ जाते हैं। राज्य के अधिकार वे हैं जो उसे संविधान या किसी अन्य कानून द्वारा दिए गए हों। उदाहरण के तौर पर भारत-संघ या उसके किसी भी राज्य को सम्पत्ति रखने का अधिकार प्राप्त है और यदि उसे कोई गैरकानूनी तौर पर उससे वंचित करे तो उसके विरुद्ध वह अदालत की सहायता ले सकता है। भारत-संघ और उसके प्रत्येक राज्य को कानून के अनुसार कर लगाने और उसे वसूल करने का भी अधिकार प्राप्त है।

राज्य के कर्त्तव्य

: ४ :

न्याय-प्रशासन

राज्य के लिए इतना ही काफी नही है कि वह कानून बनाये। उसके लिए यह भी आवश्यक है कि वह उन्हे लागू करे। यह काम वह अपने द्वारा स्थापित किये गए न्यायालयो (अदालतो) द्वारा करता है। न्यायालयो का यह कर्त्तव्य है कि वे इस बात का निर्णय करें कि किसी व्यक्ति ने कानून तोडा है या नही, और यदि तोडा है तो उसे उसके लिए निश्चित दंड दें या उस पर जुर्माना करें। जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे के विरुद्ध अपने अधिकार का दावा करता है तो यह न्यायालयो का काम होता है कि वे उसका फैसला करे। जब न्यायालय अपने इन कार्यो को करते है तब यह कहा जाता है कि वे विधि तथा न्याय का प्रशासन करते हैं और इसीलिए उन्हे विधि-गृह (कानून का घर) या न्यायालय कहा जाता है।

न्याय-प्रशासन हमेशा ही सरकार का एक कठिन, काफी कठिन कार्य रहा है। कारण यह है कि किसी विवाद के सबध में उचित न्याय करने के लिए सचाई मालूम करना आवश्यक है और जब विवाद के दोनो पक्ष सचाई को छिपाने का भरसक प्रयत्न कर रहे हो तब उसे ढूढ निकालना आसान नही है। यदि सचाई मालूम भी हो जाय तो भी विवाद मे पैदा होनेवाली किसी खास पेचीदा हालत में कानून का कौन-सा नियम लागू किया जाय, इस संबध में मतभेद पैदा हो सकते है। न्यायालयो के काम मे इन स्वाभाविक कठिनाइयो के अलावा और भी कठिनाइया होती है, जैसे न्याय-प्रशासन के कार्य में लगे न्यायाधीश, जूरी (सभ्य) या एडवोकेट (वकील) की ओर से भूल, विपरीत मत, और यहा तक कि अपचार की सम्भावनाए। किसी भी न्याय की प्रणाली को ठीक तरह चलाने के लिए इन सम्भावनाओ को यथासंभव दूर करने की आवश्यकता है। और फिर इतना ही काफी नही है। यही आवश्यक नही है कि न्यायालय विवादो का न्यायोचित निर्णय करें अपितु यह भी आवश्यक है कि विवाद से सबधित व्यक्ति, उनके हमदर्द और साधारण जनता, इन निर्णयो को उचित मानें। तभी न्यायालय सामान्य जनता में शांति और सतोष की वृद्धि कर सकते है। इन्ही उद्देश्यों की पूर्ति के हेतु हमें अपनी न्याय-पद्धति की कुछ विशेषताओं का अध्ययन करना होगा। यह अध्ययन दो शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है :

१. न्यायालयो का संगठन।
२. न्यायालयों की प्रक्रिया।

हमारे न्यायालयों की मुख्य विशेषताओ का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है :

१. अदालतो की एक शृंखला-सी है जिसमें कुछ उच्चतर न्यायालय हैं, शेष उनके अधीन है। यदि कानून इजाजत दे, तो किसी भी न्यायालय के निर्णय से 'पीडित' या असंतुष्ट व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह किसी 'गलत' निर्णय को 'सही' कराने के लिए ऊपर के न्यायालय मे अपील कर सके। कुछ वरिष्ट न्यायालयों का एक ओर कार्य है—उनके निर्णयो से कुछ ऐसे नियम निकलते है, जो भविष्य मे उस न्यायालय और नीचे के न्यायालयो का उसी प्रकार के अन्य मामलो मे मार्ग-दर्शन करते है।

२. इन न्यायालयो की अध्यक्षता करनेवाले न्यायाधीश सामान्य व्यक्ति नही होते, वरन कानून पढे हुए व्यक्ति होते है।

३ फौजदारी (दड) के मुकदमो की सुनवाई करनेवाले न्यायालय न्यायाधीश (जज) और जूरी (सभ्य) से मिलकर बनते है। न्यायाधीश न्यायालय की अध्यक्षता करता है और मुकदमो का सचालन करता है। जूरी का यह कर्त्तव्य है कि वह सचाई का पता लगाये और अभियुक्त के अपराधी या निरपराधी होने का निर्णय करे। इसके बाद न्यायाधीश जूरी के निर्णय को कार्यान्वित करता है। यदि अभियुक्त अपराधी सिद्ध हो तो वह उसे दड देता है और यदि वह निरपराधी सिद्ध हो तो वह उसे मुक्त कर देता है। जूरी प्रणाली से एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य की पूर्ति होती है। इससे सरकारी न्याय-प्रणाली मे जनता के विश्वास और रुचि की पुष्टि होती है। साथ ही साधारण नागरिको को नागरिकता मे प्रशिक्षण मिलता है।

४. मुकदमो का फैसला करने मे न्यायालयों की सहायता कानूनी व्यवसाय को अपनानेवाले लोग करते है और ये लोग कानून तथा मुकदमे को पेश करने के तरीके के विज्ञ तथा अनुभवी व्यक्ति होते है। न्यायाधीश या जूरी पक्ष और विपक्ष दोनो ओर के वकीलो के विरोधी मत जानने के पश्चात् ही मुकदमे का फैसला करते है।

हम वरिष्ट और अधीनस्थ न्यायालयो की शृंखला की चर्चा कर चुके है। भारत का सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) और राज्यो के उच्च न्यायालय (हाई कोर्ट) वरिष्ठ न्यायालय है। अधीनस्थ न्यायालय राज्यो के न्यायालय है जो अपने-अपने उच्च न्यायालय के अधीन है। इन न्यायालयो के दो बडे वर्ग है—व्यवहार-न्यायालय (दीवानी अदालत) और दड-न्यायालय (फौजदारी अदालत)। व्यवहार न्यायालय—जैसे मुसिफ—दीवानी मुकदमो का फैसला करता है और प्रतिकार की व्यवस्था करता है, जैसे, मुकदमे के दो पक्षो में से सम्पत्ति या धन की एक राशि का एक पक्ष से दूसरे पक्ष को दिलाना। दड न्यायालय—जैसे मजिस्ट्रेट—उन व्यक्तियों के मुकदमों की सुनवाई करता है जिन पर अभियोग लगाये जाते है

व्यवहार तथा दण्ड न्यायालय

और अपराधी को दंड देता है। कुछेक अवसरों पर न्यायाधीश दोनों प्रकार के काम करता है, जैसे जिला तथा सेशन (उपवेशी) न्यायाधीश या उप-न्यायाधीश (सब-जज), जो सहायक उपवेशी न्यायाधीश भी होता है।

दीवानी न्यायालय-पद्धति का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है। प्रत्येक राज्य कई जिलो मे विभक्त होता है और प्रायः हर जिले मे एक जिला-न्यायालय होता है। कुछ राज्यो में एक से अधिक जिलों के लिए एक जिला न्यायालय और एक ही जिले के लिए अतिरिक्त (एडीशनल) जिला न्यायालय की व्यवस्था होती है। जिला न्यायालय अपने क्षेत्र में किसी भी रकम के मुकदमो पर विचार कर सकता है। दूसरे शब्दो में इसी बात को इस प्रकार कहा जा सकता है कि उसे असीमित धनाधिक्षेत्र (पिक्यूनिअरी ज्यूरिसडिक्शन) प्राप्त है। इसके नीचे कुछ अधीनस्थ न्यायालय (सबोर्डिनेट कोर्ट) होते है। इनकी दो श्रेणिया होती है। बंबई में वे प्रथम व द्वितीय श्रेणी के होते है। प्रथम श्रेणी के न्यायालयों को किसी भी राशि के और द्वितीय श्रेणी के न्यायालयों को ५००० रुपये के स्तर के वादो पर विचार करने का अधिकार है। अन्य बहुत से राज्यों में उन्हें क्रमशः उप-न्यायाधीशो (सब-जजो) और मुंसिफो के न्यायालय कहा जाता है। जिला न्यायालय अपने अधीन न्यायालयों से आई अपीलें सुनते है। लेकिन यदि अधीनस्थ न्यायालय निर्धारित राशि से अधिक, अर्थात ५००० रुपये से ऊपर के मुकदमे के संबंध में निर्णय करे, तो अपील उच्च न्यायालय में की जानी चाहिए। कुछ अवसरों पर मुंसिफ के निर्णय के विरुद्ध अपील उप-न्यायाधीश (सब जज) द्वारा सुनी जाती है। जब किसी निर्णय के विरुद्ध की गई अपील पर जिला-न्यायालय या अधीनस्थ न्यायालय अपना निर्णय दे देते है तो उसके विरुद्ध केवल कानूनी नुक्ते के संबध में उच्च न्यायालय में आगे अपील की जा सकती है, जिसे 'द्वितीय अपील' कहते है। जब किसी वाद का निर्णय जिला-न्यायालय या अतिरिक्त जिला न्यायालय द्वारा किया जाता है तो उसके निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

दीवानी अदालत

साधारण दीवानी अदालत के अतिरिक्त विशेष दीवानी अदालतें भी होती है। उनमे से कुछ के नाम है—लघु-अर्थ न्यायालय (स्माल कॉज कोर्ट), ग्राम न्यायालय, राजस्व न्यायालय, आयकर अधिकरण (ट्रिब्यूनल) और भिकरण (एजेंसी) न्यायालय।

विशेष दीवानी अदालतें

लघु-अर्थ न्यायालय निर्दिष्ट सीमा तक धन-विषयक छोटे-मोटे दावों पर विचार करते है। प्रायः होता यह है कि उप-न्यायाधीशों और मुंसिफों को लघु-अर्थ विषयक शक्तियां प्रदान कर दी जाती है। लघ्-अर्थ के दावे ऐसे होते है जिनका संबंध

कर्ज, किराया और संविदा-भंग से उत्पन्न हरजानों से होती है। लघु-अर्थ न्यायालय में वादी जमीन पर अधिकार का दावा नही कर सकता, वह बंधक का प्रचलन नही करा सकता, सम्पत्ति का बटवारा या साझेदारी को भग नही करा सकता तथा अभ्याघात[1] या निदालेख के लिए हर्जाना वसूल नही कर सकता। भिन्न-भिन्न न्यायालयो की अर्थ-सीमा का अधिकार भिन्न-भिन्न होता है। मुंसिफ १०० रुपये से ३०० रुपये तक के और उप-न्यायाधीश (सब-जज) १००० रुपये तक के दावों पर विचार कर सकता है। लघु-अर्थ-न्यायालय का निर्णय अंतिम होता है, किन्तु कानूनी भूल के आधार पर उच्च न्यायालय उसका पुनरीक्षण कर सकता है।

हर गाव में या कुछ गावो मे मिला कर बने ग्राम-समह में एक ग्राम-न्यायालय होता है जो रुपये-पैसे सबधी छोटे-मोटे दावो का फैसला करता है। इसका उद्देश्य यह होता है कि उन छोटे-मोटे झगड़ो मे सलग्न ग्रामीण अपने गाव में ही निर्णय प्राप्त करले और उसे गाव से बाहर किसी दीवानी अदालत की सुविधा की बाट न जोहनी पडे। ग्राम-न्यायालय मे या तो अकेला गाव-मुंसिफ होता है या फिर वह पचायत अर्थात् गाव या उसके पास-पडोस के पाच या अधिक निवासियो की परिषद् से मिलकर बनता है। इन न्यायालयो मे निर्णीत होनेवाले दावों का मूल्य—जो अलग-अलग राज्य मे अलग है—५ रुपये से ५० रुपये तक होता है। विशेष स्थितियो मे राज्य-सरकार यह सीमा १०० रुपये तक बढा सकती है। उनका निर्णय अतिम होता है, किन्तु विशेष कारणो के आधार पर जिला-मुंसिफ उसे रद्द कर सकता है।

आयकर-अपील-अधिकरण (इनकमटैक्स एपेलेट ट्रिब्यूनल) का निर्माण भारत सरकार करती है और यह आयकर विभाग के अधिकारियों द्वारा आयकर मूल्याकन सबधी मुकदमों के फैसलो के विरुद्ध अपील सुनने का कार्य करते है। अपील आयकर विभाग या वह व्यक्ति या पक्ष, जिसके आयकर का मूल्यांकन किया गया हो, कर सकता है। उन मामलो को छोड़कर कि जहा किसी कानूनी प्रश्न पर उच्च न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है, अधिकरण का निर्णय अतिम होता है। अधिकरण में न्याय-सदस्य अर्थात् विधायिनी प्रशिक्षण प्राप्त सदस्य और एकाउन्टेण्ट सदस्य होते है। न्याय-सदस्य उसका अध्यक्ष होता है।

अनुसूचित क्षेत्रो में, जैसे मद्रास के गोदावारी और विशाखापत्तम् जिलों के एजेंसी क्षेत्रो में, या बिहार के संथाल परगनो में दीवानी मुकदमो के निर्णय के लिए विशेष अधिकारी नियुक्त होते हैं।

---

१. अभ्याघात—बल-प्रयोग द्वारा किसी को शारीरिक चोट पहुँचाने का प्रयत्न।

दंड-न्यायालयों (फौजदारी अदालतो) की पद्धति का इस प्रकार निरूपण किया जा सकता है। प्रत्येक राज्य सैशन (उपवेशन) विभागो में बंटा होता है और

फौजदारी अदालत

प्रत्येक सैशन विभाग में एक सैशन (उपवेशी) न्यायालय[1] होता है। प्राय: एक सैशन (उपवेशन) विभाग एक जिले या जिलो के एक समूह के समान होता है और जिला न्यायालय (जो दीवानी न्यायालय होता है) का न्यायाधीश सैशन्स न्यायालय का भी न्यायाधीश होता है। इसलिए उसे जिला और सैशन्स जज कहते है। वह अपने क्षेत्र के सभी अधिक गभीर अपराधो पर विचार करता है। कानून द्वारा अधिकृत वह कोई भी दड दे सकता है। किन्तु यदि वह मृत्युदड देता है तो उस दड को तबतक कार्यान्वित नही किया जा सकता जबतक कि उच्च न्यायालय उस पर अपनी स्वीकृति न देदे। कुछ जिलो में अतिरिक्त (एडीशनल) सेशन्स जज और एक या अधिक सहायक (असिस्टेण्ट) सेशन्स जज होते है। अतिरिक्त सैशन्स जज को वही शक्तिया प्राप्त होती है जो एक सैशन्स जज को होती है। सहायक सैशन्स जज मृत्युदड, कालापानी और सात वर्ष से अधिक कारावास को छोड कर अन्य कोई भी दड दे सकता है। सैशन्स जज अपने क्षेत्र में अपने अधीनस्थ न्यायालयो द्वारा किये गए निर्णयो के विरुद्ध अपीले सुनता है। केवल एक अपवाद है और वह यह कि यदि सहायक सैशन्स जज चार वर्ष से अधिक कारावास का या कालेपानी का दड दे तो अपील उच्च न्यायालय में की जायगी न कि सैशन्स जज के सामने।

प्रत्येक जिले में उसके आकार और उसकी परिस्थितियो के अनुसार कुछ

मजिस्ट्रेट तथा उनके अधिकार

मजिस्ट्रेट (दण्डनायक) होते है। मजिस्ट्रेटो की तीन श्रेणिया होती है और प्रत्येक श्रेणी के मजिस्ट्रेट को नीचे की तालिका के अनुसार अधिकतम दड देने के अधिकार निर्दिष्ट होते है।

मजिस्ट्रेट की श्रेणी	कारावास की अवधि	जुर्माना
प्रथम श्रेणी	दो वर्ष	१००० रु०
द्वितीय श्रेणी	छः महीने	२०० रु०
तृतीय श्रेणी	एक महीना	५० रु०

प्रथम श्रेणी का मजिस्ट्रेट कोडे मारने की सजा भी दे सकता है। प्रत्येक जिले में एक जिला मजिस्ट्रेट होता है जिसे प्रथम श्रेणी के अधिकार प्राप्त होते है। जिले के अन्य मजिस्ट्रेट उसके अधीन होते है और वे उक्त तीनो श्रेणियो के हो सकते है। वे राज्य सरकार द्वारा उनके सुपुर्द किये गए क्षेत्रों में पैदा होनेवाले मुकदमो को सुनते है।

---

१. जो अपील सुनने या अन्य न्यायकार्य के लिए अपनी नियमित बैठक करते हैं।

प्रथम या द्वितीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट को एक सब-डिवीजन (जिले का उपभाग) दे दिया जाता है और वह सब-डिविजनल (उपभागी) मजिस्ट्रेट कहलाता है। उसके उपभाग के अन्य मजिस्ट्रेट उसके अधीन होते हैं। ये सभी मजिस्ट्रेट सरकार के स्थायी और वेतन-भोगी सेवक होते हैं। राज्य सरकार ऑनरेरी (अवैतनिक) मजिस्ट्रेट भी नियुक्त कर सकती है और उनमें से दो या अधिक को न्यायपीठिका (बेंच) के रूप में दोनों में से किसी श्रेणी के मजिस्ट्रेट के अधिकारों का प्रयोग करने का आदेश दे सकती है। राज्य सरकार या जिला मजिस्ट्रेट न्यायपीठिका के मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय वादों का, बैठक के समय और स्थान का, तथा उनके द्वारा अपनाई जानेवाली क्रियाविधि से सबंधित विषयों का, निर्देश करता है। वे जिला मजिस्ट्रेट के अधीन होते हैं।

दंड-न्यायालयों द्वारा दंडित व्यक्तियों द्वारा की जानेवाली अपीलों की प्रक्रिया यह है—द्वितीय या तृतीय श्रेणी के निर्णय के मजिस्ट्रेट के निर्णय के विरुद्ध जिला मजिस्ट्रेट के सामने या राज्य सरकार द्वारा इस कार्य के लिए अधिकृत प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के सामने; प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट या सहायक सेशन्स जज (उक्त अपवाद को छोड़कर) के निर्णय के विरुद्ध सेशन्स न्यायालय में, सेशन्स न्यायालय या अतिरिक्त सेशन्स न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में। मजिस्ट्रेट या सहायक सेशन्स जज द्वारा राजद्रोह या राज्य सत्ता के विरुद्ध अशांत वातावरण पैदा करने के अपराध में दिये गए दंड के विरुद्ध अपील केवल उच्च न्यायालय में की जा सकती है। जब कोई दंड-न्यायालय किसी व्यक्ति को मुक्त कर देता है तो राज्य सरकार अपने लोक अभियोक्ता (पब्लिक प्रॉसीक्यूटर) को उस निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील करने का आदेश दे सकती है।

अपील की प्रक्रिया

कलकत्ता, मद्रास और बंबई नगरों में प्राथमिक विचाराधिकार (ओरिजिनल ज्यूरिसडिक्शन) का मुख्य न्यायालय उच्च न्यायालय होता है। यह अपने नगर की सीमा के भीतर उत्पन्न किसी भी मूल्य के वाद पर विचार कर सकता है। यह इसका साधारण प्राथमिक व्यवहार-विचाराधिकार है। इसे विशेष स्थितियों में अपने नगर की सीमा से बाहर पैदा हुए वाद पर विचार करने का असाधारण प्राथमिक व्यवहार-विचाराधिकार भी होता है। इसे वसीयत और उत्तराधिकार, नाबालिग और पागल व्यक्तियों के संरक्षण, परिक्षीणता (कर्ज चुकाने की असमर्थता), तालाबों और जहाजों से संबंधित झगड़े (यथा—दो जहाजों में टक्कर से उत्पन्न झगड़ा) के संबंध में कार्यवाही निबटाने की शक्ति भी होती है। इस प्रकार का कार्य करने के लिए प्रायः एक जज बैठता है। विशेष मामलों में एक से अधिक जज भी बैठ सकते हैं। इन मामलों में दिये गए निर्णयों के विरुद्ध अपील उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की एक पीठिका (बेंच) के समक्ष की जाती है। इनके अतिरिक्त

कलकत्ता, मदरास और बंबई में न्यायालय

दूसरे व्यवहार-न्यायालय भी होते हैं जो निर्दिष्ट मूल्य तक के वादों पर विचार करते हैं, जैसे मदरास में नगर-व्यवहार-न्यायालय (सिटी सिविल कोर्ट)। इन तीनों नगरों में लघुअर्थ न्यायालय होते हैं जो दो हजार रुपये के मूल्य तक के दावों पर विचार करते हैं। उच्च न्यायालय मुख्य दंड न्यायालय होता है। उसका एक जज नगर में हुए अपराधों पर विचार करने के लिए समय-समय पर अपनी बैठक करता है। अभियोग-विचार जूरी द्वारा किया जाता है। इन तीनों नगरों में मातहत (अधीनस्थ) न्यायालय प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेटों के न्यायालय होते हैं जिन्हें प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेटों की शक्तियां प्राप्त होती हैं। इनमें से प्रत्येक नगर में उक्त प्रकार के कुछ मजिस्ट्रेट होते हैं जिनमें कुछ वेतनभोगी होते हैं और कुछ अवैतनिक। अवैतनिक मजिस्ट्रेट अकेले या न्यायपीठिका के रूप में अपनी बैठक करते हैं। प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेटों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलों की सुनवाई उच्च न्यायालय में की जाती है।

भारत में इंगलैण्ड की भांति व्यवहार वादों में जूरी द्वारा विचार नहीं किया जाता। उक्त तीनों नगरों में उच्च न्यायालय फौजदारी के मामलों पर सभ्यों (जूरी) की सहायता से—जिनकी संख्या ९ होती है—विचार करते हैं। सैशन्स न्यायालयों में अपराध के उन मामलों पर जूरी की सहायता से विचार किया जाता है जो राज्य सरकार के आदेश द्वारा इस प्रकार विचारणीय निश्चित किये जाते हैं। सभ्यों की संख्या विषम होती है और कम-से-कम ५ और अधिक-से-अधिक ९ होती है। इसके साथ एक नियम यह है कि यदि सभ्य किसी ऐसे अपराध पर विचार करें जिसके लिए मृत्यु-दंड दिया जाता हो तो उनकी संख्या कम-से-कम ७ और यदि संभव हो तो ९ होनी चाहिए। जो वाद सभ्यों द्वारा विचारणीय नहीं होते उनमें सैशन्स न्यायालय असैसरों[1] की सहायता लेते हैं जिनकी संख्या ३ से कम नहीं होनी चाहिए और यदि संभव हो तो ४ होनी चाहिए। वैसे स्त्री और पुरुष दोनों सभ्य हो सकते हैं किन्तु सैशन्स न्यायालय में सभ्य और असैसर पुरुष ही होने चाहिए। सभ्यों को सामूहिक रूप से अपना निर्णय देने को कहा जाता है, पर असैसरों से अभियुक्त के दोषी या निर्दोष होने के बारे में व्यक्तिगत राय पूछी जाती है। सैशन्स-न्यायालय चाहे तो सभ्यों के निर्णय से सहमत हो सकता है और अपना निर्णय उसके अनुसार दे सकता है। किन्तु न्यायालय अनुचित सभ्य-निर्णय के साथ अपनी असहमति प्रकट कर सकता है और वाद को उच्च न्यायालय के द्वारा अंतिम निर्णय के लिए भेज सकता है। सैशन्स न्यायालय असैसरों की राय मानने के लिए बाध्य नहीं है। उच्च न्यायालय सभ्यों द्वारा सर्वसम्मति से दिये गए निर्णय को

---

१. संशोधित दंड-विधि संहिता के अनुसार जनवरी १९५६ से असैसरों का चलन समाप्त कर दिया गया है।

मानने के लिए बाध्य है। यदि सभ्य-निर्णय सर्वसम्मत न हो तो न्यायाधीश उससे असहमत हो सकता है और दूसरी जूरी (सभ्या) द्वारा अभियोग विचार का आदेश दे सकता है।

उच्च न्यायालय

क और **ख** भाग के हर राज्य के लिए एक-एक उच्च न्यायालय (हाई-कोर्ट) की व्यवस्था है। ससद कानून द्वारा **ग** भाग के राज्य के लिए उच्च न्यायालय बना सकती है, किंतु जबतक ऐसा न हो तबतक **ग** भाग का राज्य जिस उच्च न्यायालय के अधिक्षेत्र में आता है वह उसी के अन्तर्गत रहेगा। उच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ व्यवहार और दड न्यायालयों से आई हुई अपीलों पर निर्णय करता है। यह अपने अधीनस्थ न्यायालय द्वारा दी गई ऐसी आज्ञा या आज्ञप्ति (डिगरी)—जिसके विरुद्ध अपील न की जा सकती हो—को जाच के लिए मगा सकता है और यदि वह आज्ञा या डिगरी उस न्यायालय के अधिकार से परे हो अथवा वह अनुचित हो या न्यायसगत न हो तो उच्च न्यायालय उसे रद्द कर सकता है। इस शक्ति को 'पुनरीक्षण की शक्ति' कहते है। राज्य के जिन न्यायालयो के प्रति वह उक्त शक्तियो का प्रयोग करता है उन समस्त न्यायालयो और अधिकारियों की देखरेख का उसे अधिकार होता है। वह राज्य के अंतर्गत संविधान मे उल्लिखित मौलिक अधिकारो के प्रचलन के लिए किसी भी व्यक्ति के प्रति—जिसमे राज्य सरकार भी सम्मिलित है—लेख (रिट) या आदेश जारी कर सकता है (देखिये अध्याय २)। वह अपने या अपने अधीनस्थ न्यायालयो की अवमानना (कन्टेम्प्ट) के लिए किसी भी व्यक्ति को दड दे सकता है।

भारत का सर्वोच्च न्यायालय

सर्वोच्च न्यायालय भारत में अपील का अंतिम न्यायालय है और इस स्थिति में वह उच्च न्यायालयो से आई हुई अपीलो का फैसला करता है। यदि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित करदे कि उस वाद से सबधित सम्पत्ति का मूल्य प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे २० हजार रुपये या अधिक है और यदि अपीलकृत निर्णय निम्न न्यायालय के इस निर्णय के अनुकूल हो कि अपील में कानून का कोई महत्त्वपूर्ण प्रश्न निहित है तो सर्वोच्च न्यायालय में किसी भी दीवानी दावे मे किसी भी उच्च न्यायालय के किसी निर्णय, डिगरी या अंतिम आदेश के विरुद्ध अपील की जा सकती है। यदि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित करदे कि कोई खास व्यवहार तथा दंड-वाद सर्वोच्च न्यायालय तक अपील करने योग्य है तो ऐसे किसी भी मामले की सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। किसी भी ऐसे दड-वाद (फौजदारी मामले) मे अपील की जा सकती है जिसमें उच्च न्यायालय ने अधीनस्थ न्यायालय के अभियुक्त को बरी करने के आदेश को उलट दिया हो और उसे मृत्यु-दंड या कालेपानी का दण्ड दिया हो अथवा किसी मामले की अपने यहा विचारार्थ बदली करली हो

और उसमे अभियुक्त को मृत्युदंड दिया हो। यदि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित करदे कि उसमे संविधान की व्याख्या से संबंधित कानून का महत्त्वपूर्ण प्रश्न आता है तो किसी भी दीवानी, फौजी या अन्य कार्यवाही मे सर्वोच्च न्यायालय मे अपील की जा सकती है। यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित करने से इन्कार करदे तो सर्वोच्च न्यायालय अपील की विशेष आज्ञा दे सकता है। समद कानून द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को फौजदारी मामलो मे अपील के और अधिक अधिकार दे सकती है। सर्वोच्च न्यायालय को भारत मे किसी भी न्यायालय या न्यायाधिकरण के निर्णय के विरुद्ध अपील करने की विशेषाज्ञा देने का अधिकार है, तथापि यह कोर्ट मार्शल (सैनिक अदालत) के निर्णय के विरुद्ध अपील की आज्ञा नही दे सकता। उच्च न्यायालयो से आई हुई अपीलो का निर्णय करने के साथ सर्वोच्च न्यायालय को कुछ मामलो मे प्राथमिक विचाराधिकार (मामलो पर शुरू मे ही खुद विचार करनेका अधिकार) प्राप्त है। यह भारत सरकार और एक या अधिक राज्यो के मध्य, एक ओर भारत सरकार व एक या अधिक राज्य, और दूसरी ओर एक या अधिक राज्यो के बीच, तथा राज्यो मे दो या अधिक राज्यो के बीच झगडो का फैसला कर सकता है। झगडा ऐसा होना चाहिए जिसमे एक पक्ष किसी कानूनी अधिकार का दावा करे और दूसरा पक्ष उसे स्वीकार न करे। यदि **ख** भाग का कोई राज्य एक पक्ष हो तो विवाद २६ जनवरी १९५० से पूर्व हुए और उस तिथि के बाद प्रचलन मे आये किसी करार, सधि या किसी अन्य आलेख (इंस्ट्रूमेण्ट) से सबधित नही होना चाहिए; और यदि कोई राज्य किसी विवाद मे एक पक्ष हो, तो ऐसा विवाद किसी ऐसे आलेख से सबधित नही होना चाहिए जिसमे यह व्यवस्था हो कि सर्वोच्च न्यायालय को ऐसे विवाद का निर्णय करने की कोई शक्ति नही है। किसी देशी राज्य के शासक और तत्कालीन भारत सरकार के बीच उक्त तिथि से पूर्व किये और उक्त तिथि के बाद प्रचलित किसी आलेख से उत्पन्न होनेवाले किसी विवाद, या ऐसे आलेख से सबधित सविधान के किसी उपबंध से उत्पन्न होने वाले किसी अधिकार या दायित्व के बारे मे किसी विवाद का निर्णय करने की शक्ति न तो सर्वोच्च न्यायालय को और न किसी अन्य न्यायालय को ही प्राप्त है। राष्ट्रपति यदि यह समझे कि किसी तथ्य या कानून के प्रश्न पर सर्वोच्च न्यायालय की राय लेना सार्वजनिक हित मे है, तो वह उसे सर्वोच्च न्यायालय की राय के लिए भेज सकता है। न्यायालय उस मामले की सुनवाई के बाद राष्ट्रपति को अपनी राय भेज देता है। सर्वोच्च न्यायालय का एक और कार्य यह है कि वह सविधान के अंतर्गत दिये हुए मौलिक अधिकारों के प्रचलन के लिए, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, भारत में किसी भी व्यक्ति या सत्ता के नाम आलेख या समादेश (रिट) जारी कर सकता है।

विभिन्न न्यायालयों के गठन के संबंध में पर्याप्त विवेचन हो चुका है। न्यायिक

संगठन का इसके अतिरिक्त एक और पहलू है। यह स्पष्ट है कि न्यायालय केवल योग्य, ईमानदार और स्वतंत्र न्यायाधीशों के द्वारा ही सम्यक प्रकार से चल सकते हैं। इसलिए उनके चुनाव का ढंग और उनकी सेवा (काम करने) की शर्तें ऐसी होनी चाहिए कि इस उद्देश्य की पूर्ति हो सके। सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति को छोड़कर अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति में राष्ट्रपति को मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श लेना चाहिए। उच्च न्यायालय के किसी भी न्यायाधीश की नियुक्ति करते समय राष्ट्रपति को भारत के मुख्य न्यायाधिपति और संबंधित राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख से परामर्श लेना चाहिए। किसी भी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति को छोड़ कर अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के समय उसे संबंधित न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति से भी परामर्श लेना चाहिए। इन न्यायालयों के न्यायाधीशों को अपने कार्यकाल के संबंध में ऐसी सुरक्षा प्राप्त है, जो अन्य सार्वजनिक सेवकों को प्राप्त नहीं होती और वे केवल जबतक राष्ट्रपति चाहे तबतक ही अपने पद पर आसीन नहीं रहते। सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश ६५ वर्ष पूर्व की आयु तक अपने पद पर रहता है और उच्च न्यायालय का न्यायाधीश ६० वर्ष की आयु तक। दोनों (सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों) में से किसी को भी तबतक नहीं हटाया जा सकता कि जबतक सिद्ध कदाचार (दुर्व्यवहार अथवा आचरणहीनता) अथवा असमर्थता के आधार पर इस प्रकार हटाये जाने के लिए संसद के प्रत्येक सदन की समस्त सदस्य-संख्या के बहुमत द्वारा, तथा उपस्थित और मतदान करनेवाले सदस्यों में से कम-से-कम दो-तिहाई के बहुमत द्वारा समर्थित समावेदन के द्वारा राष्ट्रपति के समक्ष संसद प्रत्येक सदन द्वारा उसी अधिवेशन में रखे जाने पर राष्ट्रपति ने इस प्रकार हटाये जाने के लिए आदेश न दे दिया हो। इन न्यायालयों के न्यायाधीश अपने पद पर आसीन रहने के पश्चात् भारत के किसी अन्य न्यायालय में वकालत का कार्य नहीं कर सकते।

न्यायाधीश

क भाग के राज्यों के अधीनस्थ व्यवहार और दंड न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा प्रायः लोक सेवा आयोग (पब्लिक सर्विस कमीशन), जिसमें अनुभवी और सरकार से संबद्ध व्यक्ति होते हैं, के परामर्श पर की जाती है। विभिन्न श्रेणियों के न्यायाधीशों के वेतनों का निर्धारण इस प्रकार किया जाता है कि वह उनके उत्तरदायित्वों के अनुकूल हो तथा उनकी स्वतंत्रता व ईमानदारी को कायम रख सके।

यह एक निश्चित नियम है कि प्रत्येक व्यवहार-वाद या दंड-वाद के दोनों पक्षों को न्यायालय में अपने-अपने पक्ष का निरूपण करने का अधिकार होता है और

न्यायालय वाद का निर्णय दोनों पक्षों को या उनके वकीलों को, सुनने के बाद ही करता है। भारत में वकालत करनेवालों की दो श्रेणियां हैं—अधिवक्ता (एडवोकेट) और प्राभिकर्ता (एटर्नी[1])। एडवोकेट न्यायालयो के समक्ष उपस्थित होकर अपने मवक्किलों के वादों की वकालत करते हैं। एटर्नी न्यायालय में उपस्थित करने के लिए वाद को तैयार करते हैं और न्यायालय से बाहर मवक्किलो के लिए किया जानेवाला अन्य कार्य करते हैं, जैसे तर्क और अधिकार हस्तातरण-पत्र का मसविदा तैयार करना। कोई भी व्यक्ति उच्च न्यायालय में एडवोकेट के रूप में तभी प्रवेश कर सकता है जब उसने किसी भारतीय विश्वविद्यालय से कानून की उपाधि (डिग्री) प्राप्त कर ली हो, किसी एडवोकेट के कार्यालय में काम किया हो और वकालत के लिए उपयोगी विशेष विषयों, यथा प्रक्रिया विधि (न्याय-प्रक्रिया कानून) में परीक्षा पास की हो। स्त्रिया भी एडवोकेट हो सकती हैं। एटर्नी के रूप में व्यक्ति उच्च न्यायालय में तब प्रवेश प्राप्त करता है जब उसने किसी भारतीय विश्वविद्यालय से कानून की डिग्री प्राप्त की हो और किसी एटर्नी के साथ कार्य करके तदर्थ योग्यता प्राप्त कर ली हो। एटर्नी न्यायालय मे उपस्थित होकर वकालत भी कर सकता है, किन्तु विशिष्ट न्यायालयो में और विशिष्ट प्रकार के वादो मे वह एडवोकेट को निर्देश मात्र दे सकता है, जैसे उस समय जब कलकत्ता, मदरास और बंबई के उच्च न्यायालय किसी वाद पर प्राथमिक अधिकार के अन्तर्गत विचार कर रहे हों। कलकत्ता और बंबई के उच्च न्यायालयो द्वारा किसी वाद के प्राथमिक विचार के समय एडवोकेट उस समय उपस्थित हो सकता है जबकि एटर्नी से उसे निर्देश प्राप्त हुआ हो। सर्वोच्च न्यायालय में वे एडवोकेट उपस्थित हो सकते हैं जिनका नाम उस न्यायालय में लिखा हुआ हो। उनका नाम बडे (सीनियर) या अवर (जूनियर) एडवोकेट के रूप में लिखा जाता है। बहुत से राज्यो मे वकील-समाज (बार) की परिषद होती है जो मुख्य रूप से एडवोकेटो द्वारा चुने गए सदस्यो से निर्मित होती है और वकील-समाज मे प्रवेश के ढग का नियमन करती है। वकील-समाज-परिषद (बार कौसिल) को यह शक्ति भी प्राप्त है कि उच्च न्यायालय के कहने पर वह वकील-समाज के किसी सदस्य के कथित कदाचार या दुर्व्यवहार के बारे में छानबीन करे और उच्च न्यायालय को अपनी रिपोर्ट दे। उस रिपोर्ट पर कार्यवाही करना उच्च न्यायालय का काम है। यदि दुर्व्यवहार या कदाचार सिद्ध हो जाता है तो उच्च न्यायालय उसे वकील-समाज से हटा सकता है, मुअत्तिल कर सकता है या उसकी भर्त्सना कर सकता है।

विधि-वृत्ति

---

१. एटर्नी—किसी अन्य के लिए कानूनी कार्यवाही करने का अधिकार-प्राप्त व्यक्ति।

यदि प्रतिरक्षा सेनाओं का कोई सदस्य, जिस कानून से वह शासित होता है उसके विरुद्ध कोई अपराध करे, तो उस पर एक विशेष न्यायालय द्वारा मुकदमा चलाया जा सकता है। इस विशेष न्यायालय को 'सैनिक न्यायालय' या 'कोर्ट मार्शल' कहते हैं। ये न्यायालय इस अध्याय में वर्णित न्यायालयों से पूर्णतः स्वतंत्र होते हैं। अपनी शक्तियों के प्रयोग में सैनिक न्यायालय उच्च न्यायालय अथवा सर्वोच्च न्यायालय की देख-रेख से बाहर होते हैं। किंतु यदि वे ऐसे किसी विषय में कार्यवाही करें जिस पर उन्हें ऐसी शक्ति प्राप्त नहीं होती तो उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय उसमें हस्तक्षेप कर सकते हैं और संतप्त पक्ष को समुचित उपचार प्रदान कर सकते हैं। सैनिक न्यायालय जिस प्रकार गठित होते हैं और जिस प्रकार वे अपराधियों पर मुकदमा चलाते हैं उसका नियमन स्थल, जल और वायु-सेना के विशेष कानून करते हैं जिनका उल्लेख आगे सातवें अध्याय में किया गया है।

सैनिक न्यायालय (कोर्ट मार्शल)

न्यायालयों की स्थापना करना और उनमें योग्य और ईमानदार न्यायाधीशों की नियुक्ति करना ही पर्याप्त नहीं है। न्यायालयों के सामने आनेवाले मुकदमों में न्यायिक-कार्यवाही किस प्रकार की जाय इस संबंध में न्यायालयों का मार्ग-दर्शन करनेवाली प्रक्रिया के नियमों का होना भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। दंड-वाद (फौजदारी मामलों) और अर्थ (दीवानी)-वादों के प्रक्रिया नियमों की चर्चा छठे और पन्द्रहवें अध्याय में की जायगी। कुछ नियमों की, जिन्हें सम्यक न्याय-शासन में भौतिक या आधारभूत माना जाता है, चर्चा नीचे की गई है।

न्याय-प्रक्रिया

न्यायालय विधानमंडलों द्वारा अधिनियमित नियमों को लागू करने के लिए बद्ध हैं। किसी भी अधिनियमन के अभाव में उन्हें "न्याय, समन्याय (अपक्षपात) तथा सद्विवेक" के अनुसार कार्य करना चाहिए। ऐसा करने में उन्हें इसी प्रकार के किसी विवाद में सर्वोच्च न्यायालय या उस खास राज्य के उच्च न्यायालय के निर्णय से अनिवार्यतः मार्गदर्शन ग्रहण करना पड़ता है।

वाद से संबंधित प्रत्येक पक्ष को अपनी बात सुनाने और अपने कानूनी प्रतिनिधि द्वारा अपने पक्ष का निरूपण करने का अधिकार है। न्यायालय को किसी पक्ष के विरुद्ध, उसे स्वयं या वकील के द्वारा न्यायालय में उपस्थित होने और अपने पक्ष के प्रतिपादन का समुचित अवसर दिये बिना निर्णय नहीं देना चाहिए। प्रत्येक दंड-वाद पर विचार अभियुक्त या उसके वकील के सामने होना चाहिए। किसी ऐसे अपराध पर विचार के समय, जो ६ महीने या कम के कारावास से दंडनीय हो, मजिस्ट्रेट अभियुक्त की उपस्थिति की उपेक्षा कर सकता है।

लेकिन अधिक गंभीर अपराधों में वह ऐसा नहीं कर सकता। प्रत्येक दंड-वाद में अभियुक्त अपनी सफाई के लिए वकील कर सकता है। मृत्यु द्वारा दंडनीय

अपराध के मुकदमे में यदि अभियुक्त स्वय अपने लिए वकील न कर सके तो सरकार उसके लिए वकील की व्यवस्था करती है।

न्यायालय को अपनी कार्यवाही खुली करनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, न्यायालय के कमरे मे जितने लोग समा सकें आ सकते हैं। कुछ मामलो मे न्यायालय को बंद कमरे मे कार्यवाही करने का अधिकार है—जैसे—तलाक के मामले मे। खुली कार्यवाही से हुए प्रचार से न्याय के प्रयोजन को बढावा मिलता है। जब कोई पक्ष या गवाह कोई ऐसी बात कहता है जो गलत है और जिसका वहा उपस्थित कोई व्यक्ति खण्डन कर सकता है तो उसे न्यायालय म वाकायदा उपस्थित होकर सत्य-प्रकाशन का अवसर मिलता है। इस प्रकार मिथ्या भाषण पर रोक लगती है।

न्यायाधीश खुली अदालत मे अपना निर्णय सुनाता है और प्राय वैसा निर्णय करने के कारणो का उल्लेख करता है। उसके द्वारा दिये गए कारणो पर सार्वजनिक रूप से आलोचना की सभावना होती है, इसलिए मनमाना और अन्याय-युक्त निर्णय देते हुए उसे हिचकिचाहट होगी।

जबतक कि अभियोक्ता (प्रासीक्यूटर) किसी व्यक्ति के दोष की असंदिग्ध रूप से पुष्टि न कर दे तबतक उसे अपराधी घोषित नही किया जा सकता। सौ अपराधियों के दंड से बच जाने की अपेक्षा यह कही अधिक हानिकारक है कि एक निर्दोष व्यक्ति को दंड मिल जाय।

वाद-ग्रस्त प्रत्येक पक्ष को ऐसे न्यायाधीश से अपने वाद के निर्णय कराने का अधिकार है जिसको उस वाद में निजी दिलचस्पी न हो और जो पक्षपात या तरफदारी से रहित हो। जिस न्यायाधीश मे इन आवश्यक बातो का अभाव हो उससे अपने वाद का निर्णय कराने मे वह आपत्ति कर सकता है। वह अपनी आपत्ति स्वय उस न्यायाधीश के समक्ष रख सकता है अथवा ऊपर के न्यायालय मे उस न्यायालय से मुकदमा हटाने के लिए आवेदन कर सकता है। यदि उस वाद मे न्यायाधीश की निजी दिलचस्पी का ज्ञान उसे निर्णय के बाद हो तो वह उस निर्णय के विरुद्ध अपील-न्यायालय मे अपील कर सकता है। अपील-न्यायालय को यह मालूम हो कि उस न्यायाधीश को उस वाद पर विचार नही करना चाहिए था तो वह उसके निर्णय को रद्द कर देगा और फिर से उस वाद पर विचार करने की आज्ञा देगा।

जो भी व्यक्ति न्यायालय के समक्ष न्याय के लिए जाय उसे चाहिए कि वह न्याय के लिए आवश्यक तथ्यों की पुष्टि करे। अभियोक्ता को चाहिए कि वह अभियुक्त का दोष सिद्ध करे। व्यवहार-न्यायालय में जो वादी अपने लिए किसी कानूनी अधिकार का दावा करता है—जैसे किसी जायदाद के वारिस होने का दावा—उसका कर्त्तव्य है कि वह उस दावे की पुष्टि के लिए आवश्यक बातों को प्रमाणित करे।

न्यायालय को चाहिए कि वह अपने समक्ष, गवाही (साक्ष्य) के नियमो के अनुसार सिद्ध किये गए तथ्यो के आधार पर अपना निर्णय दे। उदाहरण के लिए न्यायाधीश को सुनी-सुनाई बात, सदेह या अपनी व्यक्तिगत जानकारी के आधार पर कार्य नही करना चाहिए।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने न्याय्य अधिकार को प्रचलित कराने के लिए न्यायालय मे ससावेदन करने का अधिकार है, किंतु वह एक निश्चित समय के व्यतीत हो जाने के पश्चात् ऐसा नही कर सकता। यह समय अलग-अलग मामलो के लिए अलग-अलग निर्धारित होता है और इसका निर्देश परिसीमन-विधि द्वारा होता है। उदाहरण के लिए साहकार को चाहिए कि वह ऋण वसूल करने की तिथि के, या ऋणी द्वारा ज्ञापित करने के अथवा उसके द्वारा ऋण चुकाने की दिशा मे अदा की गई रकम के दिन के तीन वर्ष के भीतर ऋण वसूल करने के लिए दावा करे। विलंब के लिए दोषी व्यक्ति पर यह प्रतिबंध इसलिए लगाया गया है कि दूसरे पक्ष का व्यक्ति असीमित काल के लिए न्यायालय म परेशान किये जाने के भय से मुक्त हो जाय और एक निश्चित काल के बाद अपनी सम्पत्ति और अधिकारो को सुरक्षित समझ सके। दंड-वादों मे यह नियम लागू नही होता। राज्य किसी भी अपराधी पर अपराध करने के कितने ही समय पश्चात् मुकदमा चला सकता है। हो सकता है कि कई बार, अपराध किये जाने के कई वर्ष पश्चात् उसके संकेत मिले।

न्यायालय कानून के अनुसार ही कार्य करते है और उसे सभी व्यक्तियो पर भले ही वे उच्च या निम्न श्रेणी के अमीर या गरीब, सरकारी या गैर-सरकारी व्यक्ति हो, समान रूप से लागू करते है। कानून द्वारा अमान्य किसी व्यक्ति के अधिकार, स्वतत्रता, विशेष-सुविधा या विवेक संबंधी दावा को न्यायालय स्वीकार नहीं करते। इस नियम का क्रियारूप मे उस समय महत्व मालूम होता है जब उच्च कार्याधिकारी अपने अधीन किसी व्यक्ति की स्वतत्रता या अधिकार का अतिक्रमण करते है। न्यायालय का यह अधिकार और कर्त्तव्य है कि वह ऐसे दावे की जाच करे और यदि वह दावे को कानून द्वारा अनधिकृत माने तो पीड़ित पक्ष को उसके लिए उपचार प्रदान करे।

: ५ :

अपराध और दंड

अपराध वह आचरण है जिसे राज्य सामाजिक व्यवस्था और जन-कल्याण की दृष्टि से दंडनीय समझता है। इसे समस्त जनता अथवा राज्य के प्रति अपकार समझा जाता है। इसलिए इसे सार्वजनिक-अपकार कहते हैं जिसके लिए राज्य दोषी को दंड-न्यायालयों के द्वारा दंड देता है। अपराध किसी एक व्यक्ति के प्रति या वैयक्तिक अपकार भी हो सकता है। उदाहरण के लिए यदि **क ख** को कोई शारीरिक हानि पहुंचाता है तो राज्य दंड-न्यायालय में **क** पर मुकदमा चला सकता है और उसे दंड दे सकता है। इसके साथ ही **ख** भी उस पर व्यवहार-न्यायालय में हर्जाना वसूल करने के लिए मुकदमा चला सकता है।

परिभाषाएं, अपराध तथा दंड संहिता

भारत में अपराध और दंड संबंधी सामान्य कानून भारतीय-दंड-संहिता (जाब्ता फौजदारी) में —जिसका इस अध्याय में दंड-संहिता के नाम से उल्लेख किया गया है—निहित है। संहिता के अतिरिक्त भी ऐसे अनेक विशेष कानून हैं जिनमें अपराधों की परिभाषा दी गई है और उनके लिए दंड निश्चित किया गया है। हम पहले संहिता के उपबंधों की समीक्षा करेंगे और फिर कुछ विशेष कानूनों की। अंत में उन जेल-कानूनों की समीक्षा करेंगे जिनके द्वारा यह व्यवस्था की जाती है कि दंड किस प्रकार कार्यान्वित किये जाय।

संहिता के पहले कुछ अध्यायों में उन आम सिद्धांतों की चर्चा की गई है जो सब अपराधों पर लागू होते हैं और बाद में प्रत्येक अपराधों के तत्वों का निर्देश किया गया है और उनके लिए दंड निश्चित किये गए हैं। इन अपराधों की संख्या लगभग ३५० है जिन्हें १८ वर्गों में रखा गया है (दंड संहिता, अध्याय ६ से २३)। इसी क्रम के अनुसार पहले हम आम सिद्धांतों की चर्चा करेंगे फिर विभिन्न प्रकार के अपराधों की। सभी अपराधों की चर्चा करना संभव नहीं है, इसलिए यहां उनके कुछ वर्ग ही लिये गए हैं। इन वर्गों के अन्तर्गत भी मुख्य-मुख्य अपराधों की चर्चा की गई है। बाकी अपराध इन्हीं मुख्य अपराधों के भीषण रूप हैं जिनके लिए और अधिक भारी दंड निश्चित है। आगे जहां किसी अपराध का वर्णन किया गया है वहां उसके लिए निश्चित दंड का भी साथ में दिये गए कोष्ठकों में निर्देश किया गया है। संक्षेप के लिए कारावास शब्द में बिना संख्या जोड़े ही कारावास की अवधि का उल्लेख किया गया है। जबतक किसी खास प्रकार के कारावास का स्पष्टतः निर्देश

न किया जाय, इससे सादा अथवा कठोर (सपरिश्रम) कोई भी अर्थ निकाला जा सकता है। दंड की अवधि का अंग निकालते समय 'आजीवन कद' (कालापानी) से अभिप्राय २० वर्ष होगा। जिन दंडो का वर्णन किया गया है वे अधिकतम दंड है, फिर भी कोई न्यायालय अधिकतम दंड देने के लिए बाध्य नही है। यदि संहिता में जुर्माने की रकम न निर्धारित की गई हो तो न्यायालय चाहे जितना जुर्माना कर सकता है, किन्तु यह जुर्माना अत्यधिक नही होना चाहिए।

भारत में संहिता के अंतर्गत कोई भी दंडनीय अपराध करने पर प्रत्येक व्यक्ति दंड का भागी होगा, चाहे वह भारत का नागरिक हो या न हो। वह पाकिस्तान, अफगानिस्तान, चीन या संयुक्त राज्य अमरीका जैसे किसी विदेशी राज्य की प्रजा हो सकता है। यदि वह भारत मे ऐसा अपराध करे तो भारत मे कोई भी न्यायालय उस पर मुकदमा चला और उसे दंड दे सकता है। ऐसा न्यायालय ऐसे भारतीय नागरिक पर भी मुकदमा चला सकता है जिसने भारत के बाहर अपराध किया हो और बाद में वह भारत मे पकडा गया हो। किंतु न्यायालय के ऐसा करने से पूर्व जिस देश में वह अपराध किया गया है, उस देश मे स्थित भारतीय राजनैतिक अभिकर्ता (पोलिटिकल एजेंण्ट) का प्रमाण-पत्र आवश्यक है। यदि उस देश मे प्रमाण-पत्र देनेवाला ऐसा व्यक्ति न हो तो मुकदमा चलाने के लिए उस राज्य की स्वीकृति आवश्यक है जिसमें वह मुकदमा चलाया जायगा। 'भारत' शब्द में उसके समुद्र तट के साथ-साथ तीन मील तक का सामुद्रिक जल-क्षेत्र भी शामिल है। यदि कोई व्यक्ति भारतीय तट से तीन मील के फासले तक समुद्र मे खड़े हुए किसी जहाज पर चोरी या हत्या आदि अपराध करता है तो उस पर उसी प्रकार मुकदमा चलाया जायगा और दंड दिया जायगा जिस प्रकार भारत-भूमि पर अपराध करनेवाले व्यक्ति के लिए निर्दिष्ट है। यदि अपराध तट से तीन मील के फासले से आगे किसी जहाज पर किया गया हो तो भारतीय न्यायालय उस पर उसी स्थिति मे मुकदमा चला सकता है जब वह जहाज भारतीय हो अर्थात् भारत मे रजिस्टर्ड हो। प्रत्येक जहाज अपने देश का एक अंग समझा जाता है और उस पर किया गया अपराध उसके देश मे किया गया अपराध माना जाता है। अतः यदि अपराध किसी विदेशी जहाज पर किया जाय, उदाहरणतः बंगाल की खाडी मे खडे किसी फ्रांसीसी जहाज पर, तो अपराध करनेवाले विदेशी पर भारत में मुकदमा नही चलाया जा सकता।

किसी कृत्य या गैर-कानूनी अवकृत्य द्वारा कोई व्यक्ति संहिता के अन्तर्गत अपराध कर सकता है। 'कृत्य' एक सकारात्मक अथवा सक्रिय आचरण है, जैसे, किसी पर वार करना। अवकृत्य (कृत्य को न करना) नकारात्मक और निष्क्रिय आचरण है। अपने नकारात्मक आचरण के द्वारा कोई व्यक्ति किसी की चोट या मृत्यु का कारण बन सकता है, किंतु अपराध वह तभी करता है जब उसका आचरण अवैध

हो, और वह आचरण अवैध तभी होता है, जब वह कानून के अनुसार कुछ करने के लिए बद्ध हो और वह न करे। जब वह किसी कृत्य को करने के लिए बद्ध नहीं अथवा वह कृत्य उसका कर्त्तव्य नहीं, तब उसका न करना अवैध नहीं है और उसके लिए वह दंडनीय नहीं है। कोई व्यक्ति यदि किसी भिखारी को खाना देने से इन्कार करता है तो वह दंडनीय नहीं, भले ही खाना न मिलने से भिखारी की मृत्यु हो जाय। ऐसा इसलिए है कि कानून के अनुसार भिखारियों को खाना खिलाना उस व्यक्ति का कर्त्तव्य नहीं है, भले ही उसका यह कार्य अमानवीय और निन्दनीय क्यों न हो। किंतु यदि माता-पिता सरक्षक, नर्स या जेलर अपने सरक्षण में रहे किसी व्यक्ति को खाना न दे और भूख के कारण उसकी मृत्यु हो जाने दे तो ऐसा व्यक्ति हत्या का अपराधी है। कोई व्यक्ति अंशतः किसी कृत्य और अंशतः अवकृत्य—दोनों के द्वारा भी अपराध कर सकता है। वह अपने एक कृत्य अथवा कई कृत्यों के क्रम द्वारा अपराध कर सकता है। वह कृत्य स्वयं कर सकता है या एक सामान्य इच्छा की पूर्ति के लिए कई व्यक्तियों के साथ मिलकर भी कर सकता है। उदाहरण के लिए, हो सकता है कि दूसरा व्यक्ति छुरा भोंके, या किसी का वध करे, और उस समय वह व्यक्ति स्वयं उसकी चौकीदारी करे। यदि दोनों का सामान्य उद्देश्य हत्या था तो दोनों ही हत्या के अपराधी हैं और दोनों को एक जैसी सजा दी जा सकती है।

संहिता में निर्दिष्ट दंड के प्रकार

संहिता के अन्तर्गत अपराध के लिए अपराधी को निम्नलिखित दंड दिये जा सकते हैं—फांसी द्वारा मृत्यु, आजीवन या उससे कम समय के लिए कालेपानी का दंड, कारावास, जो कठोर (सपरिश्रम) या सादा हो सकता है, राज्य द्वारा सम्पत्ति का जब्त किया जाना, जुर्माना और कोड़े लगाना।

न्यायालय निम्नलिखित अपराधों के लिए मृत्यु-दंड दे सकता है—भारत सरकार के विरुद्ध लड़ाई करना, भारत की सशस्त्र सेनाओं के विद्रोह में सहायता देना, हत्या या वध, १८ वर्ष की आयु से कम के या विकलांग व्यक्ति को आत्महत्या में सहायता देना, आजीवन-कारावास-प्राप्त व्यक्ति द्वारा किसी की हत्या का प्रयत्न, जिसका परिणाम चोट हो। न्यायालयों को यह छूट है कि वे मृत्युदंड न दें और उसके स्थान पर कालेपानी या कारावास का दंड दें। किंतु एक परिस्थिति में न्यायालय अपराधी को मृत्युदंड के अतिरिक्त और कोई दंड नहीं दे सकता, अर्थात् तब, जब कोई कालेपानी की सजा प्राप्त व्यक्ति हत्या कर दे। न्यायालय द्वारा अधिकतम दंड (मृत्युदंड) दिये जाने पर भारत के राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख को यह अधिकार है कि वह दंड-प्राप्त को क्षमा करदे, दंडमुक्त कर दे या उसके दंड को कम या स्थगित कर दे।

कालेपानी की सजा प्राप्त व्यक्तियों को पहले कठोर श्रम करने के लिए

अंडमान द्वीप में भेजा जाता था, किंतु अब वह किसी भारतीय जेल में ही कठोर कारावास भुगतता है।

कठोर कारावास का दंड देते समय न्यायालय यह भी आदेश दे सकता है कि अपराधी अपने कारावास की अवधि में कुछ समय के लिए एकांत में बंद रखा जायगा। यह एकांत-कारावास की अवधि एक बार में एक साथ १४ दिन तक की हो सकती है, और इतने ही अंतर से इसे दुहराया भी जा सकता है, किंतु यह एकांत कारावास कुल मिलाकर तीन महीने से अधिक नहीं हो सकता।

कुछ स्थितियों में राज्य अपराधियों की संपत्ति जब्त कर लेता है, जैसे उस समय जब कि किसी व्यक्ति को भारत सरकार के विरुद्ध लड़ाई करने के अपराध में दंड दिया गया हो।

जुर्माने का दंड देते समय न्यायालय को यह अधिकार है कि वह जुर्माना न अदा करने की स्थिति में अपराधी को उसके बदले में कारावास का दंड दे। संहिता में ऐसी कुछ स्थितियों के अंतर्गत कारावास की अवधि निश्चित है। जुर्माना संपत्ति की कुर्की और उसके नीलाम द्वारा वसूल किया जा सकता है—भले ही अपराधी जुर्माना न अदा करने के बदले जेल भुगत रहा हो।

कुछ खास अपराधों के लिए न्यायालय को कोड़े लगाने की सजा देने का अधिकार है। उदाहरणतः, किसी मकान, खेमे या जहाज में चोरी, मकान में सेंध लगाना, बलात्कार, अप्राकृतिक अपराध, डाका, या कुछ खास अपराधियों को, जैसे—बाल या किशोर अपराधी (१६ वर्ष की आयु से कम) जो संहिता के अन्तर्गत या किसी भी अन्य कानून के अन्तर्गत ऐसा अपराध करे, जिसके लिए कारावास का दंड दिया जा सके। स्त्रियों, मृत्युदंड प्राप्त या कालेपानी की सजा प्राप्त व्यक्तियों को, अथवा पांच वर्ष से अधिक कारावास की सजा प्राप्त व्यक्तियों को, तथा ४५ वर्ष की आयु से अधिक के व्यक्तियों को कोड़े लगाने की सजा नहीं दी जा सकती।

पहली बार अपराध करने-वालों तथा पुराने अपराधियों के लिए विशेष उपबंध

पुराने अपराधियों को बढ़ी हुई सजा देने के संबंध में विशेष उपबंध हैं। यदि किसी व्यक्ति को टंकण (सिक्का बनाने) या सम्पत्ति के संबंध में किये गए किसी अपराध (जो तीन वर्ष या इससे अधिक अवधि के लिए दंडनीय हो) के लिए दंड दिया जा चुका हो तो फिर वैसा ही अपराध करने पर उसे कालेपानी या दस वर्ष के कारावास का दंड दिया जा सकता है। न्यायालय को यह भी अधिकार है कि वह दंड देते समय अपराधी को यह आदेश दे कि वह पांच वर्ष की अवधि तक पुलिस को अपने निवास-स्थान के पते की, या जब कभी उसमें परिवर्तन हो तो उस परिवर्तन की, सूचना दे। आदेश को भंग करने का अर्थ एक नया अपराध करना होगा।

न्यायालय को यह आज्ञा देने का अधिकार है कि कालापानी अथवा कारा-वास के दंड से दंडित १५ वर्ष की आयु से कम का किशोर-अपराधी दंड भुगतने के स्थान पर किसी सुधारशाला (रिफार्मेटरी स्कूल) में भेजा जाय। ये सुधारालय राज्य-सरकारों द्वारा इसलिए चलाये जाते हैं कि उनमें रहनेवालों को अनुशासन में रखा जा सके और उन्हें शिक्षा तथा औद्योगिक प्रशिक्षण दिया जा सके। न्यायालय को किसी किशोर-अपराधी को दंड न देने और उसके साथ नरमी का व्यवहार कर उसे यथोचित डाट-डपट के बाद छोड़ देने का भी अधिकार है। ऐसा अपराधी, अपने पिता या संरक्षक द्वारा जमानत सहित या उसके बिना ऐसा बंधन-पत्र (बाड) भर दिये जाने पर, कि वह अधिक-से-अधिक १२ महीने की अवधि में अपराधी के सदाचरण के लिए उत्तरदायी होगा, उसके सुपुर्द कर दिया जायगा। १५ वर्ष से कम उम्र के अपराधी के संबंध में, यदि वह लड़की हो तो, न्यायालय इस शक्ति का उपयोग कर सकता है।

न्यायालय को पहली बार अपराध करनेवाले व्यक्ति के साथ नरमी का व्यवहार करने का भी अधिकार है। उदाहरण के लिए २१ वर्ष से कम आयु के नवयुवक या ऐसी स्त्री के मामले में, जिसे किसी अपराध का दोषी ठहराया जा चुका हो, जिसके लिए अधिकतम सात वर्ष कारावास का दंड दिया जा सकता है, और उसके विरुद्ध पहले दोषी सिद्ध होने का कोई सबूत नहीं है, तो उस युवक या स्त्री को तीन वर्ष तक सदाचरण रखने की शर्त पर परिवीक्षा (प्रोबेशन) पर छोडा जा सकता है। इस शर्त को तोडने पर अपराधी को न्यायालय में उपस्थित होना पड़ेगा और दंड भुगतना पड़ेगा। किसी भी आयु के किसी भी व्यक्ति को, जिस पर चोरी, धोखादेही, धोखे से दुरुपयोग करने या ऐसा कोई अन्य अपराध, जिसके लिए अधिकतम सजा दो वर्ष तक की निश्चित हो, दोष-सिद्ध हो चुका हो तो उसे न्यायालय उचित डांट-डपट के बाद बिना शर्त छोड सकता है। किंतु यह मार्ग तभी अपनाया जायगा जब अपराध साधारण हो और अपराधी की स्थिति, उसका पूर्व आचरण और अन्य परिस्थितियां ऐसा करने का औचित्य सिद्ध करती हों। किशोरापराधियों तथा पहली बार अपराध करनेवालों के प्रति नरमी दिखाने का उद्देश्य यह है कि वे भविष्य में पक्के अपराधी न बन जायं और उन्हें अच्छे नागरिक बनने का अवसर दिया जा सके।

खुद अपराध करनेवाले व्यक्तियों के साथ वे अन्य व्यक्ति भी दंड-भागी हो सकते हैं जो उन्हें करने के लिए प्रेरणा देते हैं या प्रयत्न करते हैं या षड्यंत्र करते हैं। जिस अपराध को करने के लिए वे प्रेरणा दें, प्रयत्न करें या षडयंत्र करें, वह वास्तव में किया जाय या न किया जाय—वे फिर भी दंड-भागी हो सकते हैं।

व्यक्ति किसी चीज़ को करने की प्रेरणा तीन प्रकार से दे सकता है—किसी

अन्य व्यक्ति को उसे करने के लिए उकसा कर, एक या अधिक अन्य व्यक्तियों के साथ मिल कर उसे करने के लिए षड्यंत्र रच कर, और जान-बूझकर किसी अन्य व्यक्ति की उसे करने में सहायता करके।

उकसा कर प्रेरणा देने के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :

१. **ग** पर हमला करने या उसकी मानहानि करने के लिए **ख** को कुछ पैसा देकर **क** उकसाए।

२. **ख** को **क** इसलिए उकसाये कि वह **ग** पर हमला करने या उसे मानहानि करने के लिए **घ** को उकसाए।

३. **ख** एक नाजिर (बेलिफ) है जिसके पास **ग** को गिरफ्तार करने का वारण्ट है। **क** जान-बूझकर **घ** को गिरफ्तार किये जानेवाला व्यक्ति बता कर **ग** की जगह **ख** द्वारा **घ** को गिरफ्तार करवा दे।

उपरोक्त उदाहरणों में, जैसा मामला हो, उसके अनुसार **क** हमले, मानहानि और नाजायज (अवैध) गिरफ्तारी के अपराधों को प्रेरित करने का अपराधी है। अपराध चाहे किया जाय या न किया जाय, पर फिर भी **क** प्रेरित करने का अपराधी होगा। यदि अपराध करने के लिए उकसाया जानेवाला व्यक्ति **ख** अपराध करने से इन्कार भी कर दे तो भी **क** अपराधी होगा। कुछ मामलों में किसी कृत्य के लिए उकसाया गया व्यक्ति खुद किसी अपराध का अपराधी नहीं भी माना जाता। उदाहरण के लिए यदि **क** किसी बालक या पागल के हाथ में रिवाल्वर देकर, यह जानते हुए भी कि यदि रिवाल्वर चल गया तो **ख** की जान चली जायगी, उसे घोड़ा दबाने के लिए प्रेरित करता है तो **क** हत्या को प्रेरित करने का अपराधी है। लेकिन उक्त बालक या पागल व्यक्ति हत्या का अपराधी नहीं होगा।

यदि कोई व्यक्ति एक या अनेक अन्य व्यक्तियों के साथ मिल कर किसी अपराध को करने के लिए षड्यंत्र करता है तो वह अपराध प्रेरित करने का अपराधी होगा। किंतु वह अपराधी तभी बनता है कि जब षड्यंत्र के फलस्वरूप कोई कृत्य या अवैध अवकृत्य घटित हो जाय। उदाहरण के लिए, **क, ख** और **ग, घ** को विष दे **घ** की हत्या करने का षड्यंत्र रचते हैं, और उनकी दुरभिसंधि क्रियान्वित नहीं होती। लेकिन फिर भी, यदि **क, ख** या **ग** में से कोई भी औषधि-विक्रेता (केमिस्ट) के यहाँ जाकर जहर खरीद ले तो वे तीनों हत्या के अपराध को प्रेरित करने के अपराधी माने जायंगे। एक व्यक्ति भारत में रहता हुआ भी भारत से बाहर अपराध करने में उकसावा दे सकता है। जो व्यक्ति अपराध करता है या अपराध के लिए उकसाया जाता है, संभव है वह भारत से बाहर रहता हो और भारत के न्यायालय में उसे दंड न दिया सके। उदाहरणतः, **क** मदरास में रहता है, किन्तु वह पुर्तगाली बस्ती गोआ में रहने

वाले **ख** को **ग** की हत्या के लिए उकसाता है, या उससे मिलकर वैसा करने के लिए षड्यंत्र करता है अथवा उसकी सहायता करता है। ऐसी स्थिति में **क** पर मदरास में मुकदमा चलाया और दंड दिया जा सकता है, भले ही **ख** को मदरास मे दंड नही दिया जा सकता।

प्रेरित करने के अपराध के लिए दंड प्रेरणा के फलस्वरूप अपराध के किये जाने या न किये जाने के अनुसार अलग-अलग निश्चित किया जाता है। यदि अपराध सचमुच घटित हो जाता है तो प्रेरणा के लिए वही दंड दिया जाता है जो उस अपराध के लिए निश्चित है। यदि प्रेरणा के फलस्वरूप कोई अपराध घटित न हो, तो ऐसे कुछ अपराधो के लिए दंड की निश्चित व्यवस्था है। अन्य मामलों में यह अपराध के लिए निश्चित कारावास की अवधि की एक-चौथाई होगी। किन्तु यदि उकसावा देनेवाला व्यक्ति एक सार्वजनिक (सरकारी) सेवक हो, जिसका खुद का कर्त्तव्य ऐसे अपराध की रोकथाम करना है, तो उसके लिए कारावास की अवधि चौथाई न होकर आधी होगी। सहायता द्वारा प्रेरणा से अभिप्राय सक्रिय आचरण से है। किंतु कई बार निष्क्रिय आचरण भी दंडनीय होता है। उदाहरण के तौर पर, अपराध सबधी षड्यंत्र को छिपाने की स्थिति मे। अपराध की गुरुता के अनुसार ही दंड की सीमा निश्चित की जाती है।

अपराध के लिए किया गया निष्फल प्रयत्न भी दंडनीय है। उदाहरणतः **क ख** की जेब मे चोरी के लिए हाथ डालता है, जेब खाली है, किंतु फिर भी **क** तो चोरी के प्रयत्न का अपराधी है। उसी प्रकार **क ख** पर पिस्तौल चलाता है, गोली चूक जाती है, फिर भी **क** हत्या के प्रयत्न का अपराधी है। दंड इस प्रकार होता है—यदि प्रयत्न ऐसे अपराध के सबध मे है जिसके लिए निश्चित अवधि के लिए कालेपानी या कारावास के दंड की व्यवस्था है तो प्रयत्न के लिए उससे आधी सजा की व्यवस्था है। कई बार कुछ विशेष प्रयत्न सबधी अपराधों की स्थिति में दंड की विशेष व्यवस्था की जाती है।

अपराध के लिए प्रयास, समझौते, दुरभिसंधि आदि के लिए दंड

कई मामलों में तो दो या अधिक व्यक्तियो के बीच किसी अवैध कार्य को करने का समझौता मात्र भी अपराध माना जाता है। इस अपराध को अपराधिक षड्यंत्र (क्रिमीनल कान्सपिरेसी) कहते है। इससे सबद्ध व्यक्तियो को समझौता मात्र के लिए ही दंड दिया जा सकता है, भले ही षड्यंत्र कार्यरूप में परिणत हुआ हो या न हुआ हो अथवा उसे कार्यरूप में परिणत करने का प्रयत्न भी किया या न किया गया हो। अग्रलिखित मामलों में समझौता या षड्यंत्र अपराध हो जाता है, दंडनीय अपराध करने के उद्देश्य से किया षड्यंत्र। उदाहरणार्थ, यदि दो या अधिक व्यक्ति किसी की हत्या करने के लिए एक समझौता करते है तो चाहे वे सचमुच हत्या या उसके

लिए प्रयत्न मात्र भी करें या न करे, उन्हें दंड दिया जा सकता है। एक स्थिति वह हो सकती है जिसमें ऐसे कार्य के लिए षड्यंत्र किया गया हो जो स्वयं तो दंडनीय अपराध न हो लेकिन फिर भी वह षड्यंत्र अवैध कृत्य हो सकता है। अवैध कृत्य का मतलब है कोई ऐसा कृत्य जिसका कानून निषेध करे। उदाहरण के लिए, षड्यंत्र किसी अनैतिक अथवा सार्वजनिक हित के विपरीत कार्य करने के बारे में हो सकता है, जैसे वेश्यावृत्ति के लिए किसी स्त्री का हासिल करना, अंश-बाजार (शेयर मार्केट) में किन्हीं खास अंशों (शेयरों) की कीमत बढ़ाने के उद्देश्य से झूठी अफवाहें फैलाना। यदि किसी कृत्य से दीवानी मुकदमा उठ सकता हो तो ऐसा कृत्य अवैध होता है। किसी अन्य व्यक्ति के साथ किये संविदा (कांट्रैक्ट) को तोड़ने का षड्यंत्र एक अपराध होगा, जैसे नौकरी के संविदे के विरुद्ध काम करना बंद कर देना। किसी ऐसे कृत्य को, जो खुद अवैध नहीं है, करने का षड्यंत्र भी यदि उस कृत्य को गैर-कानूनी तरीकों से करने के लिए हो तो एक दंडनीय अपराध गिना जायगा। उदाहरण के लिए, यदि किसी कारखाने के कुछ कर्मचारी एकत्रित होकर मारपीट आदि की धमकी देकर अन्यों को हड़ताल करने के लिए उकसायें, तो यद्यपि यह उकसाने का कार्य स्वयं अवैध नहीं है, तथापि यहां जिस ढंग से यह किया गया है वह उसे अवैध बना देता है। षड्यंत्र विभिन्न प्रकार के होते हैं। अपराध के उद्देश्य से किया गया षड्यंत्र स्वयं ही दंडनीय है; किंतु ऐसे कार्य के लिए किया गया षड्यंत्र जो अपराध न होकर केवल अवैध कार्य हो तभी दंडनीय षड्यंत्र गिना जाता है जब उसके अनुसार उससे संबद्ध एक या अधिक व्यक्तियों द्वारा वह कार्य किया गया हो। जो दंडनीय षड्यंत्र ऐसे अपराध के लिए हो जिसकी सजा मौत, कालापानी, अथवा दो या उससे अधिक वर्ष की कड़ी कैद हो तो उसके लिए वही दंड होगा जो इन अपराधों में प्रोत्साहन या सहायता के लिए रखा गया है। अन्य स्थितियों में दंडनीय षड्यंत्र के लिए दंड छह महीने की जेल या जुर्माना या दोनों के रूप में रखा गया है। कुछ खास किस्म के अपराध करने के उद्देश्य से किये गए षड्यंत्रों के संबंध में दंड की विशेष व्यवस्था है। दंडनीय षड्यंत्र संबंधी अभियोग के चलाने के लिए उससे पूर्व राज्य-सरकार या चीफ प्रसिडेंसी मजिस्ट्रेट अथवा राज्य-सरकार से तत्संबंधी अधिकार प्राप्त जिला मजिस्ट्रेट की शिकायत जरूरी होती है।

कुछ सामान्य प्रतिवाद

अब हम कुछ उन सामान्य प्रतिवादों (बचावों) की चर्चा करेंगे जो सभी अपराधों पर लागू होते हैं। यदि कोई ऐसा प्रतिवाद मौजूद हो तो उस स्थिति में हुआ कृत्य अपराध नहीं होगा और उसे करनेवाले व्यक्ति को दंड नहीं दिया जा सकता। कुछ अपराधों (जैसे मानहानि) के लिए खास प्रतिवाद भी हैं। सामान्य प्रतिवाद ये हैं :—

१. आकस्मिक चोट, अर्थात् वह चोट जिसे व्यक्ति पहुंचाना नहीं चाहता था

और जो उसकी लापरवाही का परिणाम नहीं थी। उदाहरण के लिए **क** कुल्हाडी से पेड़ काट रहा है। अचानक कुल्हाडी का फाल निकलकर पास खडे व्यक्ति के लगता है जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है। यहा **क** ने कोई अपराध नही किया।

२. अपने कानूनी कर्त्तव्य या अधिकार का पालन। अपने निर्देशनाधिकारी (कमाण्डिग आफीसर) के आदेश के अनुसार एक सिपाही उपद्रवी भीड पर गोली चलाता है। हो सकता है कि उस अवसर पर गोली चलाना न्यायसंगत न हो, किंतु यह उस सिपाही का कोई अपराध नही है। इसी प्रकार किसी न्यायालय द्वारा जारी किये गए गिरफ्तारी के वारण्ट के अनुसार गिरफ्तारी करनेवाला व्यक्ति अपराधी नही है, भले ही न्यायालय ने वारण्ट निकालने में कोई भूल की हो।

३. न्यायिक कृत्य। अपने न्यायसबधी कर्त्तव्य का पालन करते हुए न्यायाधीश जो भी कहता या करता है वह अपराध नही है। इसमें कोई अतर नही पडता कि ऐसा करते या कहते समय वह उन अधिकारों का प्रयोग कर रहा था जो उसके पास नही थे। हां, इतना आवश्यक है कि न्यायाधीश ईमानदारी से यह समझे कि वह उन अधिकारों से युक्त है। यदि वह अपने अधिकार का दुरुपयोग करता है और जान-बूझ कर कोई अवैध कार्य करता है तो उसके पास कोई प्रतिवाद नही रह जायगा।

४. आवश्यकता। **क** अपने साथ लगे हुए मकान को इसलिए गिरा देता है कि आग और अधिक न फैले।

५. सात वर्ष की आयु से कम के बच्चे द्वारा किया गया कृत्य।

६. सात से ऊपर और बारह से नीचे की आयु का बच्चा, यदि वह अपने आचरण की प्रकृति और परिणामो को पर्याप्त रूप में नही समझता।

७. पागल व्यक्ति द्वारा किया गया कृत्य, बशर्तेकि उसका पागलपन इतना पूर्ण है कि वह अपने आचरण और उसकी अवैधता को नही समझता।

८. नशे में चूर व्यक्ति का कृत्य, बशर्तेकि वह नशा उसके बिना समझे या उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे कराया गया हो। किंतु जो व्यक्ति स्वय नशा करता है और फिर नशे की हालत में किसी को चोट पहुचाता है, उसे नही छोड़ा जा सकता।

९. अनुमति। यदि १८ वर्ष से ऊपर की आयु का कोई व्यक्ति मृत्यु के अतिरिक्त किसी चोट की अनुमति दे दे तो चोट पहुचानेवाला व्यक्ति अपराधी नही माना जायगा। किन्तु संबंधित व्यक्ति की अनुमति गर्भपात करानेवाले व्यक्ति के अपराध को क्षम्य नही कर सकती।

१०. लाभ। एक डाक्टर किसी मोटर दुर्घटना में घायल और बेहोश व्यक्ति का आपरेशन करता है। आपरेशन इतना गभीर हो सकता है कि संभव है उसमें व्यक्ति की मृत्यु हो जाय। यदि ऐसे आपरेशन के फलस्वरूप मृत्यु हो भी जाय

तो डाक्टर का कोई अपराध नही होता। किंतु हाँ, डाक्टर की उसे मारने की इच्छा नही होनी चाहिए। अलबत्ता, शरीर की काट-छांट की या गहरी चोट पहुँचाने की एक इच्छा हो सकती है, जैसे—जान बचाने के लिए शरीर का कोई अंग काट देने की इच्छा।

११. तत्क्षण मृत्यु की धमकी से मजबूर किया गया कृत्य। किंतु इस प्रतिवाद में किसी की हत्या करने के या राज्य के विरुद्ध अपराध करने के वे कार्य नही आते जिनके लिए मौत की सजा निश्चित है।

१२. हल्की या मामूली हानि जिसके लिए कोई साधारण व्यक्ति शिकायत नही करेगा।

१३. कोई व्यक्ति, जिसे कानूनी तौर पर किसी चीज को करने का अधिकार है, स्वाभाविकतया उसे करने पर दंडनीय नही हो सकता। यदि तथ्य की भूल से—किंतु कानून की भूल से नही—वह समझे कि उसका ऐसा अधिकार या कर्त्तव्य है, तो भी वह क्षम्य है। यदि कोई गैर-सरकारी व्यक्ति या पुलिस अधिकारी कोई ऐसी गिरफ्तारी करे जिसकी कानून उसे आज्ञा नही देता, तो ऐसा व्यक्ति अभ्याघात का अपराधी होगा। इस संबंध में उसकी कानून की अनभिज्ञता उसे नही बचा सकेगी। किंतु यदि **क** की गिरफ्तारी के वारण्ट के अनुसार, गिरफ्तार करने के लिए आया हुआ व्यक्ति, वास्तव में भूल से **ख** को गिरफ्तार कर लेता है तो वह क्षम्य है।

१४. शरीर और संपत्ति का बचाव। इसकी कुछ विशद व्याख्या आवश्यक है। कोई भी व्यक्ति दो सूरतों में अपने या दूसरे की शरीर व संपत्ति की रक्षा के लिए किसी को हानि पहुँचा सकता है। पहली सूरत यह है कि वह रक्षा के लिए जरूरत से ज्यादा हानि न पहुँचाये, और दूसरी यह कि उसके पास इस रक्षा के हेतु किसी सार्वजनिक अधिकारी के पास जाने का समय न हो। इन दो हालतों में कोई भी व्यक्ति आत्मरक्षा के लिए अपने पर ऐसा वार करनेवाले व्यक्ति को, जिससे सख्त चोट या मृत्यु का डर हो, मार भी सकता है। आत्म-रक्षा की अन्य जिन स्थितियों में हत्या न्यायसंगत मानी जा सकती है, वे हैं—बलात्कार, अप्राकृतिक अपराध या अपहरण के उद्देश्य से किये गए अभ्याघात या अनुचित रूप से इस प्रकार बंद करने का प्रयत्न, जिससे छूट के लिए सार्वजनिक अधिकारियों के पास जाना संभव न हो; डाका, रात को घर में सेंध लगाना या आगजनी। चोरी, शरारत या घर में गैर-कानूनी प्रवेश, जो ऐसी हिंसात्मक परिस्थितियों में किया गया हो, जिनसे मृत्यु या अन्य दारुण चोट का भय हो। कई बार आत्म-रक्षा के प्रयत्न में निरपराध व्यक्ति की भी हत्या हो जाती है। लोगों की एक भीड़ किसी पर टूट पड़ती है और उसे मारना चाहती है। हो सकता है कि वह आत्मरक्षा के लिए भीड़ पर गोली चलाये और किसी ऐसे निरपराध व्यक्ति या बच्चे को मार दे जो

उस भीड़ में पड गया हो। उपर्युक्त स्थितियों में से भिन्न स्थितियो में आत्म-रक्षा के प्रयत्न में की गई हत्या न्यायसंगत न होगी। हाँ, मृत्यु से कम अन्य कोई शारीरिक हानि न्यायसंगत हो सकेगी। किंतु यह हानि उसी सीमा तक पहुँचाई जा सकती है जहाँ तक आत्मरक्षा के लिए आवश्यक हो। यदि किसी जन-सेवक (पब्लिक सर्वेंट) का कोई कार्य या उसके आदेश से किया जानेवाला कार्य किसी व्यक्ति के लिए मृत्यु या दारुण चोट का भय उपस्थित नही करता तो उस व्यक्ति को जन-सेवक के विरुद्ध आत्म-रक्षा का कोई अधिकार प्राप्त नही है।

राज्य के प्रति अपराध
अध्याय ६, धारा
१२१-१०६

इस श्रेणी के अपराधों मे सबसे गंभीर अपराध भारत सरकार के विरुद्ध युद्ध छेडना है, अर्थात् सरकार के विरुद्ध किसी विद्रोह मे भाग लेना। धारा १२१ में इस प्रकार का विद्रोह करने पर, उसे प्रेरणा देने पर, या उसके लिए प्रयत्न करने पर, अपराधी के लिए जुर्माने सहित या उसके बिना मृत्यदंड या कालापानी तथा उसकी सारी सम्पत्ति के जब्त करने की व्यवस्था है।

धारा १२१ मे गिनाये गए अपराधों के सबध मे भारत या भारत से बाहर किये गए षड्यत्र के लिए तथा भारत या किसी राज्य की सरकार को जोर-जबर से या जोर-जबर दिखा कर भयभीत करने के लिए धारा १२१ क के अनुसार आजीवन या कम समय के लिए कालापानी अथवा जुर्माने सहित या उसके बिना दस वर्ष तक जेल की व्यवस्था की गई है। इस श्रेणी के अपराधों में एक और बड़ा अपराध उपजाप[1] (सिडीशन) का है। (धारा १२४ क)। इसका अभिप्राय यह है कि मौखिक अथवा लिखित शब्दो द्वारा या अन्यथा भारत सरकार के विरुद्ध घृणा का प्रचार करना अथवा जनता को उसके प्रति निष्ठाहीनता प्रदर्शित करने के लिए भड़काना। किंतु सरकार के किन्ही विशिष्ट कार्यो की निंदा करना उपजाप नही है। इसके अलावा, लिखित या मौखिक शब्द इस प्रकार के होने चाहिए जो राज्य की सुरक्षा को संकट में डाले तथा जिनकी प्रवृत्ति राज्य का तख्ता उलटने की ओर हो। केवल इसी प्रकार के मामलों में नागरिक के वाक्-स्वातंत्र्य पर रोक पडती है। उपजाप के लिए निर्धारित दंड है जुर्माना सहित या उसके बिना आजीवन या कम काल के लिए कालापानी, ३ वर्ष का जुर्माना सहित या उसके बिना कारावास या केवल जुर्माना। इस अध्याय में कुछ अन्य अपराध ये है—व्यक्ति, हथियार या गोला-बारूद एकत्रित करके या किसी अन्य प्रकार से युद्ध की तैयारी करना (दंड—आजीवन कालापानी, या दस वर्ष की जुर्माने सहित या उसके बिना कैद)। युद्ध संबधी दुरभिसधि का छिपाना (दंड—जुर्माने सहित या अन्यथा दस

---

१. उपजाप—विद्रोह की भावना पैदा करना, शासन के विरुद्ध राजद्रोह के अतिरिक्त अन्य प्रकार का प्रतिरोध पैदा करना, जो राजद्रोह से कम गंभीर हो।

बरस का कारावास)। भारत सरकार की मित्र या उससे शांति संबंध रखनेवाली किसी शक्ति के क्षेत्र में लूट-पाट मचाना या मचाने की तैयारी करना (दंड—जुर्माने के साथ या उसके बिना सात वर्ष का कारावास तथा अपराध के लिए प्रयुक्त संपत्ति की जब्ती)। जानकारी होते हुए भी अंतिम दो अपराधों में प्राप्त की गई सम्पत्ति को ग्रहण करना (दंड—उपरोक्त अपराधों के समान)।

इस अध्याय में गिनाये गए अपराधों के लिए तबतक मुकदमा नहीं चलाया जा सकता जबतक कि भारत सरकार या भारत सरकार द्वारा इस कार्य के लिए नियुक्त अधिकारी से ऐसा करने की पूर्व-आज्ञा न प्राप्त कर ली जाय।

सार्वजनिक शांति-विरोधी अपराध अध्याय ८, धारा १४१-१६०

इस वर्ग के मुख्य अपराध ये हैं—एक गैरकानूनी सभा या मंडली का सदस्य होना (६ महीने कैद, या जुर्माना, या दोनों); दंगा या उपद्रव करना (२ वर्ष, या जुर्माना, या दोनों); लड़ाई या मार-पीट अर्थात् दो या अधिक व्यक्तियों का किसी सार्वजनिक स्थान में लड़ाई करना (एक महीना, या जुर्माना या दोनों); यदि पांच या अधिक व्यक्ति निम्नलिखित उद्देश्यों में से किसी के लिए एकत्रित हों तो उनकी मंडली अवैध सभा हो जाती है—जोर-जबरदस्ती द्वारा, या जोर-जबरदस्ती की धमकी देकर केंद्रीय या राज्य सरकार, या संसद अथवा राज्य विधान सभा, या किसी सार्वजनिक सेवक को उसके कानूनी दृष्टि से जायज काम में भयभीत करना; किसी कानून के प्रचलित करने या कानूनी कार्यवाही के किये जाने का विरोध करना, जोर-जबरदस्ती या जोर-जबरदस्ती का भय दिखाकर किसी की सम्पत्ति पर कब्जा करना या उसे सम्पत्ति के अधिकार से अथवा किसी सुविधा के अधिकार से वंचित करना या उसे कुछ करने या न करने के लिए बाध्य करना; ऐसी मंडली या सभा जो आरम्भ में गैर-कानूनी न हो, बाद में गैर-कानूनी बन सकती है। ऐसा कोई भी व्यक्ति जो उस मंडली को गैर-कानूनी करार दिये जानेवाले कारणों से परिचित होता हुआ भी जान-बूझ कर उसमें शामिल होता है अथवा उसमें शामिल रहता है, वह उक्त अपराध करता है। यदि गैर-कानूनी सभा या मंडली का कोई व्यक्ति उस मंडली के सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के हेतु बल या हिंसात्मक साधनों का प्रयोग करता है तो उस मंडली का प्रत्येक व्यक्ति उपद्रव करने का अपराधी होता है। गैर-कानूनी मंडली का प्रत्येक व्यक्ति उस समूह के किसी भी अन्य व्यक्ति द्वारा किये जानेवाले अपराध के बदले दंड भोगने की जोखिम उठाता है—यदि उसे यह ज्ञान हो कि समूह के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ऐसे अपराध की संभावना थी। उदाहरण के तौर पर यदि पांच या अधिक व्यक्ति किसी भी सम्पत्ति पर जबरदस्ती कब्जा करने के लिए रवाना होते हैं और इस सिलसिले में होनेवाली लड़ाई के दौरान में उनमेंसे कोई किसी व्यक्तिको कत्ल कर देता है, तो ये सभी व्यक्ति

हत्या के, और साथ में उपद्रव करने के अपराधी होंगे। एक और उल्लेखनीय अपराध, जिसकी चर्चा धारा १५३ क में की गई है, वह है लिखित या मौखिक शब्दों द्वारा राज्य की प्रजा के विभिन्न वर्गों में घृणा या विद्वेष की भावना फैलाना (दंड—दो वर्ष या जुर्माना या दोनों)। इस अपराध के संबंध में मुकदमा चलाने के लिए भी राज्य के विरुद्ध भड़कानेवाले अपराध की भाँति राज्य सरकार या उसके द्वारा इस कार्य के लिए नियुक्त अधिकारी की मंजूरी लेना आवश्यक है। इस अध्याय में दिये गए अन्य अपराधों में घातक शस्त्रों के प्रयोग तथा दंगे को शांत करते जन-सेवक पर हमले आदि से जनित अवैध मंडली तथा दंगे भी शामिल हैं। किसी जमीन का मालिक या उस पर कब्जा रखनेवाला अथवा उसका अभिकर्ता (एजेंट) या उस जमीन का व्यवस्थापक (मैनेजर) यदि उस जमीन पर उपद्रव या गैर-कानूनी मंडली होने देता है तो उस पर १००० रुपये जुर्माना किया जा सकता है। ऐसे व्यक्तियों का यह कर्त्तव्य है कि वे तुरंत इस प्रकार की घटना की सूचना पास के थाने में दें और अपराधों के करने को रोकने के लिए तथा भीड़ को तितर-बितर करने के लिए व उपद्रव को दबाने के लिए सभी कानूनी उपायों को काम में लायें। यदि दंगा जमीन के मालिक या परिभोगी[1] के हित के लिए होता है तो उसे, उसके अभिकर्ता अथवा व्यवस्थापक को १००० रुपये से अधिक जुर्माने का दंड दिया जा सकता है।

जन-सेवकों द्वारा किये गए अथवा उनसे संबंधित अपराध
अध्याय ९ धारा
१६१-१७१

इस अध्याय में जनसेवकों के भ्रष्टाचार की समस्या पर विचार किया गया है और उनके द्वारा अवैध तुष्टि[2] प्राप्त करने के लिए दंड की व्यवस्था की गई है (तीन वर्ष, या जुर्माना, या दोनों)। जो व्यक्ति यह तुष्टि प्रदान करता है वह भी अपराध के प्रोत्साहन के लिए उसी प्रकार दंडनीय है। जन-सेवक वह है जो सरकार के विभिन्न कार्यों को करने के लिए सरकार की नौकरी में हो। 'जन-सेवक' शब्द से कुछ अन्य पदाधिकारियों का भी बोध होता है, जैसे ऐसा जूरी का सदस्य, दोषाकनकर्ता (एसेसर) या मध्यस्थ (आरबीट्रेटर) कि जिसके पास किसी न्यायालय या अन्य किसी जन-अधिकारी द्वारा कोई मामला भेजा गया हो। नगर-आयुक्त (म्युनिसपल कमीशनर) यद्यपि सरकारी नौकर न होकर नगरपालिका का नौकर होता है तथापि निर्वाचन का संचालन करने और निर्वाचक सूची तैयार करने का अधिकार रहने के कारण वह जन-सेवक कहलाता है। अवैध-तुष्टि प्राप्त करने का कार्य एक जन-सेवक द्वारा अथवा सार्व-

---

१. परिभोगी-उपभोग करनेवाला, धारण करनेवाला।
२. तुष्टि—गैर-कानूनी फायदा, रिश्वत आदि।

जनिक सेवक बनने की उम्मीद रखनेवाले किसी व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है। किंतु यदि कोई व्यक्ति जन-सेवक नहीं है या बनने की उम्मीद भी नहीं रखता वरन् झूठ-मूठ अपने-आपको वैसा प्रकट करता है तो उसे उक्त अपराध के लिए तो दंड नहीं दिया जा सकता किंतु धोखा देने के अपराध में दंड दिया जा सकता है। एक जन-सेवक, जो अवैध तुष्टि प्राप्त करने के लिए राजी हो जाता है या प्राप्त करने का प्रयास करता है, वह भी इसी प्रकार दंडनीय है। यह आवश्यक नहीं है कि अवैध तुष्टि रुपये-पैसे की शक्ल में ही हो या रुपये-पैसे में उसका अंदाजा लगाया जा सके। **क** नामक न्यायाधीश किसी बैंक के मैनेजिंग डाइरेक्टर के पक्ष में फैसला कर, यदि बदले में अपने भाई को उस बैंक में कोई जगह दिलवा देता है तो वह अवैध तुष्टि की प्राप्ति का अपराधी है। अपने प्रभाव से किसी सार्वजनिक सेवक को किसी सरकारी काम करने के लिए या न करने के लिए उकसाने के बदले तुष्टि प्राप्त करना भी इस अध्याय में दिये गए अन्य अपराधों में शामिल है (दंड—एक वर्ष की सादा कैद या जुर्माना, या दोनों)।

मानव शरीर के प्रति अपराध
अध्याय १६ धारा
२९९-३७७

इस वर्ग के अपराधों में सबसे गंभीर अपराध मनुष्य की हत्या करना अर्थात् प्राणघात (होमीसाइड) है। यह अपराध तीन प्रकार का है और प्रत्येक के लिए अलग-अलग सजा रखी गई है।

प्रथम—वध या हत्या (दंड—मृत्यु या आजीवन कालापानी, जुर्माने के साथ या बिना); द्वितीय—सदोष प्राणघात (कल्पेबल होमीसाइड)[1] या जिसे हत्या के तुल्य न माना जाय (आजीवन या दस वर्ष कालापानी और अपराधी के मस्तिष्क की दशा के अनुसार जुर्माना), तृतीय— बेतहाशा या लापरवाही से किये गए कृत्य के फलस्वरूप हत्या (दो वर्ष, या जुर्माना या दोनों)। गर्भस्थ बालक की हत्या प्राणघात में नहीं आती। वह एक दूसरा अपराध है। उक्त तीनों प्रकार के प्राणघात की आगामी तीन पैराग्राफों में चर्चा की गई है। शरीर के प्रति अन्य अपराध ये हैं—१८ वर्ष की उम्र से कम के व्यक्ति, पागल व्यक्ति, मिरगी से पीड़ित व्यक्ति, नशे में चूर व्यक्ति या मूर्ख व्यक्ति को आत्महत्या के लिए प्रोत्साहित या प्रेरित करना (दंड—यदि आत्महत्या हो जाय तो इसके लिए हत्यावाला दंड। उदाहरण—किसी बच्चे को जहर खाने के लिए उकसाना। किसी अन्य व्यक्ति को आत्महत्या के लिए प्रोत्साहित करना (यदि वह आत्महत्या करले तो दंड १० वर्ष, जुर्माने के साथ या बिना), हत्या का प्रयत्न (१० वर्ष, जुर्माने के साथ या बिना,

---

१. सदोष प्राणघात—दंडनीय प्राणघात

और यदि चोट आजीवन-कारावास-प्राप्त-व्यक्ति पहुंचाये तो उसके लिए वही दंड जो हत्या के लिए निश्चित है)। आत्महत्या का प्रयत्न (एक वर्ष सादा, या जुर्माना, या दोनों)। किसी स्त्री का गर्भपात कराना या स्त्री द्वारा स्वयं अपना गर्भपात करना जबकि ये कार्य स्त्री की जान बचाने के उद्देश्य से न किये गए हों (तीन वर्ष, या जुर्माना, या दोनों)। किंतु यदि स्त्री के शीघ्र बच्चा होनेवाला हो तो (दंड—सात वर्ष, जुर्माने के साथ या बिना)। स्त्री की सम्मति के बिना गर्भपात कराना (आजीवन, या दस वर्ष कालापानी, जुर्माने के साथ या बिना)। १२ वर्ष से कम आयु के बच्चे का उसके माता-पिता या संरक्षक द्वारा परित्याग, अर्थात् छोड़ देना (सात वर्ष, या जर्माना, या दोनों)। यदि इसके फलस्वरूप बच्चा मर जाय तो अपराध हत्या या सदोष प्राणघात का माना जायगा। किसी को जानबूझ कर आघात पहुचाना या उसे शारीरिक व्यथा, बीमारी या दुर्बलता से पीड़ित करना (एक वर्ष, या १००० रुपये, या दोनों)। किंतु आघात विषम हो, अर्थात् उसके फलस्वरूप अंग-क्षति हो जाय, उसकी देखने या सुनने की ताकत जाती रहे, सिर या चेहरा विकृत हो जाय, शरीर का कोई हिस्सा या जोड़ खराब हो जाय, या आघात ऐसा हो जिससे जिंदगी खतरे में पड़ जाय, या व्यक्ति २० दिन तक दारुण व्यथा से पीड़ित रहे, या अपना रोजमर्रा का काम न कर सके (सात वर्ष, जुर्माने के साथ या बिना)। सापकार अवरोध (बंधन)[1] अर्थात् किसी व्यक्ति को उसकी स्वतंत्र दिशा में जाने से रोकना (एक महीना सादा, या ५०० रुपये जुर्माना, या दोनों)। सापकार बंदीकरण[2] अर्थात् किसी व्यक्ति को किसी विशिष्ट सीमा से बाहर जाने से रोकना (१ वर्ष, या १०००रुपये जुर्माना, या दोनों)। अभ्याघात (एसॉल्ट) या वार, अर्थात् किसी के विरुद्ध, उसके द्वारा बिना किसी अचानक या भीषण उत्तेजना या उकसाहट के दिलाये हिंसात्मक बल का प्रयोग, यानी वह बल-प्रयोग जो जान-बूझकर और दूसरे व्यक्ति की अनुमति के बिना किया जाय, या ऐसे बल-प्रयोग की किसी चेष्टा आदि के प्रदर्शन द्वारा धमकी दी जाय (३महीने, या ५०० रुपये जुर्माना, या दोनों)। किसी व्यक्ति का अभिहरण (किडनैपिंग), अर्थात् उसकी बिना स्वीकृति के उसे भारत से बाहर ले जाना, १६ वर्ष से कम उम्र के नाबालिग बालक या १८ वर्ष से कम उम्र की नाबालिग बालिका का उसके न्याय-संगत संरक्षक के पास से अभिहरण करना (सात वर्ष कैद जुर्माने के साथ, या बिना, और यदि मामला गंभीर हो तो और अधिक)। किसी व्यक्ति का अपहरण (एबडक्शन), अर्थात् उसे बलपूर्वक या धोखे से फुसलाकर किसी स्थान से चलने के लिए बाध्य करना, यदि वह कार्य उसकी हत्या के लिए किया गया हो (आजीवन कालापानी,

---

१. रांगफुल रिस्ट्रेन
२. रांगफुल कनफाइनमेंट

या दस वर्ष का कठोर कारावास—जुर्माना सहित या बिना)। यदि वह कार्य उसके सदोष बंदीकरण के लिए हो (सात वर्ष, जुर्माना सहित या बिना)। किसी नाबालिग लड़की को वेश्यावृत्ति या अन्य अनैतिक कार्यों के लिए बेचना (१० वर्ष, जुर्माने के साथ, या बिना)। बलात्कार (रेप), अर्थात किसी स्त्री के साथ उसकी इच्छा-विरुद्ध या स्वीकृति के बिना या ऐसी स्वीकृति से, जो मृत्यु या आघात का भय दिखाकर, या जालसाजी से प्राप्त की गई हो, या ऐसी स्वीकृति से, जिसमें स्वीकृति देनेवाली स्त्री १६ वर्ष से कम आयु की हो, मैथुन (आजीवन कालापानी, या दस वर्ष जुर्माने के साथ, या उसके बिना)। यदि अपराधी खुद अपनी स्त्री से, जिसकी आयु १५ वर्ष से कम हो, बलात्कार करे (दो वर्ष, या जुर्माना, या दोनों)। किंतु इस संबंध में कृत्रिम व्यभिचार, अर्थात् किसी पुरुष, स्त्री या पशु के साथ अप्राकृतिक विषयभोग (आजीवन कालापानी, या दस वर्ष, जुर्माने के साथ, या बिना)।

यदि कोई व्यक्ति निम्नलिखित मन स्थितियों में से किसी एक के अधीन कोई ऐसा कृत्य करे जिससे किसी मनुष्य की मृत्यु हो जाय तो वह हत्या का अपराध करेगा। (१) मारे गए व्यक्ति को जान से मारने की भावना। उदाहरण—**क** जान से मारने की भावना से **ख** पर गोली चलाता है जिसके फलस्वरूप **ख** मर जाता है। यहां **क** हत्या का अपराधी है। (२) ऐसा शारीरिक आघात पहुंचाने की भावना, जिससे आघात पहुंचानेवाले की समझ में आघात-प्राप्त व्यक्ति की मृत्यु हो सकती है। **क** जानता है कि **ख** इतना बीमार है कि एक प्रहार से उसके मर जाने की संभावना है, किंतु वह उसे जान से नहीं मारना चाहता और न वैसा परिणाम चाहता है। अब यदि **क** **ख** पर प्रहार करता है और फलस्वरूप **ख** मर जाता है तो **क** हत्या का अपराधी है। इस दृष्टांत से दो मानसिक स्थितियों और ज्ञान का अंतर भी स्पष्ट हो जाता है। (३) किसी व्यक्ति को ऐसा शारीरिक आघात पहुंचाने की इच्छा, जो सामान्य रूप से मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त हो। **क** **ख** को तलवार से ऐसा आघात पहुंचाता है जो सामान्य रूप से व्यक्ति की मृत्यु का कारण बन सके। **ख** मर जाता है। **क** हत्या का अपराधी है, भले ही वह हत्या नहीं करना चाहता था और न उसे इस बात का ज्ञान था कि उसके कार्य का परिणाम **ख** की मृत्यु होगा। (४) यह ज्ञान कि किया जानेवाला कृत्य इतना अधिक खतरनाक है कि इस बात की पूरी सम्भावना है कि उसका फल हत्या होगा। **क** बिना किसी कारण भीड़ पर गोली चलाता है और भीड़ के किसी व्यक्ति को मार देता है। यह हत्या का अपराध है, भले ही **क** उस व्यक्ति को, या वास्तव में किसी व्यक्ति को मारना नहीं चाहता था। (५) यदि ऐसी भावना या ज्ञान मौजूद हो कि उसके अनुसार किये कृत्य का परिणाम ऊपर की भांति हत्या हो तो चाहे उससे मृत्यु किसी अवांछित व्यक्ति की ही हो, तो भी वह हत्या का

अपराध माना जायगा। **क ख** को अंधेरे में गोली का निशाना बनाने निकलता है, किंतु बदले में **ग** को निशाना बना देता है। **क** हत्या का अपराधी है। उपर्युक्त पाचो स्थितियो मे अपराध हत्या का है।

ऊपर निर्दिष्ट मनःस्थितियो में की गई हत्या कुछ विशिष्ट सापवाद दशाओ में हत्या नही होगी। ऐसी दशाओं मे हत्या हत्या न होकर सदोष प्राणघात हो सकती है। अपवाद की ये दशाएं पाच हैं—(१) एक व्यक्ति द्वारा दूसरे की उस समय हत्या जबकि वह दूसरे व्यक्ति द्वारा अचानक इस प्रकार भीषण रूप से उत्तेजित कर दिया जाय कि वह अपने आपे में न रहे। यह आवश्यक है कि अपराधी ने यह उत्तेजना दूसरे की हत्या करने, या उसे शारीरिक क्षति पहुंचाने का बहाना ढूढने के लिए उस व्यक्ति को पहले स्वय उत्तेजित कर बदले मे न प्राप्त की हो और न यह उत्तेजना किसी व्यक्ति के कानूनी कर्त्तव्य-पालन या पद-सबधी कार्य के करने या किसी व्यक्ति के आत्मरक्षा-सबधी अधिकार के प्रयोग से उत्पन्न या उस पर आधारित हो।

(२) एक व्यक्ति अपने शरीर या सपत्ति की रक्षा के लिए अपने अधिकार की सीमा से निकल कर कार्य करता है और दूसरे की हत्या कर देता है, भले ही वह काम ईमानदारी का हो।

(३) एक जन-सेवक या सार्वजनिक न्याय की प्रगति में उसे सहायता देने वाला व्यक्ति अपनी शक्ति का सीमा से अधिक, किंतु ईमानदारी से प्रयोग करता है, जिससे दूसरे की हत्या हो जाती है।

(४) किसी अचानक लडाई मे बिना किसी पूर्वविचार के हुई हत्या; किंतु इसमें अपराधी ने नाजायज फायदा न उठाया हो या क्रूर व्यवहार न किया हो। उदाहरण के लिए यदि उसके पास आग्नेयास्त्र (बन्दूक आदि) हो तथा दूसरे के पास कुछ न हो, और उसने बिना पर्याप्त उत्तेजना के जैसे, जबानी गाली-गलौज पर गोली चला दी हो, तो वह हत्या का ही अपराधी होगा। इसी प्रकार यदि उसने दूसरे के साथ नृशंसता का वर्ताव किया हो, जैसे उस पर चाकू लेकर टूट पडा हो तो भी वह हत्या का अपराधी होगा।

(५) मरनेवाला व्यक्ति १८ वर्ष की आयु से अधिक हो, और उसने मृत्यु झेली हो या मृत्यु की जोखिम उठाना स्वीकार किया हो। यदि मारने का काम उपर्युक्त अपवादों की दशाओं में हुआ हो तो यह कृत्य हत्या का नहीं वरन् हत्या से भिन्न सदोष प्राणघात का है। इस अपराध (हत्या) की आवश्यक शर्त यह है कि कार्य इस इच्छा से या ज्ञान से किया हो कि उसका परिणाम किसी की मृत्यु होगी या हो सकती है। इस अपराध का दंड अपराधी की मनःस्थिति के अनुसार दिया जाता है। यदि अपराधी की इच्छा हत्या करने की थी या ऐसा कार्य करने की जिससे हत्या हो सके, तो उसके लिए आजीवन कालापानी, या दस वर्ष

कारावास जुर्माने के साथ, या बिना, का दंड निश्चित है। यदि उसकी इच्छा हत्या करने की नहीं थी, किंतु उसे यह ज्ञात था कि उसके कार्य का परिणाम हत्या हो सकता है, तो उसे दस वर्ष की जेल, या जुर्माना, या दोनों, का दंड दिया जा सकता है।

तेजी या लापरवाही के काम से की गई किसी की हत्या, जिसमें इच्छा या ज्ञान का लेश न हो, तीसरे प्रकार का प्राणघात है, जैसे एक बेतहाशा तेजी से मोटर चलानेवाले व्यक्ति के द्वारा भीड़वाले मार्ग पर किसी की हत्या, या एक नाविक द्वारा नौका का बेतहाशा भर लेना और गहरी नदी में उसके डूबने की दुर्घटना करना।

इस जरा लम्बे अध्याय के मुख्य-मुख्य अपराध और उनके लिए निर्धारित दंड ये हैं—चोरी (तीन वर्ष, या जुर्माना, या दोनों)। सम्पत्ति या मूल्यवान प्रत्याभूति (सीक्योरिटी) का हथियाना (चोरी वाला दंड); लूटमार (दस वर्ष और जुर्माना); डाका (लूटमार वाला दंड); सम्पत्ति का आपराधिक दुर्विनियोग अर्थात् गलत इस्तेमाल या खर्च, (दस वर्ष, या जुर्माना, या दोनों); चोरी की चीज लेना (विश्वासघात वाला दंड); दाता को धोखा देने के उद्देश्य से सम्पत्ति का बदनीयती से इधर-उधर कर देना (दो वर्ष, या जुर्माना, या दोनों); शरारत या उत्पात (तीन महीने, या जुर्माना, या दोनों); आपराधिक अतिक्रमण, अर्थात् किसी को त्रास पहुचाने, खिझाने या उसका अपमान करने की इच्छा से उसकी सम्पत्ति का अतिक्रमण या उनमें दखल (तीन महीने, या ५०० रुपये, या दोनों); अनधिकार गृह-प्रवेश अर्थात् मकान, डेरे या जहाज, जो मनुष्य के रहने के काम आता है—या पूजा-पाठ के या धन-सम्पत्ति रखने के काम में आने वाले मकान—में अनधिकार प्रवेश (एक वर्ष, या १००० रुपये, या दोनों); मकान में सेंध लगाना (दो वर्ष और जुर्माना); ऐसे किसी खोल या संदूक आदि का तोड़ना, जिसमें धन-सम्पत्ति रखी हुई हो (दो वर्ष, या जुर्माना, या दोनों)। इनमें से कुछ अपराधों को स्पष्ट करने के लिए कुछ विस्तृत विवरण की आवश्यकता है।

सम्पत्ति के अपराध
अध्याय १७
धारा ३७८–४६८

चोरी, आपराधिक विश्वासघात और आपराधिक दुर्विनियोग के अपराध देखने में एक जैसे लग सकते हैं किंतु वे वास्तव में भिन्न हैं। चोरी का अपराध तब होता है जब कोई व्यक्ति बेईमानी से किसी की चल-सम्पत्ति उसके कब्जे से लेना चाहता है और उसे अधिकारी की बिना स्वीकृति के हटाता है। यह बात इन उदाहरणों से अधिक स्पष्ट हो जायगी। **क** टेनिस खेलते समय अपने ड्राइवर को अपनी घड़ी दे देता है। ड्राइवर घड़ी लेकर भाग जाता है। वह चोरी का अपराधी है। (२) कोई व्यक्ति **क** नामक घड़ीसाज को अपनी घड़ी मरम्मत के लिए सौंपता है। **क** उसे लेकर भाग जाता है। यहां **क** विश्वासघात का अपराधी

है न कि चोरी का। यह इसलिए है कि घडी उस समय **क** (घड़ीसाज) के कब्जे में थी और उसने उसे किसी अन्य के कब्जे से अलग नही किया। (३) **क** को एक घड़ी सडक पर पडी मिलती है और वह उसे घर ले जाता है। बाद मे क को यह मालूम होता है कि घडी का मालिक उसे माग रहा है। वह घडी अपने पास रख लेता है या उसे लेकर भाग जाता है—यहा **क** आपराधिक दुर्विनियोग का अपराधी है। उसने चोरी नही की, क्योकि जब उसे घडी मिली उस समय उसका मालिक उसे खो चुका था और वह किसी के कब्जे मे नही रही थी। वह विश्वास-घात का अपराधी नही है क्योकि उसे घडी सौपी नही गई थी। अलबत्ता इन तीनों अपराधों मे एक सामान्य तत्व है, और वह यह कि तीनो ही अपराध बदनीयती पर या किसी अन्य की सम्पत्ति को, या जो सम्पत्ति अपनी न हो उसे हडपने की इच्छा पर आधारित है। खोई हुई घडी के उपर्युक्त उदाहरण मे यह हो सकता था कि **क** उसे मागनेवाले के सही मालिक होने पर शक कर सकता था और तब वह उसे घड़ी देने से इन्कार कर सकता था। ऐसी स्थिति मे वह किसी दडनीय अपराध का अपराधी न होता। हा, ऐसी स्थिति में उस पर अदालत मे हर्जाने के लिए दावा चलाया जा सकता है। कोई भी व्यक्ति खुद अपनी सम्पत्ति को चुराने पर भी चोरी का अपराधी हो सकता है। उदाहरणत: **क** अपनी घडी **ख** के पास गिरवी रखता है और कुछ कर्ज लेता है। फिर बिना कर्ज चुकाये वह **ख** के पास से बिना उसकी स्वीकृति के घडी ले लेता है।

विहापन. लूट और डाके के अपराध एक वर्ग मे आते है। विहापन का अपराध उस समय होता है जब कि किसी व्यक्ति विशेष को या किसी अन्य व्यक्ति को चोट आदि पहुचाने का भय दिखा कर उस व्यक्ति विशेष से कुछ सम्पत्ति या प्रत्याभूति हथिया ली जाय। यहा भी बेईमानी की इच्छा का होना जरूरी है। लूट वह चोरी या झपट है जो किसी को मारकर, चोट पहुचाकर या उसे नाजायज तौर पर रोककर या इन कामो का प्रयत्न करके अथवा फौरन मारने, चोट पहु-चाने या सदोष अवरोध का भय दिखाकर की जाती है। जब पाच या अधिक व्यक्ति मिलकर लूट का काम करते है तो वह डाका कहलाता है। ये पाचो आदमी स्वय डाका डालनेवाले या इनमे से कुछ डाका डालनेवाले और कुछ प्रोत्साहन, सहायता आदि देनेवाले भी हो सकते है। यदि डाका डालते समय गिरोह का कोई भी सदस्य किसी की हत्या कर देता है तो सभी हत्या के अपराधी होते है।

चोरी के माल को लेने का अपराध तब होता है जबकि कोई व्यक्ति चोरी के माल को जान-बूझकर या वैसा समझने के कारणो को जानता हुआ लेता है या रखता है। इसमे बदनियती अवश्य होनी चाहिए। चोरी के माल से मतलब वह माल जो चोरी, विहापन, लूट, आपराधिक विश्वासघात या आपराधिक दुर्विनियोग द्वारा प्राप्त किया गया हो।

वंचना या धोखा देने (चीटिंग) का अपराध तब होता है जबकि किसी व्यक्ति को छल द्वारा सम्पत्ति से पृथक् होने के लिए प्रलोभित किया जाय, या उसे किसी ऐसे कार्य के करने या न करने के लिए प्रलोभित किया जाय जिसे वह न छले जाने की स्थिति में न करता। कार्य का करना या न करना ऐसा होना चाहिए जो शरीर, मस्तिष्क, प्रतिष्ठा या सम्पत्ति को क्षति या हानि पहुंचाये या पहुंचा सकता हो। **क** झूठ-मूठ यह प्रकट करता है कि वह एक उच्च अधिकारी है और कीमत न चुकाने की भावना से कुछ सम्पत्ति उधार खरीदता है। इस स्थिति में **क** वंचना या धोखा देने का अपराधी है। **क ख** से कुछ रुपया उधार लेता है और उस समय उसकी भावना रुपया वापस लौटाने की नही है। वहाँ वह वंचना का अपराधी है, किन्तु यदि **क** की उस समय ऐसी बेईमानी की भावना नहीं थी, किंतु कर्ज लेने के बाद वह उसे लौटाने में असमर्थ रहता है या लौटाना नही चाहता तो वह वंचना का अपराधी नही है।

शरारत या उत्पात का अपराध तब होता है जब किसी की सम्पत्ति को नष्ट किया जाय या ऐसा कार्य किया जाय जिससे उसकी सम्पत्ति नष्ट हो जाय या उसकी कीमत अथवा उपयोगिता घट जाय। अपराध के लिए यह आवश्ययक है कि अपराधी की किसी दूसरे व्यक्ति या जनता को अनुचित या सापकार हानि अथवा क्षति पहुचाने की भावना हो। **क ख** को नुकसान पहुचाने की भावना से उसकी अंगूठी नदी में फेक देता है। **ख** इस उद्देश्य से कि कही उसका साहूकार या जिसके प्रति वह ऋणी है, वह व्यक्ति अपनी डिगरी के भुगतान में उसकी अंगूठी न ले ले, उस अगूठी को नदी में फेक देता है। **क** अग्नि के विरुद्ध अपने मकान का बीमा कराने के बाद उसमे आग लगा देता है ताकि बीमा करनेवालों को हानि पहुंचे और उसे लाभ हो। **क** किसी तालाब का जल-कपाट इस उद्देश्य से खोल देता है कि उसका पानी कम हो जाय और दूसरे की फसल को पानी कम पहुंचे। ये सब उदाहरण शरारत या उत्पात के है।

घर की सीमा का उल्लघन करनेवाला व्यक्ति घर में सेध लगाने का अपराधी माना जाता है, किंतु उसका घर में प्रवेश संहिता में निर्दिष्ट प्रकार का होना चाहिए, जैसे, दीवार पर चढ़कर, या उसमें सूराख करके। यदि वह घर में रहकर अपराध करने के बाद उसी प्रकार से घर से निकलता है तो भी वह उक्त अपराध का करनेवाला माना जाता है।

इस अध्याय के प्रमुख अपराध तथा दंड है—जालसाजी (दो वर्ष, या जुर्माना, या दोनों); जाली दस्तावेज को जाली जानते हुए या उसका जाली होना सिद्ध करनेवाले कारणों के जानते हुए उसे असली दस्तावेज के रूप में इस्तेमाल करना (वही दंड जो जालसाजी के लिए निश्चित है); किसी क्लर्क, अधिकारी या नौकर द्वारा हिसाब का झूठा बनाना (सात वर्ष, या जुर्माना, या दोनों); झूठा

व्यापारिक चिह्न (ट्रेडमार्क) या सम्पत्ति चिह्न इस्तेमाल करना (एक वर्ष, या जुर्माना, या दोनों); जालसाजी का अपराध तब होता है जबकि धोखा देने या बेईमानी की भावना से कोई झूठा दस्तावेज तैयार किया जाय। यह भावना कई उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हो सकती है, जैसे जनता को या किसी एक व्यक्ति को नुकसान पहुचाना, या किसी दावे या अधिकार का समर्थन करना, या किसी व्यक्ति को सम्पत्ति से जुदा करना अथवा कोई संविदा (कान्ट्रेक्ट) करना। भावना किसी अन्य प्रकार का धोखा देने की भी हो सकती है। जब कोई व्यक्ति किसी कागज या दस्तावेज पर दूसरे व्यक्ति की स्वीकृति या अधिकृति के बिना उसके हस्ताक्षर करता है या उसका चिह्न या मोहर लगाता है तो ऐसा अपराध सामान्यतः जालसाजी का अपराध कहलाता है। उसके इस कार्य के पीछे बेईमानी का प्रयोजन होना चाहिए। जालसाजी और दूसरे तरीकों से भी की जा सकती है। जैसे, किसी कागज में एक-आध या अधिक शब्द या अंक जोड़ देना या उनमें परिवर्तन कर देना। किसी व्यक्ति से ऐसी स्थिति में किसी कागज पर हस्ताक्षर करवा लेना या उसकी मोहर लगवा लेना जबकि उस कागज के विषय या उसमें किये गए परिवर्तन के प्रकार का उसे कुछ पता न हो। उदाहरण के रूप में **क** एक खाली या अपूर्ण चेक, जिस पर उसके हस्ताक्षर थे और जिसका पैसा उसके धारक या वाही को मिल सकता था, छोड़ गया था। यदि **ख** उसे लेकर उसमें एक हजार रुपये की रकम भर देता है तो **ख** जालसाजी करता है। यदि **क** ने अपने क्लर्क को यह आदेश दिया था कि वह उसमें अधिक-से-अधिक १,००० रुपये की राशि लिख दे और **ख** चेक को पूरा कर देता है और उसमें १०,००० रुपये की राशि लिख देता है तो **ख** जालसाजी का अपराध करता है। यदि **क** ने चेक १,००० रुपये का बनाया था और **ख** उसमें परिवर्तन कर उसे १०,००० रुपये का बना देता है तब भी **ख** जालसाजी का अपराध करता है। एक व्यक्ति के अपने हस्ताक्षर भी जालसाजी के हो सकते हैं। **क** एक हुंडी पर अपने नाम के हस्ताक्षर करता है जिसके पीछे भावना यह है कि लोग यह विश्वास करें कि हुंडी उसी नाम के किसी और व्यक्ति ने लिखी है तो **क** जालसाजी का अपराधी है।

दस्तावेज, व्यापार-चिह्न और सम्पत्ति-चिह्न अध्याय १८, धारा ४६३, ४८९

प्रमुख अपराध हैं—दो विवाह करना (सात वर्ष, जुर्माने के साथ, या बिना); जारकर्म अर्थात् पर-स्त्रीगमन (पांच वर्ष, या जुर्माना या दोनों)। किसी स्त्री को, इस उद्देश्य से कि वह किसी भी व्यक्ति के साथ प्रतिसिद्ध संभोग करे, बहका कर ले जाना (दो वर्ष, या जुर्माना, या दोनों)। दो विवाह करने का अपराध तब होता है जबकि कोई व्यक्ति, जिसका पति या

विवाह-संबंधी अपराध अध्याय २०, धारा ४९३-४९८

जिसकी पत्नी जीवित हो, दूसरा विवाह करले और जिसकी वह विवाह ऐसी स्थिति में निरर्थक हो। उदाहरण के लिए एक ईसाई एक ही जीवित पत्नी रख सकता है और यदि वह एक पत्नी के रहते फिर विवाह करता है तो उसका दूसरा विवाह बेमानी होता है और वह उक्त अपराध करता है। इन्हीं परिस्थितियों के अन्तर्गत एक हिंदू या मुसलमान पुरुष अपराध नहीं करता, क्योंकि उसका धर्म उसे एक से अधिक भी पत्नियां रखने की इजाजत देता है। लेकिन एक हिंदू जो बंबई या मद्रास राज्य का निवासी हो, वह यदि ऐसी स्थिति में दूसरा विवाह करे, तो वह वहां हाल ही में पास किये गए कानून के अन्तर्गत अपराध का कर्ता होगा। एक हिन्दू जो अपनी धार्मिक प्रथा के अनुसार अपना विवाह नहीं करता वरन विशेष-विवाह-विधेयक के अन्तर्गत अपना विवाह करता है वह, यदि अपनी पत्नी के जीवित रहते हुए दूसरा विवाह करे, तो द्वि-विवाह का अपराधी होगा। अपने पति के जीवन-काल में दूसरा विवाह करनेवाली हिन्दू या मुसलमान स्त्री द्वि-विवाह की अपराधी होगी। किन्तु यदि किसी उपयुक्त न्यायालय द्वारा किसी स्त्री या पुरुष का पूर्व विवाह निरर्थक घोषित किया जा चुका हो तो वह फिर विवाह कर सकता है, या यदि किसी स्त्री या पुरुष, जिसका पति या जिसकी पत्नी गायब हो और जिसके बारे में सात या अधिक वर्ष से कोई सूचना न मिली हो, वह विवाह कर सकता है और उस स्थिति में वह द्वि-विवाह का अपराधी नहीं होगा। लेकिन व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह विवाह होने से पूर्व दूसरे पक्ष को अपनी जानकारी में आये हुए तमाम तथ्यों को सही तौर पर बतादे। पर-स्त्रीगमन का अपराध तब होता है जबकि कोई व्यक्ति किसी अन्य की स्त्री से या उस स्त्री से जिसके संबंध में उसके पास यह विश्वास करने के कारण हो कि वह अन्य की स्त्री है, सम्भोग करे, जिसमें उस अन्य की स्वीकृति या सहायता हो। यदि सम्भोग में स्त्री की स्वीकृति नहीं है तो अपराध पर-स्त्रीगमन न होकर बलात्कार का होगा। जबकि पुरुष पर-स्त्रीगमन का अपराधी होता है, स्त्री इस अपराध के लिए या उसमें प्रोत्साहन या प्रेरणा देने के लिए दंड की भागी नहीं होती।

मानहानि
अध्याय २१, धारा
४९९-५०२

यदि कोई व्यक्ति कथित या लिखित शब्दों या अन्य किसी व्यंजना द्वारा ऐसा आरोप लगाता है या प्रकाशित करता है जिससे वह किसी की प्रतिष्ठा को हानि पहुंचाना चाहता है, या जिससे वह समझता है कि किसी की प्रतिष्ठा को हानि पहुंच सकती है, तो वह मानहानि (डिफेमेशन) का अपराध करता है (दंड दो वर्ष, सादा या जुर्माना, या दोनों)। मानहानिकृत व्यक्ति उस पर हर्जाने के लिए दीवानी दावा भी कर सकता है। उस मानहानि में जो अपकार का तत्व होता है उसकी चर्चा सामान्य-अधिकारों के अध्याय में विशद रूप से की गई है। हर्जाने के लिए चलाये गए वाद और मान-

हानि के लिए चलाये गए आपराधिक अभियोग में एक महत्त्वपूर्ण अंतर है। पहले में प्रतिवादी के लिए यह सिद्ध करना एक अच्छा प्रतिवाद है कि जिन शब्दों के संबंध में शिकायत की गई है वे सत्य हैं। दूसरे में प्रतिवादी केवल उन शब्दो की सत्यता सिद्ध कर दंड से नही बच सकता। उसे यह भी दिखाना होगा कि उन शब्दो द्वारा जो आरोप उसने लगाया है या प्रकाशित किया है वह सार्वजनिक लाभ के लिए है।

अपराधों के अन्य वर्ग

स्थल, जल और वायु सेना (अध्याय ७) के विरुद्ध अपराध—जैसे इन सेनाओं के सदस्यों द्वारा विद्रोह के लिए प्रेरणा देना (दंड—यदि प्रेरणा के फल-स्वरूप विद्रोह सचमुच हो जाय तो मृत्यु-दंड. आजीवन कालापानी या १० वर्ष,—जुर्माने के साथ या बिना; अन्यथा मत्यु को छोडकर अन्य दंड); चुनाव सबंधी अपराध (अध्याय ९–क), चला किसी व्यक्तिको वोट डालने के लिए रिश्वत या अन्य तुष्टि प्रदान करना (१ वर्ष, या जुर्माना, या दोनों); सरकारी कर्मचारी की कानूनी सत्ता की अवज्ञा (अध्याय १०) जैसे किसी सरकारी कर्मचारी के कानूनी आदेश, निर्देश या सम्मान का पालन न करना (१ महीना सादा या ५०० रुपया जुर्माना, या दोनो); सरकारी कर्मचारीको झूठी सूचना देना (६ महीने सादा, या ५०० रुपये, या दोनों); यदि सूचना किसी अपराध के सबंध में हो (दो वर्ष, या जुर्माना, या दोनो); सार्वजनिक न्याय के विरुद्ध अपराध (अध्याय ११), जसे—किसी न्यायालय, पंच या सरकारी कर्मचारी के सामने शपथ लेकर झूठी गवाही देना या ऐसी गवाही गढना (यदि ऐसा न्यायालय के सामने किया गया हो तो सात वर्ष, जुर्माने के साथ या बिना, अन्यथा तीन वर्ष, जुर्माने के साथ या बिना); न्यायालय की अवज्ञा, जैसे जानबूझ कर किसी न्यायाधीश का अपमान या उसके काम में बाधा डालना (६ महीने सादा, या १००० रुपया, या दोनो); टंकण (सिक्का बनाने), सरकारी मुद्रांक (स्टांप), चलार्थ (करेंसी) और बैंक-नोटों सबधी अपराध, जैसे जाली नोट या जाली सिक्का बनाना (यदि सिक्का भारत का हो तो आजीवन कालापानी, १० वर्ष जुर्माने के साथ या बिना। यदि सिक्का किसी अन्य राज्य का हो तो ७ वर्ष—जुर्माने के साथ या बिना); माप और तौल सबंधी अपराध (अध्याय १३), जैसे झूठे माप या तौल का इस्तेमाल करना (१ वर्ष. या जुर्माना, या दोनो); सार्वजनिक स्वास्थ्य, सुरक्षा, सुविधा और नैतिकता संबंधी अपराध, जैसे सार्वजनिक उद्वेग, (कंटक या अशातिजनक कार्य), खतरनाक चीजों व जानवरों का असावधानीपूर्ण प्रबंध, अश्लील पुस्तकों व पदार्थों का वितरण; धर्म संबंधी अपराध (अध्याय १५), यथा पूजा के स्थान को अपवित्र करना (२ वर्ष, या जुर्माना, या दोनों); भारत के किसी वर्ग के लोगों के धर्म या उनकी भावना का द्वेषपूर्वक अपमान करना (दो वर्ष, या जुर्माना, या दोनों); सेवा-संबंधी संविदे का सापराध (आपराधिक)

व्यतिक्रम (अध्याय १७), जैसे शारीरिक अयोग्यता के कारण। नि:सहाय किसी व्यक्ति की सेवा-शुश्रूषा करने या उसके लिए जरूरत की चीजें उपस्थित करने के संविदे का पूरा न करना (३ महीने, या २५० रुपये, या दोनों); आपराधिक काम करना, अपमान करना या बाधा उपस्थित करना (अध्याय २२), जैसे किसी व्यक्ति को चोट की धमकी देना, जानबूझ कर किसी का अपमान करना और उसके द्वारा ऐसी उत्तेजना पैदा करना जिससे शांति के भंग होने की संभावना हो (२ वर्ष या जुर्माना, या दोनों)।

विशेष कानूनों के अन्तर्गत अपराध

समय-समय पर अपराधों के लिए दंड निर्धारित करनेवाले अनेक विशेष कानून पास किये गए हैं। २६ जनवरी १९५० से पूर्व वे केन्द्रीय विधानमंडल या प्रांतीय विधानमंडलों द्वारा पास किये गए थे। उक्त तिथि के बाद वे संसद या राज्य-विधानमंडलों द्वारा पास किये गए हैं। आजकल राज्य को जो कार्य करने पड़ते हैं तथा जो उत्तरदायित्व निभाने पड़ते हैं उनकी बहुत अधिकता हो जाने के कारण विभिन्न स्थानों पर काम करनेवाले व्यक्तियों के आचरण का नियमन करने तथा ऐसा नियमन करनेवाले उपबंधों की अवहेलना करने पर दंड की व्यवस्था करनेवाले कानूनों की संख्या भी बड़ी तेजी के साथ बढ़ती जा रही है। इनमें से कुछ कानूनों की यहाँ चर्चा की गई है।

जन-शांति तथा सुरक्षा की रक्षा करने के निमित्त बनाये गए कानूनों में ये कानून आते हैं—१८७० का अस्त्र-अधिनियम (आर्म्स एक्ट)। यह कानून लाइसेंस के बिना अस्त्रों के स्वामित्व, निर्माण, खरीद और बिक्री को दंडनीय घोषित करता है। (दंड—तीन वर्ष, या जुर्माना, या दोनों)। अस्त्रों में केवल गोली-बारूद वाले अस्त्र ही नहीं आते, अपितु तलवार, फरसा अथवा संगीन भी आ जाते हैं। बम बनाने और इस्तेमाल करने के लिए भारी दंड है (२० वर्ष का कालापानी या ७ वर्ष का कारावास—जुर्माने सहित या बिना)।

सामाजिक तथा धार्मिक सुधार के उपायों को लागू करना भी आजकल राज्य के कर्तव्यों में ही आता है। उदाहरण के लिए, अस्पृश्यता के आधार पर मन्दिरों में उपासना; होटलों, दूकानों तथा सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश तथा उनमें मौजूद बर्तनों तथा चीजों के उपयोग; कुंओं, तालाबों तथा नदियों जैसे सार्वजनिक आश्रय-स्थानों के उपयोग; किसी व्यवसाय या पेशे या व्यापार करने; विद्यालयों तथा अस्पतालों में दाखले; तथा सार्वजनिक सवारी के साधनों के इस्तेमाल के मामलों में निर्योग्यता थोपना एक अपराध है। इस अपराध का दंड है कैद, जो छह मास तक हो सकती है या ५०० रुपये तक जुर्माना, या दोनों।

खतरनाक वस्तुओं के प्रयोग का नियमन करनेवाले कानूनों में यह कानून

आ जाते हैं—१९३९ का मोटरगाड़ी अधिनियम (मोटर वेहीकल्ज़ एक्ट), जो कतिपय अपराधो के लिए दंड का निर्देश करता है, जैसे अपजीबद्ध (बिना रजिस्ट्री की) मोटर गाडी चलाना या पजीबद्ध गाड़ी बिना लाइसेंस के चलाना (पहले अपराध के लिए ५०० रुपये तथा पहले अपराध के बाद ३ वर्ष के भीतर-भीतर हरेक अन्य अपराध के लिए १००० रुपये); लापरवाही से गाड़ी चलाना (६ महीने, या पहले उदाहरण की भांति जुर्माना)। १९३४ का भारतीय वायुयान अधिनियम (इण्डियन एयरक्राफ्ट एक्ट)—कुछेक अपराधों के लिए दंड निर्धारित करता है, जैसे, जानबूझ कर वायुयान इस प्रकार से उडाना कि उससे भूमि पर किसी व्यक्ति या सम्पत्ति को खतरा पैदा हो (दंड—६ माह, या जुर्माना, या दोनो)। इसके अतिरिक्त विस्फोटक पदार्थों के उत्पादन, उपयोग, विक्रय तथा परिवहन का नियमन करने के कानून भी है। कारखाना अधिनियम (फैक्टरी एक्ट) के अनुसार किसी कारखाने के स्वामी या परिभोगी को श्रमिको की सुरक्षा के लिए विभिन्न सावधानियाँ बरतनी पड़ती है, जैसे, कमरो के (रोशनदान सबधी) तथा प्रकाश व्यवस्था, खतरनाक मशीनो की घेराबन्दी, ज्यादा भीड न होने देना; काम के घटो तथा बच्चों की नौकरी पर प्रतिबध, आदि। इन उपबंधो का उल्लंघन करने पर वह दंड का भागी होगा।

सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा नैतिकता की रक्षा के कई कानून हैं। इस शीर्षक के अंतर्गत आनेवाले अपराधो मे ये है—संक्रामक रोगो के प्रसार को रोकने वाले विनियमों को भंग करना, खाद्य पदार्थो तथा पेयो में मिलावट, द्यूतगृह या वेश्यालय चलाना, अफीम का उत्पादन, विक्रय या उसको रखना। बंबई तथा मद्रास राज्यों में मद्यनिषेध है, और मद्रास राज्य मे किसी भी मादक द्रव्य अथवा औषध का निर्माण, विक्रय, रखना तथा इस्तेमाल दंडनीय है (दंड—६ मास, या १००० रुपये जुर्माना, या दोनो)।

बच्चो के रक्षण के लिए बनाये गए कानूनों में वे कानून भी हैं जो निम्न कृत्यों के लिए व्यक्तियो को दंड देते हैं—१८ वर्ष से कम आयु के पुरुष या १५ वर्ष से कम आयु की स्त्री का विवाह कराना; १५ वर्ष से कम आयु के अपने बालकों के श्रम का बंधक रखना (दंड—५० रुपये तक जुर्माना); ऐसे बच्चो से काम लेना जिनका श्रम बधक कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त ऐसे अधिनियम पास किये जा चुके है जो कारखानों, खानो, मनुष्य तथा माल के परिवहन से संबंधित वृत्तियो तथा बंदरगाहो व बीड़ी बनाने तथा दियासलाई बनाने के कामो जैसे निकृष्ट प्रकार के कामों में बालकों के लगाये जाने को रोकते है।

सार्वजनिक राजस्व तथा सरकारी सम्पत्ति के रक्षण के कानून भी है। उदाहरण के लिए बन्दरगाह में चुगी देने से बचने के लिए माल का चोरी से ले जाना

एक अपराध है । (दंड—माल की ज़ब्ती तथा १००० रुपये तक जुर्माना) ।

बन्दियो को जेल में रखने तथा कारागारो की व्यवस्था और प्रबंध, बन्दियों के स्थान, भोजन, वस्त्र, कार्य तथा अनुशासन जैसे अन्य सबधित मामलो का

कारागार-कानून

विनियमन १८९४ के कारागार-अधिनियम द्वारा, जो एक केन्द्रीय अधिनियम है, तथा विभिन्न राज्य-सरकारो द्वारा बनाये गए अनेक नियमो द्वारा होता है। हर राज्य में कारागार है और उनके लिए हर राज्य में एक अधिकारी है जिसे कारागारों का महा-निरीक्षक (इन्सपैक्टर जनरल ऑव प्रिजन्स) कहा जाता है। हरेक कारागार में एक सुपरिन्टेन्डेण्ट, एक जेलर तथा सरकार जितने आवश्यक समझे उतने अन्य अधिकारी होते है। सुपरिन्टेन्डेण्ट मुख्य अधिकारी होता है, अन्य अधिकारी उसके अधीन होते है। नियमो का पालन करना उनका कर्तव्य है । प्रत्येक जेल का एक निरीक्षक-मंडल (बोर्ड ऑव विजिटर्स) होता है, जो अशत: सरकारी और अशत: गैर-सरकारी होता है। मडल के सदस्य समय-समय पर, जैसे सप्ताह मे एक बार, एक साथ या बारी-बारी से जेल का निरीक्षण करते है। जेलों में स्थान के बारे में कुछ महत्त्वपूर्ण नियम है—स्त्री-बन्दियो को पुरुषो से अलग रखा जाना चाहिए; २१ साल से कम के पुरुष बन्दियो को अन्य पुरुष बन्दियो से अलग रखना चाहिए; विचाराधीन व्यक्तियो को, जिनपर दोष सिद्ध नही हुआ है, सिद्ध-दोष बन्दियो से अलग रखा जाना चाहिए; और दीवानी की डिगरी के अतर्गत किसी ऋण का भुगतान न कर सकने के कारण कैद के लिए भेजे गए व्यक्तियो जैसे दीवानी अदालतो द्वारा भेजे गए व्यक्तियो को दड-न्यायालयो द्वारा भेजे गए व्यक्तियों से पृथक् रखना चाहिए। अधिकतर बन्दी वे होते है जिन्हे कठोर कारावास का दड दिया जाता है। उन्हे तीन वर्गो में विभाजित किया जाता है। यदि बन्दी अच्छे चरित्र के हो और आदतन अपराधी न हो, और अपने सामाजिक स्तर, शिक्षा अथवा स्वभाव के कारण उच्चतर प्रकार का जीवन व्यतीत करने के आदी हों, तो उन्हे **क** वर्ग मे रखा जाता है। किन्तु उन पर किसी जमीन या जायदाद के विरुद्ध गंभीर या जानबूझ कर हिंसा या नैतिक पतन या निर्दयता का अपराध नही होना चाहिए। राजनैतिक अपराधो के लिए दडित उच्च स्तर के व्यक्तियो को इसी वर्ग में रखा जाता है। यदि बन्दी अपने सामाजिक स्तर, शिक्षा या स्वभाव के कारण उच्चतर प्रकार का जीवन व्यतीत करने के आदी हो, तो उन्हें **ख** वर्ग में रखा जाता है। ऐसे व्यक्ति आदतन अपराधी भी हो सकते है या ऐसे भी हो सकते है कि वे **क** वर्ग में रखे जाने योग्य न हों। **ग** वर्ग में वे बन्दी होते है जो **क** तथा **ख** वर्ग मे नही रखे जाते। बन्दी इन श्रेणियों में उन्हें दंड देनेवाले न्यायालयो की सिफारिशों पर सरकार द्वारा रखे जाते है। **क** श्रेणी के बन्दी अन्य दोनों श्रेणियों के बन्दियों से अलग रखे जाते है। **क** तथा **ख** श्रेणी

के बन्दियों को **ग** श्रेणी के बन्दियों से अच्छा भोजन मिलता है। **क** श्रेणी के बन्दी अपना निजी भोजन मँगवा सकते हैं, अपने निजी वस्त्र पहन सकते हैं, और अपने निजी बिस्तरों का उपयोग कर सकते हैं। वे जेल में उपलब्ध समाचार-पत्र तथा पुस्तकें पढ़ सकते हैं या अपने खर्च पर उन्हें बाहर से मँगवा सकते हैं। **क** तथा **ख** श्रेणी के बन्दियों से ऐसा कार्य कराया जाता है जो उनकी पुरानी आदतों, शारीरक क्षमता तथा उनके चरित्र के अनुकूल सावधानीपूर्वक उनके लिए निश्चित किया जाता है। **ग** श्रेणी के बन्दियों से जेल के स्वास्थ्याधिकारी द्वारा प्रमाणित उनकी शारीरिक क्षमता के अनुसार विभिन्न प्रकार के काम कराये जाते हैं। यह कार्य पत्थर तोड़ने, जमीन खोदने या चिनाई जैसे सख्त कामों से लेकर दर्जीगिरी, बढ़ई या हिसाब-किताब रखने जैसा कोई भी कार्य हो सकता है। बन्दियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने द्वारा इस्तेमाल की जानेवाली अधिकांश चीजों को खुद पैदा करेंगे, अतः कारावासियों को काफी काम करना पड़ता है। लेकिन किसी भी कैदी से ९ घंटे रोज से अधिक काम नहीं लिया जा सकता। साधारण कारावास की सजा पाये व्यक्ति से शारीरिक श्रम की अपेक्षा नहीं की जाती। वह अपने निजी वस्त्र पहनता है, बाल रख सकता है, अपनी कोठरी स्वयं साफ करता है, अपने निजी वस्त्र धोता है और उससे अपना भोजन आप बनाने के लिए कहा जा सकता है। सभी बन्दियों को जेल के अनुशासन का पालन करना पड़ता है और अनुशासन-भंग तथा जेल में किये किसी भी अन्य अपराध के लिए वे दंड के भागी हो सकते हैं। दंड कोड़े या हथकड़ी लगाने जैसा शारीरिक दंड भी हो सकता है या सुविधा समाप्ति, कम या खराब भोजन; और मोटे वस्त्र जैसा भी हो सकता है। अच्छे आचरण द्वारा बन्दी विशेष सुविधाएँ या अपने जेलकाल में कटौती भी प्राप्त कर सकते हैं।

: ६ :

अपराध की रोक : मुकदमा : सबूत

अपराधो की परिभाषा करना और उनके लिए दड निर्धारित करना अपेक्षाकृत आसान काम है। किंतु अपराध के हो जाने पर या कथित अपराध की स्थिति मे उत्पन्न होनेवाली समस्याओं का सामना करने के तरीके का नियमन करना कही मुश्किल है। इनमे से दो समस्याएँ है—(१) अभियोग लगाये गए व्यक्ति का परीक्षण (मुकदमा चलाना) और उसका दोषी या निर्दोष होना सिद्ध करना। यह आवश्यक है कि अपराध-विचार और अपराध-सिद्धि का ढग ऐसा हो कि दोनो पक्षों को अपने-अपने पक्ष को सिद्ध करने का समचित अवसर मिले और अन्याय की ऐसी कोई गुजायश न रहे कि अपराधी दड पाने से बच जाय और बेकसूर को दड मिल जाय। मुकदमे और उससे सबधित विषयो, जैसे दड-न्यायालयों के अधिकार, अपराधों की रोकथाम, अपराधियो का पकड़ना, जमानत पर छोड़ना और अपराध की पुलिस द्वारा छानबीन के तरीके के नियम दड-विधि-सहिता (जाब्ता फौजदारी) में दिये गए है और तथ्यो के बारे में प्रमाण पेश करने के तरीके—जिनमें व्यक्ति की सदोषता या निर्दोषता भी शामिल है—भारतीय साक्ष्य (गवाही) अधिनियम (इण्डियन एविडेन्स एक्ट) में दिये गए है। दड-विधि-सहिता का उल्लेख संक्षेप के लिए इस अध्याय में सहिता के नाम से किया गया है।

दड-न्यायालयो की स्थापना कैसे की जाती है, इसका उल्लेख चौथे अध्याय (न्याय-प्रशासन) में किया जा चुका है। उनका साधारण कार्य अपराधियों पर मुकदमा चलाना और उन्हे दंड देना है। किंतु उनके और भी कार्य है। उनमें से एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य है—अपराधों की रोकथाम के लिए कुछ विशेष कार्यवाही करना। संहिता में उल्लिखित श्रेणी के मजिस्ट्रेट को यदि यह सूचना मिले कि सभव है, अमुक व्यक्ति ऐसा अपराध करे जिससे शांति-भग हो कि तो वह उस व्यक्ति को एक साल तक शांति कायम रखने के लिए जमानत भरने का आदेश दे सकता है। इसी प्रकार उल्लिखित श्रेणी का मजिस्ट्रेट कुछ लोगों को अच्छे चाल-चलन के संबंध में जमानत पेश करने की आज्ञा दे सकता है, जैसे किसी ऐसे आदमी को, जो मौखिक या लिखित रूप में अथवा अन्य प्रकार से राज्य-द्रोह या जाति-घृणा की बात फैलाता है; आवारा आदमी

फौजदारी अदालतों के अधिकार

को, आदतन चोर, डाकू या जालसाज को; या किसी अन्य खतरनाक आदमी को। कोई मजिस्ट्रेट या किसी थाने का प्रमुख अधिकारी पाँच या इससे ज्यादा लोगों के गैरकानूनी जमघट को, जिससे शांति-भंग होने का खतरा हो, तितर-बितर करने का आदेश दे सकता है। अगर वे तितर-बितर नहीं होते हैं तो मजिस्ट्रेट या उक्त अधिकारी बल-प्रयोग द्वारा उन्हें तितर-बितर कर सकता है और इस काम के लिए किसी भी पुरुष की सहायता ले सकता है। यदि उक्त जमघट को किसी अन्य प्रकार से तितर-बितर नहीं किया जा सकता तो सबसे ऊँची श्रेणी का उपस्थित मजिस्ट्रेट फौजी ताकत के जरिए उसे तितर-बितर करा सकता है और किसी कमीशन-प्राप्त या गैर-कमीशन प्राप्त अधिकारी को अपनी आज्ञा को क्रियान्वित करने के लिए कह सकता है। उसे और इस कठिन कार्य में लगे हुए पुलिस व फौज के अन्य अधिकारी को अपने सद्भावनापूर्वक किये गए अधिकार के प्रयोग से उत्पन्न परिणामों के संबंध में मुकदमे के विरुद्ध संरक्षण प्राप्त है।

अपराध-निरोध संबंधी अधिकार

इसी प्रकार उनके आदेश का पालन करनेवाले सैनिकों को भी सरक्षण मिला हुआ है। एक और अधिकार, जिससे हम परिचित हैं, संहिता की धारा १४४ में दिया गया है। उसमें उल्लिखित श्रेणी के मजिस्ट्रेट को किसी एक व्यक्ति या व्यक्तियों को कुछ करने या कुछ न करने की आज्ञा जारी करने का अधिकार है बशर्तेकि ऐसी आज्ञा खतरे को रोकने या किसी एक व्यक्ति या जनता को पहुँचनेवाली क्षति को रोकने के लिए आवश्यक हो, जैसे किसी समय सभा को न करने या जलूस को न निकालने देने का आदेश। झगड़े के दिनों में हम कर्फ्यू आर्डर के नाम से ज्ञात आदेश की बात सुनते हैं, जो लोगों का कुछ खास मोहल्लों या स्थानों में कुछ निश्चित घंटों में इधर-उधर घूमने का निषेध करता है। संहिता की धारा १४४ के अंतर्गत जारी की गई आज्ञा और कर्फ्यू आदेश केवल अस्थायी होते हैं और दो महीने की अवधि के बाद समाप्त हो जाते हैं। रोकथाम संबंधी कार्यवाही का एक और उदाहरण उस समय उपस्थित होता है जबकि अचल संपत्ति या उसे इस्तेमाल करने के अधिकार के संबंध में कोई झगड़ा हो और उसमें शांति-भंग होने का अंदेशा हो। संहिता में उल्लिखित श्रेणी का मजिस्ट्रेट संपत्ति के वास्तविक कब्जेदार को या उस संपत्ति के अधिकारी उपभोक्ता को संरक्षण प्रदान कर सकता है और इसके लिए वह उसके विरोधी दावेदार को उस संपत्ति के कब्जे और उपयोग में बाधा न उपस्थित करने का आदेश दे सकता है। इस प्रकार आदेशित व्यक्ति दीवानी अदालत में जाकर

धारा १४४ के अंतर्गत अधिकार

अचल संपत्ति संबंधी अधिकार

अपने अधिकार का दावा कर सकता है।

दंड-न्यायालयों के कुछ अन्य अधिकार ये हैं—मजिस्ट्रेट पुलिस को किसी अपराध की छानबीन के लिए कह सकता है। संहिता में उल्लिखित श्रेणी का कोई मजिस्ट्रेट, अपनी पत्नी या जायज अथवा नाजायज बच्चे की उपेक्षा करने वाले व्यक्ति को उक्त पत्नी या बच्चे को १०० रुपए मासिक तक गुजारा देने का आदेश दे सकता है। किसी व्यक्ति द्वारा शपथ के साथ यह शिकायत करने पर, कि किसी १६ वर्ष की आयु से कम की महिला या लड़की का गैरकानूनी काम के लिए अपहरण किया गया है, प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट अपहृत महिला को तुरंत स्वतंत्र करने का, या उसके पति, पिता या संरक्षक को तुरत सौंप देने का आदेश दे सकता है। इस आज्ञा का पालन करवाने के लिए उसे आवश्यक बल-प्रयोग का भी अधिकार है।

अन्य अधिकार

व्यक्ति की स्वतन्त्रता के लिए महत्त्वपूर्ण उच्च न्यायालय का वह अधिकार है, जिसे हैबियस कॉर्पस रिट (बन्दी प्रत्यक्षीकरण लेख) कहते हैं और जिसके द्वारा वह किसी व्यक्ति को अपनी हवालात या हिरासत (प्रगृह) में रखने वाले को उस व्यक्ति को अपने सामने उपस्थित करने का आदेश दे सकता है। उसके उपस्थित करने पर न्यायालय यह पता लगायेगा कि उसका निरोध वैध है या अवैध। यदि निरोध वैध (कानूनी) है तो उस व्यक्ति को हिरासत में लौटा दिया जायगा और यदि निरोध गैरकानूनी है तो उसे तुरत छोड़ दिया जायगा। उक्त आदेश के लिए प्रार्थना-पत्र का क्षत्र गैरकानूनी नजरबन्दी खत्म करने का एक महत्त्वपूर्ण है। निरोध किसी गैर-सरकारी (प्राइवेट) व्यक्ति द्वारा भी हो सकता है—यथा किसी व्यक्ति द्वारा नाबालिग का उसके कानूनी संरक्षक की अनुमति के बिना, नजरबन्दी; और यह किसी सार्वजनिक अधिकारी द्वारा भी हो सकता है—जैसे उस स्थिति में जब कि नजरबंदी सार्वजनिक अधिकारी द्वारा अपने ऐसे अधिकार के अन्तर्गत की गई हो जो उसे प्राप्त न हो। ऐसी स्थितियों में राज्य के बड़े-से-बड़े अधिकारियों को भी उच्च न्यायालय यह सिद्ध करने का आदेश दे सकता है कि उन्हें उस नजरबंदी का अधिकार है। यदि वे सिद्ध नहीं कर सकते तो व्यक्ति मुक्त हो जाता है। जेलर या अन्य निरोधक अधिकारी को न्यायालय के इस आदेश का पालन करना पड़ता है, नहीं तो उसे न्यायालय की अवमानना के लिए दंड दिया जायगा।

बन्दी प्रत्यक्षीकरण लेख तथा हवालात व निरोध

सरकार पुलिस इसलिए रखती है कि वह अपराधों की रोकथाम, छानबीन और तत्संबंधी मुकदमों के बारे में आवश्यक कार्य करे। हर जिले में पुलिस का इनचार्ज जिले का पुलिस सुपरिन्टेण्डेंट (अधीक्षक) होता है। उसके नीचे

डिप्टी सुपरिंटेण्डेंट (उप-अधीक्षक) तथा उनके नीचे असिस्टेंट सुपरिन्टेण्डेंट तथा उनके नीचे अन्य अधीनस्थ अधिकारी होते हैं, जिन्हें इन्सपेक्टर (निरीक्षक), सब-इन्सपेक्टर (उप-निरीक्षक) तथा कांस्टेबल (सिपाही) कहते हैं। हर जिले मे उसके परिमाण और वहाँ की स्थानीय आवश्यकताओ के अनुसार थाने होते हैं और हर थाने का उक्त अधिकारियो में से एक इन्चार्ज होता है। इस्पेक्टर जनरल प्रत्येक राज्य में पुलिस-बल का मुख्याधिकारी होता है।

पुलिस का सामान्य संगठन तथा कार्य

पुलिस के कुछ मुख्य कार्य ये हैं—अपराध शांति-भंग, लोक कंटक, जनता के जीवन, स्वास्थ्य और सपत्ति के प्रति उपस्थित खतरे—इन तमाम की रोकथाम, अपराधो की छानबीन, अपराधियो का पता लगाना, अपराधियो का पकडना, उन्हे मुकदमे के लिए या रोकथाम की कार्यवाही के लिए दड-न्यायालय में उपस्थित करना और न्यायालयो द्वारा जारी किये गए वारट, सम्मन और अन्य आदेशो को क्रियान्वित करना। विशेष कानूनो के अतर्गत पुलिस के और भी अधिकार है, जैसे यातायात, जलूसो, भोजो और सभाओं का नियमन करने का अधिकार। कुछ परिस्थितियो में पुलिस अधिकारी को मजिस्ट्रेट से वारंट प्राप्त किये बिना ही, अपने विवेक पर गिरफ्तारी का अधिकार होता है। वह व्यक्ति को, इस प्रकार से, उन अपराधो के सबध मे गिरफ्तार कर सकता है जिन्हें संहिता मे निग्रहणीय (कॉग्निजेबल) अपराध कहा गया है। वह ऐसे व्यक्ति को भी गिरफ्तार कर सकता है जिसके विरुद्ध समुचित शिकायत की गई हो या विश्वासयोग्य जानकारी प्राप्त हुई हो अथवा जिसके किसी निग्रहणीय अपराध से संबधित होने के बारे में समुचित संदेह हो। निग्रहणीय अपराधो के उदाहरण हैं—चोरी, लूट, डाका, चोरी का माल लेना, हत्या, दारुण आघात पहुँचाना, उपद्रव करना, लोगों के गैरकानूनी जमघट का सदस्य होना। वह मकान में सेंध लगाने के औजार से युक्त व्यक्ति को भी गिरफ्तार कर सकता है। कोई पुलिस अधिकारी मजिस्ट्रेट के वारंट के बिना किसी ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार नही कर सकता जिसने अनिग्रहणीय अपराध किया हो या जिस पर अनिग्रहणीय अपराध के करने का संदेह हो। अनिग्रहणीय अपराधों के उदाहरण हैं—भारतीय सरकार के विरुद्ध लडाई लड़ना, राज्यद्रोह, कूट साक्ष, जालसाजी, साधारण चोट पहुँचाना, आक्रमण। अलबत्ता पुलिस अधिकारी, केवल सीमित उद्देश्य के लिए—अपराधी का नाम और पता मालूम करने के लिए और यदि अपराधी बताने से इन्कार करे या ऐसा सन्देह हो कि वह नाम और पता गलत बता रहा है—गिरफ्तार कर सकता है। जब पुलिस अधिकारी किसी निग्रहणीय अपराध के संबंध में किसी को गिरफ्तार करता है तो उसका कर्त्तव्य है कि वह बिना किसी विलम्ब के तुरंत उस व्यक्ति को मजिस्ट्रेट

पुलिस के अधिकार

अथवा थाने के अधिकारी के सामने पेश करे। वह बिना मजिस्ट्रेट की आज्ञा के उस व्यक्ति को उतनी देर से अधिक के लिए गिरफ्तार नही कर रख सकता जितनी मामले की तमाम स्थिति देखते हुए आवश्यक हो और यह समय कुल मिला कर २४ घंटे से अधिक नही हो सकता। इसमें अपराधी को गिरफ्तारी के स्थान से मजिस्ट्रेट के पास ले जाने मे लगने वाला समय शामिल नही है। मजिस्ट्रेट को अलबत्ता यह अधिकार है कि वह नजरबन्दी का समय बढाने की स्वीकृति दे दे। यह समय अधिक-से-अधिक १५ दिन तक हो सकता है। हम दूसरे अध्याय (भारत का सविधान) मे देख चुके है कि सविधान प्रत्येक गिरफ्तार किये गए व्यक्ति को यह अधिकार देता है कि वह अपनी गिरफ्तारी के कारण मालूम करे और अपनी इच्छा के अनुसार किसी वकील आदि से सलाह कर सके और अपनी सफाई पेश करने की व्यवस्था कर सके। निग्रहणीय अपराध को रोकने के सबध में पुलिस अधिकारी को यह अधिकार है कि वह उस अपराध के करने का षड्यंत्र करनेवाले या उसकी प्रक्रिया मे रत व्यक्ति को गिरफ्तार कर ले। उस अपराध को रोकने के लिए वह उसके बीच अपनी पूरी शक्ति व योग्यता से दखल दे सकता है। अपने सामने सार्वजनिक सम्पत्ति को क्षति पहुँचानेवाले या पहुँचाने का प्रयत्न करनेवाले अथवा किसी सार्वजनिक स्थल, चिह्न अथवा जहाजरानी में काम आनेवाले जलचिह्न को हटाने या उसे क्षति पहुँचानेवाले व्यक्ति को वह रोक सकता है।

गैर-सरकारी (प्राइवेट) व्यक्ति द्वारा गिरफ्तारी

कोई भी गैर-सरकारी व्यक्ति, अपने उत्तरदायित्व पर और मजिस्ट्रेट के वारट बिना किसी ऐसे व्यक्ति को बदी बना सकता है जो उसके सामने निग्रहणीय और ऐसा अपराध करे जिसकी जमानत न दी जा सके अथवा जो घोषित अपराधी हो। ऐसे अपराधो के उदाहरण है—चोरी, लूट, डाका, चोरी का माल लेना, हत्या, हत्या का प्रयत्न करना, खतरनाक हथियारो द्वारा दारुण आघात पहुँचाना, आग के द्वारा शरारत करना, सेध लगाना और इन अपराधो के करने मे प्रेरणा या प्रोत्साहन देना। ये भारतीय दंड-सहिता मे उल्लिखित अपराध है। गैर-सरकारी व्यक्ति अन्य व्यक्तियो को अपने सामने किये गए उन अपराधो के सबध में भी गिरफ्तार कर सकता है जिनके लिए अन्य कानूनो मे (भारतीय दड संहिता से भिन्न) मृत्यु दंड, आजीवन कालापानी, या सात वर्ष या इससे अधिक दंड की व्यवस्था हो। जैसे—रेलगाडी या रेल की पटरी को क्षति पहुँचाना। घोषित अपराधी वह होता है जो मजिस्ट्रेट द्वारा जारी किये वारण्ट के अधीन गिरफ्तारी से बचने के लिए फरार हो और जिसके न्यायालय में पेश होने के लिए एक निश्चित तारीख घोषित की जा चुकी हो। इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि गैर-सरकारी व्यक्ति उक्त स्थितियों में ही किसी को गिरफ्तार कर सकता है। यदि

अपराध अनिग्रहणीय और जमानत योग्य हो तो वह ऐसा नही कर सकता। ऐसे अपराध हैं—गैर कानूनी जमघट का सदस्य होना, उपद्रव करना, धोखा देना, जालसाजी करना, जारकर्म और मान-हानि। यदि वह इन अपराधो के संबध में किसी को गिरफ्तार करता है तो अनुचित ढग से गिरफ्तार किया गया व्यक्ति उस पर हरजाने का दावा कर सकता है। उस पर सदोष अवरोध अथवा सदोष बदी-करण के सबध मे मुकदमा चलाया जा सकता है और फिर यदि इस प्रकार से बन्दी बनाया जानेवाला व्यक्ति गिरफ्तारी के विरुद्ध बल का प्रयोग करे तो वह (बन्दीकर्ता) उसकी शिकायत नही कर सकता। कानून का न जानना उसे कोई संरक्षण नही प्रदान करेगा। गिरफ्तारी के बाद गिरफ्तार करनेवाले का कर्त्तव्य है कि वह बन्दी को तुरन्त किसी पुलिस अधिकारी के, या पुलिस अधिकारी के न मिलने पर सबसे पास के थाने के, हवाले कर दे। इस पर पुलिस अधिकारी अपने विवेक और इच्छा का प्रयोग करेगा तथा उसे पुनः बन्दी बनायगा अथवा छोड देगा।

गैर-सरकारी व्यक्ति के कर्त्तव्य

प्रत्येक गैर-सरकारी व्यक्ति के अपराध-निरोध से सबधित कुछ कर्त्तव्य होते हैं। उसका कर्त्तव्य है कि मजिस्ट्रेट के मागने पर वह ऐसे व्यक्ति की गिरफ्तारी मे या उसके भागने को रोकने मे मजिस्ट्रेट की सहायता करे जिसे गिरफ्तार करने का मजिस्ट्रेट को अधिकार है। इसी प्रकार उसका कर्त्तव्य है कि वह शांति-भग की स्थिति को दबाने और रेल, नहर, तारघर, आदि अन्य सार्वजनिक सम्पत्ति की क्षति को रोकने मे मजिस्ट्रेट को सहायता करे। यदि उसे यह ज्ञात हो कि अमुक व्यक्ति सहिता मे निर्दिष्ट अपराधो मे से कोई अपराध कर रहा है या करने का इच्छुक है, तो उसका यह कर्त्तव्य है कि वह इस बात की सूचना तुरन्त सबसे पास के मजिस्ट्रेट या पुलिस अधिकारी को दे। इस प्रकार के अपराधों के उदाहरण हैं—राज्य के विरुद्ध अथवा सार्वजनिक शाति के विरुद्ध अपराध, हत्या, दंडनीय प्राणघात जो हत्या के तुल्य न हो[1], चोरी जिसके साथ हत्या करने या शारीरिक क्षति पहुँचाने की धमकी हो, लूट, डाका, अग्निकाण्ड, रात को सेंध लगाना। इसके अलावा कुछ व्यक्तियो को खास जिम्मेदारियाँ होती हैं। गाँव-अधिकारी या भूमि के स्वामी या कब्जेदार, या उसके अभिकर्त्ता (एजेण्ट) या व्यवस्थापक (मैनेजर) का कर्त्तव्य है कि वह अपने इलाके की निम्नलिखित

---

१. दण्डनीय (सदोष) प्राणघात जो हत्या के तुल्य न हो—ऐसी हत्या या वध जो हत्या करने की भावना से न की गई हो किंतु लापरवाही या जल्दबाजी या अन्य किसी कारण से हो तथा जो दण्डनीय हो। आत्मरक्षा में भी किसी का प्राण-घात किया जा सकता है किन्तु वह विशिष्ट स्थितियों में दण्डनीय नहीं होता।

घटनाओं और व्यक्तियो के संबंध में सबसे पास के मजिस्ट्रेट या थाने के अध्यक्ष को सूचना दे—चोरी का माल लेनेवाले किसी कुख्यात व्यक्ति का आवास; लुटेरो, डाकुओ, भागे हुए सजावारो, घोषित अपराधियो; जमानत के अयोग्य या सार्वजनिक शाति के विरुद्ध किसी अपराध के होने या किसी व्यक्ति द्वारा उसे करने की इच्छा करने, और किसी की अचानक और अस्वाभाविक मृत्यु। जो व्यक्ति उक्त कर्त्तव्यो के पालन करने में जान-बूझकर चूक करता है, वह अपराध करता है और वह दड का भागी हो सकता है।

जमानत

अपराध करने के दोष पर गिरफ्तारशुदा व्यक्ति प्रायः चाहता है कि जब तक उसके अपराध की छानबीन हो और उसके सबध मे मुकदमा चले तबतक वह अस्थायी तोर पर रिहा रहे। यह रिहाई उसे जमानत देने के सुपरिचित ढग से मिल जाती है—अर्थात् ऐसे जामिनों को पेश करने के जरिये, जो उसकी आवश्यकता पडने पर न्यायालय मे उपस्थित होने की गारण्टी ले। इस सबध में 'जमानत के योग्य' (प्रतिभाव्य) और 'जमानत के अयोग्य' (अप्रतिभाव्य) कहे जानेवाले अपराधो में अन्तर है। जमानत-योग्य अपराधो के उदाहरण हैं—गैर-कानूनी जमघट का सदस्य होना, उपद्रव करना—किन्तु ऐसा उपद्रव नही जिसमे उपद्रवकारी जमानत-अयोग्य अपराध करे—झूठी शपथ, लोककटक, जल्दबाजी और असावधानी के कृत्य द्वारा किसी की मृत्यु का कारण बनना, चोट पहुँचाना—किन्तु खतरनाक हथियारों द्वारा गहरी चोट पहुँचाना नही—जारकर्म, मानहानि और अनादर। जमानत-अयोग्य अपराधो के उदाहरण हैं—राज्य के विरुद्ध बडे अपराध, सिक्को और मुद्रा से सबधित अपराध, हत्या, दंडनीय प्राणघात जो हत्या के तुल्य न हो, चोरी, लूट और डाका। जमानत-अयोग्य अपराध जमानत-अयोग्य अपराधों से अधिक गभीर होते हैं। यदि कोई व्यक्ति किसी पुलिस अधिकारी द्वारा किसी जमानत-योग्य अपराध के संबंध मे बिना कारण के गिरफ्तार या निरुद्ध किया गया हो तो उसे जमानत पर रिहाई प्राप्त करने का अधिकार है। पुलिस अधिकारी उपर्युक्त मामले में चाहे तो जामिनो को न भी ले सकता है और अपने बधन-पत्र (बौण्ड) पर ही अपराधी को रिहा कर सकता है। वारण्ट पर गिरफ्तार किये गए और न्यायालय मे उपस्थित किये गए व्यक्ति के संबंध मे भी यह नियम लागू होता है। यह न्यायालय में जमानत पर रिहा किये जाने की माँग कर सकता है। जमानत-अयोग्य अपराध का अभियुक्त जब पुलिस अधिकारी द्वारा गिरफ्तार कर लिया जाता है या न्यायालय मे उपस्थित किया जाता है तो उक्त पुलिस अधिकारी अथवा न्यायालय को यह अधिकार है कि वह उक्त व्यक्ति को जमानत पर छोड़ दे, किन्तु यदि ऐसा विश्वास करने के कारण मौजूद हों कि अपराध के कारण अभियुक्त को मृत्यु-दण्ड या कालेपानी का दण्ड मिलेगा, तो वह उसे जमानत पर नहीं छोड़

सकता। ऐसे अपराधों के उदाहरण हैं—हत्या, दण्डनीय प्राणघात जो हत्या के तुल्य न हो, राजद्रोह। हिरासत मे लेनेवाले अधिकारी या न्यायालय को यदि यह लगता हो कि ऐसे समुचित कारण उपस्थित नही हैं जिनसे यह विश्वास किया जा सके कि हिरासत में लिया गया व्यक्ति जमानत-योग्य अपराध का अपराधी नही है, किन्तु उसके अपराध के सबंध में छानबीन के लिए पर्याप्त कारण है तो उसे जमानत पर रिहा कर दिया जाना चाहिए।

उच्च न्यायालय या सैशन (उपवेशी) न्यायालय प्रत्येक स्थिति में, हिरासत में लिये गए व्यक्ति को जमानत पर छोडने का आदेश दे सकते हैं।

अपराधी का पता लगाने के लिए अनुसधान (छानबीन) तथा जानकारी प्राप्त करने और अपराधी को न्याय के लिए न्यायालय के सामने प्रस्तुत करने का भार पुलिस पर डाला गया है। स्पष्टतः यह उसका सबसे कठिन काम है। अतः कानून द्वारा उसे कुछ महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ प्राप्त हैं। इन शक्तियो के दुरुपयोग को रोकने के लिए कानून ने पुलिस के लिए कुछ कर्त्तव्य भी निर्धारित किये हैं। यदि कोई अपराध पुलिस अधिकारी के क्षेत्र के अन्दर हुआ है और वह निग्रहणीय अपराध है तो वह अधिकारी स्वय ही उसकी छानबीन शुरू कर सकता है। किन्तु यदि वह अपराध अनिग्रहणीय है तो वह छानबीन का काम मजिस्ट्रेट के आदेश पर ही शुरू कर सकता है। छानबीन सबधी उसकी शक्तियाँ ये हैं—अपराध की जगह को स्वयं जाकर देखना या वहाँ अपने किसी नीचे के अधिकारी को भेजना, पूछताछ करना, अपराध-सबंधी तथ्यो से परिचित मालूम होनेवाले किसी व्यक्ति को उपस्थित होने के लिए कहना और उसका मौखिक परीक्षण करना। ऐसे व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि वह पूछे गए सभी प्रश्नों का उत्तर दे, बशर्तेकि उत्तर से खुद उसपर दोषारोपण न होता हो। यदि वह उपस्थित होने और उत्तर देने मे इन्कार करता है तो वह अपराध करता है। यदि उसके कथन को लिपिबद्ध किया जाय तो उसे उसपर हस्ताक्षर करने के लिए नही कहा जा सकता और न ऐसा लिपिबद्ध कथन अपराधी के विरुद्ध न्यायालय में प्रयुक्त ही हो सकता है। अनुसंधान करनेवाले अधिकारी को ये शक्तियाँ भी प्राप्त हैं—वह कथित अपराधी या संदिग्ध अपराधी को हिरासत मे ले सकता है और उसे निरुद्ध कर सकता है; उससे अपने कब्जे में किसी भी दस्तावेज या चीज को पेश करने के लिए कह सकता है और यदि आवश्यक हो तो उनकी प्राप्ति के लिए किसी स्थान की तलाशी भी ले सकता है। यदि ऐसा प्रतीत हो कि अनुसंधान का काम पूर्वोक्त २४ घण्टों में पूरा नही हो सकता और अपराध के संबंध में विश्वास योग्य पर्याप्त आधार हों या उसके बारे में मिली जानकारी का आधार सही मालूम हो, तो थाने के अधिकारी या अनुसंधान करनेवाले अधिकारी को—बशर्तेकि वह सबइंस्पेक्टर के दर्जे से कम न हो—चाहिए कि वह पुलिस-डायरी

पुलिस-अनुसंधान

(जिसम अनुसंधान आदि संबंधी रिपोर्ट हो) और अभियुक्त को सबसे नजदीक के मजिस्ट्रेट के पास भेज दे। वह मजिस्ट्रेट अभियुक्त को समय-समय पर कुल मिला कर १५ दिन तक हिरासत में रखने का आदेश दे सकता है। इसके बाद और अधिक समय तक हिरासत में रखने का अधिकार उस मजिस्ट्रेट को ही है जिसके सामने पुलिस द्वारा उपस्थित मुकदमा चल रहा हो। अनुसंधान के उपरान्त अनुसधान करनेवाले का कर्त्तव्य है कि वह उस अपराध के सबध में मुकदमे की सुनवाई करने के उपयुक्त मजिस्ट्रेट के सामने अपनी रिपोर्ट पेश करे। यदि अधिकारी अभियुक्त के विरुद्ध काफी सबूत पाए तो वह उसे मजिस्ट्रेट के सामने पेश कर सकता है और यदि अपराध जमानत-योग्य हो तो अभियुक्त के न्यायालय मे उपस्थित होने के बारे में जमानत लेकर उसे छोड़ सकता है। यदि अपराध के पक्ष में काफी सबूत न हो तो वह अभियुक्त को उसकी अपनी जमानत पर या बंधन-पत्र (बॉण्ड) पर छोड़ सकता है। अधिकारी यदि यह देखे कि अनुसधान करने के लिए काफी सबूत नही है तो वह अनुसधान करने से इन्कार कर सकता है। अनुसंधान करनेवाले अधिकारी का कर्त्तव्य है कि वह अपनी कार्यवाही एक डायरी में दर्ज करता रहे। यह डायरी प्रायः अभियोग (केस) डायरी कहलाती है। मजिस्ट्रेट के पास जब पुलिस-रिपोर्ट पहुँच जाय और वह यह समझे कि अभियुक्त पर मुकदमा चलाना चाहिए तो वह पूछताछ या मुकदमे की कार्यवाही शुरू कर सकता है। यदि वह यह समझे कि अभियुक्त के विरुद्ध कोई मामला नही है तो वह आगे कार्यवाही नही करेगा।

अपराधियों का परीक्षण तथा परीक्षण-स्थान

जब किसी व्यक्ति का किसी अपराध के लिए परीक्षण किया जाता है तो पहली विचारणीय बात होती है—परीक्षण (मुकदमे) की जगह। साधारणतः मुकदमा उस अदालत में चलाया जाता है जिसकी स्थानीय सीमा के अन्तर्गत कथित अपराध हुआ हो। किंतु इस सबंध मे और भी नियम है। हो सकता है कि कई बार उसपर एक से अधिक न्यायालय मुकदमा चलावें। उदाहरण के लिए यह सभव है कि उसने कोई अवैध कृत्य एक स्थान पर किया हो और उसका परिणाम अन्यत्र निकला हो तथा अपराध उस कार्य और परिणाम दोनों के मिलने से बनता हो। संभव है उसने किसी को मद्रास में छुरा भोंका हो और वह व्यक्ति उसके घावो से बबई मे जाकर मरा हो। इस मामले म बबई और मद्रास, दोनों ही स्थानों के न्यायालय अपराधी पर हत्या का मुकदमा चला सकते है। जहाँ कोई कृत्य अपने परिणाम के संबंध से अपराध बन जाय वहाँ भी यही नियम लागू होता है। चोर और चोरी का माल लेनेवाला व्यक्ति अलग-अलग जगह पर हो सकते है। जहाँ यात्रा-काल में अपराध होता है वहाँ मामले एक और श्रेणी से संबंध रखते है। उदाहरण के लिए यदि किसी

यात्री की घडी उसके बबई मे कलकत्ता यात्रा करते समय चुराई गई है तो चोर पर उन जगहो में कहीं भी मुकदमा चलाया जा सकता है जहाँ से वह यात्री गुजरता है। जहाँ कई न्यायालय एक मुकदमा चला सकते हो वहाँ अपराधी पर मुकदमा उस न्यायालय मे चलाया जायगा जो सबधित पक्ष और गवाहो के लिए सबसे अधिक सुविधाजनक होगा। यदि कोई ऐसा न्यायालय मुकदमे को अपने हाथ मे ले ले जो सुविधाजनक न हो, तो मुकदमा वहाँ से सुविधाजनक न्यायालय मे भेजा जा सकता है। यदि किसी एक ही उच्च न्यायालय की दो मातहत अदालतें किसी एक मुकदमे का ले लेती है तो उच्च न्यायालय यह निर्णय करेगा कि मकदमा उनमें से किस अदालत मे चलना चाहिए। यदि अलग-अलग उच्च-न्यायालयो के नीचे के न्यायालय किसी एक मुकदमे को हाथ में ले लेते है, तो वह उच्च न्यायालय, जिसके नीचे के न्यायालय ने सबसे पहले मुकदमा अपने हाथ मे लिया था, यह फैसला करेगा कि मुकदमा कहा चलना चाहिये।

मुकदमे का स्थान निश्चित हो जाने के बाद अगली बात यह पैदा होती है कि कौन-सा न्यायालय अमुक मुकदमा कर सकता है। यह बात अपराध की गभीरता पर निर्भर कर सकती है। इस सबध मे बडे-बडे अपराध—जिनके लिए मृत्यु-दड, कालापानी या ६ मास से अधिक कैद की व्यवस्था है—और छोटे अपराधो मे भेद है। प्रथम प्रकार के अपराध वारट (अधिपत्र) व्यवहार (वारण्ट के मामले) कहलाते है और दूसरी प्रकार के सम्मन व्यवहार (सम्मन के मामले)। प्रथम प्रकार के अपराधो में भी कुछ अधिक गभीर होते है और कुछ कम। अधिक गभीर अपराधो के सबध मे सैशन (उपवेशी) न्यायालय ही, और कलकत्ता, मद्रास व बबई नगरो मे उच्च न्यायालय का न्यायाधीश ही, जो सैशन मे हो, मुकदमा चला सकते है। ये अपराध है —हत्या, दडनीय प्राणघात जो हत्या के तुल्य न हो, भारत सरकार के विरुद्ध युद्ध, जाली सिक्के और करेंसी नोट बनाना, डाकाजनी और आग लगाना। इन मामलो मे उक्त न्यायालय ही काफी सजा दे सकते है। इन मामलो मे वे अपराधी पर तब मुकदमा चलाते है जब किसी मजिस्ट्रेट द्वारा अपराध-निग्रहण[1] के बाद अपराधी सैशन न्यायालय को सौपा गया हो। गभीरता मे दूसरी श्रेणी के अपराध, जिनपर उक्त न्यायालय और मजिस्ट्रेट दोनो मुकदमा चला सकते हैं, ये हैं—राज विरोधोत्तेजक कार्य, कूटसाक्ष्य (परजरी) सार्वजनिक अधिकारी को रिश्वत देना या उसका रिश्वत लेना, जालसाजी, दारुण आघात और

परीक्षण-न्यायालय

वारंट तथा सम्मन-व्यवहार

---

१. **अपराध निग्रहण—कागनीजेन्स अपराध संबंधी न्यायिक जानकारी।**

बलात्कार। इन दोनों श्रेणियों के अपराधों के संबंध में सैशन न्यायालय व उच्च-न्यायालय दोनों ही मुकदमे की सुनवाई कर सकते हैं, किन्तु इससे पूर्व मजिस्ट्रेट द्वारा इनके संबंध में प्रारम्भिक छानबीन की जा चुकी होनी चाहिए और उसके द्वारा अपराधी से मामला इन न्यायालयों में से किसी में ले जाने के लिए कहा गया होना चाहिए। दूसरी श्रेणी के अपराधों में प्रारंभिक अनुसंधान के बाद मजिस्ट्रेट यदि यह समझे कि वह मामले की स्थिति के अनुसार पर्याप्त दंड दे सकता है, तो वह उस मामले में मुकदमे की स्वयं सुनवाई कर सकता है। यदि वह समझे कि वह पर्याप्त दंड नहीं दे सकता तो वह अपराधी को मुकदमे के लिए आगे भेजेगा। वारंट-मामलों में से यदि हम उक्त दो श्रेणियों के अपराध निकाल दें तो उसके बाद भी बहुत बड़ी संख्या में अपराध बच रहेंगे। ये बचे हुए अपराध और सम्मन के मामले मजिस्ट्रेट की अदालत में ही चल सकते हैं। किस दर्जे का मजिस्ट्रेट किन मामलों की सुनवाई कर सकता है इसका उल्लेख संहिता की अनुसूची २ में किया गया है। कुछ मामलों की सुनवाई मजिस्ट्रेट-पीठिका (जहां सकलित रूप से कुछ मजिस्ट्रेट न्याय के लिए बैठते हैं—बेंच) द्वारा संक्षिप्त क्रिया-विधि से की जाती है। सैशन न्यायालय और मजिस्ट्रेट के समक्ष मुकदमे की सुनवाई में महत्त्वपूर्ण अन्तर होता है। इसी प्रकार का अन्तर वारंट के मामलों और सम्मन के मामलों में होता है। इन समस्त मुकदमों की कार्यवाहियों से पीठिका के समक्ष संक्षिप्त ढंग से की जानेवाली कार्यवाही भिन्न होती है।

मुकदमे का स्थानांतरण तथा अनुयोग

मजिस्ट्रेट प्रायः किसी गैर-सरकारी व्यक्ति के अभियोग पर या पुलिस की रिपोर्ट के आधार पर मुकदमा लेता है। किसी अन्य स्रोत से रिपोर्ट मिलने पर, या अपनी जानकारी के आधार पर, या अपने संदेह पर भी कि अपराध हुआ है, वह मुकदमा ले सकता है। ऐसी स्थिति में उसका यह कर्तव्य होता है कि जैसे ही अभियुक्त उसके सामने उपस्थित हो, वह उसे इस बात से सूचित कर दे कि यदि वह चाहे तो मुकदमा और किसी मजिस्ट्रेट के सामने पेश करा सकता है। यदि अभियुक्त स्थानांतरण चाहे तो वह किया जाना चाहिए, अन्यथा वह मजिस्ट्रेट मामला चला सकता है। अभियोग या शिकायत आने पर मजिस्ट्रेट को चाहिए कि वह अभियोग लगानेवाले को तुरन्त शपथ दिला कर उसकी परीक्षा (अनुयोग) करे। परीक्षा का सार लिपिबद्ध किया जाय और उस पर मजिस्ट्रेट व अभियोक्ता दोनों के हस्ताक्षर हों। प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट शपथ देकर या बिना शपथ दिलाये—जैसा वह उचित समझे—परीक्षा कर सकता है। अभियोक्ता की परीक्षा के बाद मजिस्ट्रेट निम्नलिखित तीन मार्गों में से एक अपना सकता है :

(१) यदि वह यह समझे कि मामला चलाने का कोई आधार नही है तो वह उसे खारिज कर दे। अभियोक्ता को यह छूट है कि वह उच्च-न्यायालय के पास जाकर यह आदेश ग्रहण करे कि वही या अन्य कोई मजिट्रेस्ट उसके मामले को लेकर चलाये। यदि ऐसा नही किया जाता तो मामला खत्म हो जाता है। (२) मजिस्ट्रेट अभियुक्त के पास सम्मन भेजे या उसकी गिरफ्तारी का वारण्ट निकाले। सहिता में इस बात का निर्देश है कि कब सम्मन जारी किया जाय और कब वारण्ट। अभियुक्त के सम्मन पर आने या वारण्ट पर गिरफ्तार होने के बाद जाँच या मुकदमे का काम शुरू होता है। (३) मजिस्ट्रेट अभियुक्त के प्रति कार्यवाही (सम्मन या वारण्ट की) टालकर स्वय या पुलिस द्वारा मामलो की छानबीन करे। तत्पश्चात वह यह निर्णय करे अभियुक्त के प्रति उक्त कार्यवाही की जाय या अभियोग अस्वीकार कर दिया जाय। जाँच या मुकदमे के दौरान मे अभियुक्त को अपने वकील द्वारा प्रतिवाद (सफाई पेश करने) करने का अधिकार है।

अन्त मे यहाँ यह कहना आवश्यक है कि कुछ मामलो मे दण्ड-न्यायालय तभी कार्यवाही शुरू कर सकता है जबकि अभियोग किसी खास व्यक्ति या अधिकारी द्वारा लगाया गया हो, या जब सरकार ने उसकी स्वीकृति दे दी हो। उदाहरण के लिए राज्य के विरुद्ध अपराध के संबध मे अदालती कार्यवाही तबतक नही शुरू की जा सकती जबतक कि अभियोग राज्य सरकार के, या उसके द्वारा अधिकृत अधिकारी के आदेश द्वारा न लगाया गया हो। अन्य उदाहरण है—कूटसाक्ष्य के सबंध मे या अदालती कार्यवाही मे सबधित अन्य अपराधो के बारे में उस न्यायालय की शिकायत के बिना कार्यवाही, जारकर्म के बारे में उस स्त्री के पति या उसके पति की अनुपस्थिति मे उस स्त्री का ध्यान रखनेवाले अन्य व्यक्ति की शिकायत के बिना कार्यवाही; जिसकी मानहानि हुई है उसकी शिकायत के बिना मानहानि सबधी कार्यवाही; किसी न्यायाधीश या सार्वजनिक अधिकारी के विरुद्ध उसके सरकारी काम के समय किये गए अपराध के सबध मे केन्द्रीय या राज्य-सरकार—जिसकी सेवा में वह हो—की स्वीकृति के बिना कार्यवाही।

किसी व्यक्ति को किसी गंभीर अपराध के संबंध में सैशन या उच्च-न्यायालय में भेजने से पूर्व मजिस्ट्रेट का यह कर्त्तव्य है कि वह मामले की जाँच द्वारा यह निश्चय कर ले कि मामला ऐसा है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही की जा सकती है। यदि उसे इस बात का निश्चय या सन्तोष नही होता तो वह अभियुक्त को अभियोग-मुक्त करके छोड देगा। यदि उसे उक्त संतोष हो जाता है तो वह उसपर आरोप लगायगा जिसमें उसके द्वारा किये अपराध का निर्देश होगा और उसे सैशन या उच्च-न्यायालय के हवाले कर देगा। यदि मामला उच्च

न्यायालय को सौपा गया हो तो प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट मामले की जांच करेगा, और यदि सैशन न्यायालय को सौपा गया है तो प्रथम या द्वितीय श्रेणी का मजिस्ट्रेट जाँच का काम करेगा।

मान लीजिये, प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट ने अपने आदेशानुसार किसी अपराधी को अभियोग विचारार्थ उच्च-न्यायालय के सुपुर्द किया है। जब उसके मामले पर उस न्यायालय का जज विचार आरभ करता है उस समय अभियुक्त को उसके सामने उपस्थित होना चाहिए और यदि अभियुक्त पुलिस की हिरासत मे है तो वह उसके समक्ष उपस्थित किया जाना चाहिए। तब उसपर लगाया गया आरोप उसे पढकर सुनाया जायगा और उससे पूछा जायगा कि वह तर्क मे अपने को दोषी मानता है या निर्दोष। यदि वह अपने को दोषी मानता है तो उसके दोष का आधार अभिलिखित कर दिया जायगा और तब न्यायालय उसे अपराधी ठहरा सकता है। इसपर अभियोग विचार का कार्य समाप्त हो जाता है। यदि वह अपने को तर्कसम्मत दोषी नही मानता या जवाब नही देता तो ९ व्यक्तियो की एक जूरी (सभ्या) की रचना की जायगी। यह जूरी सामान्य अथवा विशेष हो सकती है। मृत्यु-दड द्वारा दडनीय अपराध के लिए विशेष जूरी होनी चाहिए। अन्य अपराधो के लिए सामान्य जूरी होगी, किन्तु उच्च न्यायालय विशेष जूरी की रचना का आदेश दे सकता है। दोनो जूरियो मे अंतर यह है कि विशेष जूरी की रचना के लिए बनाई गई सूची मे जिन व्यक्तियो के नाम अंकित किये जाते है वे सामाजिक तथा शिक्षा व सम्पत्ति-संबधी योग्यता मे सामान्य जूरी की सूची के व्यक्तियो से ऊचे होते है। उच्च-न्यायालय ये सूचियाँ तैयार करता है। यदि मामला विशेष जूरी वाला है तो उस सूची के कुछ सभ्यो (जूररो) को सेशनमें बुलाया जाता है। उनके नाम पुकारे जायगे और उनसे आवश्यक सख्या की जूरी बना ली जायगी। सामान्य जूरी वाले मामले में भी प्रक्रिया इसी प्रकार है। एक अधिकारी, जो राज्य-लेखक (क्लर्क आव दी स्टेट) कहलाता है, एक पेटी में से सभ्यो की नामाकित पर्चियाँ निकाल कर हर पर्ची मे अकित सभ्य का नाम पढता है। नाम पढने पर संबधित सभ्य उपस्थित होगा और तब अभियुक्त से यह पूछा जायगा कि क्या उसे उस व्यक्ति के उस मामले मे सभ्य-पद ग्रहण करने मे कोई आपत्ति है। वह सभ्य-निर्वाचन में बिना कारण बताये आठ आपत्तियाँ कर सकता है। राज्य-अभियोक्ता को भी ऐसी ही सुविधा प्राप्त है। इसके अतिरिक्त कोई भी पक्ष कुछ विशेष कारणो से किसी भी सभ्य (जूरी के सदस्य) के सबध में आपत्ति कर सकते है—जैसे, कुछ ये कारण हो सकते है—व्यक्तिगत द्वेष-भावना,

उच्च न्यायालय द्वारा परीक्षण

विशेष तथा सामान्य सभ्या (जूरी) तथा जूरी की रचना

मुकदमे की सुनवाई

सभ्य का २१ वर्ष से कम और ६० वर्ष से अधिक आयु का होना या उसका भाषा का न समझ सकना। जब ९ सभ्य चुन लिये जाते हैं तो वे अपने में से एक को प्रधान सभ्य चुन लेते हैं। तब वे शपथ ग्रहण कर सभ्या-प्रकोष्ठ (जूरी बॉक्स) में स्थान ग्रहण करते हैं। बुलाने पर अथवा परीक्षण-काल में जो सभ्य अनुपस्थित रहता है वह न्यायालय की अवमानना का अपराधी माना जाता है और उसके लिए उस पर जुर्माना किया जा सकता है तथा जुर्माना न भरने की दशा में ६ महीने तक उसे व्यावहारिक (सिविल) कारावास का दंड दिया जा सकता है। यदि वह बाद में उपस्थित होता है, और पूर्व अनुपस्थिति का सम्यक कारण बताता है तो जज उसका जुर्माना माफ कर सकता है।

जूरी की रचना के पश्चात अभियोक्ता मामला शुरू करता है और अभियुक्त के प्रति लगाये गए आरोपों और अपने द्वारा पेश की जानेवाली तत्सम्बन्धी गवाही का स्पष्टीकरण करता है। इसके बाद वह अभिपक्ष (अभियोक्ता पक्ष) के गवाहों का परीक्षण करता है। अभियुक्त या उसका वकील उनसे जिरह कर सकता है। अंत में अभियोक्ता को चाहिए कि वह मजिस्ट्रेट[1] के सामने अभियुक्त द्वारा दिये गए वक्तव्य को गवाही के रूप में पेश करे। न्यायाधीश द्वारा, यदि वह चाहे तो और अधिक परीक्षण करने के बाद अभियुक्त से पूछा जायगा कि क्या वह अपने गवाह पेश करना चाहता है। यदि वह नहीं चाहता तो अभियोक्ता मामले की समाप्ति करता है।

इस अवस्था में जज दो में से एक मार्ग अपनाता है। यदि वह समझता है कि अभियुक्त को दोषी प्रमाणित करनेवाला कोई साक्ष्य या सबूत नहीं तो वह जूरी को आदेश देता है कि वह अभियुक्त को निर्दोष घोषित करे और जूरी के ऐसा न करने के बाद वह उसे बरी कर देता है। यदि वह समझता है कि उसे दोषी सिद्ध करनेवाले प्रमाण हैं तो वह उससे अपनी सफाई पेश करने को कहता है। तब अभियुक्त और उसका वकील अपने गवाहों का परीक्षण करता है; अभियोक्ता उनसे जिरह कर सकता है। उस समय अभियुक्त और उसका वकील अपने मामले का समाहार[2] करते हैं। अभियोक्ता को उसका जवाब देने का अधिकार है। यदि अभियुक्त अपने गवाह नहीं बुलाता तो वह या उसका वकील खाली अपने मामले का समाहार करते हैं। तब अभियोक्ता को जवाब देने का कोई अधिकार नहीं होता। वह कानूनी मुद्दे पर,

---

१. कमीटिंग मजिस्ट्रेट—अभियुक्त के मामले को सुनवाई के लिए भेजने वाला मजिस्ट्रेट।

२. समाहार—पूरे पक्ष का सिंहावलोकन करके मुख्य बातों का सामने पेश करना।

न्यायालय की अनुमति से, जवाब पेश कर सकता है। तत्पश्चात् जज जूरी को संबोधित करता है। वह दोनों पक्षों के प्रमाणों का समाहार करता है और जूरी से कानून के अनुसार उन्हें समझने के लिए कहता है। किन्हीं विशेष बातों के संबंध में उपस्थित किये गए प्रमाणों के संबंध में भी वह अपनी राय जूरी के सामने रख सकता है, किन्तु उसे जूरी को यह जताना होगा कि अभियुक्त के दोषी या निर्दोष होने का निश्चय स्वयं जूरी को ही करना है। जूरी तब उसी समय या उठ कर उस पर और विचार करने के बाद अपना फैसला देती है। प्रधान पंच जज को यह बताता है कि समस्त जूरी की या उसके बहुसंख्यक जूरियों की राय क्या है। यदि सभ्यों की उसके संबंध में एक राय है तो जज के लिए अनिवार्य है कि वह उसे स्वीकार करे और अपना निर्णय उसी के अनुसार दे। वह या तो अभियुक्त को बरी कर देगा या उसे दोषी ठहरायगा और उसे सजा सुना देगा। यदि ६ या इससे अधिक सदस्य एक राय देते हैं तो जज उसके साथ अपनी सहमति दे सकता है और उसके अनुसार अपना निर्णय घोषित कर सकता है। किन्तु यदि वह चाहे तो उसके साथ असहमत हो सकता है और जूरी को भंग कर सकता है। यदि जूरी के केवल पाँच सभ्य एकराय हैं तो उसे चाहिए कि वह जूरी को भंग कर दे। जूरी के भंग हो जाने के बाद अभियुक्त को हिरासत में रखा जा सकता है या दूसरी जूरी द्वारा परीक्षण-कार्य आरंभ करने से पूर्व तक के लिए उसे जमानत पर छोड़ा जा सकता है। लेकिन जज यह भी सोच सकता है कि मामले की परिस्थिति ऐसी है कि अभियुक्त का दुबारा परीक्षण नहीं होना चाहिए। ऐसी दशा में जज अपने इस विचार को मामले पर अंकित कर अभियुक्त को छोड़ सकता है। यह छोड़ना अभियुक्त के बरी होने के बराबर ही है। परीक्षण या मुकदमे की समाप्ति से पूर्व किसी भी समय राज्य का एडवोकेट जनरल (सरकारी बड़ा वकील—महाधिवक्ता) उस अभियोग को वापस ले सकता है।

उपवेशी (सैशन) न्यायालय द्वारा परीक्षण

सेशन न्यायालय में परीक्षण का ढंग लगभग उच्च-न्यायालय के परीक्षण के ढंग जैसा ही है, किन्तु दोनों में कुछ महत्वपूर्ण अन्तर हैं। जब कि उच्च-न्यायालय में परीक्षण सदैव एक जूरी द्वारा किया जाता है, सैशन न्यायालय में वह जूरी अथवा दोषांकन-कर्त्ताओं (असेसरों)[1] द्वारा हो सकता है। राज्य द्वारा निर्दिष्ट मामलों में ही परीक्षण जूरी द्वारा होता है और अन्य मामलों में असेसरों द्वारा। उदाहरण के लिए मद्रास और उत्तर-प्रदेश राज्यों में चोरी, लूट और डाके

---

१. अब दोषांकन-कर्ता प्रथा समाप्त कर दी गई है। विस्तृत वर्णन के लिए परिशिष्ट देखिए।

जूरी के मामले हैं जब कि हत्या का मामला जूरी का नही है और उसपर विचार असैसरो की सहायता से होता है । पश्चिमी बगाल में 'हत्या' जूरी का मामला है। मद्रास राज्य में सैशन न्यायालयों में जूरी द्वारा परीक्षण रीति को समाप्त करने का प्रस्ताव है। जूरी में प्रायः कम-से-कम ५ और अधिक-से-अधिक ९ सभ्य होते हैं, असैसर ३ से कम नही होते और यथासभव ४ होते हैं। सैशन जज जूरी के निर्णय से सहमत हो सकता है और उसके अनुसार अपना निर्णय दे सकता है । किन्तु यदि वह जूरी के निर्णय को असगत समझता हो तो उससे असहमत हो सकता है और मामला अन्तिम निर्णय के लिए उच्च-न्यायालय के सिपुर्द कर सकता है। इसी प्रकार वह असैसरो की राय मानने के लिए भी बाध्य नही है। वह प्रत्येक असैसर की राय अकित कर लेगा और अपना निर्णय घोषित करेगा तथा उसके अनुसार दंड देगा। विशेष या सामान्य जूरी के सभ्यो और असैसरो की सूची सैशन जज और जिलाधीश तैयार करते हैं। २१ और ६० वर्ष की आयु के मध्य के सभी व्यक्ति इसमे लिये जा सकते हैं। किन्तु कुछ व्यक्ति—जैसे सरकारी कर्मचारी, वकील, न्यायाधीश, डाक्टर और पुलिस अधिकारी छोड दिये जाते हैं। एक और महत्त्वपूर्ण अन्तर यह है कि सैशन न्यायालय द्वारा सुनाया गया मृत्युदड बिना उच्च-न्यायालय की पुष्टि के क्रियान्वित नही किया जा सकता। किन्तु मुकदमे मे यदि वह उच्च-न्यायालय के जज द्वारा दिया गया हो तो उसके पुष्टीकरण की आवश्यकता नही । इसके अतिरिक्त सार्वजनिक अभियोक्ता, जो सैशन न्यायालय मे अभियोग चलाता है, बिना उस न्यायालय की अनुमति के अभियोग वापस नही ले सकता है। किन्तु महाधिवक्ता (एडवोकेट जनरल) उच्च-न्यायालय की अनुमति के बिना ही अभियोग वापस ले सकता है। जिले के दंड-न्यायालयो मे मामला चलाने के लिए हर जिले के लिए सरकार एक या अधिक सार्वजनिक अभियोक्ता नियुक्त करती है ।

मजिस्ट्रेट द्वारा परीक्षण

मजिस्ट्रेट जूरी या किसी असैसर की सहायता के बिना ही स्वय अकेला मुकदमे की सुनवाई करता है। वारण्ट के मामले में वह अभियोक्ता (यदि कोई हो तो) और अभियोक्ता-पक्ष के गवाहो का परीक्षण करता है। अभियुक्त के आवश्यक परीक्षण के बाद और आवश्यक गवाही लेने के बाद यदि कोई मामला नही बनता है तो वह उसे मुक्त कर देता है । यदि उसे अन्यथा प्रतीत होता है तो वह अपराधारोप करता है। यदि अभियुक्त अपराध स्वीकार कर लेता है तो उसे अपराधी करार दे दिया जाता है और दड सुना दिया जाता है। यदि वह अपराध स्वीकार नही करता तो वह अभियोक्ता-पक्ष के गवाहों को जिरह के लिए वापस बुला सकता है और अपने पक्ष के गवाह पेश कर

सकता है। तब मजिस्ट्रेट अपना निर्णय सुनाता है। सम्मन के मामले में अपराधारोप नही किया जाता बल्कि अपराध का विवरण अभियुक्त के सामने रखा जाता है और उससे इस बात का कारण उपस्थित करने लिए कहा जाता है कि क्यो न उसे अपराधी करार दिया जाय। यदि वह अपराध स्वीकार करता है तो उसे अपराधी करार दे दिया जाता है। यदि वह अपने को 'अपराधी नही' ऐसा कहता है तो मजिस्ट्रेट अभियोक्ता (यदि कोई हो तो) से सबूत माँगता है और दोनो पक्षो के गवाहो का परीक्षण करता है। पहले अभियोक्ता-पक्ष के गवाहो की परीक्षा व जिरह की जाती है और फिर सफाई-पक्ष के। मजिस्ट्रेट फिर तर्क सुनता है ओर निर्णय घोषित करता है। सक्षिप्त परीक्षण में मजिस्ट्रेट या मजिस्ट्रेट-पीठिका वारण्ट और सम्मन के मामलो पर अभी बताई गई रीति से विचार करते है। जिन मामलो मे आगे अपील नही की जा सकती उनमें मजिस्ट्रेट के लिए अपराधारोप करना और साक्ष्य या सबूत अकित करना आवश्यक नही। सक्षिप्त-परीक्षण कार्यवाही में जो अधिक-से-अधिक सजा दी जा सकती है वह ३ महीने है।

अभियोग की छानबीन या परीक्षण के दौरान में किसी भी समय न्यायालय उपस्थित सबूत में अभियुक्त के विरुद्ध प्रतीत होनेवाले किसी भी मामले के स्पष्टीकरण काअवसर देने के लिए अभियुक्त सेप्रश्न पूछ सकता है। इसी उद्देश्य के हेतु न्यायालय का यह कर्त्तव्य है कि अभियोक्ता पक्ष के सबूत को अकित करने के बाद और अभियुक्त को अपनी सफाई पेश करने के लिए कहने से पहले, वह अभियोग के सबध मे अभियुक्त से सामान्य रूप मे प्रश्न पूछे। किन्तु शपथ के आधार पर उसकी परीक्षा नहीं की जा सकती, और न उसे उत्तर न देने के लिए या मिथ्या उत्तर देने के लिए दण्डित किया जा सकता है। अभियुक्त और गवाहो के उत्तर अकित करने की रीति भी भिन्न-भिन्न है। गवाह के उत्तर प्रायः वर्णनात्मक रूप में अकित किये जाते है। किन्तु अभियुक्त से पूछा गया प्रत्येक प्रश्न व उसका उत्तर अकित किया जाना चाहिए। दोनो मामलो में अकित उत्तरो पर जज या मजिस्ट्रेट और गवाह या अभियुक्त के हस्ताक्षर होने चाहिए।

कुछ सामान्य उपबन्ध

संहिता में निर्दिष्ट कुछ अपराधों के सबंध मे न्यायालय अभियुक्त को इस शर्त पर माफ कर सकता है कि वह अपराध ओर उससे सबधित व्यक्तियो के बारे में—जिनका ज्ञान उसे हो—सब बाते पूरी तरह और सही-सही बता दे। ऐसे व्यक्ति की फिर उस मामले मे गवाह के रूप में परीक्षा की जायगी। यह व्यक्ति प्रायः राजसाक्षी (एप्रूवर) कहलाता है। यदि वह माफी स्वीकार कर लेता है और फिर भी कूट साक्ष देता है तो वह माफी जब्त समझी जाती है और उसपर उसके माफ किये गए अपराध के लिए और कूट साक्ष के लिए

मुकदमा चलाया जा सकता है। माफी देने के इस ढंग के अलावा न्यायालय या उससे संबंधित किसी अधिकारी को नहीं चाहिए कि वह अभियुक्त से तथ्य खुलवाने के लिए उसे कोई आश्वासन या प्रलोभन दे या किसी प्रकार का वायदा करे। फौजदारी के मामले में अभियोक्ता ऐसा कोई समझौता नहीं कर सकता या मामले को वापस नहीं ले सकता अथवा खत्म नहीं कर सकता जैसे दीवानी के मामले में मुद्दई या वादी कर सकता है। किन्तु कुछ अभियोगों में उसे वैसा करने का अधिकार है। दूसरे शब्दों में वह कुछ मामलों में संधि या सुलह कर सकता है। ऐसे कुछ मामले हैं—साधारण चोट, आत्मघात या आक्रमण, मान-हानि, अनादर, जारकर्म अतिक्रमण। कुछ अन्य अपराधों को वह न्यायालय की अनुमति से संधित कर सकता है—जैसे—दारुण आघात, दंडनीय-दुर्विनियोग[1], धोखा, झूठे व्यापार चिह्न गढ़ना, दो विवाह करना। किन्तु चोरी, लूट और आपराधिक विश्वासघात सरीखे अपराधों की कदापि संधि नहीं की जा सकती।

पुराना अपराधी यदि कुछ विशेष अपराध करता है तो उसे बढ़ाकर दंड दिया जा सकता है। ऐसे मामले में उसपर जो अपराधारोप किया जाता है उसमें उसकी पुरानी सजाओं का उल्लेख किया जाता है। किन्तु इस दोष के संबंध में कार्यवाही तभी होनी चाहिए जब उसके वर्तमान दोष के बारे में कार्यवाही हो चुके। यह महत्त्वपूर्ण सावधानी इसलिए आवश्यक है कि कहीं अभियोग-विचार-काल में जज या जूरी को अभियुक्त के विरुद्ध प्रतिकूल भावना न पैदा हो जाय।

मजिस्ट्रेट अभियुक्त को दोष-मुक्त करते समय या छोड़ते समय अभियोक्ता को यह आदेश दे सकता है कि वह अभियुक्त को मुआवजा दे। यदि मजिस्ट्रेट को यह विश्वास हो कि अभियोग झूठा और व्यर्थ था तो मुआवजे का आदेश देगा। अभियुक्त, या यदि कई हों तो प्रति अभियुक्त के लिए यह मुआवजा १०० रुपये तक हो सकता है। मजिस्ट्रेट को यह भी अधिकार है कि वह यह आदेश दे कि अभियुक्त पर जो जुर्माना किया गया है वह अभियुक्त के अपराध से अभियोक्ता को पहुँची हानि के बदले मुआवजे के रूप में दिया जाय। आदेश में यह भी कहा जा सकता है कि उस जुर्माने से या उसके अंश से अभियोग चलाने के खर्च का भुगतान किया जाय। इस ढंग के अतिरिक्त अन्य किसी ढंग से फौजदारी मुकदमे में अभियुक्त या अभियोक्ता ऐसा कोई खर्चा नहीं वसूल कर सकते जैसे दीवानी मुकदमे में कर सकते हैं।

एक बार जिस व्यक्ति पर किसी उपयुक्त न्यायालय में मुकदमा चल चुकता है और उसे वह न्यायालय या अपील न्यायालय दोषी करार दे देता है या रिहा

---

१. दुर्विनियोग—पैसे का गैरकानूनी इस्तेमाल

कर देता है, तो उस व्यक्ति पर उसी अभियोग के लिए फिर मुकदमा नही चलाया जा सकता। मुक्त करने और छोड देने के आदेश में अन्तर है। यदि अभियुक्त के विरुद्ध दोषारोपण का स्वरूप निश्चित कर अभिलिखित कर लिया जाता है तब यह आवश्यक है कि उसे दोषमुक्त किया जाय या दोषी करार दिया जाय। किन्तु दोषारोपण के स्वरूप के निश्चय से पूर्व मजिस्ट्रेट यदि उचित समझे तो अभियुक्त को छोड सकता है। छोड देने का आदेश फिर अभियोग चलने के मार्ग मे बाधक नही है। यह ध्यान देने योग्य है कि यदि प्रथम अभियोग के तथ्यो के साथ अन्य कुछ तथ्य मिल कर एक अन्य ही अपराध का सकेत करे तो दुबारा मुकदमा चलाया जा सकता है। उदाहरण के रूप में **क** पर **ख** को दारुण आघात पहुँचाने के लिए मुकदमा चलाया जाता है और उसे दोषी करार दे दिया जाता है या बरी कर दिया जाता है। बाद मे उस आघात के फलस्वरूप **ख** की मृत्यु हो जाती है तो **क** पर हत्या का मुकदमा चलाया जा सकता है।

अभियोग विचार के अन्त मे जज या मजिस्ट्रेट खुली अदालत मे और दोनो पक्षो की—विशेष रूप से अभियुक्त की—उपस्थिति मे अपना निर्णय सुनाता है।

निर्णय

यदि अभियुक्त को दोषी करार दिया गया है तो निर्णय मे उसके दड का निर्देश होना चाहिए। यदि उसे दोषमुक्त कर दिया गया है तो निर्णय में उसकी हिरासत से तुरन्त मुक्ति का आदेश होना चाहिए। प्रार्थनापत्र देकर अभियुक्त अविलम्ब अपने निर्णय की प्रतिलिपि या अपनी अथवा न्यायालय की भाषा मे उसका अनुवाद प्राप्त कर सकता है। सम्मन के मामले को छोडकर अन्य सब मामलो मे वह उक्त प्रतिलिपि या अनुवाद मुफ्त प्राप्त कर सकता है।

न्यायालय द्वारा दिया गया दड, यदि उसे किसी बडे न्यायालय ने अपील पर या मामले के पुनरावलोकन पर क्रियान्वित करने से रोक अथवा रद्द नही कर दिया हो तो, क्रियान्वित किया जायगा। सेशन-न्यायालय द्वारा दिया गया मृत्युदंड तबतक क्रियान्वित नही किया जा सकता जबतक वह उच्च-न्यायालय, जिसके अधीन वह सेशन न्यायालय कार्य करता है, उसकी पुष्टि न कर दे। यदि कोई स्त्री, जिसे मृत्युदड सुनाया गया है, उस समय गर्भवती हो तो उच्च न्यायालय को दंड का क्रियान्वित करना स्थगित कर देना चाहिए और यदि वह चाहे तो उस दण्ड को आजीवन-कारावास मे बदल सकता है।

राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख को सजाओं के खत्म कर देने, परावर्त्तित करने, स्थगित करने तथा क्षमादान देने का अधिकार है। वह राज्य की कार्यकारी सत्ता के अधीनस्थ किसी कानून के अन्तर्गत किये गए अपराध-संबंधी दड को स्थगित कर सकता है, छोड सकता है या बदल सकता है। भारत के राष्ट्रपति को भी भारत सघ की कार्यकारी सत्ता के अधीनस्थ

किसी कानून के विरुद्ध किये गए अपराध के बदले दिये गए दंड के संबंध में ऐसा अधिकार प्राप्त है। संघ और राज्य-सरकारो की अपनी-अपनी कार्यकारी सत्ता के क्षेत्रो का उल्लेख पहले किया जा चुका है (अध्याय २)। भारत के राष्ट्रपति को उक्त अधिकार उन सभी मामलो के संबंध मे प्राप्त है जिनमे दड मृत्यु-दड हो। जब दड परिवर्तित किया जाता है तो उसका अर्थ यह होता है कि निम्न दंडो मे से किसी दड को उसके बाद उल्लिखित दड से बदला जा सकता है—मृत्यु, कालापानी, कडी कैद, सादा कैद, जुर्माना।

दोषी करार दे दिये जाने पर प्रत्येक व्यक्ति या उसके परामर्शदाता प्राय उस दोष से अपने को बरी कराने के लिए उससे ऊपर के न्यायालय मे अपील करते है।

पुनर्विचार (अपील) और पुनरावलोकन

किन न्यायालयो के विरुद्ध अपीले किन न्यायालयो में की जा सकती है, इसका उल्लेख पाँचवें अध्याय में किया जा चुका है। किन्तु यह ध्यान देने योग्य है कि फौजदारी अदालत के आदेश के विरुद्ध अपील तभी की जा सकती है जबकि संहिता (जाब्ता फौजदारी) और अन्य किसी कानून मे उसका स्पष्ट निर्देश हो, अन्यथा नही। जहाँ अभियुक्त को अपने को दोषी करार दिये जाने के विरुद्ध अपील का अधिकार है, वहाँ अभियोक्ता को अभियुक्त की दोष-मुक्ति के विरुद्ध अपील करने का अधिकार नही है। किन्तु सरकार सार्वजनिक अभियोक्ता को किसी नीचे के न्यायालय द्वारा आदिष्ट अभियुक्त की दोष-मुक्ति के विरुद्ध उच्च-न्यायालय मे अपील करने के लिए कह सकती है। जिन मामलो में अपील की आज्ञा नही है उनके संबंध मे कुछ न्यायालयो को यह अधिकार प्राप्त है कि वे अधीनस्थ न्यायालयो की तत्संबंधित कार्यवाही का रेकार्ड मगाकर उसकी जाँच करे और किसी गैर कानूनी या अनुचित प्रतीत होनेवाले आदेश को रद्द कर दे। हस्तक्षेप का यह अधिकार पुनरावलोकन का अधिकार कहलाता है। उच्च न्यायालय को अपने अधीन सभी न्यायालयो के ऐसे आदेशो के पुनरावलोकन का अधिकार है जिनके संबंध में अपील की आज्ञा नही है। सेशन न्यायालय और जिला मजिस्ट्रेट को अपने नीचे के न्यायालयो के कागजात मँगाकर देखने और उनकी जाँच के परिणाम की रिपोर्ट उच्च-न्यायालय में आवश्यक आदेश के लिए भेजने का अधिकार है। वे अपने नीचे के मजिस्ट्रेट द्वारा खारिज किये गए किसी अभियोग की, अथवा उसके द्वारा छोड दिये गए व्यक्ति के मामले की और अधिक छानबीन करने का आदेश दे सकते है। फिर से छानबीन करने का आदेश देने के स्थान पर वे अभियुक्त को, यदि उसका मामला केवल सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है तो, सेशन न्यायालय को सौपने का आदेश दे सकते है। अपने पुनरावलोकन के उत्तरदायित्व के अन्तर्गत, अभियोक्ता की प्रार्थना पर, उच्च-न्यायालय अभियुक्त की दोषमुक्ति के आदेश को भंग कर सकता है।

किन्तु ऐसा करते हुए वह केवल पुनर्विचार का आदेश दे सकता है, स्वयं अभियुक्त को दोषी करार नही दे सकता। यह तभी किया जाता है जबकि सरकार के कहने पर अभियुक्त को दोषमुक्त किये जाने के आदेश के विरुद्ध अपील की सुनवाई की जाय। अपील मे अपील-न्यायालय को वही अधिकार प्राप्त होते है जो अभियोग-विचार-न्यायालय को प्राप्त होते है। अपील न्यायालय अभियुक्त को दोष-मुक्त कर सकता है, उसे दोषी करार दे सकता है अथवा उसका दड कम कर सकता है। वह उसे अधिक दड नही दे सकता, किन्तु यदि अपील उच्च न्यायालय में हो तो वह न्यायालय अपने पुनरावलोकन-अधिकार के अन्तर्गत अधिक दड भी सुना सकता है। अपील-न्यायालय भी अभियोग के पुनर्विचार के लिए आदेश दे सकता है। अपील-न्यायालय यदि उचित समझे तो अभियुक्त का दड भोगना स्थगित कर उसे उस समय तक जमानत पर छोड सकता है जबतक कि उस अपील का फैसला न हो जाय।

पुनर्विचार अपील और पुनरावलोकन मे अन्तर यह है कि पुनर्विचार मे न्यायालय का यह कर्त्तव्य होता है कि वह गैर-कानूनी आदेश मे हस्तक्षेप करे ओर वह आदेश दे जो नीचे के न्यायालय को देना चाहिए था। किन्तु पुनरावलोकन मे न्यायालय इस बात के लिए स्वतन्त्र है कि वह हस्तक्षेप करे या न करे।

फौजदारी मामले मे एक ही अपील हो सकती है और जब उस पर पुनर्विचार न्यायालय अपना फैसला दे देता है तो और अपील नही हो सकती जैसा कि दीवानी न्यायालयो की दी गई डिगरियो के विरुद्ध अपीलो में होता है। उदाहरण के रूप मे जब किसी मजिस्ट्रेट के आदेश के विरुद्ध सैशन न्यायालय अपील का फैसला कर देता है तो उसके बाद उच्च-न्यायालय मे और कोई अपील नही की जा सकती। किन्तु उच्च-न्यायालय को सैशन न्यायालय की तत्सबधित कार्यवाही के कागजात मँगाकर उसके कानूनी औचित्य का जाँचने की छूट है। इसका फल यह होता है कि सब अपीले उच्च-न्यायालय तक समाप्त हो जाती है। किन्तु उच्च-न्यायालय के आदेश के विरुद्ध, उसके अन्तिम आदेश के विरुद्ध, अथवा उसके द्वारा अभियोग विचार मे दिये गए निर्णय के विरुद्ध सविधान के अन्तर्गत कुछ स्थितियों मे सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है और उनका उल्लेख अध्याय ५ में किया जा चुका है।

दोष सिद्धि

मनुष्य के दोषी या निर्दोष होने के सबध मे सच्चाई जानने की समस्या का हल निकालना, कानून को लागू करने के काम का सबसे कठिन भाग रहा है और ज्ञान और सभ्यता में काफी उन्नति के उपरात भी वह आज वैसा ही कठिन बना हुआ है। पुराने जमाने के लोग बहुत-से छोटे और सीधे तरीकों द्वारा इस कठिन समस्या का

हल निकाल लेते थे। वे जादू और दैवी हस्तक्षेप में विश्वास करते थे और इसलिए भीषण परीक्षण अपनाते थे—जैसा अभियुक्त को गर्म लोहे से चेका देना या उसके हाथ-पैर बाँध कर उसे गहरे पानी में फेंक देना। यदि वह इन परीक्षणों में उत्तीर्ण हो जाता था तो वह दण्ड से बच जाता था। उनका एक और दूसरा सुगम तरीका यह था कि वे अभियुक्त को पीड़ा पहुँचाकर उससे सत्य का उद्घाटन कराते थे। एक दयापूर्ण तरीका था कि न्यायाधीश गुप्त छानबीन द्वारा या अपनी अन्तरंग भावना द्वारा सत्य का पता चलाये। आज इन सब उपायों के स्थान पर दोषसिद्धि का उपाय काम में लाया जाता है। तथ्य की सिद्धि उन सामग्रियों से की जाती है जिससे एक समझदार आदमी उस तथ्य की सत्ता के बारे में अनुमान या विश्वास कर सके। यह सामग्री गवाही या साक्ष्य कहलाती है, क्योंकि इससे साध्य तथ्य स्पष्ट सामने आ जाता है।

साक्ष्य के नियम

साक्ष्य के नियमों का उद्देश्य दो उद्देश्यों की पूर्ति करना है। इनका पहला उद्देश्य तथ्यों के उन प्रकारों का निर्देश करना है जिनके आधार पर निर्णय के लिये आये हुए प्रश्न के संबंध में न्यायालय कुछ निष्कर्ष निकाल सके। दूसरा उद्देश्य है उस ढंग या प्रक्रिया का निर्देश जिसके द्वारा वे तथ्य न्यायालय के सामने लाये जाय। साक्ष्य के ये नियम दीवानी और फौजदारी दोनों ही न्यायालयों में सामान रूप से लागू होते हैं।

न्यायालय को अपना निष्कर्ष उक्त प्रकार से उपस्थित किये गए साक्ष्यों के आधार पर निकालना चाहिए। जज या मजिस्ट्रेट को किसी बन्दी को न्यायालय से बाहर प्राप्त जानकारी या अपनी व्यक्तिगत जानकारी के आधार पर छोड़ देना या दोषी करार नहीं देना चाहिए। किसी व्यक्ति पर लगाये गए अभियोग को पुष्टि का दायित्व अभियोक्ता पर है। यह अभियुक्त का काम नहीं है कि वह अपने को निर्दोष सिद्ध करे। अभियोक्ता को चाहिए कि वह न्यायालय के लिए सन्तोषजनक रूप में और बिना किसी संदेह के रहते हुए अभियुक्त के दोष की सिद्धि करे। यदि जज या जूरी के सामने कोई सन्देह बना रहता है तो उन्हें चाहिए कि वे अभियुक्त को सन्देह का लाभ दें और उसे दोषमुक्त कर दें। प्रायः संभव है कि अभियोक्ता का साक्ष्य अभियुक्त का दोष सिद्ध करने के लिए पर्याप्त न हो, किन्तु उसके आचरण के संबंध में संदेह पैदा करे। तब अभियुक्त अपने आचरण की सफाई पेश करने के लिए बाध्य नहीं है। वह चुप रह सकता है और दोष-सिद्धि के लिए अभियोक्ता के पास पर्याप्त साक्ष्य न होने के आधार पर रिहाई की माँग कर सकता है। इस नियम का कारण यह है कि यदि स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने का भार अभियुक्त पर डाला जाय तो संभव है कि बहुत-से निर्दोष व्यक्ति अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य उपस्थित न कर सके।

इस नियम से, हो सकता है कि कभी दोषी व्यक्ति दंड पाने से बच जायं, क्योंकि दोष की सिद्धि करना प्रायः कठिन होता है। किन्तु सार्वजनिक हित के दृष्टिकोण से यह ज्यादा अच्छा है कि १०० दोषी व्यक्ति बच जायँ, किन्तु एक भी निर्दोष व्यक्ति को दंड न मिले। अतः न्याय-प्रशासन में इस नियम का बड़ा महत्त्व है। इसका उल्लेख पाँचवें अध्याय में किया जा चुका है। जब ऐसा साक्ष्य उपस्थित हो जिसके खण्डित न होने की दशा में अभियुक्त का अपराध सिद्ध होता हो तब यह अभियुक्त का दायित्व होता है कि वह ऐसा साक्ष्य उपस्थित करे जो उसके अपराधी होने को मिथ्या सिद्ध करे। उदाहरण के रूप में वह यह सिद्ध करे कि अपराध के समय वह अपराध-स्थल पर न होकर अन्यत्र था। इस बचाव की युक्ति को प्राय अन्यत्र होने की युक्ति कहते हैं। पागलपन या आत्मरक्षा सरीखी सफाई पेश करना अभियुक्त का काम है। जिस व्यक्ति के पास चोरी का माल निकले वह यह सिद्ध कर सकता है कि माल उसने नहीं चुराया या उसने उसे चोरी का माल समझ कर नहीं लिया।

तथ्य से प्राय मतलब होता है—चीजों की ऐसी स्थिति जिसका इन्द्रियों द्वारा ज्ञान किया जा सके—अर्थात् जिसे देखा, सुना या अनभूत किया जा सके—यथा, क्या मनुष्य के पास बन्दूक थी? क्या उसने उससे किसी पर गोली चलाई? क्या उसके कब्जे में कोई जमीन थी या क्या उसने किसी को रुपया उधार दिया? तथ्य में मानसिक दशा भी शामिल है; जैसे—क्या व्यक्ति को अमुक बात मालूम थी या क्या उसके करने में उसकी भावना अच्छी या बुरी थी?

तथ्य दो प्रकार के होते हैं जिन्हें दोनों पक्ष न्यायालय के सामने साक्ष्यों द्वारा सिद्ध कर सकते हैं—प्रथम, निर्णेय तथ्य (जिनका निर्णय किया जाना हो) और दूसरे वे जो 'सगत' हों। फौजदारी के मामलों में अभियुक्त की सदोषता या निर्दोषता निर्णेय तथ्य है। दीवानी मामले में भी यह हो सकता है—उदाहरण के लिए, क्या वर्णित ऋण सत्य है? क्या वह चुका दिया गया है? या क्या अमुक व्यक्ति के कब्जे में कोई जमीन थी? साक्ष्य अधिनियम में बनाये गए ढंग से, निर्णेय तथ्य से सबंध रखनेवाले तथ्य 'सगत तथ्य' कहलाते हैं। उदाहरण के रूप में हत्या के किसी मामले में सगत तथ्य ये हो सकते हैं—अभियुक्त का उद्देश्य मृत व्यक्ति को मारना या नहीं मारना था; उसके पास ऐसा करने का कोई अवसर नहीं था या उसने ऐसा करने की कोई तैयारी नहीं की—जैसे घटना से कुछ समय पूर्व बन्दूक खरीदने के द्वारा तैयारी। जो तथ्य अपराध का कारण हो सकता था—जैसे पहले का झगड़ा, वह सगत तथ्य है। इसी प्रकार फलस्वरूप होनेवाला तथ्य भी सगत हो सकता है—जैसे अपराध-स्थल पर अभियुक्त के पदचिह्न। उसकी निर्दोषता निर्णेय तथ्य में उपस्थित प्रश्न से सीधा सबंध रखनेवाला तथ्य है जो इन तथ्यों द्वारा सभाव्य

बन जाता है—जैसेकि उसका वैसा कोई उद्देश्य नही था; उसने कोई तैयारी नही की, उस समय उसने कोई बन्दूक नही खरीदी। घटना के समय या उसके आसपास उसने, घटना के एक अश के रूप मे, जो कुछ कहा या किया, वह सगत तथ्य है। उसके दोष मे प्रभावित उसका कोई आचरण सगत तथ्य हो सकता है जैसे—अभियुक्त घटना के फौरन बाद अपने घर से लापता हो गया। जो तथ्य निर्णेय तथ्य के या सगत तथ्यो के प्रतिरूप हो उन्हे सिद्ध किया जा सकता है—जैसे जिस दिन वह घटना कलकत्ते मे हुई, अभियुक्त बबई में था। जो तथ्य निर्णेय तथ्य या सगत तथ्यो को अत्यधिक सभाव्य या असभाव्य बना दें, उन्हें पुष्ट किया जा सकता है।

जो तथ्य सगत न हो उनकी पुष्टि नही की जा सकती। उदाहरण के रूप में यदि **क** पर यह अभियोग लगाया गया है कि उसने **ख** को मारने की इच्छा से उस पर गोली चलाई तो यहाँ यह सिद्ध करना सगत नही कि **क** ने पहले **ग** पर गोली चलाई थी। किन्तु **क** की **ख** को मारने की इच्छा सिद्ध करने के लिए यह सिद्ध करना संगत है कि **क** ने पहले भी **ख** पर गोली चलाई थी। असंगत तथ्यो के अन्य उदाहरण निम्नलिखित है—अभियुक्त का चरित्र अच्छा नही है। उसके चारो ओर का वातावरण खराब है या वह ऐसे परिवार से सबध रखता है जिसकी प्रतिष्ठा या मनोवृत्ति अच्छी नही है। यह बहुत-से व्यक्तियो की राय है कि उसने अपराध किया है। इन तथ्यो को जज या जूरी के सामने नही आने दिया जाता, क्योंकि यह आवश्यक नही कि इनसे दोष उत्पन्न ही हो और दूसरी बात यह है कि वे जज या जूरी को पथभ्रष्ट कर सकते है।

अन्याय को रोकने के लिए यही आवश्यक नही है कि केवल कुछेक तथ्यों की पुष्टि पर ही जोर दिया जाय। यह सतर्कता रखना भी उतना ही आवश्यक है कि किस ढग से ये तथ्य न्यायालय के सामने लाये जाते है। किसी भी तथ्य की पुष्टि उस व्यक्ति के कथन द्वारा होनी चाहिए जिसे उसका व्यक्तिगत ज्ञान है। उसका अनुभव अपना प्राप्त किया हुआ होना चाहिये न कि ऐसे किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से, जो न्यायालय को अपनी जानकारी का परिज्ञान नही कराता। साक्ष्य, जैसा कि कहा जाता है, सीधा होना चाहिए, न कि सुनी-सुनाई बात पर आधारित। **क** पर **ख** की घडी चुराने का अभियोग है। यह सगत तथ्य है कि घटना के कुछ दिनो बाद **क** के पास वह घड़ी देखी गई थी। **ख, ग** और **घ** जिन्होने **क** के पास घडी देखी, इस तथ्य के सबंध में साक्ष्य दे सकते है, किन्तु **ङ** जिसने यह बात केवल **ख, ग** या **घ** से सुनी है, कोई साक्ष्य नही दे सकता। इस महत्त्वपूर्ण नियम द्वारा अफवाह, कपोल कल्पना, और अनुत्तरदायी साक्ष्य का परित्याग हो जाता है। जब कोई व्यक्ति न्यायालय के सामने कोई कथन प्रस्तुत करता है तो उसमें वह वही बात कह सकता है जिसे वह सच्ची

मानता है और उसकी जिम्मेदारी वह अपने ऊपर लेता है। यदि वह ऐसे तथ्य के बारे में साक्ष्य देता है जो गलत है या कभी घटित नही हुआ तो उस पर कूटसाक्ष्य का अभियोग चलाया जा सकता है। अपनी जानकारी के सबध मे उसकी प्रति-परीक्षा (गूढ परीक्षा) की जा सकती है। यदि उसने मिथ्याकथन किया है तो इस बात का कही-न-कही पता चल जायगा ओर इस प्रकार जज या जूरी पथभ्रष्ट नही होगे।

सुनी-सुनाई गवाही को स्वीकार करने के विरुद्ध जो नियम है वह बहुत महत्त्व-पूर्ण है, किन्तु जब न्याय के लिए इस नियम से हटना आवश्यक होता है तब हटा भी जा सकता है। किसी व्यक्ति का साक्ष्य उसकी मृत्यु या अन्य कारणो से अप्राप्य हो सकता है। इस प्रकार का एक महत्त्वपूर्ण मामला है—मृत व्यक्ति का अपनी मृत्यु के कारण व परिस्थितियो के सबध मे बयान। यह प्राय. मरते समय का बयान कहलाता है और मृत व्यक्ति की मृत्यु के कारण का प्रश्न उपस्थित होने पर साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाता है—जैसे हत्या के मामले में। यदि वह अंकित या लिपिबद्ध हो तो उसे साक्ष्य मान लिया जायगा, किन्तु जिस व्यक्ति ने उसे अकित किया उसे उसकी प्रामाणिकता बतलानी होगी। और भी कुछ मामले ऐसे होते है जिनमें ऐसे व्यक्ति के कथन की, जो मर चुका हो या न मिलता हो, पुष्टि की जा सकती है। उदाहरण के लिए—किसी व्यक्ति द्वारा अपने ही हित के विरुद्ध किया गया कथन, ऐसे व्यक्तियो के बीच सबध का कथन जिनके संबध के बारे में उसके पास जानकारी के विशेष साधन हो, हिसाब के खाते या रसीद में किया गया कोई कथन। ये कथन मुकदमा आरभ होने से पहले के होने चाहिएं, नही तो सभव है किसी व्यक्ति ने अपने दावे की पुष्टि के लिए उन्हें बाद में जन्म दिया हो और उस अवस्था में उन पर विश्वास नही किया जा सकता।

तथ्य की सिद्धि उस पक्ष के स्वीकार करने से हो सकती है जिसके विरुद्ध उसे सिद्ध करने की आवश्यकता है। जब बन्दी न्यायालय मे अपना अपराध स्वीकार कर लेता है तो वह निस्सन्देह उस तथ्य का सबसे अच्छा प्रमाण है। न्यायालय का, केवल उसकी स्वीकृति के आधार पर और उसके विरुद्ध बिना किसी अन्य साक्ष्य की अपेक्षा के, उसे दोषी करार देना और उसे दण्ड देना—यहाँ तक कि मृत्युदड देना भी—उचित होगा। किन्तु ऐसा बहुत कम होता है। होता तो प्राय. ऐसा है कि अभियुक्त न्यायालय मे बाहर अपना अपराध स्वीकार कर लेता है किन्तु न्यायालय में उससे इन्कार कर देता है। तब अभियोक्ता उसकी अपराध-स्वीकृति को मौखिक या अन्य उपायो द्वारा सिद्ध करने की कोशिश करता है। यदि उसने पहले अपराध स्वीकार भी कर लिया हो तो संभव है उससे जबरदस्ती वैसा करवाया गया हो और उसने स्वेच्छापूर्वक

न किया हो। इसलिए कानून कई अवस्थाओं में अपराध-स्वीकृति को अमान्य कर कुछ सरक्षण प्रदान करता है, जैसे उस समय जबकि यह मालूम हो कि वह स्वीकृति किसी सत्ताधारी व्यक्ति के प्रलोभन, धमकी या वायदे का फल है। पुलिस अधिकारी के समक्ष की गई अपराध-स्वीकृति पूर्णरूपेण अमान्य कर दी जायगी। अभियुक्त की पुलिस की हिरासत में रहते हुए की गई अपराध-स्वीकृति तभी ग्रहण की जायगी जबकि वह मजिस्ट्रेट के एकदम सामने की गई हो। मजिस्ट्रेट को इस सबध में पूरा संतोष कर लेना चाहिए कि वह स्वीकृति स्वेच्छाजन्य थी या किसी दबाव के कारण दी गई। उसको यह चाहिए कि वह उस स्वीकृति को सहिता (जाब्ता फौजदारी) मे निर्दिष्ट विधि के अनुसार अंकित कर ले। पुलिस की हिरासत में की गई अपराध-स्वीकृति को ग्रहण करने का एक ही अपवाद है और वह उस समय जबकि उस स्वीकृति मे मिली जानकारी पर पुलिस द्वारा अन्य तथ्यो का पता लगाया गया हो। फिर भी उतनी ही 'स्वीकृति' सिद्ध की जा सकती है जितनी का नई खोज से सबध हो। एक चोर अपना अपराध स्वीकार कर लेता है और उस जगह की सूचना दे देता है जहाँ उसने चुराई गई चीज छिपाई हो। पुलिस उस स्थान से वह चीज प्राप्त कर लेती है। यह तथ्य, कि उसने उक्त स्थान की सूचना दी थी, सिद्ध किया जा सकता है। यह इसलिए है कि स्वीकृति की सत्यता प्रदर्शित हो चुकी है। कई बार हो सकता है कि एक या दो या अधिक अभियुक्त अपराध स्वीकार करले जिसमें वे स्वयं और अन्य कोई शामिल हो। ऐसी स्थिति मे न्यायालय उस अन्य के विरुद्ध भी उस स्वीकृति पर विचार कर सकता है। किन्तु यह तो स्पष्ट है कि इस स्वीकृति का मूल्य उस अन्य के विरुद्ध उतना नही है कि जितना स्वीकृति-कर्ता के खुदके विरुद्ध है।

कुछ तथ्यों की सिद्धि आवश्यक नही। वे इतने सुविदित हो सकते है कि जज को चाहिए वह स्वयं ही उनकी ओर ध्यान दे—जैसे—संसद के अधिनियमों का अस्तित्व और उनका विषय, मुख्य अधिकारियों के नाम जैसे राष्ट्रपति या राज्य-पालों के नाम, उत्सव, छुट्टियाँ, ऋतुएँ, समय-विभाग, भारत सरकार व अन्य सरकारो के बीच युद्ध या शान्ति की स्थिति, मार्ग-नियम, और इतिहास व भूगोल की बातें। कई बार एक पक्ष को किसी तथ्य की सिद्धि के लिए तकलीफ नही उठानी पडती। यह इस आधार पर होता है कि विरोधी पक्ष को उस तथ्य के विरुद्ध बात सिद्ध करने की आज्ञा नही होती। यदि दो व्यक्ति पति-पत्नी के रूप में रहे है और उनके वैवाहिक जीवन-काल में उनके बच्चा हुआ है, तो उस बच्चे को जायज और उस पति के सहवास से समुत्पन्न माना जायगा। पति या पत्नी दोनो म कोई यह सिद्ध करने का प्रयत्न नही कर सकेगा कि वह बच्चा किसी अन्य पिता से उत्पन्न हुआ है। यदि वह विवाह-भंग के बाद किन्तु उसके

२८० दिन के भीतर पैदा हुआ है तो बच्चे पर भी यही नियम लागू होता है। यदि यह सिद्ध किया जा सके कि बच्चे के गर्भ मे आने की सभावना के समय पति-पत्नी एक दूसरे से पृथक् थे—जैसे वे दोनो दो विभिन्न स्थानो पर थे, तो यह एक दूसरी बात होगी।

साक्ष्य दो प्रकार का होता है। एक तो उस कथन के रूप मे जो साक्षी ने न्यायालय मे किसी तथ्य की सिद्धि के लिए किया हो, और दूसरा किसी लेख के रूप मे जिसमे उस तथ्य के सबध मे कथन हो। दूसरे शब्दो मे वह मौखिक या लिखित हो सकता है।

गवाह ऐसे किसी तथ्य के संबध में बोल सकता है जो उस मामले में साध्य हो। यदि उससे इसके सबंध मे प्रश्न पूछा जाय तो वह उत्तर देने के लिए बाध्य है। किन्तु जिस तथ्य की वह बात कहे वह उसकी व्यक्तिगत जानकारी मे होना चाहिए—अर्थात् उसके द्वारा सुना गया, देखा गया या अन्य प्रकार से इन्द्रियों द्वारा जाना गया। वह कह सकता है कि उसने अभियुक्त को मृत व्यक्ति पर छुरा चलाते या गोली चलाते देखा या आहत व्यक्ति अथवा पास खडे व्यक्तियो की चीत्कार सुनी। वह यह नही कह सकता कि उसने यह बात किसी अन्य से सुनी थी कि उस (अन्य व्यक्ति) ने उसे देखा या सुना है। यदि किसी व्यक्ति के कथन की ही सिद्धि करनी हो तो साक्षी यह कह सकता है कि उसने वह कथन सुना था—जैसे—अभियुक्त का अपराध-स्वीकृति का कथन। साक्षी केवल तथ्यो की बात ही कह सकता है। उसकी अपनी धारणाए या राय असंगत होगी। हाँ, जब वह विशेषज्ञ के रूप मे अपनी राय दे रहा हो—जैसे मृत्यु के कारण के बारे में डाक्टर की राय, किसी लेख के असली या जाली होने के सबध मे हस्त-लेख-विशेषज्ञकी राय तो वे संगत हो सकती है। ऐसी स्थिति में तथ्यो की सिद्धि द्वारा उक्त धारणाओं को खण्डित किया जा सकता है।

ऊपर दी गई कानून की संक्षिप्त व्याख्या से यह नही समझना चाहिए कि साक्षी केवल अपने सामने हुए अपराध के बारे में या जिस अपराध के बारे में उसे स्वयं जानकारी हो, उसीके बारे में ही गवाही दे सकता है। अपराध की सिद्धि एक या दो ऐसे साक्षियों द्वारा की जा सकती है जिन्होने अपराध का होना अपनी आँखो से देखा हो, किन्तु परिस्थितियों द्वारा भी अपराध की सिद्धि हो सकती है।

हत्या के मामले में अभियुक्त के पैर या उँगलियों के निशान, अपराध से पहले या बाद में उसका आचरण; यथा—उसका बन्दूक या जहर खरीदना, ऐसी ही परिस्थितियाँ है। चोरी के मामले में अभियुक्त के पास से चोरी के माल का बरामद होना भी ऐसी ही परिस्थिति है। ये परिस्थितियाँ या घटनाएं मानवीय साक्ष्य से अधिक विश्वसनीय होती है और कोई भी साक्षी इनके सबंध में अपना साक्ष्य दे सकता है। कोई भी व्यक्ति साक्षी हो सकता है। छोटी उम्र के बच्चे

से भी, यदि वह प्रश्न को समझता है और उसका उत्तर दे सकता है, तो सवाल-जवाब किये जा सकते है। कुछ तथ्य ऐसे होते है जिनके सबध में साक्षी को साक्ष्य देने या उनका उल्लेख करने की आवश्यकता नही होती। उदाहरण के रूप मे, वह ऐसे तथ्य का उल्लेख नही कर सकता जो संविदा (काण्ट्रेक्ट) के, या ऐसी प्रदत्त सम्पत्ति के विरुद्ध हो, जिसके बारे मे लिखा-पढी हो चुकी है। कुछ ऐसे प्रश्न होते है जिनका उत्तर देने के लिए साक्षी को बाध्य नही किया जा सकता। पति-पत्नी को अपने आपसी पत्र-व्यवहार को खोलने के लिए नही कहा जा सकता। वकील को उसके मवक्किल द्वारा व्यावसायिक पत्र-व्यवहार में लिखी गई बाते बताने के लिए नही कहा जा सकता। उदाहरण के लिए, यदि कोई मवक्किल किसी वकील के पास गया हो और उसने कहा हो कि "मैंने हत्या की है और मै इस मामले में आपसे अपना बचाव कराना चाहता हूँ।" ऐसी स्थिति मे वकील से यह बताने के लिए नही कहा जा सकता कि उसके मवक्किल ने उससे क्या कहा था। किसी सरकारी अधिकारी को, यदि वह यह समझता है कि अमुक प्रश्नो का उत्तर देना लोकहित के लिए ठीक नही है, तो उन प्रश्नो का उत्तर देने के लिए बाध्य नही किया जा सकता और न जज या मजिस्ट्रेट को उसके न्यायालय मे आचरण से संबधित प्रश्नो का उत्तर देने के लिए ही बाध्य किया जा सकता है।

प्रत्येक साक्षी, इच्छुक पक्ष के कहने से न्यायालय द्वारा सम्मन भेजे जाने पर, बिना किसी जोर-जबरदस्ती के चला आता है। यदि वह न आये तो न्यायालय उसे आने के लिए बाध्य कर सकता है। वह उसकी गिरफ्तारी या जायदाद की कुर्की का वारट जारी कर सकता है। न्यायालय जानेवाले साक्षी को कुछ सुविधाएँ प्राप्त रहती है। उस समय उसे कर्ज की अदायगी न करने के बदले या किसी दीवानी मुकदमे में मिले दंड को कार्यान्वित करने के लिए गिरफ्तार नही किया जा सकता। फौजदारी न्यायालय मे जारहे साक्षी को पुलिस अधिकारी के साथ जाने के लिए नही कहा जा सकता। उसे अनावश्यक रूप से बन्धन मे या असुविधा मे नही रखा जा सकता। साक्षी का साक्ष्य न्यायालय द्वारा अकित कर लिया जाता है और वह उसे पढकर सुना दिया जाता है या समझा दिया जाता है।

साक्षी खुली अदालत मे अपनी गवाही देता है। वह जानता है कि यदि उसने झूठ बोला तो दुनिया मे कोई भी ऐसा व्यक्ति, जिसे उस संबध में जानकारी है, उसका झूठ खोल देगा। यह झूठ के विरुद्ध एक संरक्षण है। दूसरा यह है कि गवाह अपनी गवाही शपथ लेकर या सच बोलने का वचन देकर, देता है। ईसाई बाईबल का स्पर्श कर इस प्रकार शपथ लेता है—"मैं शपथ लेता हूँ कि मै सच बोलूंगा, सच के अलावा और कुछ नही बोलूगा। भगवान मेरी सहायता करे।"

हिन्दू या मुस्लिम साक्षी धार्मिक ग्रंथ की शपथ लेता है। यदि उसे शपथ लेने में उसके अन्तःकरण की कोई आपत्ति हो तो सत्य बोलने का वचन मात्र दे सकता है। साक्षी का वह साक्ष्य जो शपथ या सत्य वचन द्वारा नही लिया गया होता, साक्ष्य नही माना जाता। इस प्रकार कानून में साक्षी की ईमानदारी के लिए धार्मिक अनुज्ञप्ति की व्यवस्था है। यदि साक्षी झूठ बोलता है तो उस पर कूट साक्ष्य के लिए अभियोग चलाया जा सकता है और उसे दड दिया जा सकता है। उसके साक्ष्य को अकित करने की विधि इस प्रकार है--जो पक्ष साक्षी बुलाता है वह या उसका वकील साक्षी से ऐसे प्रश्न पूछता है जिनके उत्तर द्वारा वह साध्य तथ्यो के सबध मे अपना विवरण उपस्थित कर सके। इसे मुख्य परीक्षण कहते है। प्रश्न ऐसे होने चाहिए जिनके उत्तर में साक्षी यह बता सके कि उस विषय मे वह वास्तव मे क्या जानता है। प्रश्न साक्षी को साकेतिक या किसी उद्दिष्ट उत्तर की ओर ले जानेवाले नही होने चाहिए। उदाहरण के लिए, हत्या के मामले मे साक्षी से पूछा जा सकता है—"आपने उस स्थान पर किसे देखा ?" "क्या उसके पास कोई शस्त्रास्त्र था ?" उससे यह नही पूछा जा सकता, "क्या आपने अभियुक्त को वहाँ देखा था ?" "क्या अभियुक्त वहाँ नही था ?" "क्या उसके हाथ मे बन्दूक थी ?" मुख्य परीक्षण की समाप्ति के बाद विरोधी पक्ष या उसका वकील उस साक्षी का प्रतिपरीक्षण या गूढ परीक्षा करता है जिससे उसकी ईमानदारी और स्मरण शक्ति का पता चल जाता है। प्रश्न साकेतिक उत्तर की कामनावाले या अन्य प्रकार के हो सकते है। प्रतिपरीक्षण या गूढ परीक्षा का ढग साक्षी के साक्ष्य के झूठ या उसकी त्रुटि के प्रकाशन के लिए निकाला गया है। उसके खराब पूर्वाचरण या चरित्र के सकेत से उसकी नेकनामी या साख पर आक्षेप किया जा सकता है। किन्तु न्यायालय को अनुचित प्रश्नो का निषेध करने का अधिकार है। जो एडवोकेट (अधिवक्ता) बिना समुचित आधार के ऐसे प्रश्न पूछता है उसके विरुद्ध उच्च-न्यायालय अनुशासनात्मक कार्यवाही कर सकता है। वह साक्षी से बिना किसी समुचित आधार वाले सकेत के यह नही पूछ सकता कि क्या वह डाकू था या उसने कोई अपराध या निन्दाजनक कार्य किया था ? साक्षी की गूढ परीक्षा के बाद जिस पक्ष ने उस साक्षी को बुलाया था वह उसकी फिर परीक्षा करता है ताकि उसे (साक्षी को) अपनी गूढ परीक्षा मे दिये गए किन्ही उत्तरो के स्पष्टीकरण का अवसर मिल सके।

किसी तथ्य को सिद्ध करने के लिए न्यायालय मे लेख या दस्तावेज (लिखित कागज) प्रस्तुत किया जा सकता है। यह एक मामूली-सी बात मालूम होती है, किन्तु इसमें बहुत-सी बाते है जो प्रत्यक्ष मालूम नही होती। लेख मे क्या होता है ? इसमे उसके लिखनेवाले या अन्य प्रकार से उससे सम्बद्ध पक्ष का कथन होता है।

उदाहरण के लिए, फौजदारी मुकदमे में अपराध के संबंध में पुलिस या ग्राम अधिकारी को दी गई प्रथम सूचना का विवरण एक महत्त्वपूर्ण लेख है। यदि मामला शारीरिक चोट का है तो उसके संबंध मे डाक्टर का चोट-संबधी प्रमाणपत्र दूसरा महत्त्वपूर्ण लेख है। इन लेखो मे डाक्टर या अन्य अधिकारियो का यह कथन रहता है कि उन्होने क्या देखा या सुना। सामान्य रूप से प्रत्येक व्यक्ति को न्यायालय में आना चाहिए और वहाँ मुकदमे के जिन तथ्यो को वह सिद्ध करना चाहता है उनके सम्बन्ध में उसे अपना कथन प्रस्तुत करना चाहिए। कोई अन्य व्यक्ति उसकी जगह आकर उसका कथन सिद्ध नही कर सकता। यह कथन मौखिक या लिखित हो सकता है। अतः हमें यह याद रखना चाहिए कि किसी तथ्य के संबध में किसी व्यक्ति के कथन का लिखित रेकार्ड साधारणतया साक्ष्य के रूप में ग्रहण नही किया जायगा। हम देख चुके है कि कुछ अपवादात्मक स्थितियों मे ऐसे साक्ष्य ग्रहण किये जा सकते है। अन्य स्थितियो में किसी लेख में अंकित किसी व्यक्ति के कथन की सिद्धि के लिए उस लेख को प्रस्तुत नही किया जा सकता। यदि वह व्यक्ति साक्षी के रूप मे आता है तो वह लेख कुछ विशेष प्रयोजनो के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। वह उसे अपनी स्मृति फिर ताजा करने के लिए प्रस्तुत कर सकता है। विरोधी पक्ष द्वारा वह उसका खण्डन करने के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। इसलिए किसी लेख के प्रस्तुत किये जाने के संबंध में इस महत्त्वपूर्ण अपेक्षा का ध्यान रखना पडेगा। किसी व्यक्ति का कथन उस कथन में निहित तथ्य के सबंध में उसके साक्ष्य के रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए। किसी लेख को न्यायालय में साक्ष्य के रूप मे प्रस्तुत करने के सबंध मे और कई बाते अपेक्षित है। सामान्य नियम यह है कि मूल लेख ही ग्रहण किया जायगा। जब मौखिक लेख उपलभ्य हो तो न्यायालय उसकी प्रतिलिपि नही ग्रहण करेगा। किसी व्यक्ति को उस लेख के हवालों मे बोलने की तो न्यायालय और भी अनुमति नही देगा। यदि मूल लेख उपलब्ध न हो सके या वह विरोधी पक्ष के पास हो, तो उस लेख के विषय की सिद्धि अन्य साक्ष्यों द्वारा की जा सकती है। सार्वजनिक लेखों को मूल रूप में प्रस्तुत करने की आवश्यकता नही है। उनकी केवल एक प्रमाणित प्रतिलिपि प्रस्तुत की जा सकती है—जैसे, न्यायालय की कार्यवाही का लेख। लेख के संबंध में दूसरी अपेक्षा यह है कि जिस व्यक्ति द्वारा वह लिखा गया था या जिस व्यक्ति के उस पर हस्ताक्षर किये गए बताए जाते है, वह उसी व्यक्ति द्वारा लिखा गया है या उस पर उसी व्यक्ति के हस्ताक्षर है, यह सिद्ध किया जाना चाहिए। न्यायालय मे खाली लेख प्रस्तुत कर देना पर्याप्त नही है। उसके लेखक या कर्त्ता या उनके न मिलने पर किसी अन्य व्यक्ति को न्यायालय में आकर यह सिद्ध करना चाहिए कि यह उसी का लेख है या उसी के हस्ताक्षर है। कुछ स्थितियों में लेख का

प्रमाणीकरण आवश्यक होता है। उदाहरण के रूप में अचल सम्पत्ति के रहन या दान और वसीयत का दो साक्षियों द्वारा प्रमाणीकरण आवश्यक है। उन साक्षियों में से यदि कोई जीवित हो, तो कम-से-कम एक को न्यायालय में उपस्थित होना चाहिए और यह सिद्ध करना चाहिए कि वह वसीयत वसीयत-कर्त्ता ने ही की है। कुछ लेखों के संबंध में उनके कर्तृत्व की सिद्धि करना आवश्यक नहीं है—जैसे, किसी सार्वजनिक लेख की प्रमाणीकृत प्रतिलिपि; सरकारी गजट या सरकार द्वारा प्रकाशित अन्य कोई लेख; जज, मजिस्ट्रेट या सार्वजनिक प्रमाता (नोटरी पब्लिक)[1] द्वारा प्रमाणीकृत अधिकारपत्र। किसी व्यक्ति के पते पर भेजा गया तार भेजनेवाले के सन्देश की प्रामाणिक प्रतिलिपि समझा जाता है, किन्तु जो उसे अप्रामाणिक सिद्ध करना चाहे, वह वैसा कर सकता है।

---

१. एक सार्वजनिक अधिकारी, जो कागजों, लेखों या दस्तावेजों की पहुँच ज्ञापित करता है या उन्हें या उनकी नकल प्रमाणीकृत करता है।

: ७ :

प्रतिरक्षा

पिछले तीन अध्यायो मे हमने न्यायालय, अपराध, दंड और मुकदमे के ढगों के सबध मे चर्चा की है। इन सभी के सबध मे भारतीय प्रतिरक्षा बलो (जल, स्थल और वायु सेना) के अपने विशेष कानून होते है। ये कानून बलो के सगठन और अनुशासन, उनकी सेवा की शर्तो तथा उनके विशेषाधिकारों जैसे अन्य विषयो की भी व्यवस्था करते है, और इस स्थिति मे यह संभव है कि वे सविधान में दिये गए मूल अधिकारो को सीमित करे, या उनमे कमी करे। सशस्त्र बलो की कार्यकुशलता और उनके अनुशासन की दृष्टि से ऐसा करना आवश्यक है। उदाहरण के लिए, बलो का एक सदस्य वाक्-स्वातत्र्य, साहचर्य और सम्मिलन के अधिकारो को क्रियान्वित नही कर सकता। इसके अतिरिक्त सविधान मे मुकदमे, और कैद संबधी जो सरक्षण अपराधियो को प्राप्त है, वे उक्त कानूनो के अतर्गत गिरफ्तारी अपराध करने वाले सैन्य-सदस्यो को प्राप्त नही है।

भारत का सविधान इस बात की घोषणा करता है कि भारतीय प्रतिरक्षा बलो की कमान राष्ट्रपति, के हाथ मे होगी, जिसका सचालन और नियमन कानून द्वारा होगा। इस कार्य का सचालन राष्ट्रपति, इस सबध मे बना हुआ हो तो, ससद के कानून के अनुसार तथा परिषद् के परामर्श पर करेगे। इन शर्तो के अनुसार राष्ट्रपति को किसी युद्ध मे भारतीय बलो का नेतृत्व करने का अधिकार है। भारत की सुरक्षा, और प्रतिरक्षा सेनाओ की भर्ती व उनके भरण-पोषण का काम केवल भारत सघ के ही अधिकार का विषय है। अत. ससद को इन सेनाओ के लिए कानून बनाने का अधिकार है और इनके प्रबध व निर्माण की कार्यकारी सत्ता भारत सरकार के पास है।

सेना

सेना के प्रत्येक सदस्य की, चाहे वह अफसर या अन्य कोई हो, सेवा (सर्विस) की एक यह शर्त होती है कि उसकी सेवा राष्ट्रपति की मर्जी से समाप्त की जा सकती है। इसका अर्थ यह हुआ कि केन्द्रीय सरकार स्वेच्छापूर्वक उसे सेवा से बरखास्त, पृथक या मुक्त कर सकती है अथवा उसे अवकाश ग्रहण करा सकती है। यदि सरकार ऐसा करे तो सबंधित व्यक्ति को न्यायालय में अपकारी पदच्युति की शिकायत करने या क्षतिपूर्ति की माँग करने का कोई अधिकार नही होता। तथापि यह परित्राण अवश्य है कि उसकी सेवाओं की समाप्ति के पूर्व उसे ऐसी समाप्ति के

विरुद्ध मामला प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान किया जायगा ।

स्थल-सेना तथा अन्य सशस्त्र बलो के सदस्य साधारण नागरिक के कर्त्तव्य और अधिकारों से युक्त तो होते ही है, साथ मे विशिष्ट स्थिति के अनुसार उनके अन्य कर्त्तव्य और अधिकार भी होते है। कानून उनको कुछ विशेष अधिकार और सुविधाएँ प्रदान करता है ताकि वे अपने कर्त्तव्यो का कुशलता-पूर्वक पालन कर सके। एक और कारण यह है कि वे प्रतिरक्षा-बलो में भरती होकर भारी जोखिम और उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेते है। अनुशासन और कुशलता के लिए कानून उनके कुछ कर्त्तव्य निश्चित करता है जिनके भग होने की दशा मे वह दंड का विधान करता है।

सेना को प्राप्त कतिपय विशेष सुविधाएं

उनकी प्रमुख सुविधाओ मे से एक यह है कि यदि वे अपना कर्त्तव्य-पालन करते हुए किसी के शरीर या सपत्ति को हानि पहुँचाएँ तो उनके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही नही की जा सकती। यदि कोई सैनिक लड़ाई या उपद्रव के समय अपने से उच्च अधिकारी की वैध आज्ञा का पालन करता है तो उसे अपराध का दोषी नही ठहराया जा सकता, यद्यपि वह आज्ञा भूलयुक्त अथवा अवैध भी हो सकती है। उच्च अधिकारी को भी, यदि उसने सद्भावना से काम किया है, दोषी नही ठहराया जा सकता। दड-प्रक्रिया-सहिता (जाब्ता फौजदारी) मे सेना के उन सदस्यो को सरक्षण प्राप्त है, जो गैरकानूनी भीड या जमघट को तितर-बितर करने के लिए सैनिकशक्ति का प्रयोग करते है। सैनिक सहायता की तब आवश्यकता पडती है जब किसी उपद्रव या विद्रोह को दबाने में पुलिस अपने को असमर्थ समझे। ऐसे अवसरो पर वे पुलिस के सहायक के रूप मे इसलिए काम कर सकते है कि उन्हे मजिस्ट्रेट ने उसके लिए बुलाया है या मजिस्ट्रेट की अनुपस्थिति मे सार्वजनिक शाति की रक्षा के लिए सेना का कोई आयुक्ताधिकारी (कमीशन-प्राप्त) अधिकारी आवश्यक समझता है। दोनों मे से किसी स्थिति में उनके द्वारा सभावित क्षति के लिए उनपर मुकदमा नही चलाया जा सकता। सेना के किसी सदस्य के विरुद्ध किसी ऐसे कार्य के लिए केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति के बिना किसी दड-न्यायालय मे मुकदमा नही चलाया जा सकता।

सेना को जो अन्य सुविधाएँ प्राप्त है उनमें से कुछ ये है—अफसर को छोडकर यदि और कोई व्यक्ति अपने से बडे किसी अधिकारी के आचरण से स्वय को सतप्त या असंतुष्ट समझता है तो वह ऊपर के अधिकारियो से शिकायत कर सकता है। अफसर भी यदि अपने को इसी प्रकार सतप्त समझता है तो वह केन्द्रीय सरकार के पास शिकायत कर सकता है। सेना के सदस्यों को असैनिक ऋण के मामले में गिरफ्तारी से छूट प्राप्त है। ऐसे ऋण की वसूली के लिए उनके वेतन, भत्ते, पेंशन, हथियार, कपड़े या अन्य सामग्री की कुर्की नही की जा

सकती । जिन विवादों में वे शामिल हों उनके सबंध में भी उन्हे कुछ सुविधाएँ प्राप्त हैं । यदि वे स्वयं विवादार्थी हैं तो उन्हे न्यायालय से यह कहने का अधिकार है कि वे उनके मुकदमे को अन्यो के मुकदमे से पहले तथा न्यायालय में उपस्थित होने के लिए उन्हें मिली छुट्टी के भीतर, निबटाये । अपने काम पर नियुक्त कोई भी सैनिक अपनी कमान के अधिकारी के हस्ताक्षर-युक्त पत्र द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को अपनी ओर से मुकदमा लडने या बयान करने का अधिकार दे सकता है । इस प्रकार के मुख्तारनामा पर न्यायालय-शुल्क (कोर्ट-फीस) देने की जरूरत नही । दीवानी या माल-अदालत के लिए यह आवश्यक है कि वे उस मुकदमे की तारीख आगे बढा दें जिसके विषय मे सबधित सैनिक यह सूचना दे कि वह अपनी नौकरी के कारण यथासमय उपस्थित नही हो सकता। यह तारीख तबतक आगे बढायी जायगी जबतक सैनिक उपस्थित होने की स्थिति में नही आ जाता। यदि उसकी अनुपस्थिति में उसके विरुद्ध कोई डिगरी हो जाती है या कोई आदेश दिया जाता है तो उसे, उसके प्रार्थना-पत्र पर, हटा दिया जायगा। कुछ अन्य सुविधाएँ वेतन और भत्ते के सबध में दी जानेवाली रसीदो पर मुद्राक लगाने तथा अपने ही लिए व अपने परिवार, नौकर और सामान के सबध में दिये जानेवाले कर से छूट हे । सैन्य सदस्यों को वसीयत करने की आम शर्तो का पालन न करते हुए भी वसीयत करने के जो अधिकार प्राप्त है उनका उल्लेख अध्याय १३ मे किया गया हे ।

सैनिक न्यायालय (कोर्ट मार्शल)

अनुशासन और कार्यकुशलता की दृष्टि से स्थलसेना के सदस्यो पर सेना-अधिनियम के अधीन उल्लिखित अपराध करने पर किसी सैनिक न्यायालय द्वारा मुकदमा चलाया जा सकता है और उन्हे दंड दिया जा सकता है। इसी प्रकार जल और वायु-सेना के सदस्यों पर उनके कानूनो में उल्लिखित अपराधों के लिए मुकदमा चलाया जा सकता है और उन्हे दडित किया जा सकता है। संभव है कि किसी विशिष्ट सेवा के अपने अलग अपराध हों जिन्हे आम कानून अपराध न मानता हो। फौजी सेवा के कुछ अपराध ये हैं—सेना से भाग जाना, विद्रोह करना, कानूनी आदेश की अवज्ञा, निर्लज्जतापूर्वक दुर्ग या दुर्ग-निवेश (गैरीसन) को शत्रु के लिए छोड देना, शस्त्र और गोला-बारूद फेंक देना, शत्रु के साथ पत्र-व्यवहार करना या उसे भेद बताना । इन सभी अपराधो के लिए मृत्यु-दंड निश्चित है । बहुत-से दूसरे अपराध ऐसे हे जिनके लिए दड इतना भारी नही है । सैनिक न्यायालय द्वारा जो दंड दिये जाते है वे ये हैं—प्राणदड मृत्यु, कैद, अधिकारियो की भर्त्सनापूर्वक पदच्युति, सामान्य पदच्युति, पदवी में ह्रास, डॉट-फटकार, वेतन या भत्ता जब्त करना या उनको रोक देना । इनके अलावा एक और भी दंड है जिसे युद्धक्षेत्र-दंड (फील्ड पनिशमैण्ट) कहते हैं

और जो वारण्ट अफसर के दर्जे से नीचे के उस व्यक्ति को दिया जा सकता है जो सक्रिय सेवारत या लाम पर रहते हुए अपराध करता है। व्यक्ति को सक्रिय सेवारत उस समय समझा जाता है जब कि वह दल जिसका वह सदस्य हो, युद्ध सरीखे कार्यों मे संलग्न हो या किसी विदेशी क्षेत्र पर उसका सैन्य अधिकार हो, अथवा वह शत्रु द्वारा अधिकृत किसी देश या स्थान पर आक्रमण के लिए अभियान कर रहा हो। युद्धक्षेत्र-दड सख्या १ मे अपराधी को हथकडी या बेड़ी या दोनो मे रखा जाता है और एक दिन मे अधिक-से-अधिक दो घटे के लिए किसी स्थिर वस्तु मे उसे बांध दिया जाता है। युद्ध-क्षेत्र-दंड सख्या २ मे संख्य १ के दडों मे से पहला दड दिया जाता है। ये दड इस प्रकार दिये जाने चाहिएं कि अपराधी को कोई क्षति न पहुँचे और उसके शरीर पर उसका कोई स्थायी चिह्न न रह जाय ।

सैनिक न्यायालय के अतिरिक्त संक्षेप मे अभियोग-विचार और दंड देने का कार्य कुछ उच्च अधिकारी भी कर सकते है। इन सक्षिप्त कार्यवाहियो में जो दड दिये जा सकते है वे है—२८ दिन तक कारावास, इतने ही समय तक शिविर-क्षेत्र मे नजरबदी, अतिरिक्त चौकसी, अतिरिक्त ड्यटी, डॉट-फटकार, १५ दिन के. वेतन तक का जुर्माना, वेतन और भत्ते मे से कुछ निर्दिष्ट कटौती और २८ दिन तक का युद्धक्षेत्र-दण्ड ।

सैनिक न्यायालय द्वारा अभियोग-विचार की प्रक्रिया इस प्रकार है। सेना में चार प्रकार के सैनिक-न्यायालय होते है—सामान्य सैनिक न्यायालय, जिला सैनिक न्यायालय, संक्षिप्त सामान्य सैनिक न्यायालय और सक्षिप्त सैनिक न्यायालय ।

सैनिक न्यायालय की प्रक्रिया

सामान्य सैनिक न्यायालय केन्द्रीय सरकार के प्रधान सेनापति द्वारा अथवा प्रधान सेनापति (चीफ ऑव स्टाफ) के आदेश से किसी अन्य अधिकारी द्वारा बुलाया जा सकता है। इसमे कम-से-कम ५ अफसर होते है जिनका सेवा-अनुभव कम-से-कम तीन वर्ष का होता है। इसके अतिरिक्त इसमे से कम-से-कम ४ अफसर कप्तान के दर्जे के होते है। यह सेना-अधिनियम के अधीन उसमें निर्दिष्ट किसी भी अपराध के संबध में विचार कर सकता है और उसमे उल्लिखित दंडो में से—जिसमे मृत्युदंड भी शामिल है—कोई दंड दे सकता है। जिला सैनिक न्यायालय में कम-से-कम दो वर्ष के सेवा-अनुभव के कम-से-कम ३ अफसर होते है। यह अफसर-श्रेणी के व्यक्तियो या जूनियर कमीशन प्राप्त अफसरो को छोड़कर किसी भी व्यक्ति के संबध मे अभियोग-विचार कर सकता है—और मृत्युदड, कालापानी और दो वर्ष के ऊपर के कारावास को छोडकर अन्य सभी दण्ड दे सकता है। संक्षिप्त सामान्य सैनिक न्यायालय प्रायः उस समय बुलाया जाता है जब सैन्य कार्यवाही चल रही हो और सामान्य सैनिक न्यायालय बुलाना सुविधाजनक न हो। इसमें कम-

से-कम ३ अफसर होने चाहिएं। यह उक्त अधिनियम के अनुसार किसी भी अपराध के लिए विचार कर सकता है और अपराधी को कोई भी दंड दे सकता है। सैनिक न्यायालय में नियमित सेना के दस्ते, विभाग या दल का कमांडिंग अफसर (समादेश अधिकारी) बैठता है। कार्यवाही के समय दो और व्यक्ति—जो अफसर या जूनियर कमीशन प्राप्त अफसर हों—उपस्थित रहते हैं, किन्तु वे न्यायालय के अंग नहीं समझे जाते। कमांडिंग अफसर ही स्वयं न्यायालय होता है। वह अफसर, जूनियर, कमीशन-प्राप्त अफसर और वारण्ट अफसरों को छोड़कर अपनी कमान के किसी भी व्यक्ति के संबंध में अभियोग-विचार कर सकता है और यदि वह लेफ्टिनेंट अथवा उससे ऊँचे ओहदे का हो, तो उसे अधिक-से-अधिक एक वर्ष तक के कारावास का कोई दंड दे सकता है। लेफ्टिनेंट कर्नल से छोटा होने पर उसे तीन मास का कारावास-दंड देने का अधिकार है।

सैनिक न्यायालय अधिनियम में उल्लिखित समस्त अपराधों के संबंध में और सामान्य दंड न्यायालय द्वारा विचारणीय किसी भी अपराध—जैसे जाब्ता फौजदारी में बताये गए चोरी, धोखा, हत्या—के संबंध में मुकदमा चला सकता है। किन्तु दूसरी स्थिति में दंड वही होगा जो जाब्ता फौजदारी में निर्धारित होगा या उस मामले में लागू होनेवाले अन्य कानून में निर्धारित होगा। यदि किसी व्यक्ति पर मुकदमा दंड-न्यायालय और सैनिक न्यायालय दोनों में चलाया जा सकता हो तो किस न्यायालय में वह मुकदमा चलेगा इसका निर्णय केन्द्रीय सरकार करेगी। सैनिक न्यायालय किसी व्यक्ति पर बलात्कार, हत्या या दंडनीय प्राणघात, जो हत्या के तुल्य न हो, के लिए तबतक मुकदमा नहीं चला सकता जबतक कि जिस व्यक्ति के साथ बलात्कार किया गया हो या जिस व्यक्ति की हत्या हुई हो या प्राणघात हुआ हो वह भी स्थल, जल या वायु-सेना के कानून द्वारा शासित न होकर नागरिक मात्र हो। इन अपराधों के लिए मुकदमा सामान्य दंड-न्यायालय में ही चलना चाहिए। किन्तु अपराधी पर कुछ स्थितियों में सैनिक न्यायालय द्वारा भी मुकदमा चल सकता है, जैसे उस स्थिति में जब उसने मोर्चे पर रहते हुए या भारत के बाहर किसी स्थान पर या इस संबंध में भारत सरकार द्वारा उल्लिखित सीमावर्ती स्थान पर उक्त अपराध किया हो। सैनिक न्यायालय में अभियोग-विचार हो चुका हो, और जिसे दोषी करार दे दिया गया हो या बरी कर दिया गया हो, उसके उसी अपराध के लिए सैनिक न्यायालय फिर विचार नहीं कर सकता। किन्तु जिस व्यक्ति पर सैनिक न्यायालय ने मुकदमा चलाया हो और उसे दोषी या निर्दोष करार दिया हो, उस पर केन्द्रीय सरकार की मंजूरी से उसी अपराध या उन्हीं तथ्यों को लेकर सामान्य सैनिक न्यायालय में फिर मुकदमा चलाया जा सकता है।

सैनिक न्यायालय द्वारा परीक्षण की निम्न प्रक्रिया है—उच्चतर सदस्य उसका

सभापति होता है। प्रत्येक सामान्य सैनिक न्यायालय में जज एडवोकेट (न्यायाधीश-महाधिवक्ता) को, जो जज एडवोकेट जनरल (न्यायाधीश-महाधिवक्ता) के विभाग का सदस्य होता है, उपस्थित होना चाहिए। यह अधिकारी सेना के कानूनी विभाग का अध्यक्ष होता है। न्यायालय की कार्यवाही शुरू होने से पहले जज एडवोकेट और न्यायालय के सदस्य शपथ ग्रहण करते हैं। न्यायालय अपना निर्णय बहुमत से देता है। जज एडवोकेट न्यायालय का सदस्य नहीं होता। उसका काम न्यायालय के सामने कानूनी प्रश्नों का स्पष्टीकरण करना होता है। परीक्षण के बाद वही मुकदमे को निष्कर्ष निकालता है और फिर सदस्यगण प्राप्त जानकारी पर विचार करने व दंड निश्चित करने के लिए उठ जाते हैं। अपराध-सिद्धि का ढंग सामान्य दंड-न्यायालय के ढंग से बहुत भिन्न नहीं होता। यदि न्यायालय का संयोजक अधिकारी (कन्वीनर) उचित समझे तो अभियुक्त को अपने लिए वकील नियुक्त करने का अधिकार है। यदि अभियुक्त अपना वकील नियुक्त नहीं करता तो सेना का कोई अधिकारी उसके बचाव-अधिकारी का स्थान ग्रहण कर सकता है। इसके लिए संयोजक-अधिकारी समुचित व्यक्ति चुनेगा। अभियुक्त, यदि प्राप्त न कर सके तो, सेना के किसी अन्य सदस्य से भी अपनी सफाई में सहायता ले सकता है; ऐसा व्यक्ति तब 'अभियुक्त का मित्र' कहलाता है। संक्षिप्त सैनिक न्यायालय द्वारा अभियोग-विचार की स्थिति में अभियुक्त को अपना वकील नियुक्त करने या अधिकारी प्राप्त करने का अधिकार नहीं है। तब वह केवल 'मित्र' की सहायता ले सकता है।

परीक्षण समाप्त होने पर सैनिक-न्यायालय निर्णय घोषित न करके उसे उच्चतर अधिकारी द्वारा पुष्टीकरण के लिए भेज देता है। संक्षिप्त सैनिक न्यायालय (समरी कोर्ट मार्शल) के विचार के लिए पुष्टीकरण की आवश्यकता नहीं होती और उसे तुरन्त क्रियान्वित किया जा सकता है।

पुष्टिकर्त्ता अधिकारी को सैनिक न्यायालय के निर्णय को पुष्ट करने, रद्द करने अथवा दंड को कम करने, माफ करने या परिवर्तित करने का अधिकार है। केन्द्रीय सरकार, या नियमविहित अधिकारी को सैनिक न्यायालय की कार्यवाही को इस आधार पर रद्द करने का अधिकार है कि वह अवैध या अनुचित है। दंड के पुष्टीकरण द्वारा पक्का हो जाने के पश्चात् केन्द्रीय सरकार, अथवा कुछ निर्दिष्ट अधिकारी अपराधी को क्षमा प्रदान कर सकते हैं अथवा उसके दण्ड को माफ, कम या परिवर्तित कर सकते हैं और दंडित व्यक्ति को उसके वचन पर रिहा कर सकते हैं। कुछ अधिकारियों को उसके दंड भोग को स्थगित करने की भी छूट है। राष्ट्रपति को संविधान में दंडों के क्षमा करने, उन्हें विलम्बित या स्थगित करने या उनमें छूट देने का, या सैनिक न्यायालय द्वारा दोषी घोषित दण्डित किसी व्यक्ति के दंड को स्थगित, माफ या परिवर्तित करने का अधिकार है।

सेना के किसी सदस्य की मृत्यु हो जाने पर सेना-अधिनियम में उल्लिखित अधिकारियो द्वारा उसकी चल संपत्ति तथा नकदी का कब्जा प्राप्त कर लिया जाता है। उन्हे यह अधिकार है कि वे किसी भी ऐसे सरकारी सेविंग्स बैंक या डाकखाने से, जहाँ मृत व्यक्ति ने कुछ पूंजी जमा की हो, उस पूंजी को अपने सिपुर्द करने के लिए कह दें। चल सम्पत्ति सार्वजनिक नीलाम द्वारा बेच दी जायगी, और इससे प्राप्त रकम तथा नकदी से सबसे पहले मृत के सेना के प्रति कर्ज को 'यदि हो तो' तथा उसकी अत्येष्टि क्रिया को सम्पन्न करने के खर्च को चुकाने मे इस्तेमाल की जायगी। यदि कुछ रुपया बच रहेगा तो वह उसके आश्रितो को दे दिया जायगा। इस प्रकार उल्लिखित अधिकारियो द्वारा मृत व्यक्ति की देश भर मे फैली हुई सम्पत्ति सुविधापूर्वक एकत्रित की जा सकती है। इस उपबध के अभाव मे मृत व्यक्तियो के उत्तराधिकारियो को देश के कई न्यायालयो में उसकी सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए प्रार्थनापत्र देने का कष्ट उठाना पडता जिसमे बहुत असुविधा और खर्च होता। यदि उत्तराधिकारियो के लिए बची सम्पत्ति १००० रुपये से अधिक नही है तो यह सम्पत्ति उन्हे किसी अधिप्रमाणित वसीयत (प्रोबेट), प्रबध-पत्र (लैटर ऑव एडमिनिस्ट्रेशन), उत्तराधिकार प्रमाणपत्र (सकशेसन सर्टीफिकेट) या किसी अन्य आगम प्रमाण[1] पेश किये बिना ही दे दी जायगी। यदि मृत व्यक्ति कोई अफसर था, तो इस छूट के लिए सम्पत्ति की सीमा ५००० रुपये है। सेना मे भागे हुए तथा पागलो से आस्तियो (एसेट्स) की वसूली के लिए भी ऐसे ही उपबध है।

ऊपर बताई गई बातो के सबंध मे वायु-सेना पर भी मुख्यतः वैसा ही कानून लागू होता है जैसा स्थल-सेना पर लागू होता है। एक अन्तर यह है कि स्थल सेना की भाँति वायु-सेना में सैक्षिप्त सैनिक न्यायालय नही होता।

वायुसेना

जल-सेना में अफसर, वारंट अफसर (अधिपत्र द्वारा नियुक्त अधिकारी), छोटे अफसर और अन्य भर्ती किये हुए व्यक्ति होते है। जल-सेना के कुछ अपने विशेष ढंग के अपराध होते है (जैसे—जानबूझ) कर जहाज को किनारे पर करना जिनका स्थल और वायु-सेना मे कोई स्थान नही है। जल-सेना में अन्य सेनाओं की भाँति कई सैनिक न्यायालय नही होते, वरन् एक ही सैनिक न्यायालय होता है। इसके सैनिक न्यायालय में जलसेना के कानून के अनुसार उसमें उल्लिखित श्रेणी के कम-से-कम ५ और अधिक-से-अधिक ९ अधिकारी होते है। इसकी बैठक प्रायः जहाज पर होती है, किन्तु बैठक

जलसेना

---

१. आगम प्रमाण—एवीडेंस ऑव टाइटिल—सम्पत्ति के उपभोग के अधिकार का प्रमाण।

बुलानेवाला अधिकारी यदि विशेष रूप से आदेश दे तो यह बैठक बन्दरगाह में भी हो सकती है। सैनिक न्यायालय की केन्द्रीय सरकार द्वारा या उसके द्वारा इस कार्य के लिए अधिकृत व्यक्ति द्वारा बुलाई जाती है। जो व्यक्ति बैठक बुलाने का आदेश देता है वही उसके अध्यक्ष के नाम का निर्देश करता है। सैनिक न्यायालय के सदस्य, सभापति के बाद वरिष्टता के अनुसार उस स्थान के अफसरो मे से चुने जाते है जहाँ उसकी बैठक होती है। जल-सेना के सैनिक न्यायालय की प्रक्रिया कुछ बातो को छोडकर स्थल या वायु-सेना के सैनिक न्यायालय की प्रक्रिया से भिन्न नही होती। भिन्नता की ऐसी एक बात यह होती है कि जल-सेना के सैनिक न्यायालय को अपने निर्णय की पुष्टि की अपेक्षा नही होती वरन् उसका निर्णय तुरन्त सुना दिया जाता है।

: ८ :

सामान्य अधिकारों की क्षति

कानून का उद्देश्य लोगो में शातिमय सबधो का विकास करना है। अपराधियों को दड देने से इस उद्देश्य की आशिक पूर्ति मात्र होती है। इसकी पूर्ति का एक और उपाय यह है कि अपकृत, जिसका अपकार किया गया हो, व्यक्ति को, अपकार करने वाले से कुछ पैसा दिलाया जाय जिसे, कानूनी भाषा में हर्जाना या क्षतिपूर्ति कहते है। चूकि यह कानूनी उपचार दीवानी अदालत में ही प्राप्त हो सकता है इसलिए जिस क्षति के उपचार-स्वरूप यह प्राप्त होता है उसे दीवानी हानि या अपकार कहते हैं जो अपराध से इस रूप मे भिन्न होता है। इस अध्याय मे हम बहुत-से महत्त्वपूर्ण दीवानी अपकारों के सबध मे विचार करेगे—दूसरे शब्दो मे उन सामान्य अधिकारो की क्षति के सबध मे, जिनका उल्लेख तीसरे अध्याय में किया जा चुका है। अगले अध्याय मे दीवानी अपकार के एक अन्य वर्ग (सविदा-भंग) के सबध मे चर्चा की जायगी। दीवानी अपकार अपराध भी हो सकता है। यह स्थिति उन मामलो मे होती है जिनमें व्यक्ति का आचरण ऐसा हो कि उसे दड देना और अपकृत-व्यक्ति को हर्जाना दिलाना न्याय-युक्त हो। उदाहरणार्थ, किसी व्यक्ति के शरीर या उसकी सम्पत्ति को जान-बूझकर क्षति पहुँचाना। बहुत से दीवानी अपकार अपराध नही होते। उनमें यह न्याय्य होता है कि अपकार-कर्त्ता केवल हर्जाना दे, न कि दडित किया जाय। ऐसे अपकार ज्ञान या प्रमादयुक्त किसी सदोष आचरण के परिणाम हो सकते है। कई बार व्यक्ति को अपने निजी दोष के कारण नही, वरन् अपने सेवक के दोष के कारण हर्जाना देना पडता है। अब हम विभिन्न अपकार-वर्गो की चर्चा करेगे जिनके सबध मे हर्जाने के लिए मुकदमा दायर किया जा सकता है और इस पर विचार करेगे कि यह मुकदमा कौन किसके विरुद्ध दायर कर सकता है।

हर्जाने के लिए दायर किये मुकदमे में वादी तभी सफल हो सकता है जब वह यह सिद्ध करदे कि प्रतिवादी के विरुद्ध उसका कुछ अधिकार था, जो भग हुआ है। दूसरे शब्दों में, उसे यह दिखाना होगा कि प्रतिवादी ने उसके प्रति अपना कर्त्तव्य भंग किया है। यदि दोनो पक्षों में अधिकार या कर्त्तव्य का कोई संबंध नही है, तो केवल इस आधार पर कि एक पक्ष को दूसरे पक्ष के आचरण से नुकसान पहुँचता है—कोई मुकदमा नही हो सकता। इसके स्पष्टीकरण के लिए तीसरे अध्याय

में कुछ उदाहरण दिये गए थे। उन उदाहरणों में प्रतिवादी उत्तरदायी नहीं था, क्योंकि उसके द्वारा पहुँची हानि को रोकना उसका कोई कानूनी कर्त्तव्य नहीं था। यदि प्रतिवादी का कर्त्तव्य वादी के प्रति न होकर किसी और के प्रति होता, तो भी वह वादी उसे उत्तरदायी नहीं ठहरा सकता था। उदाहरण के लिए **क** के मकान में ऐसा जीना है जो खतरनाक हालत में है। **ख** को, जो **क** के यहाँ उसीके (**क** के) काम से जाता है, उस जीने के इस्तेमाल से चोट लगती है। **ख** **क** से हर्जाना वसूल कर सकता है किन्तु 'ग' जिसने प्रवेश की अनधिकार चेष्टा की है अथवा जो चोर है, कोई हर्जाना वसूल नहीं कर सकता। ऐसे व्यक्ति के प्रति **क** का यह कर्त्तव्य नहीं है कि वह मकान को सही हालत में रखे।

जब वादी उक्त प्रकार से अपने अधिकार या अपने प्रति कर्त्तव्य-भंग सिद्ध करता है, तो प्रतिवादी यह दिखा सकता है कि वैसा करने के लिए उसके पास कानूनी बचाव है। यदि वह (प्रतिवादी) अपने तर्क में सफल होता है तो हर्जाना देने से बच जाता है अन्यथा उससे हर्जाना वसूल किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि उस पर इस बात के लिए मुकदमा चलाया गया है कि उसने वादी को शारीरिक क्षति पहुँचाई है, तो वह यह सिद्ध कर सकता है कि उसने वैसा आत्म-रक्षा में किया था।

हर्जाने का मतलब है एक रकम, जो न्यायालय अपकार के बदले हानि-पूर्ति के रूप में दिलवाता है। यह राशि मुआवजे के रूप में भी हो सकती है। उदाहरण के लिए जो व्यक्ति किसी सामान से वंचित हुआ है, वह साधारण रूप में उस सामान के बाजार-मूल्य के बराबर रकम मुआवजे में प्राप्त करेगा। कई बार मुआवजे के अतिरिक्त अन्य आधार पर भी हर्जाने दिलाये जा सकते हैं। वे शिक्षा देने के लिए या दंडस्वरूप हो सकते हैं। जो व्यक्ति किसी के विरुद्ध निराधार या खामखा द्वेषपूर्ण बातें प्रकाशित करता है अथवा ऐसे ही, बिना कारण हमला कर देता है, या अतिक्रमण करता है, तो उसे कई हजार रुपये हर्जाना भरने के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, भले ही वादी की साधारण-सी आर्थिक हानि हुई हो अथवा बिलकुल न हुई हो। दूसरी तरफ, न्यायालय मामूली-सा हर्जाना भी दिलवा सकता है। ऐसा तब किया जाता है जब कि वादी का अधिकार-भंग तो हुआ हो, किन्तु नुकसान उससे न हुआ हो। वादी के आचरण की निन्दा के रूप में न्यायालय, एक आना या पाई सरीखी निरादर सूचक क्षतिपूर्ति भरने का भी फैसला दे सकता है। यदि वादी, प्रतिवादी द्वारा गलती से प्रकाशित अपमानजनक लेख—जिसके संबंध में प्रतिवादी ने पूरी तरह से क्षमायाचना करली है—के संबंध में मुकदमा दायर करता है तो संभव है कि न्यायालय उससे उक्त क्षति-पूर्ति भरने के लिए कहे और मुकदमे का खर्च भी उसे ही भरना पड़े।

क्षतिपूर्ति के अतिरिक्त व्यक्ति अन्य प्रतिमोचन या छुटकारे की भी माँग

कर सकता है। उदाहरण के लिए वह किसी उद्वेगजनक कार्य को रोकने के लिए न्यायालय से निषेधाज्ञा की माँग कर सकता है अथवा प्रतिवादी के विरुद्ध डिगरी की प्रार्थना कर सकता है कि वह (प्रतिवादी) उसकी जमीन या जायदाद को उसे दे दे।

अंग्रेजी कानून मे सामान्य अधिकारो को क्षति को 'टॉर्ट' (जिह्म) कहा जाता है। भारतीय कानून में भी उन्हे यही नाम दिया गया है।

आजकल खतरनाक गाड़ियो व यन्त्रो के आविष्कार तथा बड़े और तंग शहरो के विकास के फलस्वरूप इन कानूनो का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। छापे-खाने और बेतार के आविष्कार ने, तथा वर्तमान समाचार-पत्रो ने, ज्ञान का प्रचार व प्रसार कर मानव जाति का अत्यधिक कल्याण किया है। किन्तु इससे अपमानजनक लेख या सामग्री के प्रकाशन व प्रसारण को भी सुविधा मिली है जो पहले असंभव थी। यह ध्यान देने की बात है कि इन स्थितियों में हानि संबंधी दावे भारत में उतने नही होते जितने इगलैण्ड और अमरीका में होते है। अब हम विभिन्न वर्गो के सामान्य अधिकारो की हानि की अलग-अलग चर्चा करेंगे।

शारीरिक क्षति

कोई भी व्यक्ति अपने शरीर को पहुँचाई गई इन क्षतियो के सबंध में हर्जाने का दावा कर सकता है--शारीरिक क्षति, अर्थात्—अभ्यागात[1], प्रहार और अपकारी बंदीकरण। जब सबसे गहरी क्षति पहुंचती है, अर्थात् मृत्यु हो जाती है, तो स्पष्ट है कि वह स्वयं दावा नहीं कर सकता किन्तु उसके आश्रित व्यक्ति कर सकते है।

शारीरिक क्षति का वही अर्थ है जो चोट का है, जिसकी परिभाषा भारतीय दंड-संहिता मे की गई है—अर्थात् जख्म, कटाव, कुचलन, अग-हानि या स्वास्थ्य-हानि। क्षतिग्रस्त व्यक्ति यदि यह सिद्ध कर सके कि अपकारकर्त्ता ने उसे जान-बूझकर या प्रमादवश हानि पहुँचाई है तो वह अपकारकर्त्ता पर हर्जाने का दावा कर सकता है। यदि क्षति उसे किसी ऐसी आकस्मिक दुर्घटना के कारण पहुँची है जिसे रोका नही जा सकता था, तो वह हर्जाना नही ले सकता। यह नियम एक आम नियम है, किन्तु ऐसी भी विशेष स्थितियाँ होती है जिनमें यह नियम नही चलता। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति अपने स्थान पर जगली जानवर या भयकर कुत्ता रखता है और वह छूटकर किसी को क्षति पहुँचाता है; तो क्षति-ग्रस्त व्यक्ति को दावे में यह सिद्ध करने की आवश्यकता नही कि उस व्यक्ति ने क्षति जानबूझकर या लापरवाही से पहुँचाई। न अपकारकर्त्ता यह कहकर हर्जाना भरने से बच सकेगा कि उसने वह क्षति जानबूझकर या लापरवाही से नही पहुंचाई।

---

१. अभ्याघात--बल और हिंसा के प्रयोग से किसी को चोट पहुँचाने का प्रयत्न।

शारीरिक क्षति के लिए हर्जाने का निर्णय करते समय न्यायालय शारीरिक कष्ट और वेदना, इलाज में खर्च हुए पैसे, (आर्थिक हानि), आय की हानि और यदि हानि से शरीर या उसका कोई भाग सदैव के लिए बेकार हो गया हो तो भविष्य में होनेवाली आय की हानि के लिए मुआवजा (प्रतिकार) देगा। आजकल न्यायालय जीवनाशा के कम हो जाने के लिए—अर्थात् क्षति न पहुचने की स्थिति में कदाचित प्राप्त होनेवाले, सुखद जीवन की सभावना के कम हो जाने के लिए—भी मुआवजा देते है।

शारीरिक क्षति बहुधा किसी व्यक्ति पर किये गए किसी भौतिक बल-प्रयोग का परिणाम होती है। जैसे—पीटना, जख्मी करना या किसी औषध का देना। यह क्षति भौतिक बल-प्रयोग के बिना भी सभव है; जैसे, उस समय जब **क** कोई ऐसी बात कहता है या ऐसा काम करता है जिससे **ख** भयभीत हो जाता है या उसे कोई सदमा पहुचाता है जो उसे बीमार कर देता है। ऐसे मुकदमे इगलैण्ड में हुए है। एक मुकदमे में वादी (एक स्त्री) ने यह शिकायत की थी कि प्रतिवादी ने उससे यह कहा कि उसका पति एक मोटर-दुर्घटना में जख्मी हो गया है और एक सार्वजनिक गृह में घायल अवस्था में पडा है। प्रतिवादी ने यह भी कहा कि उसका पति यह चाहता है कि वादी गाड़ी और कुछ तकिये लेकर वहाँ पहुँचे और उसे घर ले आये। यह सब कहानी झूठी थी और शरारत के उद्देश्य से गढी गई थी। वादी ने शिकायत की कि इससे उसे गहरा मानसिक आघात पहुँचा, और वह बीमार हो गई। न्यायालय ने उसे १०० पौण्ड हर्जाने के रूप मे और इसके अतिरिक्त सार्वजनिक गृह तक जाने का खर्च दिलवाया। इस मामले में प्रतिवादी का आचरण दुष्टतापूर्ण था। कोई व्यक्ति ऐसी हानि अपने प्रमादी आचरण के कारण भी पहुँचा सकता है। एक स्त्री को हर्जाना इसलिये मिला कि प्रतिवादी के नौकर वादी के घर में बेपरवाही से गाड़ी घुसा लाए और उससे भीतिग्रस्त हो वह बीमार पड गई। किन्तु यदि किसी व्यक्ति का अपने प्रति कोई कर्त्तव्य भग नही हुआ तो वह शिकायत नही कर सकता। एक स्त्री ट्राम गाडी से उतर रही थी कि उसने ट्रामगाडी के दूसरी ओर एक मोटर-कार और मोटर-साइकल के टकराने की आवाज सुनी। टक्कर मोटर-साइकल चलानेवाले व्यक्ति की लापरवाही से हुई थी जिसमें उसकी मृत्यु हो गई। उसने मृत साइकल-सवार के प्रतिनिधियों पर हर्जाने का दावा कर दिया जिसमें उसने कहा कि टक्कर की आवाज सुनने व मृत व्यक्ति के रुधिर को देखने मे उसे मानसिक आघात पहुंचा और उससे उसका गर्भपात हो गया तथा वह बीमार हो गई। उसका दावा सफल नही हुआ, क्योंकि यद्यपि साइकल-सवार ने सड़क के इस्तेमाल में लापरवाही की थी तथापि उसने वादी की ओर किसी प्रकार की लापरवाही नहीं दिखलाई।

'अभ्याघात' से अभिप्राय भौतिक या शारीरिक स्पर्श के बिना धमकीपूर्ण प्रदर्शन करना है; जैसे मुक्का तानना या हथियार से निशाना बाँधना अथवा बन्दूक सामने करना। 'प्रहार' से अभिप्राय है किसी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध छूना—जैसे उसे अमित्रता के ढग से या द्वेषपूर्वक धक्का देना या चाँटा लगाना। यह कृत्य जानबूझकर और बिना किसी वैध कारण के होना चाहिए। अत भीड मे धक्के का लगना और मैत्रीमय हाथ का मिलाना 'प्रहार' नही माना जाता। यदि प्रहार से शारीरिक हानि पहुँची है तो हानि और गभीर हो जाती है, नही तो वैसे भी स्पर्श मात्र के लिए और उससे सम्बद्ध अपमान या असभ्यता के लिए भी हर्जाने का दावा किया जा सकता है।

अपकारी बदीकरण से अभिप्राय है—किसी व्यक्ति की स्वतत्रता पर पूर्ण प्रतिबध। किसी एक दिशा में जाने से उसे रोकने का मतलब बदीकरण नही है। बदीकरण के लिए यह आवश्यक नही है कि व्यक्ति को जेल या चारदीवारी में बंद कर दिया जाय। केवल इतना कहना कि वह कैद मे है, अथवा यह आदेश देना कि वह अपने मकान से बाहर नही जा सकता, बदीकरण है। किंतु इसके साथ यह आवश्यक है कि आदेश के साथ बल-प्रदर्शन हो, अथवा सरकारी अधिकार—जैसे कि पुलिस के अधिकारी आदि का—जताया गया हो। जब वादी बदीकरण की बात सिद्ध कर देता है तब प्रतिवादी के ऊपर यह बात आती है कि वह सिद्ध करे कि उसके पास बदीकरण के लिए वैध कारण था। यदि वह ऐसा नही करता तो उसे बन्दी को हर्जाना देना होगा।

जिन अपकारो का ऊपर वर्णन किया है उनमें निन्दा और अपमान का पुट होने के कारण उनके लिए भारी हर्जाने की व्यवस्था है, भले ही उनसे वादी को साधारण आर्थिक क्षति पहुँची हो अथवा बिलकुल न पहुँची हो। व्यक्ति की स्वतत्रता की बहुत बडी कीमत समझी जाती है और अपकारी बदीकरण के लिए बहुत बडा हर्जाना देना पड़ता है। यह बात विशेष रूप से तब और लागू होती है जबकि बदीकरण सरकारी अधिकार के दुरुपयोग का परिणाम हो। गैर-कानूनी तौर पर बदी बनाये गए व्यक्ति के पास फिर स्वतत्रता प्राप्ति का—जैसा कि पहले कहा गया है—प्रतिकार यह है कि वह उच्च न्यायालय मे बदी प्रत्यक्षीकरण (हेबियस कारपस) आदेश के लिए प्रार्थनापत्र दे। सविधान मे वैयक्तिक स्वतत्रता की रक्षा के लिए मूल अधिकारो में, जो उपबध दिये गए है, उनकी चर्चा पहले और दूसरे अध्यायो मे की जा चुकी है। जहाँ उक्त प्रार्थनापत्र के द्वारा अवैध रूप से बंदी बनाया गया व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता फिर प्राप्त कर सकता है, वहाँ सदैव यह आवश्यक नही कि वह अपने बदीकरण के लिए उत्तरदायी व्यक्तियो से हर्जाना वसूल कर सके। उदाहरण के रूप में सरकार और उसके अधिकारियो को कानून द्वारा यह सरक्षण मिल सकता है कि यदि वे अपने अधिकार से कुछ आगे

बढ़कर—किंतु सद्भावनापूर्वक कार्य करते हुए—भी किसीको बदी बनायें, तो उन पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। (देखिए अध्याय १६)।

जब किसी की मृत्यु का कारण अन्य व्यक्ति हो, तब मृत व्यक्ति के कुछ संबंधी—यथा माता-पिता, पति, पत्नी, पुत्र आदि—मुआवजे के लिए दावा कर सकते हैं। यह अधिकार उन्हें एक अधिनियम द्वारा प्राप्त है जो "घातक दुर्घटना अधिनियम, १८५५" (फेटल एक्सिडेण्ट्स एक्ट, १८५५) के नाम से ज्ञात है। माता-पिता में दादा-दादी भी शामिल हैं। पुत्र में पुत्री, पौत्र, पौत्री, सौतेला पुत्र अथवा सौतेली पुत्री तथा नाजायज और दत्तक बच्चा भी शामिल है। इन व्यक्तियों के अतिरिक्त और कोई संबंधी या आश्रित दावा नहीं कर सकता। वे उस व्यक्ति पर दावा कर सकते हैं जिसके कारण मृत्यु हुई अथवा उस व्यक्ति पर जो आहत व्यक्ति (यदि उसकी मृत्यु न होती) के प्रति हर्जाने के लिए उत्तरदायी है, जैसे उसका मालिक। उन्हें मृत व्यक्ति से पहुँचनेवाले लाभ की हानि के लिए हर्जाना दिया जायगा। उदाहरण के लिए यदि मृत व्यक्ति कुछ वेतन पाता था, अथवा उसकी कोई आय थी, तो उससे उसके जीवन-काल में दावेदार को जो कुछ लाभ पहुँचता, वह जोड़कर उसे हर्जाने के रूप में दिया जायगा। भले ही दावेदार या संबंधी बहुत-से हों तो भी मुकदमा एक ही होगा और हर्जाने की रकम सबमें बाँट दी जायगी। कुछ खास नौकरियों में श्रमिक की नौकरी के समय मृत्यु होने पर 'श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम' (वर्कमेन्स कम्पेनसेशन एक्ट) के अनुसार मालिक द्वारा मृतक के आश्रितों को मुआवजा देने की व्यवस्था की गई है। इसका उल्लेख आगे १२ वें अध्याय में किया गया है।

सम्पत्ति की क्षति

सम्पत्ति-क्षति से अभिप्राय सम्पत्तिगत कई प्रकार के अधिकारों की क्षति है, जैसे सम्पत्ति की भुक्ति (कब्जे) को क्षति—उसके स्वामित्व की क्षति या उसके उपभोग के अधिकार की क्षति। भुक्ति की सामान्य क्षति है—अनधिकार प्रवेश या सीमोल्लंघन (ट्रेसपास)। किसी के घर या उसकी जमीन की सीमा में उसकी आज्ञा के बिना प्रवेश अनधिकार-प्रवेश या सीमोल्लंघन होता है। वह इसके लिए हर्जाना वसूल कर सकता है—भले ही हर्जाना साधारण क्यों न हो। यदि अनधिकार प्रवेश के बाद अनधिकार-प्रवेशकर्त्ता घर या जमीन पर कब्जा भी कर ले तो उसका अधिकारी व्यक्ति उसकी वापसी के लिए और उससे होनेवाले लाभ की हानि के लिए, दावा कर सकता है, भले ही वह उस घर या जमीन का स्वयं स्वामी न हो या स्वयं ही अनधिकार-प्रवेशकर्त्ता क्यों न हो। उसे दावे का यह अधिकार प्राप्त है, चाहे उसे सम्पत्ति के वास्तविक स्वामी ने ही निकाला हो। यदि वह बेदखल किये जाने के ६ महीने के भीतर मालिक पर दावा करता है तो उसे सम्पत्ति पर फिर कब्जा मिल जायगा।

सभी अपकारों के संबंध में जो आम सफाइयाँ दी जाती हैं उनका उल्लेख आगे किया गया है। किन्तु अनधिकार-प्रवेश के संबंध में लागू होनेवाली एक विशेष सफाई की यहाँ चर्चा की जाती है। वह है अधिकारी या स्वामी की आज्ञा या लाइसेंस। लाइसेंस-संबंधी कुछ नियमों की चर्चा आगे ११वें अध्याय में की गई है। एक नियम यह है कि यदि लाइसेंस वापस ले लिया जाय तो लाइसेंस प्राप्त व्यक्ति को सम्पत्ति से हटना होगा। यदि वह नहीं हटता है तो वह अनधिकार-प्रवेशकर्त्ता समझा जायगा और उसे निष्कासित किया जायगा। निष्कासन के बाद वह लाइसेंस देनेवाले पर हर्जाने के लिए दावा नहीं कर सकता। किन्तु यदि लाइसेंस प्राप्त व्यक्ति लाइसेंस देनेवाले के साथ किये गए किसी सविदे—जिसके पालन के लिए न्यायालय लाइसेंस देने वाले को बाध्य कर सकता—के आधार पर वहाँ रह रहा है तो स्थिति भिन्न होगी। उदाहरण के रूप में किसी सिनेमा का खेल देखने के लिए जिस व्यक्ति ने टिकट खरीदा है उसे खेल के समय खेल देखने के लिए सिनेमा-घर में रहने का अधिकार है। एक शरीफ आदमी को खेल के खत्म होने से पहले बाहर जाने के लिए नहीं कहा जा सकता और यदि उसे निकालने के लिए बल-प्रयोग किया जाता है तो वह बल-प्रयोग करने वाले के विरुद्ध 'अभ्याघात' या प्रहार के लिए दावा कर सकता है।

चल सम्पत्ति का अधिकारी उसकी आज्ञा के बिना उस सम्पत्ति पर केवल हाथ डालने के लिए ही हर्जाने का दावा कर सकता है। हाँ, ऐसी स्थिति में उसे केवल मामूली हर्जाना ही मिलेगा। किन्तु यदि उससे उसकी कोई हानि हुई हो तो हर्जाने की रकम ज्यादा होगी। यदि चल सम्पत्ति का अधिकारी किसी व्यक्ति द्वारा उसके उपभोग से वंचित कर दिया जाता है, तो वह उस सम्पत्ति की कीमत वसूल करने के लिए दावा कर सकता है। क्षति जिस अपकार से होती है वह है प्रतिवादी द्वारा वादी की वस्तु को अपने उपयोग में लाना। इसे 'परिवर्तन'[1] कहते हैं। यह तब होता है जब प्रतिवादी वादी की सम्पत्ति को अपने पास रोक लेता है, या उसे नष्ट कर देता है अथवा उसे भुगता देता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई व्यक्ति अपने यहाँ गिरवी रखे हुए रत्न को बिना अधिकार के बेच देता है, तो उसका स्वामी उसके अवैध विक्रय के लिए हर्जाने का दावा कर सकता है। वह उसके खरीददार को भी उसे लौटाने के लिए कह सकता है। खरीदार उसे रखने का दावा नहीं कर सकता, भले ही उसने उसे सद्भावनापूर्वक और उसके वास्तविक स्वामी को न जानते हुए खरीदा हो। यदि वह उसे नहीं लौटाता है तो वह उसे दोषपूर्ण ढंग से अपने पास रोक रखने का अपराधी है और

---

१ परिवर्तन से तात्पर्य प्रतिवादी द्वारा उस माल को, जिसके उपभोग का वादी को अधिकार है, अनधिकार पूर्वक अपने अधिकार में ले लेने से है।

उससे उसकी कीमत वसूल की जा सकती है।

सम्पत्ति के उपभोग के अधिकार की क्षति 'कंटक' कहलाती है। किसी घर या जमीन पर स्वामित्वाधिपत्य अथवा उपभोग का अधिकार रखनेवाले व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह उसका निर्विघ्न उपभोग करे। यह अधिकार दो प्रकार का हो सकता है—स्वाभाविक या प्राप्त।

जमीन के प्रत्येक स्वामी को उसके उपभोग का तथा उसकी स्वाभाविक स्थिति से उत्पन्न होनेवाले प्रत्येक लाभ को प्राप्त करने का स्वाभाविक अधिकार है। उदाहरण के लिए, उसे साथ की जमीन से अपनी जमीन के लिए सहारे का अधिकार प्राप्त है। अत: यदि साथ की जमीन पर होनेवाली खुदाई के कारण उसकी जमीन बैठ जाय तो इससे उसके सहारे के अधिकार को क्षति पहुँचती है, और यह क्षति कटक है। किसी भी प्राकृतिक नदी की तटवर्ती जमीन के प्रत्येक स्वामी को घरेलू काम के लिए और सिंचाई की उचित आवश्यकता पूर्ति के लिए जल के उपयोग का अधिकार है। उसे यह अधिकार है कि उसका जल उसकी जमीन के पास से बिना मात्रा, गुण या तापमान के परिवर्तन के गुजरे। यदि नदी के ऊपरी भाग में रहनेवाला कोई व्यक्ति उसके जल को खराब करता है या उसकी धारा बदल देता है, तो इससे कंटक उत्पन्न होता है, जिसकी वह शिकायत कर सकता है। भूमि के प्रत्येक स्वामी को यह अधिकार है कि कोई व्यक्ति उसके पास की भूमि के अनुचित उपयोग से उसके सुख और स्वास्थ्य में विघ्न न पहुँचाये। अत: यदि उसके पड़ौस से अत्यधिक शोर या दुर्गंध आती हो तो वह उसकी शिकायत कर सकता है। यदि पडौसी के स्थान से बाहर आनेवाली चीजो के कारण उसके भौतिक सुख मे बाधा पडती हो या उसकी भूमि को क्षति पहुँचती हो, तो वह उसके संबंध में शिकायत कर सकता है—बाहर जाने वाली चीजो के उदाहरण है—जल, गंदगी, जानवर या कीड़े-मकोडे। ये सब उदाहरण भूमिगत स्वाभाविक अधिकारो की क्षति के है।

भूमि का स्वामी किसी अन्य व्यक्ति की भूमि पर कुछ करने या न करने देने का अधिकार प्राप्त कर सकता है, जैसे दूसरे की जमीन पर से रास्ते का अधिकार या उसपर हो रहे ऐसे निर्माण कार्य को रोक देने का अधिकार जिससे उसके अपने मकान में आनेवाले वायु और प्रकाश के मार्ग रुक जायँ अथवा अपने पडौसी के कुएँ से पानी भरने का अधिकार। दूसरे की भूमि पर इस प्रकार का अधिकार उसे तब मिलता है जब उस भूमि के स्वामी ने उसे वह अधिकार स्पष्ट रूप से दिया हो अथवा उसने उस अधिकार का २० या अधिक वर्षो से निर्विघ्न उपभोग किया हो। इस प्रकार से प्राप्त अधिकार 'सुविधा-अधिकार' कहलाते है। इन स्वाभाविक और प्राप्त अधिकारों के संबंध में और अधिक विवेचन आगे संपत्ति संबंधी अध्याय ११ में किया जायगा। इस प्रकार के स्वाभाविक या प्राप्त अधिकार

को क्षति पहुँचने पर अथवा उसके उपभोग मे विघ्न पडने पर अपकार कर्त्ता या विघ्नकर्त्ता के विरुद्ध हर्जाने का दावा किया जा सकता है। जिस व्यक्ति के अधिकार को क्षति या बाधा पहुँची है, वह न्यायालय से उस कंटक को रोकने के लिए एक निरोधाज्ञा की माँग कर सकता है जिसमे दोषी को कुछ करने का—जैसे—वायु और प्रकाश-सबधी अवैध विघ्न को दूर करने का, अथवा कुछ न करने का —जैसे दूसरे की जमीन मे अवैध प्रवेश न करने देने का—आदेश दिया गया हो।

जिस कटक का ऊपर विवेचन किया गया है वह सार्वजनिक कटक से भिन्न है। सार्वजनिक कटक मे सार्वजनिक अधिकार की क्षति होती है या उसमें विघ्न पड़ता है। उदाहरणत, एक सार्वजनिक मार्ग या जलमार्ग के अवरोध से उनका उपयोग करनेवाले सभी व्यक्तियो को असुविधा होती है। यह एक दंडनीय अपराध है, जिसके लिए दोषी पर मुकदमा चलाया जा सकता है और उसे दंड दिया जा सकता है। किंतु जनता का कोई सदस्य उसके विरुद्ध हर्जाने का ऐसा दावा नही कर सकता कि इसने सामान्यत. सभी को असुविधा पहुँचाई है। हाँ, यदि किसी व्यक्ति को कोई विशेष क्षति पहुँची हो, तो वह उसपर स्वय दावा कर सकता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी व्यक्ति को सडक पर लगाई गई बिना रोशनी की रोक के कारण टक्कर लग जाय और उसे शारीरिक क्षति पहुँचे तो वह दोषी के विरुद्ध हर्जाने का दावा कर सकता है। यदि सार्वजनिक मार्ग के साथ की किसी जायदाद से किसी प्रकार का खतरा पैदा होता है तो इसमें भी सार्वजनिक कटक होता है। अत, यदि ऐसी जायदाद का मालिक उसे असुरक्षित हालत में रखता है तो उस मार्ग पर चलनेवाले किसी व्यक्ति को जायदाद से पहुँची क्षति के लिए वह हर्जाने का देनदार होगा।

न्यायालयो में कटक सबधी जो मुकदमे प्राय. आते हैं वे सुख और स्वास्थ्य के बाधक शोर, दुर्गंध आदि से उत्पन्न होते हैं, क्योंकि प्रत्येक भूमि के स्वामी को उसके उपयोग का अधिकार होता है, इसलिए साधारण रूप मे उसके उपयोग के विरुद्ध उसके पडौसी शिकायत नही कर सकते। किंतु यदि वह उपयोग अनुचित हो और उससे उनको काफी कष्ट पहुँचता हो, तो वे शिकायत कर सकते हैं। काफी कष्ट उसे समझना चाहिए जिसे एक समझदार आदमी सहन नही करेगा। भूमि या संपत्ति का उचित प्रयोग क्या है, यह बात हर मामले की स्थिति पर निर्भर है। इंगलैण्ड में एक व्यक्ति ने अपने साथ के मकान में, जिसे एक पतली दीवार उसके मकान से अलग करती थी, दी जानेवाली संगीत-शिक्षा पर आपत्ति की। न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि वह व्यक्ति उससे उत्पन्न कंटक के संबंध में शिकायत नही कर सकता, क्योंकि वह शिक्षा दिन के केवल २-३ घंटे के लिए दी जाती थी और उसका उद्देश्य जीविकोपार्जन था। इसके विपरीत न्यायालय ने यह आदेश दिया कि वह व्यक्ति शिक्षा के समय अपने

मकान में केवल शिक्षा में विघ्न उपस्थित करने के उद्देश्य से अपनी तरफ फर्नीचर और बर्त्तन आदि का शोर न किया करे। उद्योग और व्यापार के क्षेत्र की अपेक्षा निवास के क्षेत्र में सुख-शांति का मापदंड बड़ा होता है। अतः निवास-क्षेत्र में रहनेवाला व्यक्ति रात में अथवा दिन में भी होनेवाले लगातार शोर के सबध में आपत्ति कर सकता है।

घरेलू संबंधों को क्षति

घरेलू सबधों की क्षतियों के उदाहरण हैं—अविवाहित पुत्री को फुसलाना, पत्नी को लुभाना, पत्नी, बच्चे या नौकर को शारीरिक क्षति पहुँचाना। इस प्रकार क्षतिग्रस्त व्यक्ति क्षति पहुँचानेवाले पर दावा कर सकता है। किंतु अपने बच्चे से अलग रहनेवाली माता या पिता, फुसलाने या लुभाने के विरुद्ध दावा नहीं कर सकते। इसी प्रकार जो पति अपनी पत्नी से अलग हो गया है, वह पत्नी को फुसलाने या लुभाने के विरुद्ध दावा नहीं कर सकता। किन्तु अलग रहने पर भी वह अपराधी पर जार-कर्म के लिए दावा कर सकता है। इस प्रकार की क्षतियों के दावों में वादी के अपमान और प्रतिष्ठा-भग के कारण अथवा प्रतिवादी के लम्पट चरित्र के कारण न्यायालय उसे हर्जाने का ऐसा दंड दे सकता है जो दूसरे के लिए दृष्टान्त का काम करे।

प्रतिष्ठा को क्षति

मानहानि का अर्थ है किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा की हानि, और यह तब होती है जब कोई व्यक्ति उसके सबंध में किसी अपमानजनक बात को प्रकाशित करके तीसरे व्यक्ति तक पहुँचाये। छापेखाने, समाचारपत्र, सिनेमा और बेतार के आविष्कार ने इस प्रकार की हानियों की सभावना और अवसर बढ़ा दिये हैं। मानहानि के लिए हर्जाने के दावे में वादी को पहले यह सिद्ध करना पड़ता है कि उसके विरुद्ध अपमान-जनक बात का तीसरे व्यक्ति तक प्रकाशन किया गया है और फिर यह कि वह बात सचमुच अपमानजनक थी। प्रकाशन में बात का तीसरे को बताना भी शामिल है। यह प्रकाशन तब होता है जब कि **क ख** की बुराई करे और **ग** उसे सुन ले, **क ख** के लिए अपमानजनक पत्र **ग** को भेजे, या **क ख** के लिए अपमान-जनक छपा हुआ लेख एक या अधिक व्यक्तियों के पास भेजे, या उसका सार्व-जनिक वितरण करे। अब प्रकाशन का एक नया मार्ग खुल गया है और वह है वायरलैस (रेडियो) स्टेशन द्वारा अपमानजनक बात का प्रसारण। अपमानजनक बात का 'प्रकाशन' इसलिए आवश्यक है क्योंकि व्यक्ति की मानहानि उस प्रतिष्ठा के भग से होती है जो उसे दूसरों से प्राप्त है न कि स्वयं से। अत यदि **क ख** की बुराई उसीके सामने करे और उसे कोई तीसरा व्यक्ति न सुने तो **ख** मानहानि का दावा नहीं कर सकता। प्रकाशन के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह जानबूझ कर किया गया हो। यदि कोई व्यक्ति किसी के अपमान के पत्र को प्रमादवश भी

किसी तीसरे के हाथ में पड़ जाने देता है तो वह मानहानि का दोषी है। अपमान-जनक कथन मौखिक अथवा लिखित हो सकता है। जब यह मौखिक होता है इसे 'अपवाद' कहते हैं और जब यह लिखित होता है यह 'निन्दा लेख' कहलाता है। यह प्रतिरूपात्मक भी हो सकता है—उदाहरण के रूप में एक चित्र, पुतला, वृत या हास्य चित्र। १९३४ में इंगलैण्ड में एक फिल्म कम्पनी के विरुद्ध निन्दा के मुकदमे का निर्णय किया गया। एक रूसी राजकुमारी ने 'मैट्रो-गोल्डविन-मेयर' नामक एक फिल्म कम्पनी के विरुद्ध दावा किया कि उसकी फिल्म "रास्पु-टिन'–दि मैड मोक" (रास्पुटिन–पागल साधु) द्वारा उसकी मान हानि हुई है। फिल्म में एक कुख्यात रूसी व्यक्ति (रौस्प्यूटिन) के जीवन की कुछ घटनाएँ दी गई थी, जिसमें राजकुमारी के साथ बलात्कार की एक घटना भी चित्रित थी। उस राजकुमारी को न्यायालय ने २५,००० पौण्ड का हर्जाना दिलवाया जो इगलैण्ड में निंदा के लिए दिये गए अबतक के हर्जानो मे सबसे अधिक है।

कोई भी उक्ति या प्रतिरूप तब निन्दात्मक कहा जाता है जब कि उससे किसी व्यक्ति के, समझदार आदमियो की दृष्टि में, गिर जाने की सभावना हो या जो घृणास्पद अथवा उपहास्यास्पद हो। उसे उसके निजी आचरण, योग्यता, ऋण चुकाने की क्षमता अथवा उसकी व्यापारिक या व्यावसायिक प्रतिष्ठा या उसकी सामाजिक स्थिति के सबध मे क्षति पहुँचायी जा सकती है। किसी व्यापारी के विषय में यह कहना कि वह खराब खाद्य-सामग्री या अश्लील साहित्य बेचता है, निन्दात्मक है। किसी व्यक्ति के आचरण को कलक लगाना, जिससे कि उसके मित्र अथवा क्लब, जाति या पेशेवाले उसका बहिष्कार करे, निन्दा है। झूठमठ किसी को किसी घृणित बीमारी—जैसे कोढ—से पीड़ित बताना, निन्दा है, क्योकि इससे संभावना है कि उसके साथी उसके ससर्ग से बचे। कोई संयुक्त पूजी (ज्वांइट स्टॉक) कम्पनी या लोगो की संयुक्त संस्था (एसोसिएशन) अपनी व्यापारिक प्रतिष्ठा पर चोट होने पर हर्जाने के लिए दावा कर सकती है। जब हम प्रतिष्ठा की बात करते है, तब हमारा मतलब उस प्रतिष्ठा से होता है, जो किसी व्यक्ति की समझदार तथा विचारशील व्यक्तियो में हो। यह कहना, कि अमुक व्यक्ति ने किसी अपराध की सूचना पुलिस में दे दी है, निन्दा नही है, भले ही उसका वह कार्य अपराधियों की नजर में घृणास्पद हो।

जब हम वादी के सबंध मे कही गई निन्दात्मक उक्ति की बात कहते है, वहाँ हमारा मतलब दो बातो से होता है। एक तो यह कि जिस उक्ति की शिकायत की गई है वह निन्दात्मक है तथा दूसरी यह कि वह वादी के लिए निन्दात्मक है। जिन उक्तियो के संबंध में शिकायत की जाती है, वे प्रायः असंदिग्ध होती हैं, क्योकि वे स्पष्ट रूप से गिरानेवाली होती है और व्यक्ति का नाम से या अन्य प्रकार से उल्लेख करती है। कई बार उनका अर्थ छिपा हुआ भी हो सकता है।

यह कहना कि **क** ने अपने स्थान में आग लगा दी है, आवश्यक नही कि निन्दात्मक हो, किंतु यदि सुननेवाला व्यक्ति यह जानता हो कि **क** ने अपने मकान का आग के संबध में बीमा कराया हुआ है, तब यह बात अवश्य निन्दात्मक होगी। हो सकता है कि उक्ति मे वादी का नाम न लिया गया हो, किंतु फिर भी वह बात कही जा सकती हो जिससे लोग यह समझे कि वह वादी की ओर संकेत करती है। एक बार इगलैण्ड में एक समाचारपत्र ने एक मनगढन्त कहानी प्रकाशित की, जिसमें ऐसे एक व्यक्ति के चरित्र पर आक्षेप था जो फ्रांस में हो रही घुडदौड़ में भाग लेने गया था, और जिसका उल्लेख पैकहम के चर्चवार्डन आर्टीमिस जोन्स के नाम से किया गया था। उसी नाम के एक बैरिस्टर ने समाचार-पत्र पर हर्जाने के लिए इस आधार पर दावा कर दिया कि उसके मित्र उस घटना मे उल्लिखित नाम से उसकी ओर संकेत समझते हैं। उसे एक हजार पौण्ड हर्जाना मिला, हालाकि न समाचार-पत्र की ओर न संवाददाता की उसके प्रति संकेत करने की कोई इच्छा थी।

जब वादी यह सिद्ध कर दे कि निन्दात्मक उक्ति के लिए प्रतिवादी उत्तरदायी है तो समझिये कि उसने अपना पक्ष सिद्ध कर दिया; और तब यह बात प्रतिवादी के लिए होनी है कि वह अपनी सफाई पेश करे। यदि वह ठीक सफाई पेश करता है तो उसे वादी को हर्जाना नही देना पडता, अन्यथा उसे हर्जाना भरना पडता है। इससे यह स्पष्ट है कि निन्दात्मक उक्ति को झूठा सिद्ध करना वादी का काम नही है, वरन् यह प्रतिवादी का काम है कि सिद्ध करो कि निन्दात्मक उक्ति सच्ची है।

इस अध्याय में उल्लिखित प्राय: सभी दीवानी क्षतियो के सबध में पेश की जानेवाली सफाइयों के अतिरिक्त प्रतिवादी केवल मानहानि के मुकदमो में पेश की जानेवाली कुछ खास सफाइयाँ भी पेश कर सकता है। पहली सफाई है सच्चाई। यदि वह सिद्ध कर दे कि शिकायत की गई बात सच्ची है तो उसे हर्जाना नही देना पडेगा। यह स्मरण रहे कि मानहानि के विरुद्ध दंडनीय अभियोग में दोषी केवल यह सिद्ध कर दंड से नही बच सकता कि जो बात उसने प्रकाशित की है, वह सच्ची है। उसे यह भी सिद्ध करना होगा कि उसका प्रकाशन सार्वजनिक लाभ के लिए था।

दूसरी सफाई विशेषाधिकार की है। उदाहरण के लिए न्यायाधीश, गवाह या वकील मुकदमे की कार्यवाही के मध्य में जो कुछ कहें उसके संबंध में उनपर हर्जाने का दावा नही किया जा सकता। संसद के तथा राज्य विधानमडलो के सदस्यों द्वारा कार्यवाही के समय कहे गये वचनो के लिए उन पर दावा नही किया जा सकता। इन व्यक्तियों के विरुद्ध मानहानि के मुकदमे (उक्त स्थितियो में) नही किये जा सकते—भले ही यह सिद्ध किया जा सके कि इन्होंने अपने पद का दुरुपयोग किया है। यह विशेषाधिकार उन्हें निर्बाध रूप में प्राप्त है क्योंकि उसके उपयोग के लिए सचाई या ईमानदारी का कोई वचन नही है; कानून

ने उन्हें यह विशेषाधिकार इसलिए दिया है कि वे अपने कर्त्तव्य का सम्यक् परिपालन कर सकें। यदि उन्हे अपने कर्त्तव्यपालन मे उत्पन्न होनेवाले मान-हानि के दावो मे अपना बचाव करना पड़े तो वे अच्छी तरह से अपने कर्त्तव्य का पालन नही कर सकते। कुछ स्थितियो में यह विशेषाधिकार निर्बाध या निर्बन्ध रूप में प्राप्त नही होता और उसके प्रयोग का कारण ईर्ष्या या द्वेष सिद्ध होने पर वह समाप्त समझा जाता है। उदाहरण के रूप में **क** के यहाँ पहले नोकरी करने वाले **ख** के सबध में यदि **क** से राय माँगी जाय तो वह **क** खराब राय दे सकता है। ऐसी स्थिति में **ख** **क** पर निन्दा का तबतक दावा नही कर सकता जबतक वह यह न दिखा सके कि **क** ने वह राय अनुचित उद्देश्य से प्रभावित होकर दी है। एक व्यापारी का अपने साथी व्यापारी को किसी ग्राहक का विश्वास न करने की बात कहना भी ऐसा ही उदाहरण है। समाचारपत्रो को किसी न्यायालय या सार्वजनिक सभा की कार्यवाही का विवरण प्रकाशित करने का जो विशेषाधिकार है, वह भी मर्यादित है।

मानहानि के मुकदमे मे तीसरी सफाई जो पेश की जा सकती है वह है सार्वजनिक हित की बात के सबध में उचित विचार प्रकट करने की सफाई। प्रत्येक नागरिक को सार्वजनिक हित की बातो के संबध में—किन्तु किसी की निजी बातो के सबध में नही—विचार प्रकट करने का अधिकार है, विचार का अर्थ है तथ्यो के आधार पर निकाला गया निष्कर्ष। अतः प्रत्येक व्यक्ति को किसी के सबध में अनुकूल या प्रतिकूल विचार प्रगट करने का अधिकार है किन्तु इस विचार का आधार सच्चे तथ्य होना चाहिए। वह तथ्य गढकर उनके आधार पर अपने विचार प्रगट नही कर सकता और न उसके विचार के द्वेषमूलक या सच्ची आलोचना से भिन्न होने चाहिए। इन संबधों के साथ प्रत्येक व्यक्ति को सार्वजनिक हित की बातों के सबध मे अपने विचार प्रकट करने या आलोचना करने का खुला अधिकार है और इस अधिकार के इस्तेमाल मे कानून बहुत छूट देता है। उसका विचार गलत, अतिरंजित, नासमझी का और यहांतक कि प्रचण्ड भी हो सकता है। समाचार-पत्रो को ऊपर कहे गए अधिकारो से भिन्न आलोचना के कोई अधिकार या विशेषाधिकार प्राप्त नही है। अधिकार सभी को प्राप्त होता है और कानून उसकी इजाजत देता है, क्योंकि यह सार्वजनिक लाभ की बात है कि उसका इस्तेमाल किया जावे। अब हम व्यक्ति को हानि पहुँचानेवाले अन्य अपकारो की चर्चा करेंगे। ये अपकार उसके शरीर, व्यापार, प्रतिष्ठा, सम्पत्ति तथा आर्थिक क्षति के विषय में हो सकते है।

किसी निर्दोष व्यक्ति पर कथित अपराध के लिए न्यायालय में अभियोग चलाना उसे एक से अधिक क्षति पहुंचाना है। अभियोग उसकी प्रतिष्ठा को क्षति पहुंचाता है और उसे अपने बचाव के लिए खर्च करने को बाध्य करता है। प्रायः

द्वेषमूलक अभियोग

यह सम्भव है कि मुकदमे के दिनों में बदी बनाये जाने के कारण, या न्यायालय द्वारा गलत सजा दिये जाने पर, जिसे अपील-न्यायालय ने उलट दिया हो, उसे कुछ समय के लिए अपनी स्वतन्त्रता से हाथ धोना पड़ा हो। इतनी गंभीर क्षति उठाने पर भी वह अभियोग चलानेवाले पर तबतक दावा नहीं कर सकता जबतक वह यह सिद्ध न कर सके कि अभियोग द्वेषमूलक था। इसके साथ ही उसे यह भी सिद्ध करना आवश्यक है कि उसपर अभियोग प्रतिवादी द्वारा चलाया गया, अभियोग का निर्णय उसके (वादी के) पक्ष में हुआ और वह अभियोग समुचित आधाररहित था। द्वेष का अर्थ है—एक अनुचित उद्देश्य अर्थात् वह उद्देश्य जिसमें न्याय या अधिकार-स्थापना की भावना न हो। दीवानी अदालत में चलाये गए कुछ द्वेषमूलक मुकदमों के संबंध में हर्जाना वसूल करने का नियम भी इसी प्रकार का है। इस प्रकार के मुकदमों के उदाहरण हैं—किसी व्यक्ति को दिवालिया घोषित करने के लिए या किसी कम्पनी को समाप्त करने के लिए अथवा व्यावसायिक अनाचार संबंधी मिथ्या आरोपवश किसी एडवोकेट का नाम न्यायलय से खारिज कराने के लिए प्रार्थनापत्रों का देना। इन द्वेषमूलक दीवानी मुकदमों के संबंध में हर्जाने का दावा करने की इसीलिए इजाजत दी गई है, क्योंकि उससे संबंधित व्यक्ति की साख या प्रतिष्ठा को क्षति पहुँचने की संभावना है। किंतु एक आम दीवानी मुकदमा ऐसा नहीं होता। इसलिए यदि उसमें प्रतिवादी सफल भी हो जाय तो वह उल्टे वादी के विरुद्ध यह कहकर हर्जाने के लिए दावा नहीं कर सकता कि वादी ने उसपर द्वेषमूलक झूठा मुकदमा चलाया था। हाँ, कानून उसे उस तीसरे व्यक्ति पर मुकदमा चलाने की इजाजत देता है जिसने द्वेषवश पैसे से या अन्य प्रकार से सहायता कर वादी से प्रतिवादी के विरुद्ध दावा करवाया। तीसरे व्यक्ति द्वारा किये गए ऐसे अपकार को वाद व्यवसाय[1] या दोषण (किसी अन्य द्वारा चलाए गए मुकदमे का दोषण) से हुई हानि कहते हैं।

छल

कोई व्यक्ति छल का तब दोषी होता है जब वह किसी को कोई झूठी बात कहकर उसे हानि पहुंचाता है—जैसे, घोड़े को दोषयुक्त जानते हुए भी दोषमुक्त कहकर बेचनेवाला व्यक्ति, कम्पनी प्रास्पैक्टस में जान-बूझकर गलत बातों का प्रकाशन कर जनता को उसके शेयर खरीदने के लिए प्रोत्साहित करनेवाले कम्पनी के अभिभावक।

एक अन्य प्रकार के अनाचार का उदाहरण है, क का द्वेषपूर्ण मिथ्या कथन के

---

१. वाद-व्यवसाय—किसी व्यक्ति को मुकदमे के लिए इस उद्देश्य से सहायता देना कि यदि मुकदमे में लाभ हुआ तो वह भी हिस्सेदार होगा।

हानिकारक झूठ

प्रकाशन द्वारा, **ख** के माल, सम्पत्ति, या व्यापार में गिरावट लाना, अर्थात् झूठमूठ यह कहना कि **ख** के मकान में भूत रहते हैं—जिसके फलस्वरूप उसे किरायेदारों का नुकसान हो, या यह कि उसका माल खराब है या उसका व्यापार खत्म हो रहा है—जिसके फलस्वरूप उसे ग्राहकों का नुकसान हो। किन्तु कथन द्वेषपूर्ण और झूठा होना चाहिए, न कि केवल भूलयुक्त या भ्रान्त।

एक पियानो बजानेवाली पेशेवर महिला ने एक संगीतशाला के स्वामी पर एक भूलयुक्त घोषणा—कि वह अमुक सप्ताह में संगीतशाला में प्रदर्शन करेगी—के लिए दावा किया। उसकी शिकायत थी कि इससे उसे अन्यत्र कार्य की हानि हुई है। किन्तु वह अपने दावे में असफल रही, क्योंकि घोषणा द्वेषमूलक नहीं थी वरन् दुर्भावनारहित सच्ची भूल के कारण हुई थी।

कोई व्यापारी यदि अपने माल के संबंध में किसी व्यापार-चिह्न (ट्रेड मार्क) का इस्तेमाल करता रहा हो और कोई दूसरा व्यक्ति उसकी नकल करे और उससे लोगों के धोखे में पड़ने की सम्भावना हो तो वह व्यापारी उस व्यक्ति पर दावा कर सकता है। (११वां अध्याय भी देखिये)। वह अपने माल के व्यापार-नाम (ट्रेड नेम) की नकल के विरुद्ध भी शिकायत कर सकता है।

संविदा (कॉण्ट्रैक्ट) भंग करना

किसी व्यक्ति को अपना संविदा भंग करने के लिए उकसाना दोष है—जैसे किसी मालिक को नौकर की बर्खास्तगी के लिए या किसी नौकर को अपने मालिक का काम छोड़ देने के लिए उकसाना। किन्तु उकसानेवाले व्यक्ति के पास वैध-कारण है तो उसका उकसाना दोष नहीं होगा—जैसे किसी माता-पिता का अपनी कन्या को अयोग्य-वर से सगाई-संबंध तोड़ने की सलाह देना।

षड्यंत्र

आमतौर पर किसी व्यक्ति को इस बात के लिए उकसाना कि वह अमुक के साथ संविदा न करे, अमुक के साथ खरीदो-फरोख्त न करे, अमुक को नौकर न रखे या अमुक की नौकरी न करे, दोष नहीं है। किंतु यदि कुछ व्यक्ति मिलकर एक षड्यंत्र रचें और लोगों को किसी व्यक्ति के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित करने से रोकें, तो वे उससे होनेवाली हानि के लिए, उस व्यक्ति को हर्जाना देने के लिए जिम्मेदार होंगे। कर्मचारियों का संघ, जो मजदूर-संघ कहलाता है, यदि मालिक के व्यापार को हानि पहुँचाने के उद्देश्य से कर्मचारियों की हड़ताल कराये तो वह हानि के लिए जिम्मेदार होगा। किंतु यदि वह हड़ताल किसी औद्योगिक विवाद के सिलसिले में की गई है तो वह हानि के लिए जिम्मेदार नहीं होगा।

कोई व्यक्ति जाति, क्लब या संस्था के सदस्य के रूप में अपनी स्थिति को पहुँची हानि के संबंध में शिकायत कर सकता है—जैसे, वह अनुचित रूप से उनसे

निकाल दिया गया है। यदि किसी पद धारण करने से संबंधित अधिकार, यथा

विविध अपकार

किसी मंदिर या मस्जिद में न्यासी (ट्रस्टी) पद का अधिकार बाधित किया जाता है, तो वह दोषी पर दावा कर सकता है। इसी प्रकार यदि उसके विधिपूर्वक पूजा करने या चुनाव में वोट डालने के अधिकार में रुकावट पैदा की जाय तो वह उसके संबंध में शिकायत कर सकता है।

ये अधिकार, जिनके भंग के लिए हर्जाने के दावे किये जा सकते है, सीमित नही है। न्यायालय यदि यह समझे कि सार्वजनिक हित के लिए नये कर्त्तव्यो और अधिकारो को मान्यता प्रदान करना, आवश्यक है तो वह ऐसा कर सकता है। उदाहरणत: संयुक्त राज्य अमरीका में किसी व्यक्ति के चित्र या सदृश आकृति का व्यापारिक विज्ञापन के हेतु अधिकृत प्रकाशन बुराई के रूप में बढने लगा। फलत: न्यायालयों ने संबंधित व्यक्ति को अपने 'एकांत निजत्व' के नाम से ज्ञात अधिकार (अर्थात् भावनाओं को पहुँचनेवाली बाधा या क्लेश से मुक्ति का अधिकार) के भंग के लिए हर्जाने के दावे की इजाजत दी।

अबतक हमने क्षतियों की उन प्रसिद्ध श्रेणियों का उल्लेख किया है जिनसे सन्तप्त व्यक्ति दोषी पर दावा कर सकता है। ऐसी स्थितियो में कानून दो व्यक्तियों

उत्तरदायित्व की श्रेणियां

को अधिकार और कर्त्तव्य मे परस्पर बद्ध मानता है और अधिकारवाले व्यक्ति को कर्त्तव्यवाले व्यक्ति के विरुद्ध हर्जाने के उपचार प्रदान करता है। इनमें और दूसरी स्थितियों में यह जानना लाभदायक है कि किस दोष के कारण व्यक्ति को हर्जाना भरने के लिए कहा जाता है। अपकारी कृत्य दो प्रकार से किये जाते है—जानबूझकर किये गए कदाचार से, अथवा प्रमादवश। सामान्यत: क्षति इसी प्रकार की होती है और दावे मे सफल होने के लिए वादी का इनमे से प्राय: किसी एक 'प्रकार' का सिद्ध करना पर्याप्त होता है। किंतु कुछ खास मामलों में प्रतिवादी का इन दोनों में से किसी प्रकार के आचरण का सिद्ध करना आवश्यक नही होता। इसके कुछ उदाहरण ये है—पशुओं का स्वामी अपने पशुओं के किसी के घर या स्थान में घुस जाने के लिए उत्तरदायी होता है। उसके विरुद्ध किये गए दावे में यह सिद्ध करना आवश्यक नही कि पशुओं का घुसना उसके ज्ञात वा अज्ञात आचरण का परिणाम है—और न वह स्वयं ज्ञात वा अज्ञात आचरण के अभाव को सिद्ध कर उत्तरदायित्व से बच सकता है। यही नियम किसी एक की जमीन या मकान से दूसरे की जमीन या मकान में हानिकारक चीजों के, जैसे—पानी, आग, गन्दगी, जानवर या कीडे-मकोड़े, चले जाने के संबंध में है। अत: सिंचाई आदि के लिए अपनी जमीन में बनाये गए पानी के कुण्ड से दूसरे की जमीन में पानी के चले जाने और हानि पहुँचाने के लिए हानिकर्त्ता पर दावा किया जा

सकता है। यहाँ पर यह सिद्ध करना आवश्यक नही कि हानि, हानिकर्त्ता के ज्ञात वा अज्ञान आचरण के कारण हुई या उसने पानी के जमा करने में लापरवाही से काम लिया या नही। किन्तु यदि हानि दैवी कृत्य से हो, जैसे किसी असाधारण तूफान या वर्षा के कारण अथवा किसी अजनबी की शरारत के कारण, तो हानिकर्त्ता उत्तरदायी नही होता। यदि वह स्वयं कोई खतरे का काम करता है, जैसे एक प्राकृतिक नदी का प्रवाह बदलना और उसे एक जलाशय के रूप में परिवर्तित करना, तो वह अपने बचाव में ईश्वर की करनी का तर्क उपस्थित नही कर सकता। यदि एक व्यक्ति कोई जगली जानवर रखता है तो वह उससे अन्य व्यक्ति के लिए सभावित खतरा मोल लेता है। यदि कोई व्यक्ति किसी पालतू या घरेलू जानवर को रखता है और यह जानता है कि उसकी आदत खतरनाक है—जैसे कुत्ते की किसी अजनबी पर हमला करने की आदत या घोड़े की मोटरकार की आवाज सुनकर बिदकने की आदत—तो वह उसके जरिए दूसरे को हानि पहुँचाने का जोखिम अपने ऊपर लेता है। यदि ऐसा जानवर छूट जाय और क्षति पहुँचाये तो वह यह सफाई नही दे सकता कि उसने उसके विरुद्ध सावधानी के पूरे उपाय बरते थे। एक मामला ऐसा होता है जिसमे व्यक्ति को अपने नही, किंतु दूसरे व्यक्ति के दोष के कारण हर्जाना भरना पडता है। उदाहरणार्थ, एक मालिक का अपने नोकर के दोष के कारण।

अब आगे चलने से पूर्व प्रमाद (लापरवाही, असावधानी) शब्द का स्पष्टीकरण आवश्यक है, जिसका हमने कई स्थानो पर प्रयोग किया है।

प्रमाद (असावधानी)

कानून में 'प्रमाद' उस सावधानी के अभाव को कहते है, जिसे एक साधारण दूरदर्शी व्यक्ति परिस्थिति विशेष मे उस हानि से बचने के लिए, जिसकी शिकायत की गई है, बरतेगा। यदि किसी काम मे विशेषज्ञ के ज्ञान या कौशल की अपेक्षा है तो उसके लिए आवश्यक योग्यता प्राप्त किये बिना उसे हाथ में लेनेवाला व्यक्ति असावधानी का दोषी होता है। यथा, एक सर्जन द्वारा एक कठिन आपरेशन हाथ मे लेना। किसी स्थान के परिभोक्ता से यह आशा की जाती है कि वह अपने पास काम से आनेवाले व्यक्तियो के संबंध में—जैसे दुकान पर आनेवाले ग्राहको या काम पर आनेवाले मजदूरो के संबंध में—सावधानी बरते। उस परिभोगी का ऐसे व्यक्तियो के प्रति कर्त्तव्य है कि वह किसी गुप्त खतरे या जाल से उन्हे हो सकनेवाली हानि को रोके। गुप्त खतरे का उदाहरण—खतरनाक जीना या ऐसा कुत्ता जिसके संबंध में उसे ज्ञात है कि वह कटखना है। किंतु जो खतरा स्पष्ट हो उसके संबंध में आनेवाला व्यक्ति शिकायत नही कर सकता। हो सकता है कि एक चीज वयस्क के लिए खतरनाक न हो किंतु बच्चे के लिए हो। स्काटलैण्ड की एक स्थानीय संस्था ने एक सार्वजनिक पार्क खोल रखा था। उस पार्क में एक वृक्ष था, जिसके फल देखने में सुंदर

किंतु जहरीले थे। उस पार्क में गए एक बच्चे ने उन्हे खा लिया और उसकी मृत्यु हो गई। मुकदमे में संस्था को बच्चे के प्रतिनिधियो को हर्जाना देना पडा। यदि फल वयस्क ने खाये होते तो सस्था हर्जाने के लिए उत्तरदायी न होती। यदि कोई व्यक्ति किसी की जगह मे उसकी इजाजत से दाखिल होता है किंतु उसके काम से नही आता, तो वह उससे यह आशा नही कर सकता कि प्रवेशकर्ता उसके लिए उस जगह के खतरो और नुक्सो का पता लगाये और उन्हे दूर करे। हाँ, उस स्थान के निवासी को जिन नुक्सो का पता है उनके सबध मे सचेत किये जाने का प्रवेशकर्त्ता को अधिकार है। किंतु जो व्यक्ति अनधिकार प्रवेश करता है, उसके प्रति निवासी का न तो स्थान को सुरक्षित रखने का ही कर्त्तव्य है और न उसे सचेत करने का ही। इसलिए चोर किसी खतरनाक जीने से होनेवाली हानि के सबध में कोई शिकायत नही कर सकता। किसी वस्तु के बनानेवाले या बेचनेवाले का यह कर्त्तव्य है कि वह यह देखे कि उसका खरीदार या प्रयोगकर्त्ता उस वस्तु में रहे उन दोषों के कारण कोई हानि नही उठाता, जिनका बनानेवाले या बेचनेवाले को ज्ञान है या होना आवश्यक है। उसका यह कर्त्तव्य है कि वह उन्हे उसके दोषों के सबध मे सतर्क कर दे। स्काटलैण्ड के एक न्यायालय मे चलाये गए अभियोग में सोडा-वाटर आदि बनानेवाला एक व्यक्ति उससे खरीदी गई अदरक की शराब की एक बोतल (जिसमे एक मरे हुए घोघे के अश मिश्रित थे) के पीने से हुई मृत्यु के सबध में हर्जाने के लिए उत्तरदायी ठहराया गया। वाहक—जैसे रेल, जहाज या मोटर-यातायात कम्पनी—का यात्रियों के प्रति यह कर्त्तव्य है कि वह उन्हे सुरक्षित, मजबूत और पर्याप्त वाहन प्रदान करने की समुचित सावधानी बरते। वाहक के कर्त्तव्यो की और चर्चा १०वें अध्याय में की गई है।

हमने यह कई बार कहा है कि एक व्यक्ति दूसरे को क्षति पहुँचाने के कारण हर्जाना देने का जिम्मेदार होता है। कानून मे उसे ऐसा तब समझा जाता है जब

कारण और परिणाम

उसके आचरण से परिणाम को ऐसा योग मिला हो कि न्याय के लिए यह आवश्यक हो कि उसे हानि-प्राप्त व्यक्ति को हर्जाना देने के लिए जिम्मेदार ठहराया जाय। इस सबध में कुछ नियम है। अपकारी कृत्य से स्वाभाविक रूप में उत्पन्न होनेवाले सभी परिणामों के लिए—भले ही उसने वैसे परिणाम न सोचे हो—व्यक्ति स्वय उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए। किसी झगडे के बीच **क** **ख** पर प्रहार करता है। **ख** का दिल कमजोर है और वह उसके फलस्वरूप ढेर हो जाता है। **क** को **ख** की इस अयोग्यता या कमजोरी का ज्ञान नहीं था और इसलिए वह इतने भीषण परिणाम की बात नहीं सोच सकता था। किन्तु फिर भी **क** **ख** की मृत्यु के लिए उत्तरदायी है। **क** लापरवाही से गाड़ी चलाने के

फलस्वरूप **ख** से टक्कर मारता है। यह सभव है कि **ख** बच जाता किन्तु कुछ ऐसी अप्रत्याशित गडबड हो गई कि वह न बच सका। **क ख** की मृत्यु से होनेवाले नुकसान के लिए **ख** के आश्रितो के प्रति जिम्मेदार है। यदि क्षति किसी अन्य व्यक्ति के बीच मे पड जाने के कारण या स्वय वादी के कारण भी हुई है तो कुछ और बातो पर विचार करना पड़ता है। **क ख** को **ग** के सबध में एक अपवाद की बात सुनाता है। कोई हानि नही होती फिर भी **क ख** के प्रति कुछ हर्जाना भरने के लिए उत्तरदायी है। **ग** उस अपवाद की बात को **घ** के सामने दोहराता है जिसका विवाह **ख** से तै हो चुका है। **घ** द्वारा सगाई-सबध भग कर दिया जाता है। अब **ख क** पर दावा करता है। क्या इस परिणाम के लिए **क ख** को हर्जाना देने का जिम्मेदार है? वह नही है, क्योकि परिणाम **ग** द्वारा **घ** के प्रति की गई अपवाद की अपकारी आवृत्ति से उत्पन्न हुआ है। हा, वह जिम्मेदार होता यदि वह यह जानता कि उसके द्वारा कथित अपवाद की बात **ग घ** के सामने दोहरायगा। यह तीसरे व्यक्ति के बीच में **पड़ने** का उदाहरण है।

वादी का अपना आचरण उसे शिकायत करने के अयोग्य ठहरा सकता है। **क** ने दिन-दहाडे, बिना यह देखे हुए कि एक तरफ से गाडी आ रही है, रेल की **पटरी** पार करने की कोशिश की। वह गाडी के नीचे आ गया और मर गया। यह सिद्ध है कि इंजन के ड्राइवर ने सीटी बजाने में चूक की। क्या **क** की मृत्यु के लिए रेलवे कम्पनी उत्तरदायी है? उत्तर है—नही, बावजूद इसके कि ड्राइवर ने सीटी न बजाने की असावधानी की थी। एक अंग्रेजी मुकदमे में प्रतिवादी रास्ते में रुकावट पैदा करनेवाले एक खम्भे को गाड़ने का दोषी था। वादी, जो बेतहाशा घोडे पर दौडा जा रहा था, उससे जा टकराया और उसके चोट लगी। यदि वह थोडी-सी सावधानी बरतता तो दुर्घटना न होती। अत. वह हर्जाना नही वसूल कर सका। एक मोटरकार या मोटर-साइकल चालक सड़क पर पडी हुई बिना रोशनी की एक और गाडी के पीछे जा टकराता है। साधारण रूप में वह चालक उस गाड़ी के मालिक से हर्जाना नही वसूल कर सकता, क्योकि उसे चाहिए था कि वह समय रहते स्वय ब्रेक लगाकर रुक जाता और टक्कर बचा लेता। ऐसे मुकदमो मे अबतक यही नियम रहा है कि वादी का दावा बिलकुल खारिज कर दिया जाय। किंतु अब इगलैण्ड में एक नया नियम बनाया गया है, जिसका अनुकरण भारत में भी होने की संभावना है। इस नियम के अनुसार दोनों पक्षो के अपने-अपने दोष के अनुसार हानि का उत्तरदायित्व बाँट दिया जाता है। अतः यदि वादी को चोट वादी और प्रतिवादी दोनों की असावधानी के कारण लगी है तो न्यायालय वादी के दोष का अनुमान लगाकर हर्जाना उतना ही कम कर देगा। उदाहरणार्थ, यदि यह पता चले कि वादी का दोष प्रतिवादी से दुगुना है तो

उसे मिलनेवाला हर्जाना दो-तिहाई कम हो जायगा और उसे हर्जाने का केवल एक-तिहाई अंश ही मिलेगा। दोनों पक्षों की गलती से होनेवाली जलयानों की टक्कर के मामलों में यह नियम प्रचलित है ही। वादी को पूरा नुकसान उठाने के लिए कहने और उसे कोई मुआवजा न देने के बजाय यह नियम कदाचित अधिक न्यायसंगत है। कोई व्यक्ति थोड़ी-सी अपनी भी असावधानी के कारण हुई क्षति के लिए पूरा हर्जाना वसूल कर सकता है। यह स्थिति तब पैदा होती है जब वादी की असावधानी से होनेवाले परिणाम को प्रतिवादी के लिए बचाना संभव हो। इसके उदाहरण में इंगलैण्ड का वह मुकदमा दिया जा सकता है, जिसमें वादी केवल गधे की अगली दो टाँगों को बाँधकर उसे सड़क पर छोड़ देने का दोषी था। गधा सड़क के एक तरफ घास चर रहा था, जब कि प्रतिवादी की तेजी से चली आ रही घोड़ागाड़ी उससे टकराई, जिससे गधा मर गया। प्रतिवादी को हर्जाना भरना पड़ा, क्योंकि यद्यपि वादी का भी उसमें कुछ दोष था, किन्तु घोड़ा-गाड़ी का चालक सावधानी बरतकर दुर्घटना के कारण वादी को होनेवाली गधे की क्षति को बचा सकता था।

मालिक का उत्तरदायित्व

कोई व्यक्ति अपने नौकर द्वारा नौकरी के समय की गई अन्य की क्षति के लिए हर्जाना भरने का उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। इसका स्पष्टीकरण आवश्यक है। इसका अर्थ है कि नौकर ने मालिक के बताये गए काम को अनुचित ढंग से किया। दूसरी तरफ यदि नौकर अपने कर्त्तव्य-क्षेत्र से बाहर कोई काम करता है तो उसके लिए मालिक उत्तरदायी नहीं है। उदाहरण से यह बात और साफ हो जायगी। **क ख** को अपनी गाड़ी का ड्राइवर नियुक्त करता है, **ख** की असावधानी से **ग** गाड़ी के नीचे आ जाता है। **क ग** के प्रति हर्जाने का उत्तरदायी है। **क** ने भले ही ड्राइवर के चुनाव में और उसे आदेश व चेतावनी देने में पूरी सावधानी बरती हो किंतु फिर भी वह हर्जाना भरने के लिए उत्तरदायी है। मान लीजिये—**क** का क्लर्क या रसोइया **क** की बिना आज्ञा के उसकी गाड़ी ले जाता है और **ग** उसके नीचे आ जाता है। ऐसी दशा में **क ग** के प्रति उत्तरदायी नहीं है। **क** उस समय भी उत्तरदायी नहीं होगा जबकि उसका ड्राइवर उसके बिना ज्ञान के गाड़ी को किसी और को चलाने देता है। इन दोनों मामलों में नौकर का काम उसके कर्त्तव्य-क्षेत्र से बाहर है। ये मामले सीधे हैं, किंतु सभी मामले इतने सीधे नहीं होते। मान लीजिये **क** का ड्राइवर गाड़ी में पेट्रोल भरवाने के लिए उसे पेट्रोल-पम्प के पास ले जाता है। वहाँ पेट्रोल भरवाते समय सिगरेट सुलगाता है और जलती हुई दियासलाई फर्श पर फेंक देता है जिससे आग लग जाती है और वह स्थान जलकर खाक हो जाता है। क्या इसके लिए **क** उत्तरदायी है? हाँ, वह उत्तरदायी है, क्योंकि उसके

ड्राइवर का पैट्रोल की टकी पर जाकर पैट्रोल का भरवाना उसके कर्त्तव्य-क्षेत्र के अन्तर्गत था, और कर्त्तव्य का पालन उसने वहाँ जलती हुई दियासलाई फेंककर अनुचित ढग से किया। इस प्रकार मालिक न केवल अपने नौकरों की असावधानी या गलती के लिए उत्तरदायी ठहराये जाते हैं, अपितु उनके जान-बूझकर छलपूर्वक या द्वेषपूर्वक किये गए और दण्डनीय तथा उसके स्पष्ट आदेश के विरुद्ध किये गए कार्यों के लिए भी उत्तरदायी होते हैं। मालिक के रूप में सरकार पर भी यही नियम लागू होता है। केन्द्रीय या किसी राज्य सरकार पर उसके किसी कर्मचारी द्वारा पहुँचाई गई क्षति के सबध में दावा किया जा सकता है। किंतु इस सबध में दो मुख्य बातें हैं। सरकार पर उसके प्रभुसत्तात्मक अधिकार के प्रयोग से होनेवाली क्षति के लिए मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। यदि वह युद्ध या शांति की घोषणा करती है, किसी विदेशी को निकालती है, किसी विदेशी राज्य के क्षेत्र को अपने अधिकार में ले लेती है या किसी विद्रोह को दबाती है, तो इन सबके सबध में दिये गए आदेशों से होनेवाली क्षति के लिए उसपर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। यदि किसी सरकारी कर्मचारी को कानून कोई अधिकार देता है, तो उस अधिकार के प्रयोग से होनेवाली क्षति के लिए भी सरकार पर दावा नहीं किया जा सकता। उदाहरणार्थ, एक पुलिस अधिकारी द्वारा की गई गिरफ्तारी के लिए। हाँ, सरकार पर उस हालत में दावा किया जा सकता है जबकि किसी गैर-कानूनी गिरफ्तारी का उसने स्पष्ट आदेश दिया हो या वैसी गिरफ्तारी के सबध में उसने बाद में स्वीकृति प्रदान की हो।

प्रतिवाद (सफाई या बचाव)

अपराधसंबधी कानून में जो प्रतिवाद, बचाव या सफाइयाँ उपलब्ध हैं, वे यहाँ भी लागू हैं। जैसे बाल्यावस्था, पागलपन, किसी कानूनी कर्त्तव्य के पालन या अधिकार का प्रयोग, न्यायसबधी कार्य, आवश्यकता और शरीर या सपत्ति की रक्षा के बचाव। किसी कानूनी कर्त्तव्य या अधिकार के प्रयोग का बचाव गैर-सरकारी व्यक्ति और राज्य के कार्यांग, न्यायांग तथा विधानांग के अधिकारियों को यह सामर्थ्य प्रदान करता है कि वे उनपर कानून द्वारा डाले गए या उन्हें दिये गए अधिकार और कर्त्तव्यों का पालन कर सकें। 'कानून' से आशय अधिनियमित (बने) और अनधिनियनित (बिना बने) दोनों प्रकार के कानूनों से है। किंतु आजकल अधिनियमित विधि की सीमा इतनी अधिक बढ गई है कि प्रायः अधिनियमित विधि अनधिनियमित विधि को लाँघ जाती है। यह बात सरकार के कार्यांग (कार्यकारी) के क्षेत्र में विशेष रूप से होती है। इसलिए सरकार और उसके अधिकारी, जो यह बचाव या सफाई पेश करते हैं कि वे प्रायः किसी अधिनियमित

विधि या इसी प्रकार के किसी अन्य उपबंध का सहारा लेते हैं। कार्यागाधिकार में बाहरी आक्रमण से देश की रक्षा, आंतरिक उपद्रव को दबाने, अधिनस्थ अधिकारियों पर अनुशासन संबंधी अधिकार, अपराधियों और संदेहवाले व्यक्तियों को पकड़ने और सरकार के विभिन्न कार्यों से संबंधित बचाव सम्मिलित हैं। जब कोई कानून सरकार को या उसके अधिकारियों अथवा कर्मचारियों को कोई अधिकार प्रदान करता है तो उस अधिकार-प्रयोग के संबंध में उनपर दावा नहीं किया जा सकता। किंतु शर्त यह है कि अधिकार का प्रयोग अधिकार प्रदान करनेवाले कानून के ठीक अनुसार ही किया गया होना चाहिए। उदाहरणार्थ, कोई राज्य सरकार किसी की निजी जायदाद को किसी सार्वजनिक कार्य के लिए मुआवजा देकर ले सकती है। किंतु उसका लेना तभी वैध होगा जबकि भूमि-अधिग्रहण-अधिनियम (लैण्ड एक्विजिशन एक्ट) की रीति और शर्तों के अनुसार उसे लिया गया हो, जैसे सरकारी गजट में उसकी विज्ञप्ति निकाली गई हो, उस विज्ञप्ति की सार्वजनिक सूचना उस जायदाद के क्षेत्र में सुविधाजनक स्थानों पर लगाई गई हो और उसके स्वामी या अन्य आपत्तिकर्त्ता को उसके अधिग्रहण के विरुद्ध कारण बताने का अवसर दिया गया हो। इसके अतिरिक्त किसी की जायदाद का कानून के अनुसार अधिग्रहण करना संविधान में दिये गए मूल अधिकारों संबंधी उपबंधों (अध्याय २) के अनुकूल होना चाहिए। जब कोई कानून किसी व्यक्ति को कुछ करने का अधिकार प्रदान करता है तो उस व्यक्ति को चाहिए कि वह उस अधिकार का प्रयोग बचाई जा सकनेवाली दूसरों की हानि के बिना करे। यह बात सरकार पर भी लागू होती है। उदाहरण के लिए, सरकार वायु दूषित करनेवाला कोई अस्पताल या ऐसा कारखाना, जिससे बुरा धुआँ निकलता हो, जो उस क्षेत्र में रहनेवालों के स्वास्थ्य के लिए हानिकर हो, नहीं बना सकती।

कानूनी अधिकार का उदाहरण है—माता-पिता या संरक्षक का अपने बच्चे या संरक्षण-प्रदत्त व्यक्ति (वार्ड) पर अधिकार। माता-पिता को अपने बच्चे को शारीरिक दंड या ताड़ना देने का अधिकार है और इसके लिए कानून उसे उत्तरदायी नहीं ठहराता। किंतु पति को अपनी पत्नी को पीटने या बन्दिनी बनाने का अधिकार नहीं है। स्कूल के अध्यापक का अपने शिष्य पर अर्द्ध-पैतृक अधिकार होता है। उसे शारीरिक दंड देने का अधिकार हो सकता है, किंतु उस समय नहीं जबकि वे नियम, जिनके अन्तर्गत वह कार्य करता है, शारीरिक-दंड देने का निषेध करें। किंतु हर हालत में यह जरूरी है कि दंड साधारण और समुचित हो और वह सद्भावना से दिया गया हो, अन्यथा वह हर्जाना भरने का उत्तरदायी होगा। जिन अन्य व्यक्तियों और संस्थाओं को कानूनी अधिकार हैं, उनके उदाहरण हैं—एक क्लब का अपने सदस्यों पर, यूनिवर्सिटी, स्कूल या कॉलेज का अपने

छात्रो, परीक्षार्थियो और सदस्यों पर; महान् चिकित्सा-परिषद् का दर्ज (रजिस्टर्ड) चिकित्सको पर, जाति-सभा का सजातीय व्यक्तियो पर और पंच का उन व्यक्तियों पर जो अपना झगडा उसे सौंपते है। यदि इन अधिकारों के अन्तर्गत किये गए कार्य साधारण न्याय के नियमो के और उस सबध मे बनाये गए अन्य नियमो के अनुकूल होते है तो कानून उन्हे संरक्षण देता है। साधारण न्याय के नियम है, किसी व्यक्ति को किसी सस्था या क्लब की सदस्यता से बिना समुचित नोटिस दिये और वैसा करने के विरुद्ध कारण बताने का अवसर दिये नही हटाया जायगा और जो व्यक्ति इस सबध मे निर्णय करेगे वे निर्णय का कार्य न्यायपूर्वक और सद्भावना से, न कि भ्रष्टता से करेगे तथा उस व्यक्ति के सबंध में उनके मन में कोई प्रतिकूल या द्वेषमूलक विचार नही होगे। एक और प्रतिवाद है, क्षतिग्रस्त व्यक्ति की स्वीकृति। यह स्वीकृति व्यक्त या अनुमानित हो सकती है। व्यक्त स्वीकृति का उदाहरण है—जहाँ व्यक्ति ने अपने ऑपरेशन की स्वीकृति दी हो। अनुमानित स्वीकृति का उदाहरण है—जहाँ कोई कारीगर या मजदूर शारीरिक क्षति की सभावनावाले काम को करने के लिए उद्यत होता है। यदि मालिक या काम देनेवाले व्यक्ति ने उसके काम की सुरक्षित और समुचित व्यवस्था की है तो उसके सबंध में कोई शिकायत नही कर सकता। ऊँची छत पर काम करने के लिए नियुक्त राज के लिए छत से गिर जाना और मर जाना संभव है। इसके लिए मालिक को उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता। किंतु यदि मालिक ने उसके लिए मचान और सहारे की समुचित व्यवस्था नही की है या अन्य सावधानी बरतने में चूक की है, तो वह हर्जाना भरने के लिए उत्तरदायी होगा।

अपकार से त्रस्त होने पर कोई व्यक्ति क्या न्यायालय मे न जाकर उसका उपचार स्वयं कर सकता है?

आत्म-प्रतिसमाधान

इस संबध में सामान्य नियम यह है कि वह नही कर सकता, नही तो उसका फल होगा हिंसा और अनियमितता। यदि कोई व्यक्ति अपनी जायदाद से बाहर निकाल दिया गया है तो वह ताकत के जोर पर उसे वापस लेने की कोशिश नही कर सकता। यदि उसका पड़ोसी उसके घर के सामने दीवार या मकान खड़ा कर उसके घर में जानेवाली हवा और रोशनी को रोक दे तो वह पडोसी का मकान या दीवार गिराने के लिए उद्यत नही हो सकता। किन्तु यदि उसकी जमीन में या उसके घर में पडोसी की जमीन या घर मे खड़े हुए पेड की शाखाएं आती है तो वह उन्हे काट सकता है। किन्तु यह काम वह अपनी ही जमीन पर कर सकता है। यद्यपि कोई व्यक्ति अपने को पहुँचाई गई क्षति का स्वयं उपचार नही कर सकता, किन्तु वह क्षति पहुँचाई जाने के समय उसे रोक सकता है या उसका प्रतिरोध कर सकता है।

अतः वह आक्रमण से अपनी रक्षा कर सकता है या अपनी सम्पत्ति पर किसी के बेजा दखल को रोक सकता है और उसके लिए आवश्यक बल-प्रयोग कर सकता है। यदि कोई व्यक्ति उसकी कोई चीज ले लेता है तो वह उसका पीछा कर सकता है और बलपूर्वक उसे वापस ले सकता है।

जब किसी हानि के सबध में मुकदमा दायर करने मे पहले ही क्षतिग्रस्त व्यक्ति की या अपकारकर्त्ता की मृत्यु हो जाती है, तो यथा स्थिति, मृत व्यक्ति के कानूनी उत्तराधिकारी की ओर से उसके विरुद्ध मुकदमा दायर किया जा सकता है। किन्तु इस नियम के कुछ अपवाद हैं, अर्थात जिन मामलों के सबध मे किसी पक्ष की मृत्यु होने पर मुकदमा नही चलाया जा सकता है, वे है—मानहानि, आक्रमण तथा शारीरिक और व्यक्तिगत क्षति, जिसमें क्षति-ग्रस्त व्यक्ति की मृत्यु न हो। अत. यदि **ख** ने **क** की मानहानि की हो तो **क** या **ख** की मृत्यु के बाद मानहानि के संबंध मे हर्जाने का दावा नही किया जा सकता। अपवादो को छोडकर अन्य स्थितियो मे नियम यह है कि मृत व्यक्ति के कानूनी उत्तराधिकार की ओर से, या उस के विरुद्ध, दावा किया जा सकता है। मुकदमा दायर होने के बाद, किन्तु उसमें डिगरी होने के पहले यदि किसी पक्ष की मृत्यु हो जाय, तो वहाँ भी यही नियम लागू होता है। अत. यदि **क ख** पर मानहानि के लिए दावा करता है और मुकदमे के दौरान में मर जाता है तो **क** का उत्तराधिकारी मुकदमा जारी नही रख सकता। किन्तु यदि मुकदमे मे **क** के पक्ष में डिगरी हो जाय और तब उसकी मृत्यु हो, तो उसके उत्तराधिकारी उस डिगरी का भुगतान करा सकते है या उसे वसूल कर सकते है।

वादी या प्रतिवादी की मृत्यु

: ९ :

संविदा[१]

परिभाषा तथा प्रयोजन

मनुष्य अनेक प्रयोजनों से शांतिपूर्वक व अपने साथियों के साथ सहयोगपूर्वक रहना आवश्यक समझता है। दूसरों के साथ वस्तुओं और सेवाओं के विनिमय द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करना ऐसा ही एक प्रयोजन है। अन्य व्यक्ति से होनेवाले किसी लाभ के बदले वह खरीदने, बेचने, नौकरी करने या नौकरों देने का काम करता है। समर्थ होने पर पैसा चुकाने का वचन देकर वह सामान खरीदता है। काम के पूरा होने पर पैसा देने का वचन देकर वह कारीगर को काम पर लगाता है। उसका यह वचन, वायदा या करार 'संविदा' कहलाता है। अतः हमारे दैनिक जीवन में अनेक प्रकार के संविदे होते हैं। शांति और व्यवस्था बनी रहे और व्यापार तथा ऐश्वर्य की वृद्धि हो, इसके लिए यह आवश्यक है कि जो व्यक्ति संविदा करें वे उसका पालन भी करें। संविदा-विधि का उद्देश्य व्यक्तियों से संविदों का पालन कराना है। संविदा-संबंधी नियम उन प्रतिकारों का निर्देश करते हैं जो किसी व्यक्ति के द्वारा अपने संविदे का पालन न करने पर उसके विरुद्ध उपलब्ध होते हैं और साथ में यह भी बताते हैं कि किन परिस्थितियों में वे उपलब्ध होते हैं। ये नियम भारतीय संविदा अधिनियम, १८७२ (इण्डियन काण्ट्रेक्ट एक्ट १८७२) में दिये गए हैं।

अभी हमने वचन और संविदा, इन दो शब्दों का प्रयोग किया है। इनका तथा इनके साथ सहमति या करार (राजीनामे) की व्याख्या करना आव-

---

१ संविदा (कॉण्ट्रेक्ट) के लिए हिन्दी में दो शब्द उपलब्ध हैं—ठेका और अनुबंध। अनुबंध का अर्थ है—जो बाद में बांध देता है। संविदा में भी होता यही है। एक पक्ष प्रस्ताव करता है, दूसरा उसे स्वीकार करता है और फिर दोनों उससे बँध जाते हैं। यह तो हुआ अनुबंध शब्द का विश्लेषण। किन्तु अब अनुबंध के स्थान पर 'कॉण्ट्रेक्ट' के लिए संविदा (जिसमें सब बातें अच्छी तरह जान ली जायँ, समझ ली जायें) शब्द का प्रयोग अधिक मान्य होने लगा है और अनुबंध शब्द 'annexure' (जो बाद में संलग्न किया जाय) के अर्थ में भी प्रयुक्त होने लगा है। 'संविदा' शब्द 'ठेका' से अधिक उपयुक्त है, इसलिए इस पुस्तक में 'संविदा' का ही प्रयोग किया गया है।

श्यक है। बोलचाल की भाषा में इनके जो अर्थ होते है, उनसे कानून की भाषा में इनके भिन्न अर्थ निकलते है । वायदा एक व्यक्ति द्वारा किये गए और दूसरे द्वारा स्वीकृत किए गये प्रस्ताव को कहते है। **क ख** से कहता है कि वह अपनी जमीन **ख** को ५००० रुपये मे बेचेगा । आम बोल-चाल की भाषा में इसका अर्थ हुआ कि **क** ने एक वायदा किया है, किंतु कानून इसे केवल 'प्रस्ताव' ही मानता है। कानून मे वह तब वायदे का रूप धारण करता है जब **ख** उसे स्वीकार कर लेता है और **क** की जमीन खरीदने और उसकी कीमत अदा करने की वह सहमति प्रदान करता है। **क** का बेचने का वायदा 'सहमति' या करार (राजीनामा) है और **ख** का उसके लिए पैसे देने का वायदा भी सहमति या करार ही है। दोनो ही तरफ से यह बात 'कुछ करने' की है; या यह बात 'कुछ न करने' की भी हो सकती है। जैसे—**क ख** से यह वायदा करता है कि यदि **ख** अपने कर्ज के संबंध मे जमानत के तौर पर अपनी संपत्ति को एक वर्ष के लिए रहन रख दे तो वह **ख** पर दावा 'नही' करेगा। कुछ करने के लिए या कुछ न करने के लिए जो वायदा किया जाता है वह करार या सहमति कहलाता है। कई बार दो व्यक्ति एक दूसरे के प्रति वायदा करते है। **क** एक महीने बाद **ख** को माल देने का वायदा करता है और '**ख**' माल मिलने पर उसकी कीमत अदा करने का वायदा करता है। दोनो वायदे अलग-अलग करार है। करार यदि कुछ आवश्यक अपेक्षाओ की पूर्ति करे तो वह संविदा या ठेका कहलाता है और तभी न्यायालय उसे क्रियान्वित या लागू करने की दिशा मे प्रवृत्त होता है। ये आवश्यक अपेक्षाएँ है—

वायदा, करार और संविदा की व्याख्या

(१) प्रत्येक संविदा किसी 'विचार' (प्रतिफल) पर प्रतिष्ठित होना चाहिए। 'विचार' का अर्थ है वायदे के बदले मे कुछ लाभ, प्राप्ति, तुष्टि या सांत्वना। कानून में इसका यही विशेष अर्थ होता है और इस अध्याय मे इसका यही भाव है।

(२) दोनो पक्ष संविदा करने के लिए समर्थ या योग्य होने चाहिए।

(३) संविदा उनकी स्वतंत्र स्वीकृति से होना चाहिए। और

(४) वह अवैध नही होना चाहिए।

इस बात की व्याख्या करने के बाद कि वायदा या करार कैसे किये जाते हैं, हम इन अपेक्षाओ का विवेचन करेंगे।

वायदा उस समय 'पूरा' होता है जब एक व्यक्ति दूसरे के सामने कोई प्रस्ताव रखता है और दूसरा उसे स्वीकार कर लेता है। दूसरे शब्दो मे वायदा 'स्वीकृत प्रस्ताव' को कहते है। इससे यह अनुमान होता है कि प्रस्ताव और स्वीकृति एक दूसरे को ज्ञापित किये (बताये) जाते है। उदाहरण के रूप मे, **क ख** से कहता है कि वह **ख** को अपना मकान ५००० रुपये में बेचेगा। यदि यह बात **क ख**

को जबानी बताता है तो प्रस्ताव तुरन्त ज्ञापित हो जाता है। **ख** भी अपनी स्वीकृति जबानी दे सकता है। किंतु **क** और **ख** अन्य प्रकार से भी यह प्रस्ताव ज्ञापित कर सकते हैं और स्वीकार कर सकते हैं। **क ख** को, जो किसी अन्य स्थान पर है, एक पत्र या तार द्वारा अपना प्रस्ताव भेज सकता है। **ख** भी **क** को पत्र या तार द्वारा अपनी स्वीकृति ज्ञापित कर सकता है। यदि **क** या **ख** अपना प्रस्ताव या अपनी स्वीकृति वापस ले ले तो कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न हो सकते हैं। मान लीजिए कि **क** पत्र द्वारा कोई प्रस्ताव **ख** के पास भेजता है। बाद में वह उसे पत्र या तार द्वारा वापस लेना चाहता है। क्या वह ऐसा कर सकता है? हाँ, **ख** के स्वीकृति-पत्र भेजने (डाक में छोड़ने) से पूर्व वह कभी भी ऐसा कर सकता है। किंतु बाद में वह प्रस्ताव वापस नहीं ले सकता। क्या **ख** अपनी स्वीकृति वापस ले सकता है? हाँ, वह उस स्वीकृति के **क** तक पहुँचने से पूर्व कभी भी वैसा कर सकता है। उदाहरण के लिए वह उसे पत्र से पूर्व मिल जाय, ऐसा तार भेजकर अपनी स्वीकृति वापस ले सकता है। अतः यदि कोई प्रस्ताव स्वीकृत किये जाने से पूर्व और कोई स्वीकृति प्रस्तावक तक पहुँचने से पूर्व यदि खण्डित हो जाय, तो वहाँ वायदा नहीं होता। इसके अतिरिक्त वायदा तभी होता है जब कि प्रस्ताव में बताये गए ढंग से, जिसके नाम, वह प्रस्ताव भेजा गया है, वह व्यक्ति उसे स्वीकार करे। स्वीकृति के लिए कोई समय निश्चित किया जा सकता है। यदि कोई समय निश्चित नहीं किया जाय तो स्वीकृति एक समुचित समय में दे दी जानी चाहिए। किसी शर्त को पूरा करने की बात भी साथ में रखी जा सकती है। उदाहरण के लिए **क ख** को अपना कुछ माल बेचने का प्रस्ताव रखता है, किंतु शर्त यह है कि **ख** उसे एक पक्ष के भीतर ५०० रुपये पेशगी के दे दे। यदि **ख** पेशगी नहीं देता तो वह **क** के माल बेचने के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकता। स्वीकृति बिना कोई शर्त लगाये और प्रस्ताव के अनुसार होनी चाहिए। **क ख** को अपना मकान ५ हजार रुपये में बेचने का प्रस्ताव रखता है। **ख क** से उत्तर में कहता है कि वह मकान ४ हजार रुपए में खरीदेगा, या कुछ मरम्मत करा दी जाय तो ५ हजार में खरीद लेगा। उसे स्वीकृति नहीं कहते और इसलिए इस उदाहरण में संविदा पूरा नहीं होता। कुछ अवस्थाओं में स्वीकृति निरर्थक हो जाती है। जैसे तब, जबकि प्रस्तावक मर जाय या होश-हवास में न रहे और यह बात दूसरे व्यक्ति को स्वीकृति प्रदान करने से पूर्व ज्ञात हो जाय; किंतु स्वीकृति के बाद हुई मृत्यु या पागलपन संविदा होने की स्थिति को नहीं रोक सकते।

प्रस्ताव और स्वीकृति शब्द या आचरण के द्वारा हो सकते हैं। **क** किसी होटल या रेस्तराँ में जाता है और वहाँ खाने का आर्डर देता है। उसके आचरण से इस बात का अर्थ निकलता है कि वह उसके पैसे देगा, हालांकि वह मुंह

से पैसे देने की बात नही कहता। इस उदाहरण मे प्रस्ताव या स्वीकृति की बात एक-दूसरे की जानकारी में है। कई बार यह बात व्यक्ति की जानकारी मे समझी जाती है, हालांकि वास्तव मे वह उसे नही जानता। उदाहरण के लिए रेलवे कपनी से अपनी यात्रा के लिए टिकिट लेनेवाला व्यक्ति या माल भेजने की रसीद लेनेवाला व्यक्ति भले ही उस रसीद या टिकिट के पीछे लिखी शर्तो को न पढ़े, किंतु यह समझा जायगा कि वह उन शर्तो को जानता और मानता है। यदि वह उन शर्तो को पढने या समझने की कोशिश नही करता तो यह उसका दोष है। एक भारतीय ने, जो एक फ्रांसीसी जहाज पर सवार हुआ, टिकिट खरीदा; जिसके पीछे फ्रांसीसी भाषा मे शर्तें छपी थीं। सामने की तरफ लाल अक्षरो मे यह छपा था कि टिकिट पीछे दी गई शर्तों के अधीन है। उनमे से एक शर्त यह थी कि जहाज कम्पनी यात्री के माल के नुकसान की जिम्मेदार नही होगी। वह जहाज डूब गया और उस भारतीय का सामान नष्ट हो गया। उसने जहाज कम्पनी पर हर्जाने का दावा किया, पर वह सफल नही हुआ। यह निर्णय किया गया कि वह शर्तों से बंधा हुआ था। यह दूसरी बात है कि शर्तें इस प्रकार से छपी हुई थी कि उसे पता न चल सके कि कोई शर्तें है।

प्रायः प्रस्ताव किसी निश्चित व्यक्ति या व्यक्तियो से किया जाता है। संभव है कई बार वह कुछ व्यक्तियो या समस्त जनता से किया जाय। ऐसी दशा में यदि कोई भी व्यक्ति उसे स्वीकार कर लेता है तो उसके प्रति प्रस्तावक का वायदा हो जाता है। उदाहरणार्थ, कोई व्यक्ति किसी खोई चीज के ढूंढने पर इनाम देने का विज्ञापन निकाल सकता है। यदि कोई व्यक्ति ढूंढकर उस चीज को पेश कर दे तो वह इनाम पाने का दावा कर सकता है।

ऊपर जिस आशय के वायदे की चर्चा की गई है, वह सविदा नही होता और न्यायालय तबतक उसे लागू नही कर सकता जबतक कि उसके पीछे कोई 'विचार' न हो। **क** अपने मित्र **ख** से कहता है कि वह **ख** के जन्मदिवस पर उसे एक घडी भेंट करेगा। **क** कहता है कि वह उसे स्वीकार करेगा। **ख** का यह वायदा सविदा नही है और वह भेट देने के लिए बाध्य नही किया जा सकता, क्योकि उस वायदे के पीछे कोई 'विचार' नही है। दूसरी तरफ जब **क** **ख** द्वारा चुकायी गई या चुकाने का वायदा की गई कीमत के बदले **ख** को अपनी जमीन बेचने का वायदा करता है तो **क** का वायदा सविदा है, क्योकि **ख** का कीमत चुकाना या चुकाने के लिए वायदा करना वह 'विचार' है, जिस पर संविदा प्रतिष्ठित है। यह 'विचार' या लाभ उसे **ख** से या किसी अन्य व्यक्ति **ग** से भी मिल सकता है। उदाहरणार्थ— **क** **ख** को अपनी जमीन बेचने के लिए राजी हो सकता है, जिसकी कीमत **ख** का मित्र, संबंधी या कर्जदार **ग** चुकाये। विचार या लाभ कुछ करने में हो सकता है। जैसे—कीमत चुकाने में या कीमत चुकाने का

वायदा करने में। यह किसी चीज के न करने में या न करने का वायदा करने में भी हो सकता है। कुछ करने या कुछ न करने का वायदा करने में भी हो सकता है। कुछ करने या न करने की जो बात विचार के रूप में होती है, वह वर्तमान काल मे या वायदे की स्थिति में भविष्यतकाल मे सबध रख सकती है। वह भूतकाल मे भी संबधित हो सकती है। **क ख** से अपने किसी व्यापार मे सहायता करने के लिए कहता है। **ख** सहायता करता है। **क** आगे चलकर **ख** को उसकी पिछली सेवा के लिए एक रकम देने का वायदा करता है। इसमे ध्यान देने की महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वायदा करनेवाले की इच्छा पर (इन उदाहरणो मे **क** की इच्छा पर) किसी दूसरे व्यक्ति ने कुछ किया हो या कुछ करने का वायदा किया हो। एक व्यक्ति ने स्थानीय कलक्टर की इच्छा पर एक सार्वजनिक बाजार बनवाया। उसमे कुछ लोगो ने कहा था कि वे उस बाजार मे जो चीजे बेचेंगे, उनपर वे उसे कमीशन देंगे। बाजार बन जाने पर उसने इस कमीशन के लिए दावा किया। दावा अस्वीकृत कर दिया गया, क्योकि उसने वह बाजार उनके कहने से या उनकी इच्छा पर नही बनवाया था। यह हम देख चुके है कि किसी का कुछ करने का इकतरफा वायदा उसे नहीं बाँधता। उदाहरणार्थ, किसी सार्वजनिक कार्य, जैसे स्कूल की इमारत, के लिए दान देने का वायदा करनेवाले व्यक्ति पर अदालत मे दावा नही किया जा सकता। किंतु यदि वह कार्य पूरा हो जाता है और स्कूल बन जाता है, तो उसे वायदे की रकम देने के लिए बाध्य किया जा सकता है। इस तर्क का दृष्टिकोण, जो कि उचित है, यह है कि स्कूल की इमारत का खर्च न केवल उस व्यक्ति के तथा और व्यक्तियो के वायदे का विश्वास करके उठाया गया है बल्कि उन व्यक्तियो की इच्छा से उठाया गया है।

हर संविदा के पीछे विचार का होना आवश्यक है। किंतु उस विचार के पर्याप्त होने के सबध मे न्यायालय कोई जाँच नही करेगा। यदि **क** अपना कीमती घोडा **ख** को थोडी कीमत पर बेच देता है तो वह बेचना तो जायज है किंतु कीमत का थोडा होना इस बात का सबूत हो सकता है, कि **ख** ने कोई, चालाकी चली या **क** पर घोडा बेचने संबधी संविदा करने के लिए अनुचित प्रभाव डाला।

संविदा के लिए विचार का जो नियम है उसके तीन अपवाद है। पहला अपवाद उस वायदे का है, जो स्वाभाविक प्रेम या स्नेहवश किया गया हो, लिखित हो और रजिस्ट्रीशुदा हो। जैसे एक पिता एक रजिस्ट्रीशुदा लेख के जरिए अपनी पुत्री को ५०० रुपये देने का वायदा करता है। वह वायदा पूरा करने के लिए बाध्य है। दूसरा अपवाद है किसी अन्य व्यक्ति से निष्कारण या निर्मूल्य प्राप्त किये किसी लाभ के बदले में कुछ देने या करने का वायदा। **क** को **ख** का खोया हुआ बटुआ मिलता है, जो वह उसे लौटा देता है। **ख** इस पर **क** को ५० रुपया

देने का वायदा करता है। **ख** वायदा पूरा करने के लिए बाध्य है। तीसरा अपवाद कर्ज चुकाने का वह वायदा है जो लिखित रूप में उस व्यक्ति के हस्ताक्षर सहित हो जो अवधि निकल जाने के कारण या कानूनी प्रतिबंध के कारण उस कर्ज को चुकाने के लिए बाध्य न हो।

जब कोई किसी व्यक्ति के प्रति वायदा करता है और वह वायदा किसी विचार या प्रतिफल पर प्रतिष्ठित होता है तो वह करार का रूप ग्रहण कर लेता है। जब वह करार कुछ अन्य आवश्यक शर्तों को पूरा करता है तो संविदा का रूप ले लेता है और उस अवस्था में न्यायालय उसे लागू करता है। यदि वह इन शर्तों को पूरा न करे तो वह 'शून्य (निष्क्रिय) करार' होगा। ये शर्तें क्या हैं? प्रथम यह कि संविदा करनेवाले पक्ष ऐसा करने के लिए सक्षम या योग्य हों। नाबालिग या पागल व्यक्ति को वह योग्यता प्राप्त नहीं है। यदि कोई नाबालिग किसी दुकान पर जाय और एक मोटरकार खरीद ले तो उस पर कीमत के लिए दावा नहीं किया जा सकता। किंतु यदि उसको आवश्यकतानुसार की चीजें, जैसे, खाद्यपदार्थ, वस्त्र या शिक्षा-संबंधी सामग्री उसे दी जाय, तो उनकी कीमत उसकी संपत्ति से वसूल की जा सकती है।

एक कानूनी संविदा के लिए दूसरी आवश्यक अपेक्षा यह है कि उसके संबंध में दी गई स्वीकृति स्वतंत्र हो। वह किसी प्रकार का दबाव या अनुचित प्रभाव डालकर अथवा किसी चालाकी, गलती या गलत बयानी से प्राप्त नहीं की गई होनी चाहिए। **क** **ख** को शारीरिक क्षति पहुँचाने की धमकी देता है और इस प्रकार **ख** से या किसी अन्य व्यक्ति जैसे, **ख** की पत्नी या पुत्र से, अपनी संपत्ति को बेचने का वायदा ले लेता है। यह वायदा दबाव डालकर कराया गया है और वह पालनीय नहीं है। एक डाक्टर या नर्स, जो सख्त बीमार व्यक्ति की चिकित्सा या शुश्रूषा कर रहे हैं, उस बीमार व्यक्ति से इलाज या सेवा के बदले अनुचित रूप से अत्यधिक मेहनताना देने का वायदा करा लेते हैं। यह वायदा अनुचित प्रभाव डालकर कराया गया माना जायगा। **ख** के यह कहने पर कि, घोड़ा सब प्रकार से ठीक है, **क** उसे खरीदने के लिए तैयार हो जाता है। **ख** को यह मालूम है कि घोड़ा दुर्गुणी है। **क** घोड़ा खरीदने के लिए बाध्य नहीं है। यह चालाकी या छल का उदाहरण है। यदि **ख** को घोड़े के दुर्गुण की बात मालूम न होती तो उसका आचरण छलपूर्ण न होकर मिथ्या कथन का होता। किंतु उससे स्थिति में कोई परिवर्तन न आता और **ख** उसे पूरा करने के लिए **क** को बाध्य न कर सकता। किंतु एक बात में थोड़ा अंतर है। मिथ्या कथन के मामले में यदि व्यक्ति साधारण उद्योग से सच्चाई का पता लगा सकता हो तो वह उसके संबंध में शिकायत नहीं कर सकता। **क** **ख** से कहता है कि उसका (**क** का) चीनी का कारखाना प्रतिवर्ष ५०० मन चीनी का उत्पादन करता रहा है।

ख उसके कथन पर विश्वास कर कारखाना खरीद लेता है। बाद में पता चलता है कि कारखाना तो ४०० मन चीनी का ही उत्पादन करता था। **ख** बडी आसानी से कम्पनी का हिसाब देखकर इसकी जाँच कर सकता था। यदि **क** ने जानबूझ कर झूठ बोला होता तो **ख** सविदा पूरा न करने के लिए स्वतत्र था। किंतु यदि **क** का मिथ्या कथन बेईमानी की भावना से रहित था, तो **ख** को सविदा पूरा करना पडेगा। **क ख** को १०० थैले सीमेंट बेचने की सहमति प्रदान करता है। समझा यह जाता है कि यह सीमेंट लदन से बबई आ रहे जहाज मे है। किंतु सहमति प्रदान करने की तारीख से पूर्व जहाज समुद्र मे नष्ट हो चुका था। वह करार या सहमति गलती या भूल के कारण निरर्थक समझी जायगी। गलती दोनो पक्षो की होनी चाहिए और करार के लिए आवश्यक तथ्य के सबध में होनी चाहिए। केवल एक पक्ष की गलती सविदा को निरर्थक नही कर देगी और यही बात कानून विषयक गलती के सबंध मे है। अत यदि कोई व्यक्ति अपने हस्ताक्षर सहित दिये गए किसी लेख या कागज की शर्तो को नही समझता या उसके कानूनी प्रभाव को नही जानता, वह उसके परिणामो से बचने की माँग नही कर सकता। ऐसा ही फैसला एक ऐसे मामले में दिया गया, जिसमें कि एक व्यक्ति ने विक्रय-पत्र और रसीद लिख दी थी किंतु वह यह समझता था कि वह खाली फार्म के लिए हस्ताक्षर कर रहा है और उससे उसके हितो पर कोई प्रभाव नही पडेगा। किंतु यदि वह अनपढ हो तो स्थिति भिन्न होगी और उससे विक्रय-पत्र को कुछ और जैसे, प्रतिनिधान का अधिकार-पत्र, बता कर उस पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा गया हो तथा उसने उस पर विश्वास कर हस्ताक्षर कर दिये हो। अतः यदि किसी एक पक्ष की गलती ऐसी मूलभूत हो जिससे यह सिद्ध हो कि संविदा की बात से भिन्न बात दोनों पक्षो को अभीष्ट थी, तो वह उस सविदा को अव्यवहार्य या लागू न किया जा सकनेवाला बना सकती है।

एक न्यायसगत सहमति या करार के लिए तीसरी अपेक्षा यह है कि वह गैर-कानूनी नही होना चाहिए। कोई करार अपने 'विचार' या उद्देश्य के सबंध में गैर-कानूनी हो सकता है। तब ऐसे संविदा को न्यायालय लागू नही करेगा। कुछ उदाहरण ये है—**क ग** को शारीरिक क्षति पहुँचाने या उसे मारने के लिए सहमत होता है और **ख** बदले में उसे १ हजार रुपया देने के लिए अपनी सहमति प्रदान करता है। **क ख** को अपना वायदा पूरा करने के लिए बाध्य नही कर सकता, क्योकि उस वायदे का आधारभूत 'विचार' या उसके बदले की बात गैर-कानूनी है। **क** और **ख** दूसरो को धोखा देकर उनसे प्राप्त किए लाभ में साझीदार बनने के लिए सहमत होते है। यहाँ उद्देश्य गैर-कानूनी है। इसलिए **क** और **ख** लाभ के बँटवारे के लिए एक दूसरे पर दावा नही कर सकते। इन उदाहरणों से 'विचार' या उद्देश्य दंडनीय है। करार भी निम्न कारणो से गैर-

कानूनी हो सकता है—यदि वह अनैतिक हो, कानून द्वारा निषिद्ध हो या ऐसा हो कि यदि उसकी इजाजत दी जाय तो वह किसी कानून के उपबंधों का हनन करेगा, या सार्वजनिक नीति के विरुद्ध होगा। कुछ उदाहरण ये हैं—निकृष्ट उद्देश्यों के लिए किसी व्यक्ति को पैसा देने का करार—किसी सार्वजनिक पद को प्राप्त करने के लिए, आपस में फैसला न किये जा सकने वाले अपराध—जैसे हत्या, डाका, आदि के संबंध में फौजदारी मुकदमा न दायर करने के लिए, विवाह के लिए वर या वधू प्राप्त करने के लिए या पति पत्नी को एक दूसरे से अलग कराने के लिए। करार सार्वजनिक नीति के विरुद्ध तब होता है, जब कि उदाहरण के लिए वह नाबालिग को छोड कर किसी व्यक्ति को विवाह करने से या कोई न्यायसगत व्यवसाय अथवा व्यापार करने से रोकता है। किंतु कुछ परिस्थितियों में विरोध न्यायसंगत भी हो सकता है और कानून उसकी इजाजत देता है। उदाहरणार्थ, यदि एक व्यक्ति दूसरे को अपने व्यापार का नाम, साख और प्रतिष्ठा बेच देता है तो वह खरीदनेवाले को यह करार दे सकता है कि वह निर्दिष्ट स्थानीय सीमा के अन्तर्गत और बेचे गए व्यापार के साथ स्पर्द्धा करनेवाला वैसा कोई व्यापार स्वय नही करेगा। किसी व्यक्ति को अपने अधिकार की न्यायालय में स्थापना करने से पूर्णत. रोकने के लिए किया गया करार निरर्थक होता है। इसी प्रकार ऐसा करार, जिसमें कोई व्यक्ति सीमा या अवधि निर्धारित करनेवाले कानून में दिये गए समय से कम समय के व्यतीत होने पर दावा करने के अपने अधिकार को छोडने के लिए राजी हो तो वह करार निरर्थक है। किंतु पच फैसले की शर्त पर न्यायालय में दावा करने के अधिकार को छोडने का करार अनुचित नही है और उससे दोनो पक्ष बद्ध होंगे। निरर्थक करार का एक और उदाहरण है—दाँव लगाने का या जुए का करार। दाँव लगाना किसी अनिश्चित घटना के घटित या न घटित होने पर कुछ पैसा या पैसे की कीमत की कोई चीज देने के वायदे को कहते हैं। इसका उदाहरण है लाटरी। घुड़दौड भी दाँव है, किंतु घुड़दौड मे विजेता को ५०० रुपये या इससे ऊपर की रकम देने का वायदा इसका विशेष अपवाद है और वह कानूनी है।

साधारणतया सविदा का लिखित रूप मे होना आवश्यक नही है और न उसकी रजिस्ट्री आवश्यक है। वह जबानी हो सकता है। इस संबंध में हम बिना 'विचार' के संविदो का विवेचन करते समय कुछ उदाहरण देख चुके हैं। कुछ संविदो के संबध में कुछ विशेष कानून होते हैं। रेलवे अधिनियम (रेलवे एक्ट) के अंतर्गत रेलवे द्वारा ले जाये जानेवाले माल के सबध मे रेलवे कम्पनी के उत्तरदायित्व को सीमित करनेवाला संविदा लिखित व माल भेजनेवाले के हस्ताक्षर से युक्त होना चाहिए।

उक्त अपेक्षाओं के संबंध में पूरा उतरनेवाला करार संविदा कहलाता है

और उससे संबध रखनेवाले पक्षो का यह कर्त्तव्य होता है कि वे अपने वायदे या उत्तरदायित्व का पालन करे। यदि उनमे से कोई पक्ष अपने वायदे को पूरा नही करता तो दूसरा पक्ष अदालत मे उस पर दावा कर सकता है और उन प्रतिकारो की माँग कर सकता है, जिनका विवेचन अब किया जायगा।

संविदा के सबध में कौन दावा कर सकता है? इसका उत्तर है वही व्यक्ति जिसके साथ सविदा हुआ है। तीसरा व्यक्ति दावा नही कर सकता। उदाहरण के रूप मे **क ख** से जमीन खरीदता है और **ख** से इस बात के लिए सहमत होता है कि उसकी कीमत वह **ख** के साहूकार **ग** को दे देगा। यदि **क ग** को कीमत नही चुकाता तो **ग क** पर दावा नही कर सकता, केवल **ख** कर सकता है। इस नियम के कुछ अपवाद हैं। उनमे से एक है पारिवारिक व्यवस्था। एक हिन्दू परिवार के दो भाई आपस मे बँटवारे का करार करते है। उस करार मे एक भाई अपनी बहन को गुजारे की रकम देने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है। बहन को गुजारे के सबध में करार क्रियान्वित कराने का अधिकार है। एक विवाह के ठहराने के सबध मे वर के पिता **क** और वधू के पिता **ख** के बीच एक करार होता है जिसमे **क** वधू को एक भत्ता देने की स्वीकृति देता है। यहाँ वधू **क** पर भत्ते के लिए दावा कर सकती है।

संविदा-भंग के प्रतिकार

यदि सविदा के पक्षो मे से एक की मृत्यु हो जाय तो मृतक का प्रतिनिधि दावा कर सकता है या उसपर दावा किया जा सकता है। साधारणतः नियम यही है, किंतु यह उस सविदे मे नही लागू होता जिसमे काम करने का उत्तरदायित्व वायदा करनेवाले का अपना होता है—किसी अन्य व्यक्ति का नही। यदि कोई चित्रकार कीमत पर चित्र बनाने की जिम्मेदारी लेता है तो उसकी मृत्यु पर उसके पुत्र से चित्र बनाने को नही कहा जा सकता। किंतु यदि मृत्यु से पूर्व चित्रकार ने चित्र बना दिया हो तो पुत्र पर उसके देने के लिए दावा किया जा सकता है। पुत्र को स्वय चित्र बनाने के लिए बाध्य नही किया जा सकता।

सविदा के दोनो पक्षों में से प्रत्येक को उस सविदे के अंतर्गत होने वाले लाभ को किसी तीसरे व्यक्ति को सौंपने या हस्तांतरित करने का अधिकार है। अतः यदि संविदा के अनुसार **क** द्वारा **ख** को बेचे गए माल की कीमत वसूल करने का **क** को अधिकार है तो वह अपना वह अधिकार **ग** को दे सकता है। इससे यह बात निकलती है कि **क** वह लाभ प्राप्त करने के लिए सविदे के अंतर्गत अपना दायित्व पूरा कर चुका है या करने के लिए प्रस्तुत है। किंतु जहाँ व्यक्ति संविदे से प्राप्त होनेवाला अपना लाभ किसी को हस्तान्तरित कर सकता है वहाँ वह अपना दायित्व किसी और पर नही छोड़ सकता। ऐसा वह केवल संविदे के दूसरे पक्ष की सहमति से कर सकता है।

जब दो या अधिक व्यक्ति कुछ करने का वचन देते हैं तो वे 'संयुक्त वचनदाता' कहलाते हैं। जब कोई व्यक्ति दो या अधिक व्यक्तियों के प्रति कुछ करने के लिए राजी होता है तो वे व्यक्ति 'संयुक्त वचनग्रहीता' कहलाते हैं। सभी या किसी एक वचनदाता पर सम्पूर्ण दावे के संबंध में मुकदमा दायर किया जा सकता है। यदि पाँच व्यक्ति मिलकर रुपया लौटाने का बंधन-पत्र (बॉण्ड) भरते हैं तो वे सभी पूरी-पूरी राशि के लिए उत्तरदायी होते हैं। उनमें से किसी को भी उस समस्त राशि के लौटाने के लिए बाध्य किया जा सकता है। यदि वह राशि चुका देता है तो शेष चारों पर वह अनुपात से अपने ऋण की राशि भरने के लिए दावा कर सकता है। यदि कई संयुक्त वचनग्रहीता हैं तो वचनदाता पर उन सबको मिल कर दावा करना चाहिए। यदि उनमें से कुछ मिलते नहीं हैं तो उन्हें मुकदमे में प्रतिवादियों के रूप में शामिल करना चाहिए। यदि उनमें से कोई एक मर जाता है तो उसके स्थान पर मृतक के कानूनी प्रतिनिधि या उत्तराधिकारी को मुकदमे में शामिल होना चाहिए।

संविदा के संबंध में यह आवश्यक है कि उसे उसमें निर्दिष्ट समय, स्थान और ढंग के अनुसार पूरा किया जाय। यदि संविदा में इन बातों का निर्देश न हो तो ऐसी स्थिति के लिए कानून में कुछ नियम दिये गए हैं। जब संविदा इस बात का संकेत करता हो कि ऋणी व्यक्ति एक निश्चित दिन ऋणदाता द्वारा बिना कोई तकाजा या माँग किये अपना ऋण चुकायेगा, तो ऋणी व्यक्ति को चाहिए कि वह ऋण चुकाने के लिए ऋणदाता का स्वयं पता लगाये। किंतु यदि संविदा में ऋणी व्यक्ति ने ऋणदाता के बिना तकाजा किये ऋण चुकाने की बात नहीं स्वीकार की है, तो ऋणदाता का यह कर्त्तव्य है कि वह ऋणी व्यक्ति से समुचित स्थान और समय पर ऋण चुकाने के लिए कहे। यदि ऋणी व्यक्ति ने किसी निश्चित स्थान पर ऋण चुकाना स्वीकार किया है, तो ऋणदाता को ऋण की रकम वापस लेने के लिए उस स्थान पर जाना चाहिए। यदि ऋणी अपने ऋणदाता को उस समय कोई रकम चुकाता है जिस समय उसने उस ऋणदाता से कई ऋण ले रखे हों तो वह ऋणदाता से यह कह सकता है कि वह रकम अमुक ऋण के चुकाने के संबंध में है। यदि ऋणी व्यक्ति ऐसा कोई आदेश नहीं देता तो ऋणदाता उस रकम को चाहे जिस ऋण के चुकता होने के संबंध में—जिसमें कालावरुद्ध ऋण (ऐसे ऋण, जिनको वसूल करने की कानून द्वारा निर्धारित समयावधि निकल गई हो) भी शामिल है—समझ सकता है। यदि दोनों पक्षों में किसी ने भी यह तय न किया हो कि उस रकम से कौन-सा ऋण या उसका अंश चुकता समझा जायगा तो अदालत उस रकम का काल-क्रम से दिये ऋणों के चुकता करने में विनियोग करेगी—भले ही उसमें से कोई ऋण कालावरुद्ध क्यों न हो।

प्रत्येक व्यक्ति को अपना वायदा या संविदा पूरा करना चाहिए। किंतु कुछ

विशेष घटनाएं बाद में घटित हो जायं तो उसे वैसा करने की आवश्यकता नहीं। उदाहरण के लिए यदि सविदा से सबधित पक्षो ने संविदा मे कोई परिवर्तन किया है या उसे रद्द कर दिया है अथवा उसके स्थान पर नया सविदा कर लिया है तो वे पहले के सविदे को पूरा करने के लिए बाध्य नही है। जिस व्यक्ति के प्रति वायदा किया गया है यदि वह वायदा करनेवाले व्यक्ति के लिए वायदा पूरा करने की बात छोड दे, या माफ कर दे, तो वायदा करनेवाले व्यक्ति के लिए उसे पूरा करना आवश्यक नही। यदि किसी सविदे को पूरा करना अशक्य हो तो उसे पूरा करने की आवश्यकता नहीं। **क** और **ख** परस्पर विवाह करने के लिए राजी होते है। किंतु विवाह के लिए निश्चित किये गए समय से पूर्व **क** पागल हो जाता है। **ख** के लिए ऐसी स्थिति मे विवाह करना आवश्यक नही। अक्तूबर १९४१ मे **क** ने कलकत्ता मे यह स्वीकार किया कि वह दो महीने के भीतर जहाज द्वारा टोकियो माल भेजेगा। नवबर १९४१ मे भारत और जापान के बीच लडाई की घोषणा हो गई। यह निर्णय हुआ कि **क** सविदा पूरा करने के लिए बद्ध नही है। यदि कोई सविदा स्वभावत. ही शून्य हो तो उसे पूरा करने की कोई जिम्मेदारी नही। जैसे—जादू के जोर से कोई खजाना ढूढने का वायदा, एक घंटा मे १०० मील भागने का वायदा।

अब हम कुछ ऐसी परिस्थितियो की चर्चा करेगे जिनमे सविदे से सबधित कोई **पक्ष** सविदे को रद्द या समाप्त कर सकता है। एक उदाहरण ऊपर दिया जा चुका है, अर्थात् वह परिस्थिति, जिसमे व्यक्ति की स्वीकृति अनुचित ढंग से, जैसे, दबाव डालकर या छल से प्राप्त की गई हो। किसी घटना विशेष के होने पर भी वह संविदे को समाप्त कर सकता है। उदाहरण के रूप मे उस समय, जबकि दूसरे व्यक्ति ने सविदा पूरा करने से इन्कार कर दिया हो या उसके पूरी तरह पालन के लिए अपने को अयोग्य बना लिया हो। **क** नामक एक गायिका **ख** के थियेटर में प्रति सप्ताह दो रात १०० रुपये प्रति रात्रि के हिसाब से गायन के प्रदर्शन की स्वीकृति देती है। छठी रात को वह धृष्टता से अपनेको थियेटर से अनुपस्थित कर लेती है। ऐसी स्थिति मे **ख** सविदा समाप्त कर सकता है। दूसरे शब्दो में **ख** उसके बाद उसे गाना गाने की इजाजत देने से इन्कार कर सकता है। सविदा की समाप्ति का एक और कारण तब उपस्थित होता है जबकि सविदे का दूसरा पक्ष निश्चित तिथि के अनुसार अपना दायित्व पूरा नही करता। कुछ सविदो में, जैसे—भूमि-विक्रय के सविदे में—निश्चित तिथि पर सविदा पूरा न करने का यही परिणाम हो, यह आवश्यक नही। उदाहरणार्थ, यदि बेचनेवाला भूमि का हस्तातरण अथवा उसके सबध में विक्रय-पत्र लिखने का कार्य निश्चित तिथि पर नही कर सकता तो खरीदनेवाला संविदा रद्द नही कर सकेगा। वह तभी सविदा रद्द कर सकेगा, जबकि बेचनेवाला एक उचित

समय तक वायदा पूरा नहीं करता । हाँ, अगर संविदे में ऐसा स्पष्ट निर्देश हो, कि विक्रेता द्वारा निश्चित तिथि पर अपना संविदा पूरा न कर पाने पर खरीदनेवाले को उसके रद्द करने का अधिकार है, तो खरीदनेवाला उसे रद्द कर सकता है। वैसे वह विलम्ब के कारण होनेवाली क्षति के लिए मुआवजे का दावा कर सकता है। यदि कोई व्यक्ति संविदे से बद्ध न हो तो वह दूसरे पक्ष को इस बात की सूचना देकर संविदा समाप्त कर सकता है। यदि संविदा लिखित रूप में है, तो वह मुकदमा दायर कर न्यायालय से इस बात की घोषणा की माँग कर सकता है कि वह संविदा असंगत है और वह उससे बद्ध नहीं है। वह न्यायालय से इस बात की माँग कर सकता है कि न्यायालय दूसरे पक्ष को रद्द करने के लिए लिखित संविदा पेश करने का आदेश दे। यदि संविदे की रजिस्ट्री हुई है तो न्यायालय रद्द करने की सूचना रजिस्ट्रार के कार्यालय में भेज देगा ताकि वहाँ उस संविदे की कार्यालय-प्रतिलिपि पर यह बात अंकित कर दी जाय।

जब यह मालूम हो जाय कि संविदा निरर्थक है तो जिस किसी पक्ष ने उसके अंतर्गत दूसरे पक्ष से कोई लाभ प्राप्त किया हो वह उसे दूसरे पक्ष को लौटा देना चाहिए। **क ख** को अपनी पुत्री **ग** से विवाह करने का वायदा करने के विचारस्वरूप १००० रुपये देता है—हालाँकि **क** को स्वयं यह नहीं मालूम कि वायदे के समय **ग** जीवित नहीं है। यहाँ करार या सहमति शून्य है और **ख** का यह कर्तव्य है कि वह १००० रुपए लौटा दे। पैसा लौटाने का यह नियम उस पक्ष पर भी लागू होता है जो उस संविदे का अंत करता है जिससे वह बद्ध नहीं है। **क ख** को अपना घोड़ा बेचने की सहमति देता है और उससे ५०० रुपये पेशगी ले लेता है। **क** इस आधार पर कि उसकी सहमति गलती से छलपूर्वक ली गई थी, करार को रद्द कर देता है। वह '**ख**' को ५०० रुपये लौटाने के लिए बाध्य है। किन्तु यह ध्यान देने की बात है कि जिन व्यक्तियों ने किसी अवैध संविदे के अंतर्गत कोई पैसा दिया है या काम किया है, वे उसे वापस लेने पर उस काम का मेहनताना लेने का दावा नहीं कर सकते।

आमतौर पर एक व्यक्ति की दूसरे को कुछ पैसा देने की या उसके लिए कुछ काम करने की जिम्मेदारी इसलिए पैदा होती है, क्योंकि उसने उस संबंध में दूसरे व्यक्ति से वायदा किया हुआ होता है। किंतु कुछ स्थितियों में वायदा न किया हुआ होने पर भी वह वैसा करने के लिए बाध्य होता है, क्योंकि कानून इस बात को न्यायसंगत मानता है कि वह वैसा करे। यदि वह वैसा नहीं करता तो उस पर उसी प्रकार का मुकदमा चलाया जायगा जैसा कि उसके द्वारा संविदा पूरा न करने पर चलाया जाता। दूसरे शब्दों में, व्यक्ति कुछ करने के लिए बाध्य होता है चाहे उसने वैसा करने की कोई सहमति प्रदान न की हो। इसके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :

एक जमीन का पट्टेदार सरकार को वह लगान अदा करता है जो उसे पट्टा देने-वाले को देना चाहिए था और जिसे देने के लिए पट्टा देने वाला बाध्य था। पट्टेदार को वह लगान इसलिए देना पडा कि अन्यथा जमीन लगान की वसूली में नीलाम हो जाती और उसे पट्टे से हाथ धोना पडता। यहाँ पट्टा देनेवाला पट्टेदार को वह रकम देने के लिए बाध्य है। **क** को **ख** की कोई खोई हुई चीज मिलती है। वह उसे **ख** को लौटाने के लिए बाध्य है। **क** भूल से **ग** को पैसा देने के बजाय **ख** को दे देता है। **ख** का कर्त्तव्य है कि वह पैसा **क** को लौटा दे।

मान लीजिये **क ख** से कोई सविदा करता है और उसे पूरा नही करता। अब **ख** के पास इसका क्या प्रतिकार है? उसके पास दो प्रतिकार है। एक तो यह कि वह **क** पर हर्जाने का दावा करे और दूसरा यह कि वह सभवतया न्यायालय से **क** को अपना सविदा पूरा करने का आदेश देने की माँग करे।

हर्जाना या प्रतिक्षति नुकसान के मुआवजे को कहते है। नुकसान ऐसा होना चाहिए जो सविदा भग होने से स्वाभाविक रूप से और सामान्य स्थिति मे पैदा हुआ हो। इसका स्पष्टीकरण निम्न दृष्टान्त से किया जा सकता है। १ जनवरी १९४५ को **क ख** के साथ रुई की १०० गाँठे, २०० रुपये फी गाँठ के हिसाब से बेचने का सविदा करता है। संविदे मे गाँठो के दिये जाने की तारीख १ अप्रैल १९४५ है। गाँठो की कीमत माल के दिए जाने पर चुकती की जायगी। **क** माल देने के लिए तैयार है, लेकिन **ख** उसे लेने या उसकी कीमत अदा करने से इन्कार करता है। १ अप्रैल १९४५ को उस इलाके में रुई का भाव १५० रुपये फी गाँठ होता है। **क** बतौर हर्जाने के **ख** से ५ हजार रुपए वसूल कर सकता है, जो कि सविदे के भाव और सविदा भग किये जाने के दिन अर्थात् १ अप्रैल १९४५ को रुई के बाजार-भाव का अंतर है। यदि **क** उस दिन अपना वायदा पूरा नही कर पाता और **ख** कीमत चुकाने और माल लेने के लिए तैयार है तो यहा **क** द्वारा सविदा भंग किये जाने से **ख** को कोई हानि नही पहुंची। वास्तव मे उसे तो लाभ पहुंचता है, क्योकि वह माल को उससे कम कीमत पर खरीद सकता है। इसलिए वह **क** से कोई हर्जाना वसूल नही कर सकता। किंतु यदि १ अप्रैल १९४५ को रुई की कीमत चढ गई होती और २२० रुपए प्रति गाँठ होती तो **ख क** से २ हजार रुपये बतौर हर्जाने के वसूल कर सकता है। सविदा भंग होने की शिकायत करनेवाला पक्ष ऐसी हानि के संबंध में कोई मुआवजा नही प्राप्त कर सकता, जो संविदा भंग होने के स्वाभाविक और साधारण परिणाम के रूप में न होकर उसके परोक्ष और दूर के परिणाम में हो। ऊपर के उदाहरणों में **ख** यह दावा नही कर सकता कि **क** द्वारा सविदा भंग किये जाने से **ख** को अपना कारखाना बंद करना पडा और लोगो को वेतन देने और अन्य प्रकार की क्षति उठानी पडी। कोई पक्ष संविदा भंग होने के फलस्वरूप हुई अपनी प्रतिष्ठा

या भावना की क्षति के लिए किसी मुआवजे का दावा नही कर सकता। उदाहरणार्थ, यदि किसी व्यक्ति को अनुचित रूप से नौकरी से हटा दिया जाता है तो वह इस बात की शिकायत नही कर सकता कि उसकी प्रतिष्ठा को आघात पहुँचा है। इस नियम के दो अपवाद हैं—पहला, विवाह के वायदे के भग का और दूसरा, बैंकर द्वारा किसी व्यापारी के चैक को उस समय लौटा देने का (न भुनाने का) जबकि उसके पास उक्त व्यापारी का खाते में पैसा जमा हो। इन दो स्थितियो मे भावना की ठेस और प्रतिष्ठा की हानि के लिए हर्जाना दिया जा सकता है। किंतु ये तो अपवाद है। साधारण नियम तो यह है कि सविदा भग होने की अवस्था में हर्जाना वास्तविक हानि के बराबर दिया जाना चाहिए।

हर्जाने का दावा करनेवाले पक्ष द्वारा सविदा के भग से होनेवाली हानि को कम करने का सभव प्रयत्न किया जा चुका होना चाहिए। **क** नामक एक राज ने **ख** के मकान की मरम्मत का ठेका लिया। उसने मकान की मरम्मत की, किंतु छत मे एक नुक्स छोड दिया। **ख** का यह कर्त्तव्य है कि वह नुक्स का पता चलने पर **क** से या और किसी राज से उसे दूर करने के लिए कहे। यदि वह किसी से नही कहता है और वर्षा के कारण उसे हानि पहुँचती है तो सभव है कि **ख** उस हानि के सबध मे मुआवजे का दावा न कर सके।

यदि सविदे मे दोनो पक्षो ने सविदा भग करने पर एक के द्वारा दूसरे को दी जाने वाली राशि स्वयं निश्चित कर रखी हो, तो न्यायालय उस राशि को देने का आदेश देगा। किंतु हो सकता है कि न्यायालय उसे अनुचित और ज्यादा समझे तथा एक उचित मुआवजा देने का आदेश दे। **क ख** से उधार लिये ५०० रुपये के सबध मे यह वायदा करता है कि यदि वह उन रुपयो को एक निश्चित तिथि को नही लौटा सका तो १००० रुपए भरेगा। ऐसी स्थिति में न्यायालय **ख** को १००० रुपए न दिलवाकर केवल ५०० रुपए और ब्याज दिलवायगा। किसी कर्त्तव्य के पालन के लिए सरकार के पक्ष में भरे हुए किसी जमाननामा को कोई व्यक्ति भग करता है तो वह उसमें निर्दिष्ट पूरी राशि भरने के लिए बाध्य होता है। यह नियम सरकार के साथ किये गए उस सविदे में लागू नही होता जिसमे किसी सार्वजनिक कर्त्तव्यपालन की बात न हो।

कुछ स्थितियो में संविदे से सबंधित पक्ष खाली हर्जाने का ही दावा करने के स्थान पर सविदे को पूरा कराने का दावा कर सकता है। उस समय यह कहा जाता है कि वह सविदे के स्पष्ट पूरा करने का दावा कर रहा है। उदाहरण के लिए, यदि वायदा मकान या जमीन के बेचने का है, तो खरीदार यह चाहेगा कि बेचनेवाले को विक्रय-पत्र लिखने और जमीन या मकान उसे सौपने का आदेश दिया जाय। वह वायदा पूरा न करने से हुई हानि के बदले मुआवजा लेकर संतुष्ट नही हो जायगा। किंतु यदि विक्रेता विक्रय-पत्र न लिखे और संपत्ति का अधिकार

खरीदनेवाले को न दे तो क्या हो ? अदालत ऐसी हालत मे अपने को निरुपाय नहीं समझेगी। न्यायाधीश विक्रय-पत्र स्वय भर देगा और उसकी रजिस्ट्री करा देगा। कानून मे इस विक्रय-पत्र का वही महत्व होगा जो विक्रेता के हस्ताक्षर-युक्त विक्रय-पत्र का होता। न्यायालय का अमीन विक्रेता को उस जायदाद से निकाल बाहर करेगा और उसका कब्जा खरीदनेवाले को दे देगा। इसके अतिरिक्त न्यायालय को यह भी अधिकार है कि वह उसके आदेश की अवज्ञा करनेवाले और वायदे से फिरे हुए विक्रेता को जेल मे बद कर दे और उसकी जायदाद कुर्क कर ले।

हर्जाना भरने और सविदे के विशिष्ट पालन के रूप मे दोनो प्रतिकारो में एक महत्त्वपूर्ण अतर है। सविदा भग होने की दशा मे पीड़ित व्यक्ति को सविदा भग करने का अधिकार प्राप्त होता है। हर्जाने की रकम भले ही छोटी या बड़ी हो, किंतु वह कुछ-न-कुछ हर्जाना वसूल कर सकता है। जहाँ तक सविदे की निश्चित पूर्ति का सबध है वह सदैव उसकी माँग नहीं कर सकता। सविदे की निश्चित पूर्ति का प्रतिकार उसे तभी प्राप्त हो सकता है जब न्यायालय उसे सगत समझे। यह न्यायालय के अपने विवेक की बात है। इसका यह अर्थ नहीं कि इस प्रतिकार के प्रदान करने या न करने के सबध मे न्यायालय को स्वच्छद अधिकार है। न्यायालय का काम है कि वह कुछ सुनिश्चित नियमो के अनुसार चले। ये नियम निश्चित प्रतिकार अधिनियम (स्पेसिफिक रिलीफ एक्ट—१८७७ का प्रथम) के अध्याय २, धारा १२ से ३० मे दिये गए हैं, जिनमे से कुछ का उल्लेख यहाँ किया जाता है।

आमतौर पर माल बेचने के सविदे को निश्चित रूप से लागू नहीं किया जाता। उसके लिए उचित प्रतिकार हर्जाना है। इसका कारण यह है कि बाजार मे वैसा और माल खरीदा जा सकता है। लेकिन जमीन या माल बेचने के सविदे की निश्चित पूर्ति करायी जा सकती है। यदि सविदा किसी दुर्लभ वस्तु, जैसे किसी चित्र या रत्न, के देने से सबधित है तो न्यायालय उसके दिये जाने का आदेश दे सकता है। किंतु न्यायालय किसी चित्र बनाने के वायदे को पूरा करने के लिए या किसी ऐसे कार्य को करने के लिए, जिसमे व्यक्ति की निजी इच्छा या कुशलता का सबध हो, आदेश नहीं देगा। न्यायालय वायदे को तब भी क्रियान्वित कराने से इन्कार कर देगा जब यह पता चले कि क्रियान्वित कराने की माँग करनेवाले व्यक्ति ने वह वायदा छलपूर्वक या किसी अनुचित आचरण से कराया था। उदाहरणार्थ, यदि उसने वह वायदा किसी तथ्य को छिपाकर या किसी अनुचित साधन के प्रयोग द्वारा प्राप्त किया था तो वह न्यायालय से सहायता की आशा नहीं कर सकता। न्याय के लिए जिन बातो पर विचार किया जाता है वे इन उदाहरणो से और स्पष्ट हो जाती हैं। **क ख** को एक जमीन ५००० रुपये में बेचने के लिए रजामन्द होता है। लेकिन वह उस जमीन को **ग** के हाथ

६००० रुपये में बेच देता है और उसका कब्जा **ग** को दे देता है। **ख क** पर हर्जाने का दावा कर सकता है। लेकिन क्या वह विक्रय-पत्र के लिए और **ग** से जमीन लेने के लिए दावा कर सकता है? हाँ, यदि **ग** को **ख** के साथ किये गए वायदे की सूचना होती या उसका यह कर्तव्य होता कि वह (**ग**) सूचना का पता लगाता, तो वह दावा कर सकता है, अन्यथा नहीं। मान लीजिए **क** ने जमीन **ग** को बेची नहीं, बल्कि उसे उपहार के रूप में दे दी। ऐसी स्थिति में भले ही **ग** को **क** द्वारा **ख** के प्रति किये गए वायदे की सूचना हो या न हो, **ख ग** से जमीन ले सकता है। ऐसा इसलिए है कि **ग** ने जमीन के लिए कोई पैसा नहीं खर्च किया। मतलब यह कि कानून सद्भावना के साथ खरीदनेवाले व्यक्ति को संरक्षण प्रदान करता है। संविदा भंग करने की धमकी देनेवाले के विरुद्ध एक अन्य उपचार है—उसे वैसा करने से रोकने के लिए न्यायालय से निषेधाज्ञा जारी करने की माँग। यदि वह आज्ञा का उल्लंघन करता है तो उसे जेल में बंद किया जा सकता है और आज्ञा के पालन न करने तक उसकी संपत्ति कुर्क की जा सकती है।

: १० :

विशेष संविदा

पिछले अध्याय मे सविदो पर साधारणतः लागू होनेवाले अधिक महत्त्वपूर्ण नियमो का उल्लेख किया जा चुका है, किंतु कुछ विशेष प्रकार के संविदो के बारे में यह आवश्यक है कि और आगे चर्चा की जाय तथा यह स्पष्ट किया जाय कि किस प्रकार कुछ विशेष नियम उक्त नियमो का स्थान ले लेते है या उनमें परिवर्तन करते है । अब हम सविदो और उनसे उत्पन्न होनेवाले इन नियमो की चर्चा करेगे—क्षति-निवारण, गारटी, निक्षेप, एजेन्सी, साझा, माल का विक्रय, स्वामी और सेवक वाहक और बीमा। प्रथम चार के विषय मे नियम भारतीय सविदा अधिनियम (इण्डियन कॉंट्रेक्ट एक्ट) के अतर्गत दिये गए है । कुछ अन्य के सबध में विशेष कानून बने हुए है ।

क्षति-निवारण (तारण)

यदि **क** **ख** को अपने या अन्य व्यक्ति के आचरण से होनेवाली क्षति से बचाने का वचन देता है तो यह एक क्षति-निवारण सविदा होता हैं । **क** और **ख** एक दूसरे के विरोधी मालिक के रूप मे रेलवे कम्पनी पर किसी माल के लिए दावा करते हैं । **क** इस बात के लिए राजी होकर, कि यदि **ख** असली मालिक निकल आए तो वह उससे होने वाली कपनी की हानि की पूर्ति करेगा, कपनी से वह माल लेता हैं । अब यदि सचमुच **ख** असली मालिक निकल आए तो **क** कपनी को माल की कीमत और कपनी द्वारा **ख** के दावे को लडने मे किया गया खर्च भरने का उत्तरदायी होगा । यह सविदा ऐसा हो सकता हैं, जो पूर्णतः स्पष्ट हो, जैसा कि उक्त उदाहरण मे दिया गया है । वह ऐसा भी हो सकता हैं कि जो आचरण द्वारा अनुमानित हो । **क** एक नीलामकर्त्ता **ख** के पास अपनी कोई चीज बेचने के लिए भेजता हैं । **ख** उसे बेच देता हैं । **ग** उस चीज के बारे में **ख** पर दावा करता है और उससे उस चीज को बेचने के बदले मे हर्जाना वसूल करता है । यहाँ **ख** को उसके विक्रय कार्य से होनेवाली क्षति से बचाने के लिए **क** का वायदा उसके आचरण से (कि उसने **ख** से अपनी चीज बेचने के लिए कहा था) अनुमानित हैं ।

गारंटी

जब **क** इस बात के लिए राजी होता है कि वह **ख** के **ग** से किये गए वायदे को या **ग** के प्रति **ख** के उत्तरदायित्व को **ख** द्वारा पूरा न करने की अवस्था में स्वयं पूरा करेगा तो **क** और **ग** के बीच गारंटी (प्रत्याभूनि) का संविदा होता है । **क** **ग** से **ख** को १००

रुपये ६ प्रतिशत ब्याज पर उधार देने के लिए कहता है और यह वायदा करता है **ख** मुख्य ऋणी है और कि यदि **ख** रुपये न चुका सका तो वह स्वयं चुका देगा। यहाँ **क** गारंटीदाता है, **ग** ऋणदाता है। ऋणदाता, ऋणी द्वारा ऋण न चुकाये जाने पर तुरंत गारंटीदाता पर दावा कर सकता है। उसके लिए न्यायालय में जाकर ऋणी से ऋण वसूल करने की और अधिक कोशिशें करना आवश्यक नहीं है। कोई व्यक्ति किसी अन्य का एक बार गारंटीदाता बन जाने पर गारंटी का संविदा खंडित नहीं कर सकता। किंतु यदि वह कई सौदों के एक क्रम के लिए गारंटीदाता बनने की सहमति दे देता है तो वह ऋणदाता को नोटिस देकर भविष्य के सौदों की जिम्मेदारी छोड़ सकता है। यदि कर्जदाता कर्जदार से ऐसा समझौता करता है कि वह उस कर्ज को माफ या खत्म कर देगा और उसके लिए वह संविदे की शर्तें बदल देगा या उसके स्थान पर दूसरा संविदा लिख देगा तो उसे गारंटीदाता के विरुद्ध कार्यवाही करने का अधिकार नहीं रहता। किंतु खाली कर्जदार पर दावा न करने के कारण गारंटीदाता के प्रति उसके अधिकार की समाप्ति नहीं होती। कर्जदाता को कर्ज चुकाने के बाद गारंटीदाता स्वयं कर्जदाता की स्थिति में आ जाता है और वह कर्जदार से पैसा वसूल कर सकता है यथा ऋण संबंधी जो कोई सुरक्षा कर्जदाता को प्राप्त थी उसे वह अपने लिए लागू करा सकता है।

निक्षेप

जब **क** किसी प्रयोजन के लिए **ख** को कोई चीज इस आधार पर देता है कि प्रयोजन के पूरा होने पर **ख** उसे **क** को लौटा देगा या **क** के आदेशानुसार किसीको दे देगा तो वहाँ निक्षेप-संविदा होता है। **क** अपनी मोटरकार **ख** को इस्तेमाल करने के लिए देता है। यह निक्षेप (बेलमेण्ट) का संविदा है। यहाँ **क** निक्षेपक तथा **ख** निक्षेपग्रहीता है। यदि **ख** इस्तेमाल के बदले कुछ पैसा देता है तो यह निक्षेप का वह रूप होता है जिसे भाड़ा या किराया कहते हैं। निक्षेप का एक दूसरा रूप गिरवी होता है, जैसे, तब जब **क** **ख** से लिये गए कर्ज के बदले सुरक्षा के रूप में अपनी मोटरकार गिरवी रखता है। निक्षेपग्रहीता को चाहिए कि वह संविदे की शर्तों के अनुसार चीज का इस्तेमाल करे और बाद में उसे निक्षेपक को या उसके आदेशानुसार किसी अन्य को लौटा दे। यदि निक्षेपग्रहीता को निर्मूल्य उसके उपयोग की स्वीकृति दी गई है तो निक्षेपकर्त्ता किसी भी समय उसे वापस ले सकता है। इसके अतिरिक्त, दोनों पक्षों में से किसी की भी मृत्यु होने पर निक्षेप समाप्त हो जायगा। यदि निक्षेपग्रहीता के कब्जे में कोई तीसरा व्यक्ति बाधा पहुँचाये तो उसे दावे में वही अधिकार प्राप्त होते हैं जो उसे उसका स्वामी होने पर प्राप्त होते। निक्षेपक भी तीसरे व्यक्ति पर उसके कब्जे के बारे में दावा कर सकता है। निक्षेपक को चाहिए कि निक्षेप की गई वस्तु में यदि कोई

दोष उसे ज्ञात हो तो वह उसे निक्षेपग्रहीता को बतला दे। यदि वह नहीं बताता तो उस दोष से निक्षेपग्रहीता को होनेवाली हानि के लिए वह उत्तरदायी होगा। **क** अपना कुटिल घोड़ा **ख** को सवारी के लिए देता है। **क** जानता है कि वह घोड़ा कुटिल है। घोड़ा **ख** को गिरा देता है जिससे उसे चोट लगती है। **क ख** को उसकी चोट के बदले मआवजा देने का जिम्मेदार है। यदि **क** ने **ख** को किराए पर घोड़ा दिया था तो भले ही उसका दोष उसे ज्ञात हो, या न हो वह उसके लिए उत्तरदायी होगा। निक्षेपग्रहीता को यह अधिकार है कि यदि उसने सविदा के अनुसार निक्षेप पर कोई कार्य कराया हो तो जबतक उसे उसका मूल्य न मिल जाय वह निक्षिप्त (दी गयी वस्तु) को रोक रखे। **क** दर्जी को कोट बनाने के लिए कपड़ा देता है। दर्जी, जबतक कि उसे सिलाई के पैसे न दिये जायं, कोट को अपने पास रोक सकता है। इस अधिकार को 'पूर्वप्राप्ति अधिकार' कहते हैं। किंतु यदि दर्जी ने प्रारंभ में ही कोट तैयार कर देने के एक महीने बाद सिलाई लेना स्वीकार कर लिया हो तो वह इस अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता। महाजन या साहूकार, आढ़तिया, एटर्नी (किसी व्यक्ति का कानूनी प्रतिनिधित्व करनेवाला व्यक्ति) और तटाध्यक्ष को भी निक्षिप्त माल को हिसाब की आय बाकी चुकता होने तक सिक्योरिटी (प्रतिभूति) के रूप में रोक रखने का अधिकार है। निक्षेपग्रहीता को चाहिए कि वह निक्षिप्त चीज की उसी भांति सावधानी से देखभाल करे जैसी एक साधारण दूरदर्शिता का व्यक्ति अपनी चीज की करता है। यदि वह ऐसी सावधानी बरतता है तो वह नुकसान के लिए जिम्मेदार नहीं होता। यदि ऐसी सावधानी के बावजूद उसके घर से वह चीज चोरी चली जाती है तो वह जिम्मेदार नहीं होता। किंतु वह सविदे द्वारा इस प्रकार से होनेवाली हानि की जिम्मेदारी भी अपने ऊपर ले सकता है। उसे निक्षिप्त माल को अपने माल के साथ नहीं मिलाना चाहिए।

आधान

आधिग्राही (अपने यहाँ माल रखनेवाला) माल को तबतक रोक सकता है जबतक कि उसका कर्ज (अर्थात् मूलधन और कर्ज के चुकता होने तक का ब्याज) अदा न हो जाय। यदि आधिकर्ता (माल रखने वाला) नियत तिथि (डेट) पर पैसा नहीं चुकाता तो आधिग्राही आधिकर्त्ता पर दावा कर सकता है या उचित नोटिस देने के बाद माल बेच सकता है। माल बेचने से जो पैसा आये उसमें से वह अपना कर्ज चुकता कर सकता है। यदि फिर भी कुछ कर्ज बच रहे तो उसके लिए यह दावा कर सकता है। यदि कर्ज चुकता करने के बाद पैसा बच रहे तो वह गिरवी रखनेवाले व्यक्ति को दे देना चाहिए। माल गिरवी रखनेवाला व्यक्ति अपनी तरफ निकलनेवाला पैसा चुका कर माल वापस ले सकता है। यदि पैसा चुकाने की कोई तारीख निश्चित की गई है और वह उस निश्चित तारीख तक पैसा नहीं चुका सकता तो वह उस

माल के बेचे जाने से पूर्व किसी भी तारीख को पैसा चुकाकर माल वापस ले सकता है, किंतु उस स्थिति में उसे अपनी चूक के कारण हुए किसी खर्च को और चुकाना पड़ेगा।

एजेंसी

यदि **क ख** को अपनी ओर से काम करने के लिए या अन्य व्यक्तियों के साथ व्यवहार में अपना प्रतिनिधान करने के लिए नियुक्त करता है तो एजेंसी (अभिकरण) संविदा होता है। **क** प्रमुख (व्यक्ति) होता है और **ख** उसका एजेंट (अभिकर्ता)। यह संविदा, जैसाकि प्रायः होता है, स्पष्ट शब्दों द्वारा हो सकता है। यह आचरण द्वारा अनुमानित भी हो सकता है। उदाहरण के तौर पर **क** और **ख** भाई-भाई हैं। **क** बंबई में रहता है, और **ख** पूना में। **ख क** की जानकारी **म क** की पूना स्थित जमीन को पट्टे पर उठा देता है, किराया वसूल करता है, और उसे **क** को भेज देता है। यहाँ **ख क** का एजेंट है, यद्यपि स्पष्ट शब्दों में उसे उस रूप में नियुक्त नहीं किया गया। एजेंसी-संविदा लिखित रूप में हो यह आवश्यक नहीं, वह मौखिक हो सकता है। जब वह लिखित रूप में होता है तब वह अटर्नी या प्रतिनिधान के अधिकार के रूप में होता है। कई बार कानून लिखित पत्र की अपेक्षा करता है, जैसे किसी व्यक्ति द्वारा अपनी ओर से न्यायालय में उपस्थित होने के लिए एडवोकेट की नियुक्ति के लिए। एडवोकेट की नियुक्ति उस व्यक्ति के हस्ताक्षरयुक्त वकालतनामे से अथवा एडवोकेट के हस्ताक्षरयुक्त उपस्थिति के ज्ञापन-पत्र द्वारा ही हो सकती है। इसी प्रकार न्यायालय में किसी व्यक्ति का प्रतिनिधान करनेवाले एजेंट के लिए यह आवश्यक है कि वह वैसा करने के लिए दिये गए अपने अधिकार का सूचक प्रतिनिधान अधिकार-पत्र (पावर ऑव एटर्नी) उपस्थित करे। एजेंट को वह कार्य करने का अधिकार है जिसे करने के लिए स्पष्ट रूप से उसे नियुक्त किया गया हो। इसके अतिरिक्त उस कार्य को करने के लिए आवश्यक प्रत्येक कानूनी कार्य भी वह कर सकता है। यदि उसे कोई व्यापार करने के लिए कहा गया है तो वह उस व्यापार के लिए, आवश्यक या आम किये जानेवाले कार्य कर सकता है, जैसे खरीद, फरोख्त, उधार लेना या नौकर रखना। आकस्मिक परिस्थिति में वह 'प्रमुख' (व्यक्ति) को हानि से बचाने के लिए और भी कार्य कर सकता है, भले ही वे प्रमुख के ध्यान में नहीं थे। किंतु यदि उसके पास प्रमुख के आदेश ग्रहण करने का समय हो तो उसे वैसा करना चाहिए।

एजेंट का अधिकार इन स्थितियों में समाप्त हो जाता है—जब प्रमुख उसे वापस ले लेता है, एजेंट अपनी एजेंसी छोड़ देता है, या एजेंसी कार्य समाप्त हो जाता है, या प्रमुख या एजेंट मर जाता है या पागल हो जाता है, या प्रमुख न्यायालय द्वारा दिवालिया या कर्ज उतारने में असमर्थ घोषित कर दिया जाता है।

प्रमुख अपने एजेंट की सत्ता का किसी समय भी अंत कर सकता है या उसे वापस ले सकता है। किंतु यदि एजेंसी विषयक संपत्ति में एजेंट का हित निहित हो तो वह ऐसा नहीं कर सकता। यदि एजेंट को किसी निश्चित अवधि के लिए नियुक्त किया गया है और 'प्रमुख' अवधि से पूर्व एजेंसी वापस ले लेता है या एजेंट समय से पूर्व उसे छोड़ देता है तो इस स्थिति में उन्हें एक-दूसरे को मुआवजा देना पड़ेगा।

एजेंट को अपना पारिश्रमिक और उसके द्वारा प्रमुख के हिसाब में एजेंसी कार्य करते समय पेशगी दिये गए या खर्च किये गए पैसे वसूल करने का अधिकार है। किंतु यदि वह कदाचार या दुर्व्यवस्था का दोषी रहा है तो दुर्व्यवस्थित व्यापार के संबंध में पारिश्रमिक प्राप्त करने का उसे कोई अधिकार नहीं है। यदि, जैसा कि पहले कहा गया है, एजेंट के कुछ पैसे निकलते हों या बकाया हो तो एजेंसी के काम में प्रमुख के हिसाब में आये हुए पैसों में से वह उतने पैसे रोक सकता है और वह अन्य सामान, कागजात और दूसरी संपत्ति भी तबतक रोक रख सकता है जबतक कि उसके पैसे न चुका दिये जायं। एजेंट के कुछ कर्त्तव्य ये हैं—समुचित परिश्रम के साथ और ऐसी योग्यता के साथ जो उसकी स्थिति के व्यक्ति प्रायः रखते हैं, व्यापार का संचालन करना; अपने प्रमुख के आदेशानुसार उसके व्यापार का संचालन करना, उक्त आदेश के अभाव में उस व्यापार के स्थान में उस व्यापार संबंधी चलन के अनुसार उसका संचालन करना, अपने प्रमुख को ठीक हिसाब देना, प्रमुख के हिसाब में आई हुई रकम में से अपनी निकलती हुई रकम काटकर बाकी रकम प्रमुख को देना; और एजेंट के रूप में उसके द्वारा अर्जित किसी गुप्त लाभ का अपने प्रमुख को हिसाब देना।

साझा

जब दो या अधिक व्यक्ति किसी व्यापार—जिसमें वे सब या उनमें से कुछ सबकी ओर से चलाते हैं—के लाभ में हिस्सा बँटाने के लिए सहमत हों तो वहाँ साझे का संविदा होता है। इस विषय में नियमों का निर्देश १९३२ के साझा अधिनियम (पार्टनरशिप एक्ट) में किया गया है।

साझीदार अपना व्यापार प्रायः किसी फर्म के नाम से चलाते हैं जैसे **क** एण्ड कम्पनी या **क** एण्ड सन्स। वे अपनी फर्म के लिए कोई भी नाम इस्तेमाल कर सकते हैं, किन्तु राज्य सरकार की लिखित आदेशगत स्वीकृति के बिना वे ऐसा कोई नाम नहीं रख सकते जो राज्य द्वारा फर्म को प्रदत्त स्वीकृति या संरक्षण का संकेत करे।

साझे का संविदा मौखिक या लिखित पत्र के रूप में हो सकता है। यदि यह लिखित पत्र द्वारा हो तो उस पत्र पर मुद्राक लगना आवश्यक है।

साझीदार यदि चाहें तो फर्मों के रजिस्ट्रार के दफ्तर में अपने फर्म की रजिस्टरी करा सकते हैं। ऐसा वे अपने या अपने अधिकृत एजेंटों के

हस्ताक्षरयुक्त लिखित कथन भेजकर कर सकते हैं। इस कथन में ये बात होनी है—फर्म का नाम, व्यापार का मुख्य स्थान और उसकी शाखाएँ, वह तारीख जिसको प्रत्येक साझीदार उस फर्म मे सम्मिलित हुआ, साझीदारों के नाम और पते, और फर्म की अवधि। वे इन बातों के सबध में भी रजिस्ट्रार को सूचना दे सकते हैं, जैसे—व्यापार के स्थान मे परिवर्तन, फर्म के नाम या साझीदारों के पदों मे परिवर्तन, और फर्म के भग या कार्य-स्थगन की बात। यद्यपि फर्म की रजिस्टरी कराना इच्छा पर निर्भर है फिर भी फर्म को रजिस्टरी न कराने में कई हानियाँ है। उदाहरण के लिए, बिना रजिस्टरी की फर्म किसी तीसरे व्यक्ति के साथ किये गए अपने सविदे को लागू कराने के लिए अदालत मे उस पर मकदमा नही कर सकती, किंतु यदि दावा छोटा-मोटा हो और उसका मूल्य १०० रुपये से अधिक न हो तो वह ऐसा कर सकती है।

सविदा मे विपरीत निर्देश के अभाव में प्रत्येक साझीदार का साझे के व्यापार-सचालन मे भाग लेने का, फर्म की किताबों का निरीक्षण करने व उनकी नकल करने का, मुनाफे मे बराबर हिस्सा बँटाने का, नुकसान को बराबर उठाने का और फर्म की ओर से फर्म के व्यापार का साधारण और समुचित सचालन करते समय अपनी जेब से दिये गए पैसे को (६ प्रतिशत ब्याज के साथ) वापस लेने का, अधिकार है। साझे के कार्य-सचालन के लिए उसे पारिश्रमिक लेने का तबतक कोई अधिकार नही जबतक कि सब साझीदार उसके लिए सहमत न हों। यदि वह साझीदार के रूप में अपना हिस्सा किसी को दे देता है तो हिस्सा प्राप्त करनेवाले व्यक्ति को फर्म के चालू रहने के दौरान में उसके सचालन या व्यापार-कार्य मे हिस्सा लेने का और उसकी हिसाब की किताबें देखने का अधिकार नही है—वह केवल साझीदारों द्वारा घोषित लाभ में उस व्यक्ति का हिस्सा ले सकता है। यदि फर्म भग हो जाय और यदि अपना हिस्सा दूसरे के नाम करनेवाला व्यक्ति उसका साझीदार न रहे, तो जिसके नाम हिस्सा किया गया है वह व्यक्ति, उस व्यक्ति के हिस्से की सम्पत्ति का दावा कर सकता है और फर्म भग होने की तारीख से उसका हिसाब-किताब देख सकता है।

साझीदारों का यह कर्त्तव्य है कि फर्म का काम सबके अधिकाधिक सामान्य हित की दृष्टि से करे, एक दूसरे के प्रति सच्चे और ईमानदार रहे और किसी भी साझीदार या उसके कानूनी प्रतिनिधि को फर्म से सबधित हर चीज के बारे में पूरी-पूरी जानकारी दें।

फर्म और उसके सभी साझीदार अलग-अलग और संयुक्त रूप से, उनके और किसी तीसरे व्यक्ति के बीच किये संविदों के लिए और किसी भी साझीदार द्वारा फर्म के सामान्य कार्य के दौरान में किये गए किसी भी काम के लिए, उत्तरदायी है। दूसरे शब्दों में उनमें से किसी भी एक या अधिक या सभी साझीदारों

को एकत्रित रूप में किसी कर्ज को अदा करने के लिए बाध्य किया जा सकता है।

यदि साझे के सविदे में किसी अवधि का निर्देश नहीं है तो कोई भी साझीदार अन्य साझीदारों को लिखित नोटिस देकर किसी भी समय फर्म से अलग हो सकता है। यदि संविदे में फर्म की अवधि निश्चित है तो साझीदार अन्य सभी साझीदारों की रजामंदी से ही या साझीदारों की स्पष्ट सहमति के अनुसार ही अलग हो सकता है। अलग होनेवाला साझीदार अपने अलग होने से पूर्व फर्म द्वारा लिये गए कर्ज के लिए तीसरे व्यक्तियों के प्रति उत्तरदायी होता है। वह अलग होने के बाद भी फर्म के कर्ज के लिए तबतक उत्तरदायी रहता है जबतक कि वह या नई फर्म का कोई साझीदार उसके अलग होने के संबंध में सार्वजनिक सूचना न निकाल दे अर्थात् वह सूचना जो सरकारी गजट में और उस फर्म के प्रधान व्यापार-क्षेत्र के जिले में प्रचलित देशी भाषा के कम-से-कम एक अखबार में प्रकाशित हो। यदि फर्म रजिस्टर्ड है तो सूचना फर्म-रजिस्ट्रार को भी जानी चाहिए। दिवालियापन की स्थिति में साझीदार साझीदार नहीं रहता।

सभी साझीदारों के मध्य साझे की समाप्ति पर फर्म भंग हो जाती है। यह तब संभव है जब कि सभी साझीदार फर्म का काम बंद करने के लिए और उसे खत्म करने के लिए राजी हो जाय। कुछ अन्य स्थितियों में भी यह संभव है—जैसे उस समय जब कि एक को छोड़कर अन्य सब साझीदार दिवालिया हो जायं। कोई विपरीत संविदा न होने की अवस्था में प्रत्येक साझा किसी भी साझीदार की मृत्यु या उसके दिवालिया होने पर भंग हो जाता है। किसी भी साझीदार द्वारा न्यायालय में आवेदन करने पर न्यायालय विशिष्ट कारणों पर फर्म भंग कर सकता है। कारणों के उदाहरण हैं—किसी साझीदार का उन्मादयुक्त या पागल अथवा स्थायी रूप से क्षमताहीन होना, साझीदार का कुप्रबन्ध जिससे फर्म के व्यापार-हितों को हानि पहुँचती हो, साझीदार द्वारा अपने हित का हस्तान्तरण या उसके द्वारा अपने निजी कर्ज की वसूली में अपने साझे के हित के विरुद्ध कार्यवाही करने देना, फर्म का घाटे में चलना। इन कारणों के अतिरिक्त न्यायालय जब उचित और संगत समझे वह फर्म को भंग कर सकता है। जब सब साझीदारों की सहमति से, या न्यायालय द्वारा फर्म भंग कर दी जाती है, तब फर्म की लेनदारी और देनदारी का हिसाब लिया जाना चाहिए। लेनदारी और मालमत्ते में से फर्म के नाम चढ़े हुए कर्ज उतारने चाहिएं तथा बाकी का भाग साझीदारों और उनके प्रतिनिधियों के मध्य उसी अनुपात में बाट देना चाहिए जिस अनुपात से लाभांश पाने के अधिकारी हों। मालमत्ते में से कर्ज चुकाने में निम्न क्रम का का ध्यान रखना चाहिए—(१) तीसरे व्यक्तियों के प्रति फर्म के कर्ज, (२) प्रत्येक साझीदार द्वारा फर्म को अग्रिम दिया गया पैसा, (३) मूलधन में हर साझीदार का हिस्सा। यदि घाटा हो तो वह पहले मुनाफे में से चुकाना चाहिए

फिर मूलधन में से और अंत में यदि आवश्यक हो तो पार्श्वीदारों द्वारा व्यक्तिगत रूप से या उनके निजी मालमत्ते में से उसी अनुपात में जिस अनुपात से वे लाभांश पाने के अधिकारी थे।

माल विक्रय

'माल' शब्द का अर्थ है चल-संपत्ति। इसमें स्टॉक[1] और शेयर,[2] उगती हुई फसल, घास और धरती में संलग्न चीजें, जैसे खान और पेड़—यदि संविदे द्वारा वे धरती से अलग की जा सकती हों—शामिल हैं। इसमें द्रव्य और कर्ज शामिल नहीं होता।

माल-विक्रय किसी निश्चित द्रव्य के बदले, जिसे कीमत कहते हैं, माल के स्वामित्व का हस्तांतरण होता है। माल के बदले माल लेना विक्रय नहीं होता। माल-विक्रय के बारे में नियम १९३० के माल-विक्रय अधिनियम (सेल ऑव गुड्स एक्ट) में दिये गए हैं।

बेचने और खरीदने दोनों पक्षों को इस बात की छूट है कि वे इस बात के लिए सहमत हों कि माल की मिल्कियत, या वस्तु का स्वामित्व कब एक से दूसरे के पास चला जायगा। किंतु यदि वे इस बात के लिए सहमत न हुए हों तो कानून उनके मार्ग-दर्शन के लिए नियम उपस्थित करता है। उनमें से कुछ नियम ये हैं—जब कोई निर्दिष्ट वस्तु दिये जाने की स्थिति में हो, और उसके विक्रय के संबंध में बिना शर्त का संविदा हो तो उसका स्वामित्व खरीदनेवाले पर तभी चला जाता है जब संविदा हो जाता है। इस बात से कोई अंतर नहीं पड़ता कि वस्तु की कीमत चुकाने का या उसके देने का समय आगे के लिए स्थगित किया गया है। किंतु यदि संविदा बिना शर्त का न हो, और वस्तु के देने से पूर्व कोई कार्य किया जाना हो, तो उसका स्वत्व तब तक खरीदनेवाले के पास नहीं जाता जबतक कि वह काम कर न लिया जाय और खरीदनेवाले को उसकी सूचना न दी जाय। उदाहरण के लिए यदि **क** अपने अस्तबल में बँधे हुए घोड़े को **ब** को ५०० रुपये में बेचने को सहमत होता है और उसके पास एक ही घोड़ा है तो घोड़ा संविदा होते ही **ख** का हो जाता है भले ही **ख** ने घोड़ा न देखा हो और हो सकता है कि उसने किसी अन्य स्थान पर होते हुए पत्र द्वारा घोड़ा खरीदने की और एक महीने बाद उसे लेने और कीमत अदा करने की सहमति दी हो। यदि इस दौरान में **क** की गलती के बिना घोड़ा मर जाता है तो यह जोखिम **ख** अपने ऊपर लेता है और उसे घोड़े के लिए ५०० रुपए चुकाने

---

१. स्टॉक—किसी कम्पनी या कारपोरेशन (निगम) का हस्तांतरण योग्य शेयरों या हिस्सों के रूप में धन।

२. शेयर—हिस्सा, अंश, भाग; कम्पनी, कारपोरेशन (निगम) आदि के धन के समान या असमान भाग।

होगे। दूसरी तरफ यदि **क** अपने तीन घोड़ों में से एक घोडा **ख** को बेचने के लिए सहमत होता है, जिसमे घोड़े का चुनाव **क** या **ख** को करना हो, तो जोखिम तबतक **क** की ही रहती है जब तक कि **क** या **ख** घोड़े का चुनाव न कर ले। चुनाव के बाद जोखिम खरीदार के ऊपर चली जाती है। यदि बेचनेवाले को बेचे हुए माल की कीमत का निश्चय करने मे पूर्व वह वस्तु तौलनी, नापनी, जाँचनी होती है या उसके सबध मे और कुछ करना होता है तो वस्तुगत स्वामित्व तबतक खरीदार के पास नही जाता जबतक बेचनेवाला वह कार्य पूरा नही कर लेता और खरीदार को उसकी सूचना नही होती।

विवरण द्वारा भावी माल (अर्थात् वह माल जिसका उत्पादन तथा अर्जन क्रेता द्वारा होगा) के विक्रय-सविदे मे यह नियम है कि विक्रेता द्वारा उस विवरण के और दिये जानेवाले माल का क्रेता की स्वीकृति से विक्रेता द्वारा या विक्रेता की स्वीकृति से क्रेता द्वारा जैसे ही सविदे के लिए विनियोग हो या वह उस संविदे के लिए अलग कर दिया जाय, वैसे ही उसका स्वामित्व विक्रेता से क्रेता के पास चला जाता है।

विक्रेता का यह कर्त्तव्य है कि वह विक्रय-सविदा के अनुसार माल की सुपुर्दगी दे और क्रेता उसे स्वीकार करे तथा उसकी कीमत अदा करे। यदि क्रेता उसकी कीमत अदा नही करता तो विक्रेता उसे वसूल करने के लिए दावा कर सकता है। इसके अतिरिक्त उसके पास एक और उपाय है। वह माल को तबतक रोक सकता है जबतक उसकी कीमत न चुक जाय। उसे 'विक्रेता का पूर्व-प्राप्ति अधिकार, कहते है। यदि विक्रेता ने क्रेता को माल उधार बेचा है तो वह इस अधिकार का प्रयोग नही कर सकता। किंतु उधार बेचने की दशा मे भी वह अपने इस अधिकार का प्रयोग तब कर सकता है जब कि खरीदनेवाला दिवालिया या अपना कर्ज चुकाने में असमर्थ न हो जाय। उसका पूर्व-प्राप्ति अधिकार तब भी नही रहता जब कि उसने क्रेता को पहुँचाने के लिए उसे मालवाहक को दे दिया हो और माल के वहन काल मे उसे बेचने का अधिकार अपने पास सुरक्षित न रखा हो। किंतु यदि क्रेता दिवालिया हो जाय तो मूल्य चुकाया गया विक्रेता मार्ग में ही उस माल पर अधिकार कर या वाहक को अपने हक की सूचना देकर वहनकाल में ही माल रोक सकता है। इस प्रकार की सूचना मिलने पर वाहक का यह कर्त्तव्य है कि वह विक्रेता को माल लौटा दे। ऐसा विक्रेता, जिसको मूल्य नही चुकाया गया और जिसने माल रोक लिया है या जिसने खरीदार को उसकी सुपुर्दगी नही दे दी है, उस माल को फिर बेचने की अपनी इच्छा की सूचना खरीदनेवाले को देकर फिर बेच सकता है और उससे प्राप्त पैसे से अपना मूल्य चुका सकता है।

यदि विक्रेता माल की सुपुर्दगी देने के अपने कर्त्तव्य को भंग करता है तो क्रेता उस पर हर्जाने के लिए दावा कर सकता है। जब विक्रेता माल की सुपुर्दगी देने को तैयार हो तब माल खरीदनेवाले को माल किस प्रकार का है, इस सबंध में

जांच करने के कुछ अधिकार होते हैं । जैसे, उसे इस बात की अपेक्षा रखने का अधिकार होता है कि संविदे में दिये गए विवरण से माल मिलता है । उदाहरण के लिए यदि किसी खास बनावट या मेक की किसी मोटरकार का सौदा हुआ है तो खरीदनेवाला किसी अन्य बनावट या मेक की मोटरकार खरीदने से इन्कार कर सकता है । जहाँ तक प्रकार का संबंध है, सामान्य नियम यह है कि क्रेता को माल की किसी खास किस्म या गुण के होने की अपेक्षा रखने का अधिकार नहीं है । इस बारे में स्वीकृत नियम है—'खरीदार सचेत रहे' । उसे माल खरीदने से पहले अपने आपको, माल के संबंध में, संतुष्ट कर लेना चाहिए । किंतु इस नियम के कुछ अपवाद हैं । उदाहरणार्थ, कुछ स्थितियों में खरीदार को, बेचनेवाले के इस कथन पर, कि माल जिस प्रयोजन के लिए खरीदा जा रहा है उसके योग्य है भरोसा करने का अधिकार है । एक व्यक्ति, जो किसी पसारी से खाद्य-सामग्री खरीदता है या होटल में खाना खाता है, वह बेचनेवाले पर दावा कर सकता है, यदि उसको दी गई खाद्य-सामग्री अभक्ष्य हो और उसे खाकर वह बीमार हो जाय ।

नीलामी-बिक्री

नीलाम द्वारा बिक्री की दशा में बिक्री तब पूरी समझी जाती है जबकि नीलामकर्ता बोली स्वीकार कर लेता है । ऐसा वह हथोड़े की चोट द्वारा या अन्य किसी प्रचलित ढंग द्वारा कर सकता है । उस समय तक बोली बोलनेवाला अपनी बोली वापस ले सकता है, किंतु बाद में नहीं । मालिक खुद या अन्य किसी के द्वारा तबतक बोली नहीं बोल सकता जबतक कि उसने बोली बोलने का अधिकार स्पष्ट रूप से अपने लिए सुरक्षित न रखा हो । यदि यह अधिकार सुरक्षित रखे बिना वह बोली बोलता है तो खरीदनेवाला अपनी खरीद रद्द कर सकता है । बिक्री के संबंध में यह कहा जा सकता है कि माल तबतक नहीं बेचा जायगा जबतक कि बोली एक निर्धारित सीमा से कम रहेगी ।

स्वामी और सेवक

स्वामी और सेवक के बीच में संविदा लिखित रूप में या मौखिक हो सकता है । कुछ अवस्थाओं में वह लिखित ही होना चाहिए । इस प्रकार किसी मल्लाह की कार्य-नियुक्ति का संविदा सरकार द्वारा निश्चित रूप से ही होना चाहिए । स्वामी और सेवक का संविदा कुछ घटनाओं के घटने पर समाप्त हो जाता है, जैसे—संविदे में निश्चित अवधि के व्यतीत हो जाने पर, दोनों में से किसी की मृत्यु हो जाने पर, और नोटिस के लिए निश्चित किसी समय के अभाव में समुचित नोटिस द्वारा । घरेलू नौकरी के सिलसिले में आम चलन एक महीने के नोटिस का है । सरकारी नौकरी सरकार की इच्छा पर समाप्त की जा सकती है, किंतु संविदे के अनुसार वह किसी विशेष अवधि के लिए हो सकती है । निम्नलिखित आधारों

पर स्वामी सेवक को बिना नोटिस दिये निकाल सकता है—उसके आदेश की सेवक द्वारा जान-बूझकर अवमानना, दुर्व्यवहार, काम में लापरवाही, किसी बीमारी से हुई उसकी स्थायी असमर्थता, सेवक द्वारा अपने कार्यक्षेत्र से बाहर किसी ऐसे अपराध का किये जाना जिससे स्वामी के लिए उस पर विश्वास करना और उसे नौकरी में रखना कठिन हो जाय। यदि सेवक कोई कारीगरी या कौशल का काम अपने हाथ में लेता है तो उसकी असमर्थता या अयोग्यता उसके निकाले जाने का आधार होगी। सेवक को अस्थायी बीमारी या असमर्थता के कारण नहीं हटाया जा सकता। यदि सेवक को अपनी जिन्दगी या शरीर को किसी खतरे का भय हो, या उसके साथ दुर्व्यवहार किया गया हो, अथवा उसके स्वामी ने सविदे के अनुसार अपना दायित्व पूरा न किया हो, जैसे—सविदे में स्वीकृत खाना, कपड़ा या अन्य सुविधाएँ न प्रदान की हों, तो वह नौकरी का सविदा खत्म कर सकता है। यदि दोनों में से कोई पक्ष सविदा भंग करता है तो उसे दूसरे को क्षतिपूर्ति देनी पड़ती है। साथ ही सविदे में मिला उसका अधिकार भी समाप्त हो जाता है। उदाहरण के लिए यदि कोई सेवक या नौकर, जो माहवारी हिसाब पर नियुक्त हो, महीने के दौरान में ही अपकारतः नौकरी छोड़ जाय तो वह अवशिष्ट महीने के वेतन का दावा नहीं कर सकता। स्वामी का यह कर्त्तव्य है कि वह सेवक के लिए कार्य की सुरक्षित स्थिति प्रदान करे। यदि स्वामी इस सबंध में आवश्यक सावधानी नहीं बरतता और उससे सेवक को कोई हानि पहुँचती हो या उसकी मृत्यु हो जाती है तो स्वामी जिम्मेदार होगा। कुछ नौकरियों में, जैसे कारखाने की नौकरियों में, विशेष कानूनों द्वारा स्वामी पर कामकरों की सुरक्षा के लिए जिम्मेदारी डाली गई है।

वाहक

वाहक माल या मुसाफिर या दोनों को ले जाते हैं। वे वहन-कार्य स्थल, जल या वायु मार्ग से कर सकते हैं। वाहक सामान्य भी होते हैं और निजी (प्राइवेट) भी होते हैं। सामान्य वाहक वह होता है जो किसी किराये के बदले जो कोई चाहे उसका सामान ले जाता है। निजी वाहक कुछ विशिष्ट लोगों का माल उनके साथ किये गए संविदे के अंतर्गत ले जाता है। केवल मुसाफिरों को ले जाने वाला वाहक सामान्य वाहक नहीं होता भले ही वह मुसाफिरों के सामान को भी ले जाता हो। सामान्य वाहक के कुछ विशेष कर्त्तव्य व अधिकार होते हैं, किंतु डाकखाना और रेलवे इससे अलग हैं।

सामान्य वाहक का यह कर्त्तव्य है कि वह वहन के लिए दिये गए सामान को ले जाय। वह ऐसा करने से तबतक इन्कार नहीं कर सकता जबतक उसके पास उचित कारण न हों—जैसे—स्थान का अभाव। वह माल के नष्ट होने या उसे पहुँचनेवाली हानि को भरने के लिए जिम्मेदार होता है, भले ही इसमें उसका

या उसके नौकरों का कोई दोष या असावधानी न हो। किंतु यदि हानि दैवयोग (जैसे भयंकर तूफान या भूकंप) से हुई हो तो वह जिम्मेदार नहीं होगा। इसी प्रकार यदि हानि राज्य के शत्रुओं के कार्य से (जैसे—ऐसे किसी विदेशी राज्य द्वारा माल का छीनना जिसके साथ लड़ाई चल रही हो) या भेजे गए माल के किसी स्वाभाविक नुक्स (जैसे खराब पैकिंग) से हुई हो तो भी वह जिम्मेदार नहीं होगा। किंतु इस जिम्मेदारी में विशेष कानून द्वारा परिवर्तन किया जा सकता है। कार्य रूप में बहुत से वाहक अपनी जिम्मेदारी में इस प्रकार का परिवर्तन कर लेते हैं और इस प्रकार स्पष्ट रूप से हानि के संबंध में अपने उत्तरदायित्व को वे सीमित कर लेते हैं। रेलवे और नौ-वहन (जहाजी यातायात) कंपनियाँ जोखिम-पत्रक और लदान-पत्रक द्वारा ऐसा करती हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय वाहक अधिनियम, १८६५ (इण्डियन कैरियर्स एक्ट) के द्वारा, जब वाहक १०० रुपये से अधिक मूल्य के खास किस्म के माल जैसे—चलअर्थ (करेंसी), कीमती धातुएँ या पत्थर, शीशा, चीनी के बर्तन, और घड़ियाँ—ले जा रहा हो, तो उसकी जिम्मेदारी सीमित कर दी जाती है। इस अधिनियम में और भी बहुत सी वस्तुओं का निर्देश है और भारत सरकार एक विज्ञप्ति द्वारा उनके अतिरिक्त और भी वस्तुएँ शामिल कर सकती है। इन चीजों के संबंध में हानि न भरने का वह तभी जिम्मेदार होता है जबकि उसकी या उसके नौकरों की कोई गलती हो। किंतु यदि माल भेजनेवाले ने माल की कीमत और उसके विवरण का प्रज्ञापन कर दिया हो, तो उसे गलती न होने पर भी हानि भरनी पड़ेगी। ऐसे माल के वहन के लिए वह अतिरिक्त पैसे ले सकता है। अन्य माल के संबंध में वह माल भेजनेवाले के साथ उसके हस्ताक्षरयुक्त संविदे द्वारा अपनी जिम्मेदारी सीमित कर सकता है। किंतु प्रत्येक दशा में, वह अपने या अपने नौकरों के आपराधिक कार्य या लापरवाही से होनेवाली हानि के लिए जिम्मेदार होता है। हानि कैसे हुई, यह सिद्ध करने का भार उसके ऊपर होता है, न कि माल भेजनेवाले के ऊपर। माल का स्वामी माल को पहुँची हानि की वाहक को सूचना देकर उस पर दावा कर सकता है। यह दावा उसे हानि की जानकारी प्राप्त होने के ६ महीने के भीतर कर देना चाहिए।

माल के निजी वाहक और मुसाफिरों के वाहक, सामान्य वाहकों के अपेक्षा, केवल अपने और अपने नौकर की असावधानी के कारण उत्तरदायी होते हैं। माल भेजनेवाले का यह कर्त्तव्य है कि भेजे जानेवाले माल के खतरे के संबंध में वह वाहक को सूचना दे। यह देखना उसका कर्त्तव्य है कि जो माल वह भेज रहा है, वह ले जाने योग्य है।

रेलवे का वाहक के रूप में उत्तरदायित्व निम्नलिखित है। यह केवल अपने कर्मचारियों की असावधानी के लिए उत्तरदायी हो सकती है। हानि कैसे

हुई, यह सिद्ध करने का भार रेलवे पर है। विशेष सविदे के द्वारा रेलवे को अपने उत्तरदायित्व को सीमित करने या बढ़ाने का अधिकार है। संविदा 'जोखिम-पत्र' द्वारा किया जाता है। जोखिम-पत्र केन्द्रीय सरकार द्वारा स्वीकृत रूप में होना चाहिए और उस पर माल भेजनेवाले के हस्ताक्षर होने चाहिए। इसमें माल के भाड़े की कम दर की व्यवस्था हो सकती है और माल की हानि होने की दशा में पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से रेलवे को दोषमुक्त किये जाने की व्यवस्था की जा सकती है। मुसाफिरों के वाहक के रूप में रेलवे के कर्तव्य अन्य वाहकों की भाँति ही हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय रेलवे अधिनियम द्वारा और कर्तव्य निश्चित किये गए हैं, जैसे—मुसाफिरों और रेलगाड़ी के कार्यवाहक कर्मचारियों के बीच सम्पर्क स्थापित करने की शृंखला की व्यवस्था। इसके अतिरिक्त रेलवे को महत्त्व-पूर्ण विषयों में केन्द्रीय सरकार के आदेशों का पालन करना पड़ता है। उदाहरण के लिए यह कि वैगनों (रेल के डब्बों) में अधिकतम कितना भार ले जाया जा सकता है।

रेलवे वाहक

जहाज का स्वामी किसी व्यक्ति को उसका माल ले जाने के लिए सारा जहाज किराये पर दे सकता है और यदि चाहे तो, दूसरी ओर, वह कई व्यक्तियों का माल ले जाने के लिए इस्तेमाल कर सकता है। पहली दशा में जहाज को किराये पर लेनेवाले के लिए कहा जाता है कि उसने जहाज 'चार्टर' किया है। इन दोनों व्यक्तियों के बीच जो संविदा होती है वह 'चार्टर-पार्टी' कहलाती है। इसमें जो एक आम शर्त होती है वह यह है कि जहाज का स्वामी जहाज को किराये पर लेनेवाले व्यक्ति को यह गारंटी देता है कि जहाज समुद्र-यात्रा योग्य है। उसमें कुछ और बातें ये होती हैं कि यात्रा को सुविधाजनक पूरी गति के साथ सम्पन्न किया जायगा और जहाज का अध्यक्ष जहाज चार्टर करनेवाले व्यक्ति की आज्ञा का पालन करेगा। जहाज का स्वामी प्रायः कुछ विशेष दशाओं में होनेवाली हानि के संबंध में अपने उत्तरदायित्व से छुट्टी ले लेता है, जैसे दैवयोग से होनेवाली, राज्य के शत्रुओं के कार्यों से होनेवाली, समुद्री संकटों से होनेवाली, जहाज के अध्यक्ष और मल्लाहों के छल और अपराधों से होनेवाली हानि और जल-दस्युता। चार्टर करनेवाला व्यक्ति समुद्री बीमों द्वारा इन खतरों से अपनी रक्षा करता है। जहाज का स्वामी कई व्यक्तियों का माल अपने जहाज में ले जा सकता है। तब उसे सामान्य जहाज कहते हैं। माल भेजनेवाला व्यक्ति जहाज के अध्यक्ष से, जो जहाज पर उसके स्वामी का प्रतिनिधान करता है, लदान-पत्रक लेता है। लदान-पत्रक में माल को ले जाने संबंधी संविदे की शर्तें होती हैं। जिसके नाम माल भेजा गया है वह उस पत्रक पर स्वीकृति सूचक अपने हस्ताक्षरयुक्त निर्देश द्वारा उसे अन्य को

समुद्र-मार्ग-वाहक

हस्तातरित कर सकता है। इसी प्रकार वह व्यक्ति भी किसी अन्य को। जहाज का स्वामी लदान-पत्रक की शर्तो के अनुसार उत्तरदायी होता है। इन शर्तों के अधीन उसकी स्थिति एक सामान्य वाहक की होती है। कानून के अन्तर्गत उसके कुछ कर्त्तव्य और अधिकार निश्चित हैं। सकट, भय या दुर्घटना के समय जहाज का अध्यक्ष कुछ विशिष्ट कार्य कर सकता है। वह दूसरे जहाज से सहायता ले सकता है और उसके लिए उसे मूल्य दे सकता है। इस मूल्य को 'निस्तारण-शुल्क' (साल्वेज) कहते हैं। यदि यह माल को बचाने के लिए दिया गया है तो माल के स्वामी या स्वामियों को उस खर्च का उठाना चाहिए। यदि यह जहाज और माल दोनों को बचाने के लिए दिया गया है तो इसमे जहाज के स्वामी और माल के स्वामी दोनों को हिस्सा बँटाना चाहिए। जहाज का अध्यक्ष बाकी माल को बचाने के लिए कुछ माल समुद्र मे फेंक सकता है। फेंके गए माल के स्वामी बचाए गए माल के स्वामियों से औसत हिस्सा पाने के अधिकारी हैं। जहाज का अध्यक्ष क्षतिग्रस्त या खराब हुए माल को बेच सकता है। वह अपनी यात्रा को चलाने के लिए पैसे की आवश्यकता पड़ने पर भी माल को बेच सकता है। किंतु उक्त कार्य करने से पूर्व यदि सभव हो तो उसे स्वामियों की स्वीकृति ले लेनी चाहिए।

वायु-मार्ग-वाहक

वायु-मार्ग के वाहकों के उत्तरदायित्व के सबध मे कुछ नियम एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन, अर्थात् १९२९ मे हुए वारसा सम्मेलन, में बनाये गए थे। ये नियम अन्तर्राष्ट्रीय वायु-वाहकों पर लागू होते हैं और भारतीय वायु-मार्ग अधिनियम, १९३४ (इण्डियन कैरेज बाई एअर एक्ट १९३४) द्वारा अपनाये गए हैं। जो अन्तर्राष्ट्रीय वाहक भारत में माल या मुसाफिरों के वहन का काम करते हैं, उन पर ये लागू होते हैं। केन्द्रीय सरकार आतरिक (देशीय) वायु-वाहकों पर ये नियम लगा सकती है, किंतु उसने अभी तक ऐसा नहीं किया है। उनमे से कुछ नियम ये हैं—माल के सबध मे वाहक माल भेजनेवाले को वायु द्वारा माल भेजने सबंधी पत्रक को भरने के लिए कह सकता है। माल भेजनेवाले को यह अधिकार है कि वह वाहक से उसे स्वीकार करने के लिए कह सकता है। यह पत्रक तीन हिस्सों में जारी किया जाता है। एक पर माल भेजनेवाला हस्ताक्षर करता है, एक पर माल ले जानेवाला या वाहक और तीसरे पर दोनों। मुसाफिरों को ले जाने के लिए वाहक को उन्हे मुसाफिर-टिकिट देने चाहिए और उनके सामान के लिए सामान-टिकिट। यदि वाहक माल, मुसाफिर या सामान (का वहन) इन पत्रकों के बिना स्वीकार कर लेता है तो, निम्न लाभ नहीं उपलब्ध होते हैं और हानि या क्षति की अवस्था में उसके उत्तरदायित्व को सीमित करनेवाली व्यवस्था का लाभ भी उसे प्राप्त नहीं होता। वैयक्तिक क्षति के लिए वाहक उत्तरदायी होता

है। किंतु यदि वह यह दिखा सके कि उसने और उसके नौकरों ने सभी प्रकार की सावधानी बरती थी और हानि या क्षति रोकी नहीं जा सकती थी या वह क्षति-ग्रस्त व्यक्ति के अपने आचरण से हुई थी तो वह अपने उत्तरदायित्व से बच सकता है। माल या सामान को होनेवाली क्षति के संबंध में यदि वह दिखा सके कि क्षति असावधानी से चालक द्वारा हवाई जहाज चलाने या असावधानी से उसका प्रबंध करने या उसकी उड़ान के दौरान में हुई है और यह कि अन्य तमाम बातों में उसके अभिकर्त्ताओं ने क्षति को बचाने के लिए सभी आवश्यक उपाय किये थे, तो वह उत्तरदायी नहीं होगा। वैयक्तिक क्षति के लिए वह अधिकतम १ लाख २५ हजार फ्रैंक (फ्रांसीसी सिक्का) तक, जो क्षति के समय प्रचलित दर के अनुसार भारतीय मुद्रा में परिवर्तनीय है, भरने के लिए उत्तरदायी है। माल और सामान के संबंध में सीमा २५० फ्रैंक प्रति किलोग्राम है। जिन चीजों की जिम्मेदारी मुसाफिर ने अपने पास रखी हो उनके संबंध में यह सीमा ५ हजार फ्रैंक है। विशेष संविदे द्वारा इन सीमाओं को बढ़ाया जा सकता है, किंतु घटाया नहीं जा सकता, क्योंकि उक्त नियम देशीय वस्तु-वाहकों पर लागू नहीं होते। अतः ये वायु-वाहक माल की हानि की अवस्था में सामान्य वाहकों की भाँति उत्तरदायी होंगे, भले ही हानि उनके दोष के कारण न हुई हो।

बीमा

एक व्यक्ति बीमा करनेवाले के साथ कई प्रयोजनों के लिए बीमा संविदा करता है। वह अपने जीवन या स्वास्थ्य का मृत्यु या बीमारी के विरुद्ध, अपने जहाज या माल का समुद्र में होनेवाली हानि के विरुद्ध, या अपनी जायदाद का अग्नि, शरारत, अपराध या दुर्घटना के विरुद्ध, या अपनी मोटरकार का कुचालन (खराब ड्राइविंग) या दुर्घटना के विरुद्ध, बीमा करा सकता है। वह अपने नौकरों के आचरण से होनेवाली हानि के विरुद्ध या अन्य व्यक्तियों द्वारा संविदा भंग करने के विरुद्ध बीमा करा सकता है। बीमे के संविदों द्वारा वह बीमा करनेवाले को कुछ पैसे, जिसे परिवर्त (प्रीमियम) कहते हैं, देने का उत्तरदायित्व ग्रहण करता है, और उसके बदले बीमा करनेवाला उसे या उसके प्रतिनिधियों (उत्तराधिकारियों) को कुछ निर्दिष्ट आकस्मिक अवस्थाओं में एक रकम देने का उत्तरदायित्व ग्रहण करता है। यह उत्तरदायित्व बीमा-पत्र में, जिसे 'पॉलिसी' कहते हैं, निहित होता है। यदि वह छल, मिथ्या निरूपण, गलती या पिछले अध्याय में वर्णित ऐसी अन्य अवस्थाओं में किया गया हो तो बीमे का संविदा भी अन्य संविदों की भाँति अवैध होगा, किंतु एक महत्त्वपूर्ण बात में इसकी अपनी विशेषता होती है। इसमें दोनों ही पक्षों की परस्पर अत्यधिक सद्भावना की अपेक्षा होती है, यहाँ तक कि केवल बीमा किये गए व्यक्ति की चुप्पी या उसके द्वारा बीमा करनेवाले को आवश्यक बातों को न बतलाना, बीमे के संविदे को अवैध कर देगा।

बीमा करनेवाले, बीमा करने से पूर्व, बीमा करानेवाले व्यक्ति से बहुत से प्रश्न पूछते हैं। बीमा करानेवाले का कर्त्तव्य है कि वह उनका सचाई से और पूरा-पूरा उत्तर दे। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो बीमा करनेवाला पॉलिसी से बद्ध नहीं होगा और वह उसके अंतर्गत पैसा देने से इन्कार कर सकता है। किंतु जीवन संबंधी बीमा-पॉलिसियों की स्थिति में इससे अन्याय हो सकता है। अतः १९३८ के बीमा-अधिनियम (इन्श्योरेन्स एक्ट १९३८) में यह व्यवस्था की गई है कि किसी जीवन की बीमा-पॉलिसी के संबंध में दो वर्ष व्यतीत हो जाने पर बीमा करनेवाला इस आधार पर कोई आपत्ति नहीं करेगा कि बीमे के प्रस्ताव में या अन्य किसी पत्र में, जिसके फलस्वरूप पॉलिसी जारी की गई थी, दिया गया कोई बयान गलत या झूठा था। किंतु दो वर्ष बाद भी बीमा करनेवाला उस पर आपत्ति कर सकता है, बशर्त्ते कि वह दिखा सके कि पॉलिसी लेनेवाले व्यक्ति ने जान-बूझकर या धोखा देने के लिए कोई गलतबयानी की थी या किसी महत्त्वपूर्ण विषय में कुछ तथ्य छिपाये थे। बीमा-पॉलिसी लिखित रूप में और स्टाम्प-युक्त होनी चाहिए। जिस घटना के विरुद्ध बीमा कराया गया हो उसके होने पर बीमा किये गए व्यक्ति को पॉलिसी में निर्दिष्ट पूरी रकम वसूल करने का अधिकार है।

: ११ :

सम्पत्ति

मनुष्य का स्वभाव है कि वह अपने उपयोग के लिए अतिरिक्त पदार्थ ग्रहण करता है और उन पर अपना विशिष्ट अधिकार जमाना चाहता है। शांति और समाज-व्यवस्था के हित मे यह आवश्यक है कि राज्य उसके अधिकारो के उपभोग मे उसकी रक्षा करे। किन्तु यह रक्षा प्राप्त करने के लिए उसे चाहिए कि वह अपने अधिकार उन ढगो द्वारा प्राप्त करे जिन्हे राज्य समुचित मानता है। प्राप्ति के इन ढगो से संबधित नियमो की व्याख्या करना ही सम्पत्ति-कानून का विषय है।

सम्पत्तिगत अधिकार के दो सुविदित प्रकार है—(१) स्वामित्व और (२) भुक्ति (कब्जा)।

स्वामित्व अधिक बडा अधिकार है और उसमे भुक्ति भी आ जाती है, क्योंकि सम्पत्ति के स्वामी को उसकी भुक्ति करने का अधिकार होता है। किन्तु ऐसा हो सकता है कि स्वामी की सम्पत्ति पर भुक्ति (कब्जा) न हो—जैसे उस समय जब कि उसने अपनी जमीन पट्टे पर उठा दी हो या अपना माल गिरवी रख दिया हो। उस समय पट्टेदार या गिरवीदार (जिसके यहाँ माल गिरवी रखा गया हो) को भुक्ति का अधिकार होता है—स्वामित्व का नही। भुक्तिवान स्वामी को भोक्ता से अधिक अधिकार होते है। वह जैसे चाहे अपनी सम्पत्ति का उपभोग कर सकता है और अपने सम्पूर्ण स्वामित्व का विक्रय, दान, उपहार या वसीयत द्वारा, तथा सीमित स्वामित्व का बधक (रहन रखने) या पट्टे द्वारा, हस्तांतरण कर सकता है। किन्तु केवल भुक्ति का अधिकार रखनेवाला व्यक्ति—जैसे पट्टेदार या गिरवी का माल रखनेवाला व्यक्ति, सम्पत्ति का उतना ही और उसी प्रकार उपभोग कर सकता है जितना कि उसे पट्टे या गिरवी की शर्तो के अन्तर्गत करने का अधिकार मिला हो। यदि जमीन का पट्टा उसे खेती के लिए मिला हो तो वह उस पर मकान नही बना सकता या उसमे खान नही खोद सकता। यदि उसने कोई चीज किराये पर या गिरवी में ली है तो वह उसे नष्ट या परिवर्तित नही कर सकता, यहाँतक कि वह अपना भुक्ति का अधिकार भी हस्तातरित नही कर सकता—उदाहरण के लिए उस समय जब पट्टेदार को पट्टे की जमीन आगे पट्टे पर देने की मुमानियत हो। जमीन के स्वामी को, केवल जमीन की सतह पर ही नही, वरन्

सम्पत्तिगत अधिकार

उसके नीचे भी स्वामित्वाधिकार होता है और वह उस अधिकार का हस्तातरण कर सकता है। जमीन का स्वामी अपनी जमीन के ऊपर वायुमंडल के स्तम्भ का भी, कुछ प्रयोजनों के लिए, स्वामी होता है। वह स्थानीय नगरपालिका (म्यूनिसिपैलिटी) के नियमों के भीतर रहकर अपनी जमीन पर चाहे जितनी ऊँची इमारत खड़ी कर सकता है। वह अपने पड़ोसी को अपनी जमीन के ऊपर उसके (पड़ोसी के) मकान का कार्निस कोना, छज्जा या अन्य भाग निकालने से रोक सकता है, किन्तु विमान-संचार के हित में एक कानून द्वारा यह व्यवस्था है कि वह उचित ऊँचाई पर वायुयान को उड़ाने के संबंध में आपत्ति नहीं कर सकता। स्वामी ओर किसी को अपने स्वामित्व या भुक्ति-अधिकार को भंग करने से रोक सकता है। वह अपनी जमीन पर अनधिकार प्रवेश करनेवाले को रोकने के लिए समुचित बल का प्रयोग कर सकता है। यदि उसे भुक्ति से च्युत कर दिया गया है तो वह न्यायालय द्वारा उसे फिर प्राप्त कर सकता है। वह न्यायालय में बिना जाये भी उक्त अधिकार प्राप्त कर सकता है, किन्तु जहाँ अपनी चल सम्पत्ति को पुन प्राप्त करने के लिए वह उचित बल का प्रयोग कर सकता है वहाँ अचल सम्पत्ति के लिए वह किसी बल का प्रयोग नहीं कर सकता। समझदारी का रास्ता यही है कि वह उसके लिए जल्दी-से-जल्दी न्यायालय में जाय।

कोई व्यक्ति सम्पत्ति का भोक्ता उस समय कहा जाता है जब कि उसे उस सम्पत्ति की भुक्ति या उपभोग का अधिकार होता है और साथ में दूसरों को उससे अपवर्जित करने का अभिप्राय होता है। अत एक घड़ी का स्वामी उस समय भी घड़ी का भोक्ता होता है जबकि घड़ी जेब में, या घर पर या संदूक में रखी होती है। नौकर को घड़ी देकर स्नानागार में जाने पर भी वह व्यक्ति उसका भोक्ता रहता है। इस अवस्था में घड़ी नौकर के संरक्षण मात्र में होती है—उसका अभिप्राय उस घड़ी में स्वामी का अपवर्जन नहीं होता। यदि नौकर का वैसा अभिप्राय हो और वह घड़ी लौटाने से इन्कार करे तो घड़ी की भुक्ति स्वामी से नौकर के पास चली जाती है। इसी प्रकार एक मकान में ठहरनेवाला व्यक्ति या कोई अतिथि उस मकान के किसी कमरे या उसके फर्नीचर का उपभोग कर सकता है, किन्तु इससे वह उसका भोक्ता नहीं हो जाता। भुक्ति उस मकान के स्वामी या पट्टेदार के पास ही रहती है। कई बार सम्पत्ति के भोक्ता का अनुमान उसके उपभोगाधिकारी से लगाया जाता है। मद्रास की किसी खाली पड़ी जमीन का स्वामी **क** दूर दिल्ली में है। **क** उसका भोक्ता है, भले ही उसने उस जमीन पर कभी कदम भी नहीं रखा है। भूमि का भोक्ता अपनी भूमि की ज्ञात या अज्ञात सभी चीजों का भोक्ता माना जाता है। अत भूमि के नीचे काफी गहराई में पड़े हुए खनिज पदार्थों या उसके ऊपर के उन वन्य भागों का भी, जहाँ वह पहुँच न सकता हो, वह भोक्ता होता है। सम्पत्ति के भोक्ता को, भले ही वह उसका स्वामी न हो, अपनी

भुक्ति की रक्षा करने का अधिकार है। यदि कोई अतिक्रमणकर्ता उसके अधिकार में बाधा पहुँचाता है तो वह उस पर दावा कर पुनः अबाध अधिकार प्राप्त कर सकता है। यह अधिकार अवैध रूप से सम्पत्ति की भुक्ति प्राप्त करनेवाले व्यक्ति को भी होता है। यदि **ख क** को उस जमीन से, जिसका कि वह (**क**) स्वामी है, निकाल देता है और फिर स्वयं **ग** द्वारा निकाल दिया जाता है, तो वह (**ख**) **ग** से उसे प्राप्त करने के लिए उस पर दावा कर सकता है। यदि **क** उससे वह जमीन छीन लेता है, **ख** को **क** तक पर दावा करने का अधिकार है, किन्तु उसे जमीन छिनने के छ महीने के भीतर दावा करना चाहिए। **क** की भाति **ख** भी अतिक्रान्ता को रोकने के लिए उचित बल का प्रयोग कर सकता है। किंतु यदि वह उसकी भुक्ति खो बैठता है तो न **क** को और न **ख** को उसे पुनः प्राप्त करने के लिए बल-प्रयोग करने का अधिकार है। उनके पास यही प्रतिकार है कि वे न्यायालय मे जायें और दोषी से जमीन वापस ले।

सम्पत्तिगत अन्य अधिकार

अब हम सम्पत्तिगत अन्य अधिकारों का सक्षेप मे अवलोकन करते हैं। अचल सम्पत्ति मे बधक (रहन) या उपकरण (ईजमेंट) और चल सम्पत्ति में भाडे या गिरवी का अधिकार होता है। ये अधिकार किसी मूर्त पदार्थ से सबद्ध होते है। किन्तु ऐसे भी कुछ अधिकार होते है जो किसी मूर्त पदार्थ से सबद्ध नही होते। उदाहरण के लिए कर्ज का पैसा वसूल करने का अधिकार एक ऐसा ही अधिकार है। यह अधिकार लिखित पुष्टि से रहित भी हो सकता है, जैसे उस समय जबकि वह मौखिक हो, और वह लिखित भी हो सकता है, जैसे, एक बन्धक, वचनपत्र (प्रोनोट, रुक्का), हुंडी, किसी बैंक के नाम काटा हुआ चैक, या सरकारी स्टॉक। ऐसे भी अधिकार होते है जिनका संबध किसी धनराशि से नही होता, किंतु फिर भी वे मूल्यवान् होते हैं, जैसे एकस्व (पेटेंट), व्यापार नाम (ट्रेड नेम), व्यापार-चिह्न (ट्रेडमार्क), फर्म का नाम (गुडविल)।

सम्पत्तिगत अधिकार का अर्जन प्रायः दो प्रकार से किया जाता है—हस्तातरण और दाय-ग्रहण (उत्तराधिकार)। हस्तांतरण उसके कर्त्ता के किसी कार्य द्वारा किया जाता है, जैसे तब जब वह किसी के पक्ष मे विक्रय, दान, उपहार, ट्रस्ट या वसीयत करता है। इनमे से अंतिम हस्तांतरण उसकी मृत्यु के बाद ही क्रियान्वित होता है। हस्तांतरण, स्वामित्व का (जैसे विक्रय या उपहार दान), या किसी लघु अधिकार का (जैसे बधक पट्टा, या गिरवी) हो सकता है। हस्तातरण उसके कर्त्ता के कार्य द्वारा न होकर कानून के प्रचलन द्वारा हो सकता है। उदाहरण के लिए राज्य भूमि-अधिग्रहण-विधेयक द्वारा सार्वजनिक कार्यों के लिए भूमि ले सकता है। जब एक व्यक्ति न्यायालय के निर्णय द्वारा दिवालिया घोषित कर दिया जाता है तब उसकी सम्पत्ति सरकारी प्रतिग्रहीता (ऑफीशियल रिसी-

वर) के पास चली जाती है। जब न्यायालय किसी कर्ज-वसूली के मुकदमे में डिगरी देता है और कर्ज-वसूली के लिए कर्जदार की सपत्ति बेचने का आदेश देता है तो न्यायालय-सम्पादित इस विक्रय में सम्पत्ति खरीदनेवाले के पास चली जाती है। जब चुंगी (कस्टम) अधिकारी चोरी से लाया गया माल पकड लेते हैं तो उसका संपत्तिगत अधिकार भारत सरकार के पास जब्त हो जाता है। दान ग्रहण द्वारा सम्पत्ति का अर्जन उस समय होता है जब एक उत्तराधिकारी मृत व्यक्ति की सम्पत्ति ग्रहण करता है। इसके तथा वसीयतों के बारे मे पारिवारिक कानून के अध्याय मे चर्चा की जायगी।

सम्पत्ति अर्जन के इन दो तरीकों के अलावा और भी तरीके हो सकते हैं। उनमे से एक 'योग' (एक्सेशन) या 'मिल जाने' का तरीका है। भूमि के स्वामी को उसके साथ की नदी के मार्ग परिवर्तन द्वारा और भूमि मिल सकती है। किसी पशु का स्वामी उस पशु के बच्चे का भी स्वामी हो जाता है। भूमि के स्वामी को उस भूमि मे उगनेवाली फसल और उसमे लगे वृक्ष और फलों पर भी अधिकार होता है। सम्पत्ति के अर्जन का एक और तरीका है—उस वस्तु पर अधिकार कर लेना जो और किसी की न हो, जैसे समुद्र में मछली, आकाश मे पक्षी, अपनी जमीन पर गिरनेवाला वर्षा का जल। किंतु कोई व्यक्ति किसी अन्य की सम्पत्ति पर भुक्ति करके ही उसका स्वामी नही हो जाता। लेकिन यदि वह उसके स्वामी के प्रतिकूल भोग करता रहता है तो एक अवधि के बाद वह उसका स्वामी बन जाता है। यह अवधि अचल सम्पत्ति के विषय में सामान्यत १२ वर्ष, चल सम्पत्ति के विषय मे ३ वर्ष और सरकार की किसी सम्पत्ति के विषय में ६० वर्ष है। सम्पत्ति के अर्जन का एक और तरीका है जो बडा अपवादिक और बहुमूल्य है। यह तरीका आविष्कार का है। एक व्यक्ति, जो अपनी प्रतिभा या उद्योग से कोई यान्त्रिक आविष्कार करता है या साहित्यिक रचना की सृष्टि करता है, वह उसका स्वामी हो जाता है।

जिन नियमो का ऊपर निर्देश किया गया है वे सरकार और प्रजा, दोनों पर लागू होते है। सरकार कानून के अनुसार ही संपत्ति का अर्जन कर सकती है। किंतु कानून उसे उन ढगो से भी संपत्ति प्राप्त करने की इजाजत देता है जिनसे प्रजा प्राप्त नहीं कर सकती। उदाहरण के लिए सरकार को भूमि-अधिग्रहण अधिनियम के अंतर्गत सार्वजनिक कार्यों के लिए प्रजा की संपत्ति का अर्जन करने का अधिकार है। किंतु सरकार ऐसा मुआवजा देकर और अधिनियम मे निर्दिष्ट ढंग से ही कर सकती है। वह बिना उत्तराधिकारी मरनेवाले की समस्त संपत्ति की स्वामी बन जाती है। ऐसी संपत्ति का राज्य-गमन हो जाता है और वह राज्यगामी संपत्ति कहलाती है। राज्य सरकार को राज्यगत भूमि के संबंध मे मालगुज़ारी वसूल करने का और मालगुज़ारी अदा न करने की दशा मे ऐसी भूमि को

बेचने का अधिकार होता है। विशेष कानून पास कर वह किसी व्यक्ति के द्वारा कर न चुकाने पर उसकी भूमि या संपत्ति को भी इसी प्रकार बेचने का अधिकार प्राप्त कर सकती है। संविधान के अंतर्गत भारत की सीमा से लगनेवाले प्रादेशिक सागर के भीतर की समस्त भूमि, खनिज-पदार्थ व अन्य मूल्यवान पदार्थों का स्वामित्वाधिकार भारत सरकार को प्राप्त है और ये सब चीजें उसी के प्रयोजन के लिए हैं।

अब हम संपत्ति के हस्तांतरण संबंधी कुछ सामान्य नियमों की चर्चा करेंगे और उसके बाद हस्तांतरण के कुछ प्रकारों पर विचार करेंगे। सब से पहले इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि किस-किस प्रकार की संपत्ति का हस्तांतरण हो सकता है, कौन हस्तांतरण कर सकता है और किसके पक्ष में हस्तांतरण किया जा सकता है।

सम्पत्ति का हस्तांतरण

आमतौर पर यह कहा जा सकता है कि यदि किसी विशेष नियम द्वारा निर्योग्य न ठहरा दिया गया हो तो प्रत्येक व्यक्ति, जो संविदा करने के लिए सक्षम है, अपनी संपत्ति का हस्तांतरण कर सकता है। एक नाबालिग या अस्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति संविदा करने की (कानूनी) सामर्थ्य नहीं रखता और इसलिए वह संपत्ति का हस्तांतरण नहीं कर सकता। यदि वह हस्तांतरण करता है तो उसके अंतर्गत दी गई संपत्ति की कोई कीमत नहीं होगी। कुछ व्यक्ति पूर्ण या आंशिक रूप से हस्तांतरण करने के निर्योग्य हो सकते हैं। एक हिंदू विधवा कुछ खास स्थितियों को छोड़कर अपनी संपत्ति का हस्तांतरण नहीं कर सकती। ट्रस्टी या न्यासी द्वारा, अपने प्रतिपाल्य या ट्रस्ट से लाभ उठानेवाले व्यक्ति की संपत्ति के हस्तांतरण पर भी प्रतिबंध है। प्रतिपालक विभाग (संरक्षणालय—कोर्ट ऑव वार्ड्स) के अधीन संपत्ति का स्वामी उसे किसी भी अवस्था में हस्तांतरित नहीं कर सकता।

कानून द्वारा कुछ प्रकार के हस्तांतरण निर्दिष्ट हैं। किसी प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी द्वारा संपत्ति का उत्तराधिकार ग्रहण करने की संभावना का हस्तांतरण नहीं हो सकता, क्योंकि इसमें उत्तराधिकार की संभावना के संबंध में जुआ चलेगा। अतः किसी हिंदू विधवा की मृत्यु के बाद उसकी भू-संपत्ति के उत्तराधिकार की आशा को उत्तराधिकारी विधवा के जीवन-काल में हस्तांतरित नहीं कर सकता। भरण-पोषण का अधिकार, जो अभी उपलब्ध नहीं हुआ है, हस्तांतरित नहीं किया जा सकता। किंतु उसकी उपलब्ध अवशिष्ट राशि को पाने का अधिकार हस्तांतरित किया जा सकता है। अभ्याघात और मानहानि के लिए हर्जाना वसूल करने का अधिकार हस्तांतरित नहीं किया जा सकता, किंतु यदि हर्जाना निर्धारित किया जा चुका है और उसके संबंध में डिगरी दी जा चुकी है तो वह डिगरी हस्तांतरित हो सकती है।

संपत्ति किसी भी व्यक्ति के पक्ष में हस्तांतरित की जा सकती है। अतः एक नाबालिग को संपत्ति-उपहार दिया जा सकता है, क्योंकि वह उसकी ओर से

उसके संरक्षक द्वारा स्वीकार किया जा सकता है। नाबालिग के नाम विक्रय या बंधक किया जा सकता है, बशर्ते कि संरक्षक उसकी ओर से सविदा करे या उसकी ओर से किसी दायित्व की पूर्ति अवशिष्ट न हो। माता के गर्भ-स्थित बालक के पक्ष में हस्तांतरण हो सकता है, किंतु जो बालक अभी गर्भ में ही न आया हो उसके पक्ष में हस्तांतरण नहीं हो सकता। पर हस्तांतरण एक जीवित व्यक्ति के पक्ष में और उसके बाद उसके अजात बालक के पक्ष में किया जा सकता है। उदाहरण के रूप में **क** अपने पुत्र **ख** को, जिसकी आयु १० वर्ष की है, **ख** के आजीवन उपभोग के लिए और उसके बाद **ख** के ज्येष्ठ पुत्र **ग** को मिलने के लिए संपत्ति हस्तांतरित कर सकता है। यदि **ख** की मृत्यु होने पर **ग** जीवित हुआ तो उसे संपत्ति मिल जायगी।

हस्तांतरण का प्रभाव यह होता है कि हस्तांतरणकर्ता के समस्त संपत्तिगत हित, जिन्हें वह उस समय हस्तांतरण करने की सामर्थ्य रखता है, हस्तांतरण प्राप्त करनेवाले के पास चले जाते हैं। उदाहरण के लिए यदि हस्तांतरण भूमि का है तो भूमि से संलग्न वस्तुएँ, जैसे उस समय खड़ी फसल या वृक्ष—भी साथ हस्तांतरित होंगे। किंतु दोनों पक्ष इसके विपरीत व्यवस्था कर सकते हैं। हस्तांतरण का कार्य पूरा होने पर हस्तांतरण प्राप्त करनेवाला व्यक्ति उस संपत्ति को अपनी संपत्ति की भाँति व्यवहार में ला सकता है। हस्तांतरण के साथ ऐसी कोई शर्त कि हस्तांतरित संपत्ति का आगे हस्तांतरण नहीं किया जायगा, न्यायसंगत नहीं होगी। किंतु यदि संपत्ति का सार्वजनिक कार्य के लिए या दान के रूप में हस्तांतरण हुआ है तो ऐसी शर्तें न्यायसंगत होंगी। उदाहरण के लिए एक शर्त यह हो सकती है कि किसी सार्वजनिक कोष का ट्रस्टी उस कोष से होनेवाली आय का एक भाग ही खर्च करेगा और शेष वह जोड़ेगा तथा उस कोष का वह हस्तांतरण नहीं करेगा। पट्टे में भी ऐसी शर्तें हो सकती हैं कि पट्टेदार पट्टे का हस्तांतरण नहीं कर सकता।

अचल और चल संपत्ति के हस्तांतरण में एक महत्त्वपूर्ण अंतर यह होता है कि चल संपत्ति के अपेक्षया अचल संपत्ति का हस्तांतरण प्रायः रजिस्ट्री हुई दस्तावेज द्वारा होता है। एक अपवाद वहाँ होता है जहाँ अचल संपत्ति का मूल्य १०० रुपये से कम हो। दूसरी ओर चल संपत्ति का विक्रय उसके अभिदान (डिलीवरी—प्रतिपादन) द्वारा या उसके अभिदान के संबंध में मौखिक सविदे द्वारा हो सकता है। जो व्यक्ति अचल संपत्ति खरीदता है उसे संपत्ति के संबंध में पहले के स्वत्व-पत्रों की जाँच करनी होती है, जिसके लिए संभव है उसे स्थानीय रजिस्ट्री कार्यालय से स्वत्व-पत्रों की प्रतिलिपियाँ लेनी पड़ें। यदि वह ऐसा करने में चूक करता है तो अपनी अज्ञानता का तर्क उपस्थित कर वह हस्तांतरणकर्ता से श्रेष्ठतर स्वत्व ग्रहण नहीं कर सकता। **क** **ख** को भूमि बेचता है और उसका मूल्य प्राप्त करता है। मान लीजिये **क**

उसे पहले ही **ग** को बेच चुका था या उसके पास उसे रहन रख चुका था। इस स्थिति में **ग** का स्वत्व **क** के स्वत्व से श्रेष्ठतर होगा और वही मान्य होगा। **ख** इस संबंध मे कोई शिकायत नही कर सकता, क्योंकि भूमि खरीदने से पूर्व उसे **क** के स्वत्व की जाँच कर लेनी चाहिए थी। किंतु पूरी सावधानी और जाँच के बावजूद व्यक्ति धोखा खा सकता है। यदि हस्तातरणकर्त्ता को हस्तातरण का कोई अधिकार नही था तो उसे भी कोई अधिकार नही मिलता। उसकी रक्षा के लिए कुछ नियमो की व्यवस्था है। कुछ उदाहरण ये है—

(१) **क** अपने पैसे से, किंतु **ख** के नाम से, संपत्ति खरीदता है। यहाँ **क** वास्तविक स्वामी है और **ख** केवल बैनामेदार (अपना नाम देनेवाला)। मान लीजिये **ख** **क** की जानकारी के बिना संपत्ति **ग** को, जो एक निर्व्याज (बोनाफाइड) खरीदार है, बेच देता है। यहाँ **ग** को **क** के विरुद्ध श्रेष्ठतर स्वत्वाधिकार मिलेगा।

(२) एक हिंदू विधवा या नाबालिग के संरक्षक अथवा एक ट्रस्टी को उस कर्ज को उतारने के लिए संपत्ति के हस्तातरण का अधिकार है जिसे अन्यथा नही उतारा जा सकता। जो व्यक्ति ईमानदारी से और आवश्यक छानबीन के बाद ऐसी संपत्ति ग्रहण करता है, कानून उसकी रक्षा करता है, भले ही बाद मे यह मालूम हो कि वह हस्तातरण आवश्यक नही था।

(३) **क** **ख** को अपनी भूमि बेचने की सहमति देकर उसका मूल्य ले लेता है, किंतु उसने **ख** के पक्ष में विक्रय-पत्र नही लिखा। अब वह **ग** के पक्ष मे विक्रय-पत्र लिख देता है, जो **क** द्वारा **ख** को दी गई सहमति से अनभिज्ञ है। इस स्थिति में संपत्ति **ग** को मिलेगी न कि **ख** को। किंतु यदि **क** ने संपत्ति की भुक्ति **ख** को दी है तो **ग** यह तर्क उपस्थित नही कर सकता कि वह **ख** के अधिकारो से अनभिज्ञ था और इसलिए उसे श्रेष्ठ स्वत्वाधिकार नही मिलेगा।

चूकि अचल संपत्ति के हस्तातरण के लिए रजिस्ट्री हुई दस्तावेज का होना आवश्यक है, अत: जो हस्तातरणग्रहीता उसके कर्त्ता से हुए दस्तावेज नही ग्रहण करता, वह हस्तातरित संपत्ति के सबंध मे किसी अधिकार या स्वत्व का दावा नही कर सकता। अत कीमत चुका देने पर भी वह उसकी भुक्ति के लिए नही कह सकता। किंतु यदि हस्तातरण संविदा के फलस्वरूप संपत्ति की भुक्ति उसे प्राप्त हो चुकी है और हस्तातरण-पत्र लिखा जा चुका है, पर उसकी रजिस्ट्री नही हुई है तो उसे संपत्ति की भुक्ति का अधिकार होगा। उसे यह अधिकार तभी होगा जबकि उसने संविदागत अपना दायित्व पूरा कर दिया हो या पूरा करने के लिए वह तैयार हो। अत: यदि वह खरीदार या पट्टेदार हो तो उसे उसकी तय कीमत या शुल्क देना चाहिए। यही कारण है कि वह केवल उपहार या दान की दशा में यह अधिकार नही प्राप्त कर सकता। अत. यदि दाता से उसे उपहार मिल चुका

है तो उपहार के रजिस्टर्ड लेख के अभाव मे उसे वह उपहार छोड़ना पड़ेगा।

यहाँ जिन नियमों का उल्लेख किया गया है उनका सबध अचल संपत्ति के विक्रय से है। चल सपत्ति मे संबधित नियमो का उल्लेख ९वे अध्याय मे किया जा चुका है।

विक्रय

१०० रुपये या उससे ऊपर की कीमत की अचल संपत्ति का विक्रय रजिस्टर्ड लेख द्वारा ही किया जा सकता है। १०० रुपये से कम कीमत की अचल सपत्ति का विक्रय रजिस्टर्ड लेख द्वारा या केवल उसकी भुक्ति के अभिदान द्वारा किया जा सकता है। दूसरे शब्दो मे, एक व्यक्ति इस कीमत की भूमि खरीदार को केवल भुक्ति की इजाजत देकर बेच सकता है। किंतु यदि विक्रेता के पास उसका कब्जा नही था और किसी बाद की तारीख मे उसे कब्जा मिलनेवाला था (मान लीजिये, पट्टा खत्म होने पर), तो वह केवल रजिस्टर्ड लेख द्वारा ही उसका विक्रय कर सकता था। विक्रय का अर्थ है किसी कीमत के बदले, जो चुकाई जा चुकी हो या जिसके चुकाने का वचन दिया गया हो या जो आंशिक रूप मे चुका दी गई हो और आंशिक रूप में जिसके बाद मे चुकायी जाने का वचन दिया गया हो--स्वामित्व का हस्तातरण। जमीन या मकान बेचने का सविदा स्वत ही स्वामित्व का हस्तातरण नही करता, अत. उसकी रजिस्ट्री की कोई आवश्यकता नहीं।

क्रेता और विक्रेता के कुछ पारस्परिक कर्त्तव्य और अधिकार होते है। विक्रेता को तय कीमत के प्राप्त करने का अधिकार होता है। यदि उसने क्रेता को सपत्ति दे दी है और पूरी कीमत या उसका एक भाग चुकाया नहीं गया है तो विक्रेता का उस रकम के लिए सपत्ति पर गहन (लिएन, पूर्वाधिकार) होता है। वह बधक-ग्रहीता की भाँति संपत्ति के विक्रय के लिए मुकदमा दायर कर उसकी कीमत वसूल कर सकता है। यदि क्रेता ने वह सपत्ति तीसरे व्यक्ति को हस्तातरित कर दी है तो भी वह (क्रेता) ऐसा कर सकता है। लेकिन इससे विक्रेता के गहन की सूचना रहित तथा कीमत देकर सद्भावना के साथ संपत्ति को खरीदनेवाला प्रभावित नही होगा। एक क्रेता को भी जिसने संपत्ति की कीमत चुका दी है किंतु उसका अभिदान नही लिया है, चुकाई गई कीमत के लिए संपत्ति पर गहन प्राप्त होता है। विक्रेता इस बात के लिए बद्ध है कि वह क्रेता को संपत्तिगत कोई खास दोष, जो उसे ज्ञात हो और क्रेता को न ज्ञात हो और जिसे क्रेता साधारण सावधानी बरतने पर मालूम न कर सका हो, बताये और संपत्ति के तथा उसके स्वत्व के संबंध में क्रेता द्वारा पूछे गये तमाम प्रश्नो का अपनी परम जानकारी के अनुसार उत्तर दे। आम नियम है यह कि क्रेता स्वय सावधान रहे, किंतु यह नियम एक महत्त्वपूर्ण अपेक्षा लिये हुए है। यदि यह पता चले कि विक्रेता के पास स्वत्वाधिकार नही था तो इससे होनेवाली हानि के लिए हर्जाना वसूल करने का क्रेता

के पास प्रतिकार है। विक्रेता कीमत वसूल करने पर विक्रय-पत्र लिखने के लिए कर्तव्यबद्ध है। उसे चाहिए कि वह कीमत वसूल करने पर क्रेता को या उसके द्वारा निर्दिष्ट व्यक्ति को कब्जा दे दे और तबतक उस संपत्ति की देखभाल करे।

बंधक

बंधक किसी निर्दिष्ट अचल संपत्तिगत अपने हित का हस्तांतरण होता है जिसका उद्देश्य किये गए या दिये जानेवाले कर्ज की अदायगी को सुरक्षित करना होता है। हस्तांतरणकर्ता बंधककर्ता कहलाता है और हस्तांतरणग्रहीता बंधक-ग्रहीता। यदि **क ख** को एक हजार रुपये उधार देता है तो वह उस रकम के संबंध में **क** की संपत्ति बंधक रख सकता है। ऐसा करने पर उसे उस संपत्ति में एक हित या अधिकार प्राप्त हो जाता है। किसी दायित्व के पालन के संबंध में भी बंधक किया जा सकता है। उदाहरणत **क** अपने पुत्र के एक बैंक क्लर्क के रूप में ईमानदारी से काम करने की जमानत के रूप में अपनी संपत्ति उस बैंक के पास बंधक रख सकता है। यदि पुत्र बैंक के साथ कोई धोखा करता है तो बैंक को पहुँची हानि का भार पिता की संपत्ति पर पड़ेगा। बंधक दो प्रकार का होता है—एक जिसमें बंधकग्रहीता को संपत्ति का भुक्ति संबंधी अधिकार दे दिया जाता है, और दूसरे जिसमें भुक्ति-अधिकार नहीं दिया जाता। भुक्ति-अधिकारयुक्त बंधक को 'भोगबंधक' या 'उपभोगबंधक' कहते हैं और दूसरे को 'सामान्य बंधक' या 'आबमन' कहते हैं। अचल संपत्ति का बंधक बंधककर्ता के हस्ताक्षरयुक्त लेख, जिसे कम-से-कम दो साक्षियों ने प्रमाणित किया हो, के द्वारा ही किया जा सकता है। यदि बंधक १०० रुपये से कम की अदायगी की सुरक्षा के लिए किया गया है और वह सादा बंधक नहीं है, तो वह बंधकग्रहीता को संपत्ति का भुक्ति-अधिकार देकर किया जा सकता है। रजिस्टर्ड बंधक में दो साक्षियों द्वारा प्रमाणीकरण आवश्यक है। प्रत्येक प्रमाणित करनेवाले साक्षी के लिए आवश्यक है कि उसने बंधककर्ता को बंधक-पत्र पर अपने हस्ताक्षर करते हुए या निशानी लगाते हुए देखा हो अथवा उसने यह स्वीकार किया हो कि वह हस्ताक्षर या निशानी उसी की है। उसके अतिरिक्त प्रमाणित करनेवाले साक्षी को बंधककर्ता की उपस्थिति में अपने हस्ताक्षर करने चाहिए तभी बंधकपत्र न्यायोचित रूप में प्रमाणीकृत किया जाता है। कलकत्ता, मद्रास और बंबई के नगरों में तथा किसी राज्य सरकार द्वारा विज्ञापित किसी अन्य नगर में अचल संपत्ति का बंधक बिना रजिस्टर्ड लेख के बंधकग्रहीता के पास स्वत्व-पत्र जमा कराकर किया जा सकता है। यह स्वत्व-पत्र इन नगरों से बाहर की संपत्ति के संबंध में हो सकते हैं।

जब बंधक भुक्ति-अधिकार सहित हो तो बंधकग्रहीता को बंधक-पत्रों की शर्तों के अनुसार भुक्ति प्राप्त होती है। यदि पत्र में यह व्यवस्था हो कि ग्रहीता तबतक उसका भोक्ता (कब्जेदार) रहेगा जबतक बंधक की गई संपत्ति की आय में से

मूलधन और ब्याज दोनों न चुक जायं, तो बंधककर्ता उक्त प्रकार के मूलधन और ब्याज के चुक जाने पर ही उसे वापस ले सकता है। यदि पत्र में उक्त प्रकार से केवल ब्याज के चुकाये जाने की व्यवस्था हो तो बंधककर्ता किसी अवधि के निश्चित न होने की दशा में किसी भी समय, और अवधि निश्चित होने की दशा में अवधि पूरी होने पर, मूलधन चुकाकर संपत्ति वापस ले सकता है। उसके पास ६० वर्ष का समय होता है जिसके भीतर वह बंधकग्रहीता की तरफ निकलनेवाली रकम देकर अपनी संपत्ति वापस ले सकता है या कानूनी भाषा में छुड़ा सकता है या उसका मोचन कर सकता है। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो उसे संपत्ति से हाथ धोना पड़ेगा। भुक्ति-अधिकारयुक्त बंधकग्रहीता का यह कर्तव्य है कि वह बंधक-ग्रहीता के रूप में उसके द्वारा प्राप्त किये गए या खर्च किये पैसे का पूरा साफ और सही हिसाब रखे तथा बंधककर्ता के मांगने पर वाउचर (रसीद आदि प्रमाणक) समेत उसे हिसाब की नकल दे। इसके अतिरिक्त बंधकग्रहीता का यह कर्तव्य है कि वह संपत्ति का उसी तरह प्रबंध करे जैसे कि एक समझदार आदमी अपनी संपत्ति का प्रबंध करता है। उदाहरण के लिए, उसे किराया और मुनाफा वसूल करने, सरकारी मालगुजारी देने और अन्य सार्वजनिक शुल्क व किराया अदा करने, जिसके न करने पर संपत्ति बेच दी जायेगी, आवश्यक मरम्मत करने—जिसका खर्च वह अपने हाथ के पैसे में से दे सकता है, और संपत्ति का नष्ट करने या उसे सदा के लिए हानि पहुँचाने से बचने का पूरा प्रयत्न करना चाहिए। बंधकग्रहीता का यह कर्त्तव्य है कि बंधककर्ता द्वारा प्रतिदेय समय पर रकम के चुका देने पर उसे वह संपत्ति लौटा दे। यदि वह ऐसा करने से इन्कार करता है तो बंधक-कर्त्ता न्यायालय में पैसा जमा कर उस संपत्ति के भुक्ति-अधिकार का दावा कर सकता है। पैसा जमा करने या अदा करने का परिणाम यह होता है कि बंधकग्रहीता को उस तारीख के बाद बिना कोई ब्याज या उस संपत्ति के संबंध में किया गया कोई खर्च करके उस संपत्ति से होनेवाला समस्त लाभ लौटाना पड़ेगा। जब बंधक भुक्ति-अधिकारयुक्त होता है तो बंधकग्रहीता का अधिकार उस संपत्ति के लाभ में से अपना पैसा वसूल करना या तबतक उस संपत्ति पर भुक्ति रखता है। किंतु यह हो सकता है कि बंधककर्त्ता ने यह शर्त रखी हो कि वह पैसा स्वयं चुकायगा। उस दशा में बंधकग्रहीता संपत्ति के विक्रय द्वारा अपनी तरफ निकलनेवाले पैसे की वसूली के लिए बंधककर्त्ता पर दावा कर सकता है।

अब हम भुक्ति-अधिकार रहित बंधक के संबंध में विचार करेंगे। ऐसा बंधक सामान्यतः सादा बंधक होता है। इसमें बंधककर्त्ता एक निश्चित अवधि के बाद या मांग पेश किये जाने पर मूलधन और ब्याज चुकाने के लिए राजी होता है। यदि वह इसमें चूक करता है तो बंधकग्रहीता संपत्ति के विक्रय द्वारा मूलधन और ब्याज वसूल करने के लिए उस पर दावा कर सकता है। बंधक-पत्र में व्यवस्थित

अवधि के व्यतीत होने पर वह ऐसा कर सकता है। इसके बाद ऐसा करने के लिए उसके पास १२ वर्ष का समय होता है। यदि वह इस समय के भीतर दावा नहीं करता तो उसे पैसा वसूल करने के अपने अधिकार से हाथ धोना पड़ता है। जैसा कि हम आगे के अध्याय में परिसीमन (काल) कानून संबंधी चर्चा में देखेंगे कि यदि बंधककर्त्ता इस १२ वर्ष की अवधि में अपना दायित्व स्वीकार कर लेता है या मूलधन अथवा ब्याज के मद में कोई रकम जमा कर देता है तो यह अवधि बढ़ जाती है। जब पैसा चुकाने का समय आ जाता है तो बंधककर्त्ता बंधकग्रहीता को वह चुका सकता है या न्यायालय में जमा कर सकता है। उसका असर यह होगा कि उसके विरुद्ध ब्याज का लगना बंद हो जायगा। बंधककर्त्ता का यह कर्त्तव्य है कि वह तमाम सरकारी मालगुजारी और उस संपत्ति के संबंध में अन्य सार्वजनिक शुल्क या किराये अदा करे तथा संपत्ति को नष्ट करने या उसे क्षति पहुँचाने से अलग रहे।

इसके अतिरिक्त बंधक के और भी तथा कम प्रचलित प्रकार होते हैं। उदाहरणतः एक बंधक-पत्र बंधकग्रहीता को न्यायालय में बिना लाये संपत्ति बेचने का और उसे अपना पैसा वसूल करने का अधिकार दे सकता है। यदि सरकार ही स्वयं बंधकग्रहीता नहीं है तो ऐसा तभी संभव है जबकि बंधक संपत्ति या उसका कोई भाग कलकत्ता, मद्रास और बंबई के तथा राज्य सरकार द्वारा विज्ञापित किसी अन्य नगर में स्थित हो। इस अधिकार से युक्त बंधकग्रहीता अपने या अपनी ओर से किये गए हस्ताक्षर-युक्त लेख द्वारा संपत्ति की आय इकट्ठी करने के लिए एक प्रतिग्रहीता नियुक्त कर सकता है। बंधक का एक और प्रकार बंधकग्रहीता के पास संपत्ति का विक्रय होता है जिसके साथ यह शर्त होती है कि एक निश्चित तिथि को पैसा चुका देने पर वह संपत्ति बंधककर्त्ता को पुनः हस्तांतरित कर दी जायगी और पैसा न चुकाये जाने पर विक्रय यथावत् रहेगा। इस अंतिम उपवाक्य के बावजूद बंधककर्त्ता को निकलनेवाला पैसा चुका कर अपनी संपत्ति छुड़ाने का अधिकार है। अंत में संपत्ति पर किसी रकम के चुकाने का भार हो सकता है, जैसे—किसी हिंदू की पारिवारिक संपत्ति पर एक हिंदू सदस्या को भरण-पोषण देने का भार, बेची गई संपत्ति पर उसकी न अदा की गई कीमत के संबंध में विक्रेता के गहन का भार। उक्त रकमों को प्राप्त करने का उपाय यह है कि भारयुक्त संपत्ति को, सादा बंधक-संपत्ति की भाँति बेचने के लिए दावा दायर किया जाय। भारयुक्त और सादा बंधक में अंतर यह है कि भारयुक्त संपत्ति का पदभावनायुक्त क्रेता संपत्ति के भार[1] दायित्व से बद्ध नहीं होता जबकि बंधक-संपत्ति का ऐसा क्रेता बंधक-दायित्व से बद्ध होता है।

---

१. भार—देनदारी आदि का भार।

अचल सपत्ति के पट्टे मे अभिप्राय उसके उपभोगाधिकार के हस्तातरण से होता है। यह एक निर्दिष्ट अवधि के लिए या सदा के लिए हो सकता है।

पट्टा

इस अधिकार के बदले पट्टेदार किराया देने के लिए सहमत होता है। किराया पैसे, फसल के हिस्से, सेवा या अन्य किसी मूल्यवाली वस्तु के रूप मे हो सकता है तथा वह अनुकालिक रूप मे (बधे हुए समय पर, जैसे—प्रतिवर्ष, प्रतिमास आदि) या निर्दिष्ट समयो पर उसे देय हो सकता है।

अचल सपत्ति का अनवार्षिक (साल-दर-साल) या एक वर्ष की अवधि से अधिक का पट्टा अथवा ऐसा पट्टा, जिसमे वार्षिक किराये की व्यवस्था सुरक्षित हो, रजिस्टर्ड लेख द्वारा ही किया जा सकता है। उक्त अवधि से भिन्न समय के लिए अचल सपत्ति का पट्टा रजिस्टर्ड-लेख द्वारा, या जबानी करार द्वारा, जिसके साथ भुक्ति दे दी गई हो, किया जा सकता है। किंतु राज्य सरकार, जैसे कि बबई मे है, एक विज्ञप्ति द्वारा यह घोषणा कर सकती है कि पट्टा बिना रजिस्ट्रीशुदा-लेख द्वारा किया जा सकता है। जब पट्टा रजिस्टर्ड-लेख द्वारा हो तो पट्टा-पत्रक पट्टादाता और पट्टेदार दोनो द्वारा लिखा जाना चाहिए। किंतु ये नियम जबतक कि राज्य सरकार उन्हे इस सबंध मे लागू न करे, खेती-बाडी के लिए ली गई कृषि-भूमि के पबध मे लागू नहीं होते।

यदि पट्टे मे अवधि का स्पष्ट निर्देश न हो तो खेती-बाडी या वस्तु निर्माण के उद्देश्य से लिया गया पट्टा अनुवार्षिक समझा जाता है और कार्यकारी या किराये-दारी के वर्ष के साथ समाप्त होनेवाले ६ महीने के नोटिस द्वारा किसी भी पक्ष द्वारा समाप्त किया जा सकता है। किसी अन्य उद्देश्य से सबंधित पट्टा (जैसे रहने के लिए मकान का पट्टा) अनुमासिक (महीने-दर-महीने का) समझा जाता है और महीने के साथ समाप्त होनेवाले १५ दिन के नोटिस द्वारा खत्म किया जा सकता है। पट्टे को समाप्त करनेवाला प्रत्येक नोटिस लिखित रूप मे तथा नोटिस देनेवाले व्यक्ति के अपने या उसकी ओर से नोटिस देनेवाले व्यक्ति के हस्ताक्षरयुक्त होना चाहिए। यह डाक द्वारा भेजा जाना चाहिए या पट्टेदार को या उसके परिवार के किसी सदस्य को या उसके घर के नौकर को (दस्ती) दिया जाना चाहिए और यदि उस प्रकार देना सभव न हो तो वह संपत्ति के किसी स्पष्ट भाग पर लगा देना चाहिए।

पट्टादाता पट्टे की अवधि के काल मे किराया लेने और अवधि समाप्त होने पर अपनी सपत्ति वापस लेने का अधिकारी होता है। पट्टादाता कोई मरम्मत कराने के लिए तबतक बद्ध नही होता जबतक कि उसने ऐसा करने के लिए स्पष्ट रूप से लिखित सहमति न दी हो। पट्टेदार का यह कर्तव्य है कि वह पट्टे के स्थान को वैसी ही हालत में रखे जैसी हालत में वह उसे दिया था। किंतु संपत्ति के समुचित

क्षय या उसके बस के बाहर के संयोगों से होनेवाली क्षय की छूट है। यदि पट्टादाता ने मरम्मत की स्वीकृति दी थी और वह मरम्मत नहीं करवाता तो पट्टेदार मरम्मत करवा सकता है और उस मरम्मत का खर्च किराये में से काट सकता है या अन्य प्रकार से वसूल कर सकता है। उसके पास पट्टादाता के दोष का यही प्रतिकार है, न कि यह कि वह उस कारण पट्टा ही समाप्त कर दे। किंतु ऐसी स्थिति में पट्टा समाप्त करने का पट्टे में स्पष्ट निर्देश हो तो वह वैसा कर सकता है। इसी प्रकार यदि पट्टादाता के दोष के कारण पट्टादाता द्वारा किया जानेवाला भुगतान उसे स्वयं करना पड़ा हो (जैसे सरकारी मालगुजारी का देना) तो वह उस भुगतान की रकम को पट्टादाता से वसूल कर सकता है। पट्टेदार का कर्त्तव्य है कि वह पट्टे की संपत्ति को कोई स्थायी क्षति न पहुंचाये या उस पर कोई स्थायी मकान आदि खड़ाकर उसका रूप न बदल दे। जब एक अनिश्चित अवधि का पट्टा ऐसे किसी भी कारण समाप्त होता है जिसमें पट्टेदार का दोष न हो, तो पट्टेदार पट्टे की जमीन में उगायी हुई अपनी फसल ले सकता है और उसके लिए वह उस जमीन में दाखिल हो सकता है। किंतु यदि पट्टा उसके अपने दोष के कारण समाप्त हुआ हो तो वह वैसा नहीं कर सकता। पट्टा आमतौर पर पक्षों द्वारा नियत अवधि के व्यतीत होने पर समाप्त हो जाता है। कुछ घटनाओं के घटने पर वह इससे पहले भी समाप्त हो सकता है। उदाहरण के लिए दोनों एक-दूसरे का हित ग्रहण कर सकते हैं, जैसा कि एक की मृत्यु पर दूसरे के उसका उत्तराधिकारी होने पर होता है। पट्टे में यह व्यवस्था हो सकती है कि यदि पट्टेदार अमुक आचरण (जैसे—किराया का न देना) का दोषी होगा तो वह पट्टे से च्युत हो जायगा और पट्टादाता पट्टा समाप्त कर देगा। ऐसी स्पष्ट व्यवस्था के न होने पर भी यदि पट्टेदार पट्टादाता के विरुद्ध उस संपत्ति के संबंध में अपना या अन्य किसी व्यक्ति का स्वत्व खड़ा करता है तो भी वह पट्टे से च्युत हो जाता है। जब पट्टेदार पट्टे के अधिकार से च्युत हो जाता है तो पट्टादाता को चाहिए कि वह पट्टेदार को पट्टा समाप्त कर देने का नोटिस दे दे। पट्टादाता यदि चाहे तो वह उस स्थिति में अपने अधिकार का प्रयोग न कर पट्टा चलने दे सकता है। यदि वह यह जानते हुए कि पट्टेदार ने पट्टे से च्युत होने का काम किया है, किराया स्वीकार करता है तो यह समझा जायगा कि वह पट्टा समाप्त करने के अपने अधिकार का प्रयोग नहीं कर रहा है। यदि किराया न देने की स्थिति में पट्टेदार के पट्टे से च्युत होने पर पट्टादाता उसे निकालने के लिए न्यायालय में जाता है तो पट्टेदार द्वारा पुराना सब किराया और खर्च जमा करने पर न्यायालय उसे क्षमा कर सकता है और पट्टे के कायम रहने की इजाजत दे सकता है। यदि पट्टा किसी निश्चित अवधि के लिए न हो तो किसी भी पक्ष द्वारा छोड़ने के, या छोड़ने की इच्छा के, नोटिस द्वारा वह समाप्त किया जा सकता है।

एक संपत्ति के बदले दूसरी संपत्ति का लेना, जब कि दोनों संपत्तियों में से कोई भी संपत्ति पैसे मात्र के रूप में न हो, उसी प्रकार हो सकता है जैसे कि उस संपत्ति का विक्रय होता है। यदि संपत्ति १०० रुपये या इससे अधिक मूल्य की अचल संपत्ति है तो विनिमय (अदला-बदली) के लिए यह आवश्यक है कि वह रजिस्टर्ड लेख द्वारा किया जाय।

विनिमय

अचल संपत्ति का प्रतिग्रह[1] एक रजिस्टर्ड-लेख द्वारा ही किया जा सकता है, जिसपर दाता के हस्ताक्षर हों और जिसे कम-से-कम दो साक्षियों ने प्रमाणित किया हो। चल संपत्ति की प्रतिग्रह रजिस्टर्ड-लेख द्वारा या संपत्ति के अभिदान द्वारा किया जा सकता है। प्रतिग्रह के संबंध में यहाँ दिये गए नियम मुसलमानों में परस्पर दिये जानेवाले प्रतिग्रह के संबंध में लागू नहीं होते। संपत्ति का प्रतिग्रह तभी पूर्ण न्यायोचित होता है, जब वह उसे ग्रहण करने वाले व्यक्ति द्वारा या उसकी ओर से स्वीकार किया गया हो और वह स्वीकृतिदाता के जीवनकाल में तथा उसके प्रतिग्रह देने के सामर्थ्यकाल में प्रदान किया गया हो। यदि प्रतिग्रह प्राप्त करनेवाला व्यक्ति उसे स्वीकार करने से पहले मर जाता है तो प्रतिग्रह कार्य रूप में परिणत नहीं होता। एक ओर नियम यह है कि प्रतिग्रह उसी संपत्ति का दिया जा सकता है जो अस्तित्व में आ चुकी हो, न कि भविष्य में अस्तित्व में आनेवाली संपत्ति का, जैसे—किसी गाँव की भविष्य में निकलनेवाली मालगुजारी। प्रतिग्रह किसी जीवित व्यक्ति को दिया जा सकता है। मंदिर में स्थापित मूर्ति जीवित व्यक्ति मानी जाती है और उसे मंदिर के मैनेजर या ट्रस्टी के द्वारा प्रतिग्रह प्राप्त करने की सामर्थ्ययुक्त माना जाता है। एक बार दिया गया प्रतिग्रह फिर भंग नहीं किया जा सकता, किंतु दोनों पक्ष इस बात के लिए सहमत हो सकते हैं कि अमुक घटना के घटने पर वह प्रतिग्रह माना जायगा। यह घटना ऐसी होनी चाहिए जो दाता की इच्छा पर निर्भर न हो।

प्रतिग्रह (उपहार, दान, देना)

एक व्यक्ति को दूसरे से वाद (मुकदमा) द्वारा कोई रकम वसूल करने का अधिकार हो सकता है। कानून में इस अधिकार को 'कार्यणीय अभियाचना' या 'कार्यणीय दावा' कहते हैं। उधार दिये हुए रुपये को वापस लेने तथा बचे हुए माल की कीमत वसूल करने का अधिकार ऐसे अधिकार के उदाहरण हैं। यह अधिकार किसी दस्तावेज से या उसके बिना हो, जैसे, जबानी कर्ज की स्थिति में, पैदा हो सकता है। किंतु इस अधिकार का हस्तांतरण हस्तांतरणकर्ता या उसके अधिकृत अभिकर्ता (एजेंट) के हस्ताक्षरयुक्त

कर्ज का हस्तांतरण

---

१. **प्रतिग्रह (गिफ्ट) धन की अपेक्षा किये बिना स्वेच्छा से किसी चल अथवा अचल सम्पत्ति का हस्तांतरण।**

लिखित-पत्र द्वारा ही किया जा सकता है। हस्तांतरण-पत्र के लिख जाने पर अधिकार हस्तांतरणग्रहीता के पास चला जाता है और वह कर्जदार से हस्तांतरणकर्ता की तरफ निकलनेवाली रकम वसूल कर सकता है। किंतु इस बात की संभावना से अपनी रक्षा के लिए कि कहीं अधिकार के हस्तांतरण से अनभिज्ञ कर्जदार हस्तांतरणकर्ता को ही रकम न लौटा दे, हस्तांतरणग्रहीता को चाहिए कि वह हस्तांतरण के संबंध में कर्ता द्वारा कर्जदार को सूचना तथा हस्तांतरणग्रहीता का पता भिजवा दे। ऐसी सूचना पर हस्तांतरणकर्ता या उसके सम्यक अधिकृत अभिकर्ता के हस्ताक्षर होने चाहिए। यदि वह सूचना न भेजे तो हस्तांतरणग्रहीता या उसका अभिकर्ता सूचना भेज सकता है। यदि इस सूचना की प्राप्ति से पूर्व कर्जदार हस्तांतरणकर्ता को रकम चुका दे तो उसे फिर से हस्तांतरणग्रहीता को रकम चुकाने के लिए नहीं कहा जा सकता। किंतु यदि सूचना प्राप्त हो जाने पर वह ऐसा करता है तो उसे हस्तांतरणग्रहीता को फिर से रकम चुकाने के लिए कहा जा सकता है। हस्तांतरणग्रहीता वह हस्तांतरण कर्जदार द्वारा हस्तांतरणकर्ता के विरुद्ध किये जा सकनेवाले समस्त दावों के साथ ग्रहण करता है। अतः यदि **क ख** से निकलनेवाला अपना ५०० रुपये का कर्ज **ग** को हस्तांतरित करता है तो **ख** यह कह सकता है कि **क** की तरफ से उसके भी ३०० रुपये निकलते थे। **ग क** से अधिक अच्छी स्थिति में नहीं हो सकता और वह कुल २०० रुपये ही वसूल कर सकता है। कार्यनीय दावे के हस्तांतरण के संबंध में एक दिलचस्प नियम है—यह यह कि कानून न्यायालयों से संबद्ध अधिकारियों, जैसे—जज, वकील या न्यायालय से नियुक्त अन्य व्यक्ति, को ऐसे हस्तांतरण को प्राप्त करने का निषेध करता है। इस नियम का उद्देश्य इन व्यक्तियों द्वारा अपने प्रभाव या ज्ञान का अन्य व्यक्तियों के प्रतिकूल प्रयोग करने से रोकना है। यदि ऐसा कोई व्यक्ति ऐसे किसी अधिकार का हस्तांतरण ग्रहण करता है तो वह न्यायालय द्वारा उसे प्रचलित नहीं करा सकता। ये नियम रुपया वसूल करने के कुछ विशिष्ट अधिकारों के संबंध में लागू नहीं होते, जैसे—अचल संपत्ति के बंधक द्वारा या माल के गिरवी द्वारा सुरक्षित पैसा वसूल करने का अधिकार, कम्पनी में हिस्सेदार का अधिकार, समुद्री या अग्नि बीमे की पॉलिसी के धारक का अधिकार अथवा प्रोनोट (रुक्का), हुंडी या चैक के धारक का अधिकार। अचल संपत्ति का बंधकग्रहीता रजिस्टर्ड-लेख द्वारा ही अपने अधिकार का हस्तांतरण कर सकता है। शेयर (हिस्से) और परक्राम्य आलेख (चलते कागज)[1] के हस्तांतरण के संबंध में नियमों का उल्लेख अगले अध्याय में किया जायगा, बीमे की पॉलिसियों के हस्तांतरण के संबंध में नियमों का

---

१. हस्तांतरण योग्य चलते कागज, जैसे—चैक, प्रोनोट या हुंडी।

उल्लेख पिछले अध्याय मे किया जा चुका है।

न्यास (ट्रस्ट)

न्यास (ट्रस्ट) की स्थापना उस समय होती है जब कि ट्रस्टकर्त्ता स्पष्ट और असदिग्ध शब्दो या कार्यो द्वारा ट्रस्ट-स्थापन सबधी अपनी इच्छा का, ट्रस्ट के प्रयोजन का, ट्रस्ट-सपत्ति का और उससे लाभान्वित होनेवाले व्यक्ति का निर्देश करता है। यह भी आवश्यक है कि ट्रस्टकर्त्ता ट्रस्टी (न्यासी) को सपत्ति हस्तान्तरित कर दे। यदि वह स्वय ट्रस्टी हो या वह ट्रस्ट की स्थापना वसीयत द्वारा करे तो उसे हस्तांतरण की आवश्यकता नही। यदि ट्रस्ट अचल सपत्ति के सबध मे हो तो वह रजिस्टर्ड-लेख या वसीयत द्वारा ही स्थापित किया जाना चाहिए। यदि वह चल सपत्ति के संबध मे हो तो वह उक्त प्रकारो मे या ट्रस्टी को सपत्ति का अभिदान देकर स्थापित किया जा सकता है। ट्रस्ट किसी भी निजी या सार्वजनिक प्रयोजन के लिए स्थापित किया जा सकता है। निजी प्रयोजन के ट्रस्ट का उदाहरण है, किसी व्यक्ति द्वारा अपने बच्चो की शिक्षा के लिए अथवा अपना कर्ज उतारने के लिए स्थापित ट्रस्ट। सार्वजनिक ट्रस्ट के उदाहरण ये है—स्कूल, मदिर, अस्पताल या मस्जिद। यह कहना अनावश्यक है कि ट्रस्ट का उद्देश्य गैर-कानूनी नही होना चाहिए। यदि उसका प्रयोजन अनैतिक या गैर-कानूनी है तो ट्रस्ट कायम नही हो सकता—जैसे एक वेश्यालय चलाने के लिए ट्रस्ट या हस्तान्तरणकर्त्ता के साहूकारो (ऋणदाताओ) को धोखा देने के लिए सपत्ति का हस्तान्तरण।

नीचे निजी ट्रस्टो के कुछ नियम दिये गए है। कोई भी बालिग और स्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति ट्रस्ट बना सकता है। यदि नाबालिग द्वारा या उसकी ओर से ट्रस्ट की स्थापना की जाती है तो उसके लिए जिला न्यायालय या उच्च न्यायालय की मजूरी ली जानी चाहिए। सपत्ति धारण करने के योग्य कोई भी व्यक्ति ट्रस्टी हो सकता है, किंतु यदि ट्रस्ट के काम मे विवेक के प्रयोग की आवश्यकता हो तो केवल बालिग और स्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति ही ट्रस्टी हो सकता है। कोई भी व्यक्ति ट्रस्टी का पद स्वीकार करने के लिए बद्ध नही है। वह उसे अस्वीकार कर सकता है, किंतु एक बार स्वीकार करने के बाद वह उसे कुछ निश्चित ढगो द्वारा ही छोड सकता है। उदाहरण के रूप मे, वह न्यायालय की अनुमति से पदत्याग कर सकता है; किंतु न्यायालय द्वारा मुक्त किये जाने से पूर्व उसे अपने दायित्व निभाने चाहिएं। कोई भी व्यक्ति लाभग्राही (लाभाधिकारी) हो सकता है और ट्रस्ट सपत्ति से लाभान्वित हो सकता है किंतु वह चाहे तो लाभ-ग्रहण से इन्कार कर सकता है और उसे छोड सकता है। ट्रस्टी का कर्त्तव्य है कि वह ट्रस्ट के प्रयोजन को पूरा करे, ट्रस्टकर्त्ता द्वारा ट्रस्ट-स्थापन के समय दिये गए आदेश का पालन करे और ट्रस्ट-सपत्ति की उसी भाँति देख-भाल करे जैसी कि एक साधारण व्यवहार-कुशल व्यक्ति अपनी सपत्ति की करेगा। यदि उसे कोई कठिनाई अनुभव होती हो

तो वह जिला या उच्च न्यायालय के पास मार्ग-दर्शन के लिए निवेदन कर सकता है। ट्रस्टी को चाहिए कि वह ऐसी तमाम रकमें जो अपर्याप्त और जोखिमयुक्त प्रतिभूति (सिक्योरिटी) के आधार पर लगी हुई हो—जैसे प्रोनोट या व्यक्तिगत जिम्मेदारी पर किसी को उधार दी गयी रकम—उन्हें वसूल करे और अधिकृत प्रतिभूतियों में—जैसे सरकारी प्रतिभूतियों (ऋण-पत्रों) में लगाये। वह उस पैसे को भारत-स्थित अचल-संपत्ति के प्रथम या मूल बंधक में उसकी दो-तिहाई कीमत तक या किसी इमारत के बचाव में उसकी आधी कीमत तक लगा सकता है। ट्रस्टी का यह परम कर्तव्य है कि वह ट्रस्ट-सम्पत्ति की रक्षा करे, उसके संबंध में अपनी अधिकृति की रक्षा करे और उसका साफ व सही हिसाब रखे तथा लाभग्राही व्यक्ति को ट्रस्ट-सम्पत्ति की स्थिति व उसकी राशि के संबंध में सही जानकारी दे। उसे ट्रस्ट के प्रयोजन की पूर्ति करनी चाहिए और ट्रस्टकर्त्ता या न्यायालय के आदेश का पालन करना चाहिए। उसे संपत्ति का अपने लाभ के लिए अथवा ट्रस्ट-कार्य से असंबंधित अन्य किसी कार्य के लिए उपयोग नहीं करना चाहिए, न उसे ट्रस्ट सम्पत्ति अपने को, अपने हिसाब में या किसी तीसरे व्यक्ति के रूप में बेचनी या बंधक रखनी चाहिए। उसे ट्रस्ट-सम्पत्ति के संबंध में अपना या लाभग्राही के प्रतिकूल पड़नेवाला किसी तीसरे का स्वत्वाधिकार खड़ा नहीं करना चाहिए और न ट्रस्ट सम्पत्ति अपने को या सह-ट्रस्टी को अपनी निजी जिम्मेदारी या बंधक के बदले उधार देनी चाहिए। यदि ट्रस्टी अपने कर्त्तव्यों की उपेक्षा करता है तो इससे होनेवाली हानि के लिए वह लाभग्राही के प्रति उत्तरदायी होगा। यदि वह ट्रस्ट संपत्ति को ठीक तरह से नहीं लगाता या उस पर ब्याज या डिविडेण्ट (लाभांश) इकट्ठा नहीं करता तो उसे दर के अर्धवार्षिक हिसाब से चक्रवृद्धि ब्याज भरना होगा। ट्रस्ट के संबंध में अपनी ओर से किये गए सभी उचित खर्च वह वसूल कर सकता है और ट्रस्ट-कार्य के सम्पादन के लिए सभी उचित और आवश्यक कार्य कर सकता है। उदाहरण के लिए वह ट्रस्ट के पक्ष में या विपक्ष में किसी दावे का समझौता कर सकता है। लाभग्राही को ट्रस्टी से, ट्रस्ट-दायित्व के पालन के लिए तथा ट्रस्ट का हिसाब और अपना अधिकार-पत्र दिखाने के लिए कहने का अधिकार है। वह न्यायालय में उस ट्रस्टी को हटाने और दूसरा नियुक्त करने के लिए आवेदन कर सकता है। ट्रस्टी द्वारा अनुचित प्रकार से किसी को दी गयी ट्रस्ट-सम्पत्ति वह वापस ले सकता है। ऊपर जिन नियमों का निर्देश किया गया है वे न केवल उन ट्रस्टों के संबंध में लागू होते हैं जो एक व्यक्ति द्वारा दूसरे के पक्ष में स्पष्ट रूप से स्थापित किये जाते हैं, वरन् उन स्थितियों में भी लागू होते हैं जिन में ट्रस्ट की उत्पत्ति कानून द्वारा होती है। उदाहरण के लिए यदि **क** अपने पैसे से **ख** के नाम में संपत्ति खरीदता है तो **ख** को **क** का ट्रस्टी समझा जायगा। भारत में उसे (**ख** को) 'बैनामेदार' कहते हैं और उक्त

हस्तातरण 'बेनामी हस्तातरण' कहलाता है। यदि **ख** **क** पर अनुचित प्रभाव डालकर या उसे धोखा देकर कोई लाभ प्राप्त करता है तो वह **क** के लिए ही वह लाभ धारण करता है। इस तथा अन्य स्थितियो मे **ख** के कर्त्तव्य और दायित्व ट्रस्टी की भाति ही है।

धार्मिक या पारमार्थिक सार्वजनिक ट्रस्ट विशेष नियमो द्वारा शासित होते है। एक हिदू मंदिर में स्थापित मूर्ति के पक्ष में सपत्ति का दान दिया जा सकता है। इसी प्रकार मस्जिद के संबध मे भी किया जा सकता है। यदि दाता ट्रस्टी नियुक्त नही करता तो एडवोकेट-जनरल या ट्रस्ट मे उपका हित रखनेवाले दो व्यक्ति उसकी लिखित स्वीकृति से न्यायालय से ट्रस्टी की नियुक्ति के लिए जिला या उच्च न्यायालय मे वाद चला सकते है। ये व्यक्ति अन्य सहायता या सपत्ति के लिए भी वाद प्रस्तुत कर सकते है। ये विश्वासघात या ट्रस्ट-भग के दोषी ट्रस्टी को हटाने के लिए न्यायालय से कह सकते है। वे सबधित सस्था के लिए एक प्रबंध-योजना बनाने के लिए न्यायालय से प्रार्थना कर सकते है। राज्यो मे इस सबंध मे विशेष कानून बने हुए है जैसे मद्रास मे 'मद्रास हिदू धार्मिक दान प्रतिष्ठा अधि-नियम' (मैद्रास हिदू रिलीजियस एण्डाउमेण्ट्स एक्ट) जो दान-प्रतिष्ठा सबधी कार्यो का नियमन करता है।

हमने पीछे सपत्ति के स्वामित्व और भुक्ति-अधिकार के हस्तातरण की चर्चा की है। अब हम एक और अधिकार की चर्चा करेंगे जिसे उपकरण या आमुक्ति (ईज़मेण्ट) कहते है। उपकरण या आमुक्ति ऐसे अधिकारो के नाम है जो एक भूमि के स्वामी को अपनी भूमि का और अच्छा उपभोग करने के लिए दूसरे की भूमि पर प्राप्त होते है, जैसे मार्ग का अधिकार या मकान मे वायु तथा प्रकाश प्राप्त करने का अधिकार। उसे अन्य की भूमि पर कुछ करने या करते रहने अथवा न करने देने या करने से रोकते रहने का अधिकार होता है, किंतु भुक्ति करने या जारी रखने का नही। उसकी अपनी भूमि 'अधिशासक भूमि' और अन्य की भूमि 'अधिशासित भूमि' कहलाती है। उनके स्वामी क्रमश. 'अधिशासक स्वामी' और 'अधिशासित स्वामी' कहलाते है। एक व्यक्ति का उपकरण तभी उत्पन्न होता है जब वह उसे प्राप्त कर लेता है। दूसरी ओर भूमि के प्रत्येक स्वामी को उसके समुचित या लाभकारी उपभोग के लिए कुछ प्राकृतिक अधिकार प्राप्त होते है—जैसे साथ की भूमि द्वारा अपनी भूमि के सहारे का अधिकार।

उपकरण या आमुक्ति

उपकरण निम्नांकित तरीको से प्राप्त किया जाता है—अधिशासक स्वामी अधिशासित-स्वामी से अनुदान के रूप में उसे प्राप्त कर सकता है। उदाहरण के लिए अधिशासक-स्वामी अपनी जमीन पर से उसे रास्ता इस्तेमाल करने दे सकता है। इस प्रकार का अनुदान अनुमति या लायसेंस से—जो रद्द किये जा

सकते हैं—भिन्न होता है। यह अनुदान मौखिक या लिखित पत्र द्वारा किया जा सकता है। यदि यह लिखित-पत्र द्वारा हो तो यह रजिस्टर्ड होना चाहिए। २० वर्ष तक निरंतर उपयोग द्वारा भी उपकरण (आसक्ति) प्राप्त किया जा सकता है। मकान में वायु और प्रकाश प्राप्त करने का उपकरण, वायु और प्रकाश के २० वर्ष तक निरंतर और शांतिपूर्वक अधिकारवत् उपभोग द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। पास की जमीन से अपने मकान के सहारे का अधिकार भी इसी भांति प्राप्त किया जा सकता है। रास्ते का अधिकार रास्ते के २० वर्ष तक शांतिपूर्वक निर्बाध और मुक्त प्रयोग द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरण के रूप में यदि **क ख** की जमीन पर से उसकी अनुमति द्वारा रास्ते का इस्तेमाल करता रहा है तो यह इस्तेमाल या उपभोग अधिकारवत् नहीं कहलायगा और न वह तब अधिकारवत् कहलायगा जबकि २० वर्ष की सम्पूर्ण या आंशिक अवधि में **क** **ख** की उस जमीन का पट्टेदार था। कुछ अधिकार निरंतर और अबाध उपभोग द्वारा प्राप्त नहीं किये जा सकते। उदाहरण के लिए कोई व्यक्ति खुली जमीन में वायु और प्रकाश के मुक्त आगमन संबंधी अधिकार नहीं प्राप्त कर सकता। वह प्रकाश या वायु का अधिकार किसी विशिष्ट प्रवेशमार्ग, जैसे मकान का कोई दरवाजा या खिड़की, के संबंध में प्राप्त कर सकता है। कोई व्यक्ति जमीन के नीचे किसी निर्दिष्ट प्रवाहिनी के रूप में न बहनेवाले जल के निरंतर बहने का अधिकार नहीं प्राप्त कर सकता और न वह जमीन की सतह पर नदी रूप में न बहनेवाले और किसी जलाशय, तालाब के रूप में या अन्यथा स्थायी रूप में न एकत्रित होनेवाले जल के संबंध में कोई अधिकार प्राप्त कर सकता है। यदि अधिकार अधिकार-विषय या जिस संपत्ति पर उसका प्रयोग हो उसके पूर्ण विनाश की ओर प्रवृत्त होता है तो वह प्राप्त नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए किसी गाँव के निवासी २० वर्ष के प्रयोग द्वारा किसी तालाब में मछली पकड़ने या किसी जमीन से लकड़ी काटने के अधिकार का दावा नहीं कर सकते। उपकरण प्राप्त करने का एक और तरीका प्रथा या रिवाज है। जैसे, एक गाँव के काश्तकारों का सामान्य चरागाह में अपने पशु चराने का या किसी जमीन के गाहन (खलिहान) की जमीन के रूप में प्रयोग करने का अधिकार। देश के कुछ भागों में—जैसे पूर्वी पंजाब व गुजरात में—प्रथा द्वारा गोपनीयता का अधिकार मान्य है, अर्थात् अपने पड़ोसी को अपना मकान इस तरह बनाने से रोकने का अधिकार कि उसके मकान से साथ के मकान के वे भाग दृष्टिगोचर हों जिनमें पर्दानशीन स्त्रियाँ उठती-बैठती हैं। जब कोई व्यक्ति प्रथात्मक उपकरण का अवलम्बन लेता है तो उसके लिए यह सिद्ध करना आवश्यक है कि प्रथा प्राचीन, निश्चित और समुचित है। कई बार कानून के प्रवर्तन से उपकरण उत्पन्न हो सकता है। जैसे—**क** के पास जमीन के दो टुकड़े हैं और जमीन के एक टुकड़े के उपभोग

के लिए दूसरे पर से होकर गुजरना जरूरी है । **क** से पहले टुकड़े को खरीदने-वाले **ख** को उसी रास्ते का अधिकार होगा जिस उसके विक्रय से पहले **क** उपयोग मे ला रहा था।

भूमि के स्वामी को ये कई प्राकृतिक अधिकार प्राप्त होते है—उसे अपनी भूमि के—जो उस पर बने मकानो के भार से दबी हुई न हो—पाश्व की भूमि से सहारे या अवलम्बन का अधिकार होता है। यदि पाश्व की भूमि पर की गई किसी कार्यवाही से उसकी भूमि खिसक या धसक जाय तो उसे शिकायत करने का अधिकार होता है। मकान सहित भूमि के पाश्व की भूमि से सहारे का अधिकार पूर्वोक्त प्रकारो मे से किसी एक द्वारा प्राप्त किया गया होना चाहिए। भूमि के स्वामी को अपनी भूमि तक वायु के मुक्त रूप से तथा अन्य व्यक्ति द्वारा अनुचित रूप से खराब किये बिना, बहने का अधिकार है। अत यदि पाश्व के कारखाने से उठ रहा हानिकारक धुआँ वायु को खराब करता है तो वह उसकी शिकायत कर सकता है। किंतु भूमि के स्वामी को वायु और प्रकाश के निर्बाध रूप से आगमन का प्राकृतिक अधिकार नही है। यह अधिकार उसके द्वारा प्राप्त किया गया होना चाहिए और यदि वह उसे प्राप्त कर लेता है तो वह ऐसी किसी बात की, जो उसके आराम मे महत्त्वपूर्ण विघ्न उत्पन्न करती हो, शिकायत कर सकता है। एक भूमि-स्वामी का यह प्राकृतिक अधिकार होता है कि उसकी भूमि के साथ से या उसके नीचे से बहनेवाले जल को कोई व्यक्ति अनुचित रूप से खराब न करे। यदि उसकी भूमि किसी प्राकृतिक नदी से मिली हुई है तो उसे उस नदी से अपने घर के तथा पशुओं के लिए और उचित मात्रा मे सिचाई या वस्तु-निर्माण कार्य के लिए जल लेने का प्राकृतिक अधिकार है। यदि उसकी भूमि नदी की सीमा से मिली हुई न हो तो वह उस भूमि के इस्तेमाल के लिए जल नही ले सकता। उसका इस्ते-माल उचित मात्रा मे होना चाहिए—न कि ऐसा जो दूसरे स्वामियो को भी उसी प्रकार के अधिकारोपयोग से वंचित करे। वह इस बात के लिए बद्ध है कि जल को उसकी प्राकृतिक अवस्था मे, उसकी मात्रा, दिशा, वेग या तापमान में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये बिना, आगे जाने दे। वह बाँध आदि बाँधकर जल के प्रवाह मे बाधा नही पहुँचा सकता और उसके द्वारा नदी के ऊपरी भाग (आगमन की दिशा मे स्थित) के भू-स्वामी की भूमि को जल-मग्न नही कर सकता। भूमि के स्वामी के प्राकृतिक नदी सबधी अधिकार सरकार द्वारा सार्वजनिक लाभ के लिए जल-वितरण और बाँध व जलाशय आदि बनाने सबधी अधिकारो के अतर्गत होते है। कृत्रिम नदी, जैसे सरकार द्वारा सिचाई के लिए बनाई गई नाली आदि, में साथ की भूमि के स्वामियो को उक्त अधिकार नही होते, किंतु वे दीर्घकालिक उपभोग या उस कृत्रिम नदी के स्वामी की स्थिति से ऐसे अधिकार प्राप्त कर सकते है। एक भूमि स्वामी, जिसकी भूमि पर वर्षा का जल गिरकर किसी

निर्दिष्ट प्रवाह के रूप मे बाहर नही बहता, अपनी भूमि पर उस जल को इकट्ठा कर उसका स्वेच्छापूर्वक उपभोग कर सकता है और इसके लिए उसे कोई रोक नही सकता। वह निचली सतह की ओर जल प्रवाहित होने दे सकता है और निचली सतहवाला व्यक्ति बाँध या मेड़ आदि बना कर उसे प्रवाहित होने से नही रोक सकता। भूमि के स्वामी को भूमि के नीचे किसी अनिर्दिष्ट और अज्ञात रूप मे प्रवाहित होनेवाले जल के सबध मे कोई प्राकृतिक अधिकार नही होता। यदि ऊँची सतह की भूमि का स्वामी कुआँ या खान खोद कर उस प्रवाह मे बाधा उपस्थित करे तो वह शिकायत नही कर सकता। किंतु यदि वह जल गदा या खराब करता है तो वह आपत्ति कर सकता है।

यदि किसी व्यक्ति के उपकरण (आमुक्ति) या प्राकृतिक अधिकार मे किसी ने बाधा उपस्थित की हो वह उस पर (दोषी पर) हर्जाने के लिए या उनमे बाधा पहुँचाने से रोकने के संबंध मे आज्ञप्ति के लिए न्यायालय मे दावा कर सकता है। संतप्त व्यक्ति अपने हाथ मे कानून लेकर उपकरण मे पहुँचाई गई बाधा का अन्त नही कर सकता। उदाहरण के लिए उसके अपने मार्ग मे प्रकाश-मार्ग मे रुकावट पैदा करनेवाली दीवार को वह नही गिरा सकता।

किसी संपत्ति के और अच्छे उपभोग के लिए प्राप्त उपकरण या प्राकृतिक अधिकार उस संपत्ति के हस्तांतरण के साथ ग्रहीता के पास चला जाता है। अतः यदि **क ख** से भूमि खरीदता है तो **क** को **ग** की भूमि पर से मार्ग का वह अधिकार मिलेगा जो **ख** को विक्रय से पहले प्राप्त था।

लायसेंस (अनुज्ञा)

क ख को अपनी संपत्ति पर प्रवेश की और उसके इस्तेमाल की अनुमति या जैसा कि कहते है, अनुज्ञा (लायसेंस) दे सकता है। ऐसा वह स्पष्ट शब्दो द्वारा जैसे **ख** को आमंत्रित करके कर सकता है। यह अनुमति **क** के आचरण से भी हो सकती है। यदि वह पास खड़ा रहता है और आपत्ति नही करता जबकि **ख** अभ्यस्त की भाँति उसका प्रयोग करता है तो वह **ख** पर अतिक्रमण का दावा नही कर सकता। यदि **क** ने **ख** को अपने बाग मे लगे हुए पेड़ के फल बेच दिये है तो यहाँ **क** की **ख** को फल लेने के लिए बाग मे प्रवेश करने की अनुमति अनुमानित है। संपत्ति के हस्तांतरण के लिए जहाँ कागज लिखने और रजिस्ट्री कराने आदि औपचारिक बातों की आवश्यकता होती है वहाँ लायसेंस मौखिक या बिना रजिस्ट्रीकृत लेख द्वारा हो सकता है। लायसेंस अन्य बातों मे भी संपत्ति के हस्तांतरण से भिन्न होता है। वह बंधक या पट्टे की भाँति संपत्ति में कोई हित या स्वार्थ उत्पन्न नही करता। लायसेंस निजी या वैयक्तिक होता है और लायसेंसधारी उसे किसी तीसरे व्यक्ति को हस्तांतरित नही कर सकता। लायसेंसदाता दो स्थितियों को छोड़कर अन्य में लायसेंस भंग कर सकता है—(१) जहाँ लायसेंस के

साथ संपत्ति भी हस्तांतरित की गई हो—जैसे कि बंधक या पट्टा (२) जहाँ लायसेंसधारी ने लायसेंस के अनुसार भूमि पर कोई स्थायी प्रकार का कार्य किया हो। लायसेंस के भंग होने पर लायसेंसधारी को संपत्ति छोड़ने के लिए तथा उससे अपनी वे चीजें हटाने के लिए, जिन्हें रखने की उसे अनुमति थी, उचित समय प्राप्त करने का अधिकार है। लायसेंस भंग होने के बाद उसे संपत्ति पर रहने का कोई अधिकार नहीं है और यदि वह रहता है तो उसे अतिक्रमणकर्ता समझा जायगा।

अब हम कानून की प्रवर्तना द्वारा हस्तांतरण के दो प्रकारों की चर्चा करेंगे। वे हैं—परिक्षीणता[1] (जिसमें दिवालियापन भी शामिल है) और भूमि-अर्जन।

परिक्षीणता

हो सकता है एक कर्जदार अपने पास उपलब्ध धन से जितना कर्ज चुका सकता हो, उससे अधिक का वह कर्जदार हो। ऐसी स्थिति में लेनदारों[2] को यदि आपस में ही कर्ज का निबटारा करने के लिए छोड़ दिया जाय तो परिणाम असंतोषजनक हो सकता है। एक ओर संभव है कि लेनदार उसे (कर्जदार को) यहाँ तक परेशान करे कि वह अपनी संपत्ति और लेनदारी वसूल न कर पाये और कर्ज न चुका सके। दूसरी ओर यह भी संभव है कि कुछ लेनदार अन्य लेनदारों को हानि पहुँचा कर स्वयं लाभ उठा लें। परिक्षीणता के कानून का उद्देश्य ऐसे परिणामों को रोकना है, और इसके लिए वह कर्जदार की समस्त संपत्ति एक सरकारी अधिकारी को दिये जाने की व्यवस्था करता है जो उसे या उसके मूल्य को सब लेनदारों में समान रूप से बाँट दे। यह व्यवस्था लेनदारों के लिए लाभकारी है, क्योंकि इस प्रकार उन्हें अपने दावों के बदले अधिक-से-अधिक संभव पैसा मिल जायगा। यह

---

१. **परिक्षीणता (दिवालियापन)—किसी व्यक्ति का अपने कर्ज उतार सकने की स्थिति में न होना। परिक्षीण कोई भी व्यक्ति हो सकता है, जबकि दिवालिया व्यापारी ही हो सकता है।**

२. **लेनदार—(क्रेडीटर) हिन्दी में क्रेडीटर के लिए उत्तमर्ण, ऋणदाता और साहूकार व महाजन शब्दों का प्रयोग होता है। उत्तमर्ण कठिन और अप्रचलित शब्द है। इसलिए उसे यहां नहीं लिया गया है। ऋणदाता शब्द क्रेडीटर के पूरे अर्थ का बोधक नहीं है, क्योंकि व्यक्ति ऋण दिये बिना भी क्रेडीटर हो सकता है (जैसे कोई व्यक्ति ऋण लिये बिना भी ऋणी हो सकता है) और तब उसे ऋणदाता कहना संगत नहीं होगा। साहूकार व महाजन भी ऋणदाता होते हैं और ऋण देने का व्यवसाय करते हैं। अतः यहाँ क्रेडीटर के पूरे अर्थ का बोध कराने के लिए लेनदार (जिसका पैसा निकलता हो) का ही प्रयोग किया गया है।**

कर्जदार के लिए भी लाभकारी है, क्योंकि वह अपने लेनदारों द्वारा कराई जा सकने वाली गिरफ्तारी और कुर्की से बच जाता है। लेनदारों को जब उसकी सम्पत्ति प्रतिफल रूप में बाँट दी जाती है तब उसे अनेक दावों से पूर्ण मुक्ति प्राप्त हो जाती है और वह जीवन या व्यापार का पुनः प्रारंभ कर सकता है।

इस विषय में कानून दो अधिनियमों में निहित है—अर्थात प्रेसीडेन्सी नगर परिक्षीणता अधिनियम (१९०९ का तृतीय) (दि प्रेसीडेन्सी टाउन इन्सॉल्वेंसी एक्ट)—में जो कलकत्ता, मद्रास और बंबई नगरों में ही लागू होता है और प्रांतीय परिक्षीणता अधिनियम (१९२० का पंचम) (दि प्रॉविन्शियल इन्सॉल्वेंसी एक्ट)—में, जो शेष भारत में लागू होता है। कुछ गौण बातों को छोड़कर शेष के संबंध में दोनों अधिनियमों में मिलती-जुलती व्यवस्थाएँ हैं। जो अधिकारी परिक्षीण व्यक्ति की संपत्ति ग्रहण करता है और उसका प्रशासन संभालता है वह उक्त तीन नगरों में ऑफिशियल एसाइनी[1] (सरकारी प्रति-धारक) कहलाता है और अन्यत्र ऑफिशियल रिसीवर[2] (सरकारी प्रतिग्रहीता)। यह वह अधिकारी होता है जिसके नाम न्यायालय के आदेशानुसार परिक्षीण व्यक्ति की समस्त सम्पत्ति हस्तांतरित हो जाती है। इस विषय की चर्चा में हम उसे प्रतिग्रहीता कहेंगे।

कोई कर्जदार या उसका कोई लेनदार उसे परिक्षीण रूप में निर्णीत ज्ञापित कराने के लिए न्यायालय में प्रार्थनापत्र दे सकता है। यहाँ न्यायालय से अभिप्राय कलकत्ता, बम्बई और मद्रास नगरों में उच्च न्यायालय और अन्य राज्यों में जिला न्यायालय से है। राज्य सरकार इस संबंध में अन्य न्यायालयों को भी अधिकार दे सकती है और कुछ राज्यों में सब-जज और मुंसिफों को अधिकार दिये गए हैं। कर्जदार स्वयं भी परिक्षीण रूप में निर्णीत ज्ञापित किये जाने के लिए प्रार्थना पत्र दे सकता है, बशर्ते कि वह अपने कर्ज उतारने में असमर्थ हो और उसके कर्ज ५०० रुपये या उससे अधिक मूल्य के हों अथवा डिगरी न भुगता सकने के फलस्वरूप वह गिरफ्तार कर लिया गया हो या उसकी सम्पत्ति की कुर्की कर ली गई हो। यदि लेनदार या लेनदारों की कर्जदार की तरफ निकलनेवाली राशि ५०० रुपये या अधिक है और प्रार्थना पत्र से तीन महीने की अवधि के भीतर उसने (कर्जदार ने) परिक्षीणता का कार्य किया है तो लेनदार भी प्रार्थनापत्र दे सकता है। यह कार्य विभिन्न रूपों में हो सकता है—जैसे—कर्जदार द्वारा अपने लेनदारों के लाभ के लिए किसी तीसरे व्यक्ति के नाम अपनी समस्त सम्पत्ति का हस्तांतरण, अपने लेनदारों को धोखा देने के लिए सम्पत्ति का हस्तांतरण, एक लेनदार से दूसरे को तरजीह, किसी

---

१. किसी की सम्पत्ति का किसी नियोग विशेष के हेतु किसी को सौंपा जाना। अन्य के प्रति धारण करनेवाला—प्रतिधारक।

२. अन्य की ओर से ग्रहण करनेवाला—प्रतिग्रहीता।

डिगरी के भुगतान मे उसकी गिरफ्तारी या उसकी सम्पत्ति की बिक्री, अपने लेनदारों को देर करने या उन्हे असफल करने के उद्देश्य से अपने-आपको अपने घर या व्यापार करने की रोजमर्रा की जगह से अनुपस्थिति करना या भारत से बाहर चले जाना या बाहर रहना। कर्जदार द्वारा स्वय परिक्षीणता-निर्णय के लिए दिया गया प्रार्थनापत्र स्वत. ही परिक्षीणता का कार्य है।

परिक्षीणता निर्णयादेश का यह परिणाम होता है कि परिक्षीण व्यक्ति का कुल माल-मत्ता प्रतिग्रहीता को हस्तान्तरित हो जाता है। उसके बाद कोई भी लेनदार परिक्षीणता न्यायालय से आज्ञा लिये बिना अपना कर्ज वसूल करने के लिए कर्जदार के विरुद्ध दावा नही कर सकता। लेनदारो को सरकारी प्रतिग्रहीता द्वारा कर्जदार के माल-मत्ते के वितरण की प्रतीक्षा करनी चाहिए। किंतु यह बात प्रत्याभूत लेनदारो पर लागू नही होती। अत यदि **ख** की सपत्ति **क** के यहाँ बधक है तो **ख** के परिक्षीण-निर्णीत होने पर भी **क** बधक के सबध मे उस पर दावा कर सकता है। ऐसे दावे मे **क** को सरकारी प्रतिग्रहीता का भी बाद में शामिल कर लेना चाहिए और बंधक की सम्पत्ति के विक्रय द्वारा बन्धक की रकम अदा करने के बाद बची हुई सपत्ति प्रत्याभूत लेनदारो में बाँटी जाने के लिए सरकारी प्रतिग्रहीता के पास जायगी। परिक्षीणता निर्णयादेश का एक और परिणाम यह होता है कि उस आदेश के बाद कर्जदार द्वारा सपत्ति का हस्तान्तरण अमान्य होगा और सरकारी प्रतिग्रहीता लेनदारो के लाभ के लिए उसे लेने से नही रोकेगा। यदि उसने उक्त आदेश से पूर्व, किंतु उसे परिक्षीण-निर्णीत करने के लिए दिये गए प्रार्थनापत्र के न्यायालय मे दिये जाने के बाद सपत्ति का हस्तातरण किया है, तो भी वह अमान्य होगा। ऐसी स्थिति मे वह मान्य तभी हो सकेगा जब कि हस्तान्तरणग्रहीता ने उसे किसी प्रतिफल के बदले और उक्त प्रार्थनापत्र की सूचना के बिना दिया हो। प्रार्थनापत्र के न्यायालय म विचारार्थ स्वीकृत हो जाने के बाद किसी डिगरीदार द्वारा डिगरी को विक्रय द्वारा क्रियान्वित करने के फलस्वरूप प्राप्त की गई रकम सरकारी प्रतिग्रहीता की होती है, न कि उस डिगरीदार की।

आर्थिक संकट मे पडा हुआ व्यक्ति परिक्षीणता की आशा मे प्राय कुछ धोखे देने के काम कर डालता है। वह किसी मित्र या सबधी को अपनी सपत्ति हस्तान्तरित कर देता है, ताकि वह सपत्ति लेनदारो की पहुँच से बाहर हो जाय। वह किसी खास लेनदार को तरजीह देता है या उसे अपनी सपत्ति दे देता है और इस प्रकार अन्य लेनदारो को उनके न्यायसंगत पैसे से वचित करता है। ऐसी स्थितियों मे न्यायालय को कुछ अधिकार प्राप्त होते हैं। वह परिक्षीणता-ज्ञापन के लिए दिये गए प्रार्थनापत्र से दो वर्ष पूर्व तक के सभी हस्तातरणों को निष्प्रभाव कर देगा। किंतु विवाह के प्रतिफल के बदले और मूल्य देकर सद्भावना के साथ खरीदने-

वाले व्यक्ति को दिये गए हस्तांतरण छोड़ दिये जाते हैं। इसी प्रकार किसी कर्जदाता को तरजीह देने के लिए उक्त प्रार्थनापत्र से तीन महीने की अवधि के भीतर किया गया हस्तांतरण या दी गई रकम भी निष्प्रभाव कर दी जायगी। निष्प्रभाव करने का परिणाम यह होगा कि हस्तांतरणग्रहीता द्वारा प्राप्त की गई संपत्ति या रकम सभी कर्जदाताओं के लाभ के लिए सरकारी प्रतिग्रहीता को उपलब्ध होगी।

परिक्षीणता-निर्णयादेश के बाद परिक्षीण व्यक्ति यदि चाहे तो डिगरी के कर्जों को न चुका सकने के फलस्वरूप अपनी गिरफ्तारी या नजरबंदी के विरुद्ध संरक्षण प्राप्त करने के लिए प्रार्थनापत्र दे सकता है और आदेश प्राप्त कर सकता है। वास्तव में जैसे ही परिक्षीणता-ज्ञापन के लिए प्रार्थनापत्र न्यायालय में विचारार्थ स्वीकृत हो वैसे ही और परिक्षीणता-निर्णयादेश से पूर्व वह संरक्षण के लिए प्रार्थनापत्र दे सकता है।

निर्णयादेश के बाद लेनदारों को अपने-अपने कर्ज प्रमाणित करने चाहिएं और उसके बाद न्यायालय लेनदारों की एक सूची तैयार करेगा। प्रतिग्रहीता का कर्त्तव्य है कि वह परिक्षीण व्यक्ति की सभी संपत्ति वसूल करले और उसे या उसके मूल्य को प्रत्याभूत कर्जदाताओं को छोड़कर अन्य में बाँट दे। प्रत्याभूत लेनदार को अपने कर्ज की वसूली के लिए साधारण कर्ज की प्रत्याभूति में ली गई संपत्ति को ही दृष्टि में रखना चाहिए। यदि फिर भी कुछ कर्ज शेष रह गया हो और कर्जदार ने उसे चुकाने की जिम्मेदारी ली हो तो वह एक साधारण लेनदार की भाँति कर्ज का शेष भाग सिद्ध कर सकता है। परिक्षीण व्यक्ति की संपत्ति के बँटवारे में अग्रलिखित कर्जों को ही प्राथमिकता प्राप्त है—सरकार का या किसी स्थानीय बोर्ड या किसी नगरपालिका का कर्ज, परिक्षीणता-ज्ञापन के लिए दिये गए प्रार्थनापत्र से पूर्व चार महीने की अवधि में किये गए परिक्षीण के काम के बदले निकलनेवाली बीस रुपये तक की तनख्वाह या मजदूरी। प्रतिग्रहीता को चाहिए कि वह संपत्ति के प्रबंधआदि पर हुए खर्च को काटकर शेष रकम लेनदारों में (कर्ज के अनुपात से) बाँट दे। बाँटने के बाद यदि कुछ पैसा शेष रहे—जो एक दुर्लभ घटना है—तो वह परिक्षीण व्यक्ति का होगा।

निर्णयादेश में एक अवधि का निर्देश होता है, जिसके भीतर कर्जदार को विमुक्ति के आदेश के लिए न्यायालय में आवेदन करना चाहिए। विमुक्ति आदेश मिलने का परिणाम यह होता है कि वह सब कर्जों से छूट जाता है। किंतु कुछ कर्ज और दायित्व फिर भी रह जाते हैं। जैसे—सरकार का कर्ज, या कर्जदार द्वारा किये गए धोखे के बदले उसका दायित्व। कुछ स्थितियों में न्यायालय विमुक्ति का आदेश देने से इन्कार कर देता है। जैसे—कर्जदार के धोखे और लापरवाही के आचरण की स्थिति, जिसके फलस्वरूप वह परिक्षीण हुआ, या जिसके कारण

उसके पास अपर्याप्त धन रह गया और लेनदारों को रुपये में आठ आने भी न मिल सके। अ-विमुक्त परिक्षीण एक निन्दात्मक शब्द है। वह किसी व्यक्ति को अपने अ-विमुक्त परिक्षीण होने की बात बताये बिना उससे पचास या उससे अधिक रुपये के मूल्य की वस्तु उधार लेने के लिए निषेधात्मक कानूनी निर्योग्यता धारण किये रहता है। यदि वह इस नियम का उल्लंघन करता है तो उसे ६ महीने की कैद या जुर्माने या दोनों की सजा दी जा सकती है। परिक्षीण-निर्णीत व्यक्ति को नागरिक के कुछ विशेषाधिकार नहीं दिये जाते। वह मजिस्ट्रेट नहीं बनाया जा सकता और न उसे स्थानीय या नगरपालिका का सदस्य चुना जा सकता है। किंतु यदि वह न्यायालय से विमुक्ति आदेश और यह प्रमाणपत्र प्राप्त करले कि उसकी परिक्षीणता उसके दुर्भाग्य का फल थी, न कि उसके कदाचार की तो उसकी यह निर्योग्यता समाप्त हो जायगी।

अंत में यह ध्यान देना आवश्यक है कि अपने कर्ज न चुका सकनेवाली कम्पनी परिक्षीण-निर्णीत नहीं की जा सकती। वह भारतीय कम्पनी अधिनियम के अंतर्गत समाप्त कर दी जानी चाहिए। एक नाबालिग परिक्षीण निर्णीत नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह व्यक्तिगत रूप से किसी कर्ज के लिए उत्तरदायी नहीं होता।

भूमि का अर्जन

स्पष्ट ही यह आवश्यक है कि सरकार को किसी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए, जैसे—कोई सार्वजनिक कार्यालय, स्कूल या अस्पताल खोलने के लिए या रेल की पटरी बिछाने के लिए—भूमि का अर्जन करने का अधिकार सौंपा जाय। भूमि में उस पर बनी इमारतें भी शामिल हैं। जब ऐसे उद्देश्यों के लिए भूमि का अर्जन किया जाता है तो उसके स्वामी को वह भूमि छोड़नी पड़ती है। लेकिन उसे इसके लिए उचित मुआवजा मिलता है। भूमि-अधिग्रहण अधिनियम (१८९८ का प्रथम) में उन ढंगों का निर्देश है जिनके द्वारा सरकार निजी संपत्ति का आवश्यक रूप में अर्जन करने के अपने अधिकार का प्रयोग कर सकती है। इसमें अधिकार-प्रयोग के लिए और स्वामी के साथ किये जानेवाले अन्याय के विरुद्ध समुचित संरक्षण की व्यवस्था है।

हम यह देख चुके हैं कि संपत्ति के बहुत से महत्त्वपूर्ण हस्तांतरणों के लिए रजिस्टर्ड-लेख की आवश्यकता होती है। इन तथा अन्य लेखों व पत्रकों पर मुद्रांक (स्टाम्प) की भी आवश्यकता होती है। अब हम मुद्रांक और रजिस्ट्री के संबंध में कानून का संक्षिप्त अवलोकन करेंगे।

मुद्रांक (स्टाम्प)

कुछ कागजों पर मुद्रांक (स्टाम्प) लगाने की आवश्यकता के विधान द्वारा सरकार अपने राजस्व का एक भाग प्राप्त करती है। मुद्रांक तीन प्रकार के होते हैं—(१) न्यायालय में दाखिल किये जानेवाले वाद-पत्र या प्रार्थनापत्र आदि कागजों पर लगाये जानेवाले मुद्रांक, जो न्यायिक या न्यायालय-शुल्क मुद्रांक कहलाते हैं, (२) संपत्ति-हस्तांतरण आदि

संबंधी न्यायालय से बाहर लिखे जानेवाले कागजों के लिए मुद्रांक, जो न्यायिकेतर (नॉन-जुडिशियल) मुद्राक कहलाते हैं; (३) और डाकखाने द्वारा भेजे जानेवाले पत्रों व तारों आदि पर लगाये जानेवाले मुद्राक, जो डाक के मुद्राक कहलाते हैं। प्रथम दो श्रेणियों के मुद्राकों से राज्यों में प्राप्त होनेवाला राजस्व राज्य सरकारों का होता है। कुछ मुद्राक-शुल्कों को छोड़कर, जैसे हुंडी, प्रोनोट, बीमों की रसीदों और पॉलिसियों पर लगनेवाले मुद्राक शुल्क को छोड़कर अन्य के संबंध में राजस्व वसूली का काम भी राज्य-सरकारें ही करती हैं। हुंडी, प्रोनोट आदि के संबंध में मुद्राक-शुल्क केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य-सरकारों के लिए वसूल किया जाता है। तीसरी श्रेणी, अर्थात् डाकखाने के टिकटों से होनेवाली आय केन्द्रीय सरकार के राजस्व का भाग होती है। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि रसीदों पर लगनेवाले एक आने के मुद्राक—जिनकी आय राज्यों को जाती है, राजस्व मुद्राक (रेवेन्यू स्टाम्प) होते हैं—यद्यपि वे डाकखाने द्वारा बेचे जाते हैं। प्रथम श्रेणी के अर्थात्, न्यायालय-शुल्क मुद्राकों की चर्चा व्यवहार-न्यायालयों की प्रक्रिया के अध्याय में की जायगी। यहाँ हमारा संबंध दूसरी श्रेणी के मुद्राकों से है। इस संबंध में नियम भारतीय मुद्राक अधिनियम १८९९ में दिये हुए हैं। ये मुद्राक दो प्रकार के होते हैं—एक मुद्राक-पत्र—जिन पर मुद्राक छपे (अंकित) होते हैं, और दूसरे चिपकाये जानेवाले मुद्राक या लेबल। कुछ कागजों पर चिपकाये जानेवाले मुद्राक लगाये जा सकते हैं, जैसे—कोई कागज, जिस पर एक आने का शुल्क लगाना हो; एक हुंडी, जो माँग पर भुगतान-योग्य हो और जो समूहों (सैटों) में लिखी गई हो और जबकि समूह के हर भाग पर लगनेवाला शुल्क एक आने से अधिक न हो। उच्च न्यायालय के रजिस्टर में किसी व्यक्ति का एडवोकेट या एटर्नी के रूप में नाम लिखना; किसी कम्पनी में हिस्सों का नियतन-पत्र, किसी निर्वाचित कम्पनी या स्थानीय शासन के सदस्यों की सभा में किसी अन्य की ओर से प्रतिनिधान करने (वोट डालने) का अधिकार प्रदान करनेवाला पत्र (प्रॉक्सी)।

जिन दस्तावेजों या पत्रों पर चिपकाये जानेवाले मुद्रांक लगाने की आज्ञा नहीं है वे एक कागज पर लिखे जाने चाहिए, जिन पर समुचित मूल्य के मुद्राकों की छाप हो। दस्तावेज (प्रलेख-डॉक्यूमेण्ट) समुचित मूल्य के एक या कई कागजों पर लिखी जा सकती है और यदि उसमें या उनमें वह पूरा न हो तो उसके साथ सादे कागज लगाये जा सकते हैं। विभिन्न दस्तावेजों के लिए आवश्यक मुद्राक-शुल्कों का अधिनियम में निर्देश है। पिछले कुछ वर्षों में राज्य विधानों द्वारा राजस्व की आवश्यकता की पूर्ति के लिए ये शुल्क बढ़ा दिये गए हैं।

किसी विपरीत करार के अभाव में कुछ विशिष्ट लेखों पर वही व्यक्ति मुद्रांक

शुल्क देता है जो उसे लिखता है, जैसे—स्वत्व-पत्रक जमा करने के संबंध में करार, हुंडी, बॉण्ड, बंधक (रहन-पत्र), प्रोनोट या रुक्का, समझौता, कम्पनी के हिस्सों का हस्तांतरण आदि। कुछ अन्य प्रलेखों के संबंध में हस्तांतरण-ग्रहीता मुद्रांक-शुल्क देता है, जैसे—विक्रय या पट्टे के संबंध में पट्टे की प्रतिवस्तु के संबंध में पट्टादाता और विनिमय (अदला-बदली) के संबंध में दोनों पक्ष बराबर हिस्से में मुद्रांक-शुल्क देते हैं। अधिनियम में कुछ प्रलेखों पर मुद्रांक-शुल्क की छूट दी गयी है, जिनके उदाहरण हैं—काश्तकारी के लिए एक काश्तकार द्वारा लिखा गया पट्टा जिसमें कोई लाभ सुरक्षित रक्खा गया हो और जिसकी अवधि एक वर्ष से अधिक न हो या जिसमें निश्चित किया गया लगान १०० रुपया साल से अधिक न हो, मुसलमानों में विवाह के अवसर पर लिखा जानेवाला महर-पत्र। सरकार के पक्ष में या उसके द्वारा लिखे जानेवाले उन प्रलेखों के संबंध में आम छूट है, जिनमें अन्यथा मुद्रांक-शुल्क देने का दायित्व सरकार का होता है।

मुद्रांक-संबंधी नियमों का पालन न करने पर दंड निर्धारित है। न्यायालय या पुलिस अधिकारी से भिन्न सरकारी अधिकारी का, जिसके सामने बिना पूरी तरह मुद्रांक-शुल्क लगा कागज उपस्थित किया जाय, कर्त्तव्य है कि वह उसे निरुद्ध करदे। यदि वह कागज किसी सार्वजनिक खाते की जाँच (आडिट) के दौरान में पेश की गई एक रसीद है तो उसे निरुद्ध करना आवश्यक नहीं। किंतु उसके स्थान पर समुचित शुल्क के मुद्रांक की रसीद बदल दी जानी चाहिए। निरुद्ध किये जाने के पश्चात् कागज या प्रलेख कलक्टर के पास भेजा जाता है, जो उस पर पाँच रुपये से लेकर देय शुल्क के दस-गुने मूल्य तक दंड दे सकता है। कोई भी प्रलेख, जिस पर समुचित शुल्क न लगा हो, तबतक किसी मुकदमे या कार्यवाही में पेश की गई गवाही में मान्य नहीं होगा, जबतक कि उस पर देय शुल्क और दंड न भर दिया जाय। किंतु जिन प्रलेखों पर एक आना या आध आना शुल्क देय हो, वे या हुंडी या प्रोनोट अपर्याप्त शुल्क के मुद्रांक से युक्त होने पर सर्वथा अमान्य होते हैं। एक रुपये का दंड भरने पर रसीद मान्य हो जाती है। आवश्यक मुद्रांक के बिना कागज या प्रलेख लिखनेवाले व्यक्ति पर मुकदमा चलाया जा सकता है और उस पर ५०० रुपये तक जुर्माना किया जा सकता है। यदि खरीदा गया मुद्रांक-पत्र खराब हो गया हो या उसका उपयोग नहीं किया गया हो तो प्रार्थनापत्र देने पर कलक्टर उसी मूल्य का दूसरा मुद्रांक-पत्र दे सकता है और प्रति रुपया या उसके भाग के पीछे एक आना काट सकता है। यहाँ कलक्टर का अर्थ है—जिले का कलक्टर या कलकत्ता, मद्रास या बंबई का कलक्टर या इस प्रयोजन के लिए नियुक्त अन्य अधिकारी।

भारत में भारतीय रजिस्ट्री अधिनियम (इण्डियन रजिस्ट्रेशन एक्ट) द्वारा

कागजो (दस्तावेज, पत्र, प्रलेख, आदि) की रजिस्ट्री की प्रणाली स्थापित की गई है। यह **क** और **ग** भाग के राज्यो मे प्रचलित है और **ख** भाग के राज्यों मे भी इसी प्रकार की व्यवस्था है। रजिस्ट्री का उद्देश्य सबसे पहले कागज को और उसमें अंकित विषय को सुरक्षा प्रदान करना है। जो व्यक्ति रजिस्ट्रार के सामने उसका लिखा जाना स्वीकार कर लेता है उसके लिए बाद में उससे इन्कार करना इतना आसान नही होगा जितना उसके रजिस्टर्ड न होने की दशा में हो सकता है। यदि वह बदला गया है, या फट या खो गया है तो उसके स्थान पर रजिस्ट्रार के कार्यालय मे उसकी प्रतिलिपि प्राप्त की जा सकती है। रजिस्ट्री से एक और महत्त्वपूर्ण उद्देश्य सिद्ध होता है। यह किसी सपत्ति में अपने अधिकार का दावा करनेवाले व्यक्ति के साथ व्यवहार करनेवाले व्यक्ति को उस सपत्ति के सबंध मे उसका स्वत्व और उसके पूर्व लेन-देन की जाँच करने का साधन प्रदान करती है। यदि **क ख** से कोई जमीन खरीदना चाहता है तो वह यह मालूम कर सकता है कि **ख** ने कब और कैसे वह जमीन खरीदी और कही **ख** ने पहले ही उसे बेच या रहन तो नही रख दिया है।

रजिस्ट्री

कानून के अनुसार यह आवश्यक है कि १०० रुपये या ऊपर की अचल संपत्ति के सबंध मे किसी अधिकार को समुत्पन्न करनेवाले, प्रज्ञापित करनेवाले या समाप्त करनेवाले सभी कागज या प्रलेख रजिस्टर्ड हो, जैसे—विक्रय, बधक या देन प्रलेख। ऐसी सपत्ति के संबंध मे अनुवार्षिक या एक वर्ष की अवधि से अधिक के लिए लिखा गया पट्टा-पत्र, या जिसमे वार्षिक किराया निश्चित हो, रजिस्टर्ड होना चाहिए। राज्य-सरकार विज्ञप्ति द्वारा पाँच वर्ष से अधिक अवधि के और जिनमे ५० रुपये से अधिक वार्षिक किराया निश्चित न हो, ऐसे पट्टो के रजिस्टर्ड न किये जाने की छूट दे सकती है। जब एक प्रलेख का रजिस्टर्ड किया जाना आवश्यक हो और वह रजिस्टर्ड न किया गया हो तो उसका सबंधित सपत्ति पर कोई प्रभाव नही पड़ता, और न उसमे अकित सपत्ति के लेन-देन के सबंध मे उसे गवाही के रूप मे पेश किया जा सकता है। अत रजिस्टर्ड कागज के अतर्गत १०० रुपये से अधिक मूल्य की भूमि खरीदनेवाला व्यक्ति उस भूमि के विक्रेता से उसकी भुक्ति लेने के लिए किये गए दावे में, अपना स्वत्व सिद्ध करने के लिए उस कागज का प्रयोग नही कर सकता। किंतु वह उस विक्रेता द्वारा उसकी भुक्ति वापस लेने के लिए किये गए दावे मे बचाव के लिए उस कागज का प्रयोग कर सकता है।

अचल सपत्ति से संबंधित कुछ ऐसे कागज होते है, जिन्हे रजिस्टर्ड कराना आवश्यक नही, किंतु जो रजिस्टर्ड कराये जा सकते है। वसीयत की रजिस्ट्री आवश्यक नही, किंतु कोई भी व्यक्ति अपनी वसीयत रजिस्टर्ड करा सकता है। भूमि

बेचने के लिए हुए करार को रजिस्टर्ड कराने की आवश्यकता नही, क्योंकि करार स्वतः बेचनेवाले के संपत्तिगत अधिकार का हस्तातरण नही कर देता। हस्तातरण केवल वास्तविक विक्रय से होना है और वह रजिस्टर्ड-पत्र द्वारा किया जाना चाहिए। सरकार द्वारा किसी सपत्ति के अनुदान का रजिस्टर्ड होना आवश्यक नही। अतः सरकार केवल एक आदेश द्वारा अपनी भमि किसी को दे सकती है। अचल सपत्ति के सबंध में न्यायालय की डिगरी का रजिस्टर्ड होना आवश्यक नही। किंतु यदि डिगरी किसी समझौते को क्रियाशील करती है और उस अचल संपत्ति से संबंध रखती है, जो वाद का विषय नही है, तो वह रजिस्टर्ड होनी चाहिए। कम्पनी का शेयर-सर्टिफिकेट या उसके शेयर के हस्तातरण का रजिस्टर्ड होना आवश्यक नही है, भले ही कम्पनी की पूजी मे अचल संपत्ति भी आती हो। चल-सपत्ति के संबंध मे लेन-देन आदि व्यवहार के रजिस्टर्ड कराने की आवश्यकता नही, किंतु उसे रजिस्टर्ड कराया जा सकता है।

रजिस्ट्री का ढग सक्षेप में इस प्रकार है—प्रत्येक राज्य के हर जिले मे एक रजिस्ट्रार होता है और उसके नीचे उप-रजिस्ट्रार होते है। वे सब राज्य के रजिस्ट्री के इस्पेक्टर-जनरल (महानिरीक्षक) के अधीन होते है। कागज उस रजिस्ट्रार के सामने पेश किया जाना चाहिए जिसके क्षेत्र में उस कागज मे सबधित सपत्ति या उसका भाग स्थित है। यह जिले के रजिस्ट्रार के सामने भी, यदि वह उसे लेना चाहे, तो पेश किया जा सकता है। यदि संपत्ति का एक भाग दूसरे रजिस्ट्रार के अधिक्षेत्र में स्थित हो तो रजिस्टर करनेवाला अधिकारी उस कागज की एक नकल दूसरे रजिस्ट्रार के पास भेजने के लिए कर्त्तव्यबद्ध है। जिले का रजिस्ट्रार या प्रेसीडेन्सी नगर का रजिस्ट्रार भारत मे कही भी स्थित सपत्ति के सबध में कागज ले सकता है। वसीयत को छोडकर हर कागज, लिखे जाने के ४ महीने के भीतर, रजिस्ट्री के लिए पेश किया जाना चाहिए। रजिस्ट्रार कुछ स्थितियो मे यह अवधि चार महीने और बढा सकता है। यह कागज लिखनेवाले व्यक्ति द्वारा, या उसके अन्तर्गत किसी प्रकार का दावा करनेवाले व्यक्ति द्वारा, या सम्यक अधिकृत अभिकर्त्ता द्वारा उपस्थित किया जा सकता है। इसको उपस्थित करनेवाले की प्रायः दो गवाहो द्वारा शनाख्त की जाती है। यदि उपस्थित करनेवाला व्यक्ति उसका लिखना स्वीकार करले तो रजिस्टर करनेवाला अधिकारी उसे रजिस्टर कर लेगा। उपस्थितकर्त्ता और शनाख्त करनेवाले गवाह अधिकारी के सामने अपने हस्ताक्षर करते है और वह अधिकारी अपने हस्ताक्षर और मोहर लगाता है तथा अपने रजिस्ट्री सर्टिफिकेट की पुष्टि करता है। इसके बाद रजिस्ट्रार की किताबो में उस कागज की नकल या फोटो उतार ली जाती है और वह कागज लौटा दिया जाता है।

यदि वह व्यक्ति या उसका अभिकर्त्ता उस कागज के लिखे जाने की बात से

इन्कार करे तो अधिकारी उसे रजिस्टर करने से इन्कार कर देगा। यदि इस आधार पर इन्कार करनेवाला अधिकारी उप-रजिस्ट्रार है तो उस कागज के अन्तर्गत किसी अधिकार का दावा करनेवाला व्यक्ति उसकी रजिस्ट्री के लिए जिले के रजिस्ट्रार के पास आवेदन कर सकता है। रजिस्ट्रार यदि छानबीन के बाद उस कागज के लिखे जाने की सत्यता के संबंध मे आश्वस्त हो तो वह उसे रजिस्टर करने का आदेश दे देगा। यदि कागज प्रारभ में ही रजिस्ट्रार के सामने उपस्थित किया गया हो और उसके सामने उसके लिखे जाने की बात से इन्कार किया गया हो तो वह बिना किसी पथक प्रार्थनापत्र के उसकी छानबीन करेगा और उसके संबंध में निर्णय देगा। यदि वह उस कागज के कथित लिखे जाने के सबंध मे आश्वस्त न हो तो वह उसकी रजिस्ट्री से इन्कार कर देगा। ऐसे आदेश से पीडित व्यक्ति कागज की रजिस्ट्री के सबंध में निर्देशन के लिए व्यवहार-न्यायालय मे वाद उपस्थित कर सकता है। ऐसा उसे उक्त आदेश के ३० दिन के भीतर करना चाहिए। रजिस्ट्रार छानबीन के कार्य के लिए एक न्यायालय की भाँति गवाहो को बुला सकता है, उन्हे शपथ दे सकता है और कागजो की पेशी के लिए कह सकता है।

: १२ :

वाणिज्य तथा उद्योग

सभ्यता की उन्नति के साथ बहुत-सी नयी समस्याएँ राज्य का ध्यान आकर्षित करती हैं। इनमें वाणिज्य और उद्योग से सबन्धित समस्याएँ भी हैं। व्यापार के लिए पहली आवश्यकता द्रव्य की होती है, जो विनिमय का माध्यम होती है। माल और सेवा के बदले सदैव सोना, चाँदी या नोटों के रूप में पैसा चुकाना सभव नहीं है। इसीलिए हमारे पास परक्राम्य आलेख[1], जैसे—हुंडी और चैक आदि की व्यवस्था है। बहुत बड़े व्यापारों का एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों के ही नाम या धन से चलाना सुविधाजनक या सभव नहीं है। अत हमारे पास कम्पनी की व्यवस्था है, जो व्यक्तियों की एक निगमित[2] सस्था होती है। बैंक का व्यवसाय करनेवाली कम्पनी इसका एक विशेष रूप है। व्यापार या लाभ के उद्देश्य से नहीं बल्कि सार्वजनिक लाभ के लिए बनायी जानेवाली व्यक्तियों की सोसाइटी या संस्था के सबध में भी निगमन का ढग अपनाया जाता है। आधुनिक वाणिज्य प्रणाली की और नई बातें एकस्व (पेटेंट), व्यापार-चिह्न (ट्रेडमार्क), प्रतिलिप्याधिकार (कॉपीराइट) आदि के रूप में प्रख्यात कुछ अधिकार हैं। आधुनिक कारखाना अपने साथ मजदूरों के लिए नये खतरे लाया है और अब उनके लिए काम करने की सुरक्षित परिस्थितियों की और उन्हें चोट पहुँचने पर उनके लिए मुआवजे की व्यवस्था करना जरूरी हो गया है। कुछ उद्योग अत्यधिक सार्वजनिक महत्व के होते हैं और जनता के हित में राज्य द्वारा उनका नियमन आवश्यक होता है। इसका एक उदाहरण छापाखाना है। बड़े-बड़े उद्योगों का परिणाम यह हुआ है कि मजदूरों ने मिलकर मजदूर सघ बना लिये हैं, और मजदूरों-मालिकों के झगड़े में वे हड़ताल के और मालिक तालाबंदी के हथियार का प्रयोग करते हैं। निगमित सस्थाओं, जैसे कम्पनियों पर विचार करने के पश्चात्, हम अनिगमित संस्थाओं, क्लबों, सहकारी समाजों और मजदूर-सघों की तथा अत में कुछ करों (टैक्सों) की—जिनका वाणिज्य-व्यवसाय में लगे लोगों के लिए विशेष महत्व

---

१. **परक्राम्य आलेख (निगोशिएबल इन्स्ट्रूमेंट)—हस्तांतरित किये जा सकने वाले प्रलेख जैसे—चैक, प्रनोट, हुण्डी या विनिमय-पत्र।**

२. **निगमित सस्था (इनकॉरपोरेटेड एसोसिएशन)—विभिन्न अवयवों की एक समवाय में बद्ध संस्था।**

है—चर्चा करेंगे।

परक्राम्य आलेख

परक्राम्य आलेख एक ऐसा कागज होता है जिसमें एक व्यक्ति द्वारा दूसरों को शोधन करने (पैसा चुकाने) के संबंध में वचन या आदेश लिखा रहता है, और जो परक्राम्य होता है, अर्थात् नामांकन सहित या रहित उसे हस्तांतरित किया जा सकता है जिससे उसका धारी (धारण करनेवाला) उसका शोधन ग्रहण कर सकता है। यह सिक्के और करेंसी नोटों जैसा ही कार्य करता है, किंतु इसके प्रयोग में उनकी भाँति कोई खतरा या असुविधा नहीं होती। ऐसे आलेखों से संबंधित नियम १८८१ के परक्राम्य आलेख अधिनियम (निगोशिएबल इन्स्ट्रूमेंट्स एक्ट) में निहित है। इन नियमों का संबंध तीन प्रकार के आलेखों से है—वचन-पत्र (प्रोनोट या रुक्का), विनिमय-पत्र अर्थात् हुंडी, और चैक। ये नियम सरकारी नोट (गवर्नमेंट प्रोमीसरी नोट) तथा सरकारी प्रत्याभूतियों (ऋणपत्रों) से संबंधित नियमों से (जो भारतीय सिक्योरिटीज एक्ट १९२० में निहित हैं) भिन्न हैं।

प्रोनोट (वचनपत्र या रुक्का) ऐसी दस्तावेज को कहते हैं जिसमें एक व्यक्ति के हस्ताक्षरों के साथ किसी दूसरे व्यक्ति को, या उसके आदेशानुसार या उस दस्तावेज के वाही को एक निश्चित धनराशि देने के शर्तरहित वादा लिखा होता है। **क** एक कागज पर हस्ताक्षर करता है जिस पर यह लिखा हुआ है—"मैं **ख** को या उसके आदेशानुसार ५०० रुपये देने का वायदा करता हूँ।" ऐसी दस्तावेज़ को प्रोनोट या प्रोमीसरी नोट (वचन-पत्र) कहते हैं। **क** प्रोनोट का 'रचक' (लिखनेवाला) कहलाता है और **ख** 'प्रापक' (पानेवाला) कहलाता है। यदि **क** यह कहे कि वह **क** को या उसके आदेशानुसार ५०० रुपये देगा, बशर्ते कि यह रकम हिसाब करने पर उसके नाम निकले तो उसका वायदा शर्तरहित नहीं है और ऐसा पत्र प्रोनोट नहीं कहा जा सकता है। प्रोनोट का आमरूप यह होता है, "माँगने पर मैं (**क**) **ख** को या उसके आदेशानुसार ५०० रुपये देने का वादा करता हूँ।" उसके साथ ब्याज के संबंध में व्यवस्था लिखी होती है। प्रोनोट, माँग पर देय न होकर एक अमुक समय के बाद, जैसे ६ महीने के बाद भी, देय हो सकता है। यदि वह माँग पर देय है तो उसका शोधन (भुगतान) आदेश पर या आदेशानुसार ही हो सकता है, उसके वाही को नहीं। सरकार ही ऐसा कागजी सिक्का जारी कर सकती है, जिसमें उसके वाही को माँग पर उसमें अंकित रकम के दिये जाने के संबंध में वादा या आदेश होता है।

हुंडी या विनिमय-पत्र ऐसा कागज होता है जिसमें एक शर्तरहित आदेश होता है, जिसपर एक व्यक्ति के हस्ताक्षर होते हैं और जो उसकी रकम को किसी तीसरे व्यक्ति को, या उसके आदेशानुसार उस पत्र के धारी को शोधन के लिए एक अन्य व्यक्ति को निर्देश देता है। इसका सामान्य रूप यह होता है—

(पता) मद्रास
२०-९-१९४७

प्राप्त मूल्य के लिए माँगने पर श्री **क** को या उनके आदेशानुसार १ हजार रुपये मात्र दे दिये जायँ।

मुद्राक

सेवा मे श्री **ग** **ख** (कर्त्ता के हस्ताक्षर)
(जिसको भेजा जाय उसका पता)

इस कार्य मे **ख** हुंडीकार (पत्रक का लिखनेवाला) है, **ग** भगतानक (भुगतान करनेवाला) हैं और **क** प्रापक है। **क** या पत्रक पर नामाकन होने की स्थिति में नामाकित व्यक्ति उस पत्रक का धारी (धारक) कहलाता है। एक बैंक द्वारा दूसरे बैंक के नाम या अपनी किसी शाखा के नाम लिखा जानेवाला पत्रक 'ड्राफ्ट' कहलाता है। जब वह भारतीय भाषा मे लिखा जाता है तो वह 'हुंडी' कहलाता है। प्रोनोट की भाति माँग पर देय विनिमय-पत्र का शोधन आदेशानुसार ही किया जा पकता है, वाही को नही। 'माँग पर' की जगह उसमे लिखा हो सकता है कि "इतने दिन बाद"—जैसे तारीख के ३० दिन बाद। ऐसी स्थिति मे उपका शोधन उपके धारी को किया जा सकता है। जो हुंडी या विनिमय-पत्र भगतानक को लिखने पर या उसके सामने पेश करने पर देय हो उसे 'माँग पर देय' हुंडी या पत्र कहते हैं। यदि वह किसी बाद की तारीख को देय हो तो वह परिपक्व होने पर, अर्थात् उस तारीख के आ जाने पर, देय होती है। यदि वह दर्शनोपरान्त (दिखाने के बाद) देय हो (जैसे दर्शनी हुंडी) तो उसके पेश किये जाने पर वह देय होती है।

चैक एक व्यक्ति के हस्ताक्षरयुक्त ऐसा कागज होता है जिससे किसी अन्य व्यक्ति को या उसके आदेशानुसार या उस चैक के वाही को उसमें लिखित रकम दिये जाने के सबंध मे उसके (हस्ताक्षरकर्त्ता के) बैंक के नाम शर्तरहित आदेश होता है। चैक लिखनेवाला व्यक्ति उसका 'कर्त्ता' और रकम पानेवाला उसका 'प्रापक' या 'आदाता' कहलाता है। यदि चैक 'आर्डर' चैक (आदाता के आदेशानुसार जिसका शोधन किया जा सके) है तो उस पर नामाकित व्यक्ति उसका 'धारी' कहलाता है। यदि चैक 'बेयरर' है तो जिस व्यक्ति की भुक्ति मे वह चैक हो, वही उसका धारी कहलाता है। चैक का धारी जिस बैंक के नाम चैक

है, उसे चैक की रकम को शोधन के लिए दे सकता है। यदि चैक 'क्रास्ड' (रेखाकित) है तो वह उसकी रकम बैंक द्वारा ही ले सकता है। चैक तब सामान्यतः रेखाकित कहलाता है जब उसके मुख पर दो समानान्तर रेखाएँ खिची रहती हैं जिनमें 'एण्ड कम्पनी' शब्द लिखे रहते है या खाली दो समानान्तर रेखाएँ ही होती है, जिनके साथ 'नॉट निगोशिएबल' (अपरक्राम्य) शब्द हों या न हो। यह विशेषरूप से रेखाकित तब कहलाता है जबकि इसके मुख पर रेखांकन के साथ किसी बैंक का नाम लिखा रहता है। तब वह उस बैंक के नाम रेखाकित कहलाता है। जब वह सामान्य रूप से रेखाकित होता है तब जिस बैंक का वह चैक है वह बैंक किसी बैंक को ही उसका शोधन कर सकता है। किंतु यदि चैक विशेष रूप से रेखाकित है तो उसका शोधन उसी निर्दिष्ट बैंक को या उसके अभिकर्त्ता (एजेंट) को ही किया जा सकता है। जहाँ तक एक व्यक्ति के किसी दूसरे व्यक्ति को पैसा देने के लिए किसी अन्य व्यक्ति को आदेश देने का संबंध है, चैक और हुंडी दोनों समान है। किंतु चैक दो बातों में हुंडी से भिन्न होता है—पहली यह कि चैक में बैंक के नाम आदेश होता है, किसी निजी व्यक्ति के नाम नहीं, दूसरी बात यह कि उसका शोधन माँग पेश किये जाने पर होता है, वैसे नहीं।

प्रोनोट और हुंडी पर मुद्रांक लगाने की आवश्यकता होती है। उन पर भारतीय मुद्रांक अधिनियम की व्यवस्था के अनुसार मुद्रांक लगानी चाहिए। चैक पर मुद्रांक लगाने की आवश्यकता नहीं होती।

कानून में उपर्युक्त तीन कागजों को परक्राम्य आलेख (निगोशिएबल इन्स्ट्रूमेण्ट) कहते हैं, क्योंकि उनमें अंकित पैसा वसूल करने का अधिकार उनके चलान के साथ उनके धारक के पास चला जाता है। कागज की शर्तों के अनुसार उनके चलान का तरीका भी अलग-अलग होता है। यदि उसका शोधन 'आदेश पर' होना है तो वह नामांकित किया जाना चाहिए और नामांकित व्यक्ति के सुपुर्द किया जाना चाहिए। यदि उसका शोधन उसके वाही को किया जाना है तो एक व्यक्ति द्वारा दूसरे को उसके दे दिये जाने मात्र से उसे चलाया जा सकता है। नामांकन दो प्रकार का होता है—आदाता (प्राप्तिकर्त्ता, जिसका चैक या हुंडी में नाम हो) कागज के मुख पर या उसकी पीठ पर अथवा उसके साथ संलग्न परची पर खाली अपने हस्ताक्षर कर सकता है। इस प्रकार का नामांकन 'कोरा नामांकन' कहलाता है। जिस व्यक्ति को यह कागज दिया जाता है वह उसका 'धारी' कहलाता है। ऐसा व्यक्ति उस पर और नामांकन न कर उसे आगे चला सकता है। नामांकन का एक और ढंग होता है जिसमें किसी खास व्यक्ति को या उसके आदेश से उस कागज की रकम के भुगतान का आदेश होता है। यह नामांकन 'पूर्ण नामांकन' कहलाता है। और तब नामांकित व्यक्ति दूसरे नामांकन से

ही उस कागज को चला सकता है। इस प्रकार कागज एक हाथ से दूसरे हाथ चलाया जा सकता है और उसके साथ उसमें अंकित रकम वसूल करने का अधिकार हस्तातरित किया जा सकता है। यदि इससे संबंधित पक्ष व्यापारिक क्षेत्र के व्यक्ति हैं तो वह कागज प्रचलित मुद्रा जैसा ही होता है।

प्रोनोट के रचक का उसमें अकित धारी को या नामाकन द्वारा उसके हस्तातरणग्रहीता को उसके भुगतान का दायित्व होता है। हुंडी में उसे स्वीकृत करनेवाले का उसके धारी को पैसा देने का दायित्व होता है। यदि हुडी या प्रोनोट का शोधन माँग पर किया जाना हो तो माँग पेश किये जाने पर, या अन्य स्थितियो मे उसके परिपक्व होने पर, उसके शोधन का दायित्व उपर्युक्त व्यक्तियो पर होता है।

जिस बैंक का चैक काटा गया है उस बैंक का चैक के धारी को, या यदि चैक रेखाकित है तो एक बैंक को, उसका पैसा देने का दायित्व होता है। किंतु शर्त यह है कि पहले बैंक के पास चैक काटनेवाले का उतना पैसा होना चाहिए। यदि बैंक या व्यक्ति पैसा नही दे पाता तो पत्रक अस्वीकृत समझा जाता है, और तब हुंडी या चैक के कर्ता का उसके धारी को पैसा देने का दायित्व हो जाता है। यदि रचक भी उसे अस्वीकृत कर देता है तो दायित्व नामाकनकर्त्ताओ पर क्रमश: आता है। प्रोनोट के उसके रचक द्वारा अस्वीकृत कर दिये जाने पर भी यही नियम लागू होता है।

परक्राम्य आलेख के धारी का उसके शोधन के लिए उत्तरदायी व्यक्तियों से पैसा वसूल करने का अधिकार होता है। यदि उसमे हस्तातरणकर्त्ता को हस्तातरण का प्रतिफल नही चुकाया गया है तो वह हस्तातरणकर्त्ता से उसके शोधन के लिए नहीं कह सकता। यदि हुडी या प्रोनोट लिखने के पीछे कोई प्रतिफल नही है तो उसमे निर्दिष्ट प्रापक (आदाता) हुडी या प्रोनोट के रचक पर उसके शोधन के लिए दावा नही कर सकता। किंतु उसका वह धारक दावा कर सकता है जिसने उसे मियाद खत्म होने से पहले (सद्भावनापूर्वक) लिया हो और जिसे हस्तांतरणकर्त्ता के स्वत्व का दोष ज्ञात न हो। ऐसी स्थिति मे धारक साधारण प्रकार का धारक (होल्डर इन ड्यू कोर्स) कहलाता है। यदि धारी ने हस्तांतरण का प्रतिफल न दिया हो या उसे हस्तातरणकर्त्ता के स्वत्व के दोष का ज्ञान हो तो वह उसके शोधन के लिए दावा नही कर सकता।

किसी व्यक्ति का उपर्युक्त प्रकार से तभी किसी पत्रक के संबंध में दायित्व होता है जब उसने वास्तव में वह पत्रक लिखा हो, स्वीकार किया हो या उसपर नामाकन किया हो। दूसरे शब्दो में, जब उसके हस्ताक्षर सच्चे हो। किसी जाली लिखे गए या जाली नामाकित कागज के लिए उसे उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता। किंतु कुछ अपवाद की स्थितियाँ भी होती है। एक बैंक जो साधारण

प्रकार से नामांकित व्यक्ति को चैक का पैसा देता है वह चैक काटनेवाले के हिसाब में उतना पैसा कम कर सकता है, भले ही नामांकन में मूल आदाता के जाली हस्ताक्षर कर लिये गए हो। यह चैक काटनेवाले का दुर्भाग्य है कि उसे यह हानि उठानी पड़ती है। यह नियम बैंको के संरक्षण के लिए है। किंतु यदि बैंक ऐसे चैक का रुपया दे दे जिस पर चैक काटनेवाले के जाली हस्ताक्षर कर लिये गए हो तो बैंक को कोई संरक्षण प्राप्त नही होता। इसी प्रकार यदि बाद के नामांकित व्यक्ति द्वारा, न कि मूल आदाता द्वारा, नामांकन जाली किया गया हो तो तब भी बैंक को कोई संरक्षण प्राप्त नही होता। बैंक के लिए यह आवश्यक है कि वह पैसा देने से पहले इन हस्ताक्षरों की जाँच करने की सावधानी बरते। चैक या हुंडी के कर्त्ता (लिखनेवाले) को ध्यान रखना चाहिए कि वह चैक या हुंडी मे कोई ऐसी खाली जगह न छोड़े जिसे धोखा देने के लिए इस्तेमाल किया जा सके। यदि उस जगह का उपयोग कर कोई व्यक्ति उसमे और बड़ी रकम भर दे और बैंक पूरी सावधानी बरतने पर भी उतनी रकम चुकाने में धोखा खा जाय तो चैक या हुंडी के कर्त्ता को यह हानि उठानी पड़ेगी।

एक प्रोनोट, जिसका शोधन एक खास अरसे के बाद उसके पेश किये जाने पर किया जाना हो, उस अरसे के बाद उचित समय के भीतर और काम के दिन (छुट्टी के दिन नही) तथा काम के समय मे उसके रचक के नाम पेश किया जाना चाहिए। इस प्रकार से पेश किये जाने के बाद ही उसका रचक या अन्य उत्तरदायी व्यक्ति उसके शोधन का जिम्मेदार होता है। इसके अतिरिक्त प्रोनोट परिपक्व होने पर ही, अर्थात् उसमे उल्लिखित समय के गुजर जाने के बाद ही, शोधन के लिए पेश किया जा सकता है। यह नियम उस प्रोनोट पर लागू नही होता जो 'माँग पर देय' होता है। दर्शनी हुंडी के लिए यह आवश्यक है कि वह उचित समय के भीतर तथा काम के दिन और काम के समय शोधन भुगतानक के सामने स्वीकृति के लिए पेश की जाय। इस प्रकार पेश किये जाने के बाद ही भुगतानक को उसके लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। स्वीकृति के लिए पेश किये जाने के संबंध में यह नियम उस हुंडी पर लागू नही होता जो माँग पर या किसी निश्चित अवधि के बाद देय हो। भगतानक को यह निश्चय करने के लिए कि उसे हुंडी स्वीकार करनी चाहिए या नही, ४८ घंटे का समय मिलता है। यदि हुंडी स्वीकार करली जाती है तो उसे भुगतान (शोधन) के लिए स्वीकार करनेवाले के पास पेश किया जाना चाहिए। यदि स्वीकृति की आवश्यकता नही है तो परिपक्व होने के बाद हुंडी भुगतान के लिए पेश की जानी चाहिए। चैक काटे जाने के बाद समुचित समय के भीतर शोधन के लिए बैंक मे पेश किया जाना चाहिए, नही तो उसे बैंक द्वारा चैक काटनेवाले का सब जमा रुपया दूसरो को भुगता दिये जाने और उसके लिए पर्याप्त रुपया न बच रहने की

जोखिम उठानी पड़ सकती है।

एक प्रोनोट, हुंडी या चैक तब अस्वीकृत या असम्मानित समझा जाता है जब प्रोनोट का रचक या हुंडी को स्वीकार करनेवाला, अर्थात् चैक का भुगतानक, भुगतान के लिए उचित रूप से कहे जाने पर भुगतान न कर सके। हुंडी तभी असम्मानित हो जाती है जब पेश किये जाने पर वह स्वीकृत नहीं होती। जब एक परक्राम्य आलेख असम्मानित या अस्वीकृत हो जाता है तो उसके धारी या उसके लिए उत्तरदायी किसी व्यक्ति को उसके असम्मानित या अस्वीकृत होने की सबको सूचना देनी चाहिए ताकि उनको उसके लिए उत्तरदायी ठहराया जा सके। इस सूचना की कुछ विशिष्ट स्थितियों में आवश्यकता नहीं होती, जैसे उस समय जब उसके लिए उत्तरदायी व्यक्ति का पता न लगाया जा सकता हो, या उसने सूचना के लिए मना कर दिया हो या जब ऐसा व्यक्ति स्वयं उस पत्रक का रचक हो और उसने भुगतान रोक दिया हो। जब कोई प्रोनोट या हुंडी असम्मानित हो जाती है तब उसका धारी समुचित समय के भीतर उसके असम्मानित होने की बात नोटरी पब्लिक (सार्वजनिक लेखा प्रमाता) द्वारा उस पर अंकित करवा सकता है और उससे तद्विषयक प्रमाणपत्र ले सकता है। यह प्रमाणपत्र 'विरोध' (प्रोटेस्ट) कहलाता है और हुंडी या प्रोनोट के असम्मानित होने का साक्षी होता है।

एक बैंक जो समयानुसार किसी और बैंक को किसी रेखांकित चैक का भुगतान कर दे, वह चैक काटनेवाले के हिसाब में से उतनी रकम घटा सकता है। उदाहरण के लिए **क ख** के पक्ष में अपने बैंक **ङ** के नाम रेखांकित चैक काटता है। **ख** उसे **ग** के पक्ष में नामांकित कर देता है। **ग** उसे अपने बैंक **घ** में वसूली के लिए भेजता है। **घ** बैंक **ङ** बैंक से उसका भुगतान ले लेता है। यहाँ **ङ** बैंक **क** के खाते में उतना रुपया कम कर सकता है। किंतु यदि **ङ** ने रुपया बैंक को न देकर **ख** या **ग** बतानेवाले किसी व्यक्ति को दे दिया है तो वह ऐसा नहीं कर सकता। मान लीजिये **ग ख** से चैक चुका लेता है और उस पर अपने पक्ष में **ख** का जाली नामांकन बनाकर अपने बैंक **घ** की मार्फत **ङ** से उसका भुगतान ले लेता है तथा एक चैक के जरिए उस रकम को निकाल लेता है। ऐसी स्थिति में **घ** बैंक की स्थिति क्या होगी? क्या वह **क** या **ख** को रुपया भरने का जिम्मेदार होगा? नहीं, यदि उसके अधिकारियों ने सद्भावनापूर्वक और बिना असावधानी के कार्य किया है, अन्यथा वह जिम्मेदार होगा।

एक बैंक जो चैक काटनेवाले का पर्याप्त रुपया जमा होने पर भी उसका चैक असम्मानित कर देता है, वह उस व्यक्ति (चैक काटनेवाले) की मान और प्रतिष्ठा को होनेवाली क्षति के लिए उत्तरदायी होता है।

यहाँ जिन नियमों को रखा गया है वे उन परिवर्तनों के अनुकूल हैं जो कुछ समय बाद इसी विषय पर बननेवाले नये विधान द्वारा प्रचलित होंगे। संसद् द्वारा कम्पनी

विधेयक पास कर दिया गया है, और राष्ट्रपति की अनुमति मिलने के बाद वह अधिनियम बन जायगा।

कम्पनियाँ

कम्पनी किसी सामान्य उद्देश्य के लिए प्राय. व्यापार करने के लिए—बनाई गई व्यक्तियों की एक निगमित संस्था होती है। इसका एक परिचित रूप भारतीय कम्पनी अधिनियम (जिसे संक्षेप के लिए इस विषय की चर्चा में हम अधिनियम कहेंगे) के अन्तर्गत रजिस्ट्री द्वारा निगमित एक व्यापारिक कम्पनी है। कई बार कम्पनी किसी विशेष कानून द्वारा भी बनाई जाती है, जैसे भारत का राजकीय बैंक (स्टेट बैंक ऑव इण्डिया) या भारत का रिज़र्व बैंक।

कम्पनी का निर्माण

कम्पनी का निर्माण अग्रलिखित प्रकार से होता है। सार्वजनिक कम्पनी के संबंध में सात या अधिक व्यक्ति, और प्रायवेट (निजी) कम्पनी के संबंध में दो या अधिक व्यक्ति, उसकी स्थापना के ज्ञापन-पत्र (मेमोरेण्डम) में अपने नाम देकर और आगे दी हुई अन्य औपचारिकताओं का पालन कर उसका निर्माण कर सकते हैं। संस्था का ज्ञापन-पत्र छपा हुआ और निर्दिष्ट विवरणयुक्त होना चाहिए। यदि कम्पनी शेयरों (अंशों) द्वारा दायित्व को सीमित करनेवाली सामान्य प्रकार की कम्पनी है तो उसके ज्ञापन-पत्र में यह विवरण होना चाहिए—(१) कम्पनी का नाम और उसके साथ यदि कम्पनी लोक परिसीमित कंपनी (पब्लिक लिमिटेड कम्पनी) हो तो नाम का अंतिम शब्द 'परिसीमित' (लिमिटेड) और यदि प्रायवेट लिमिटेड कंपनी हो तो 'प्रायवेट लिमिटेड' का अंतिम शब्द। (२) उस राज्य का नाम, जिसमें कम्पनी का रजिस्टर्ड कार्यालय स्थित होगा। (३) उसके उद्देश्य। (४) उसके सदस्यों का सीमित दायित्व। (५) इसकी अंश (शेयर) पूंजी और एक निश्चित रकम के अंशों में उनके विभाजन की संख्या। ज्ञापन-पत्र में अपना नाम देनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए कम-से-कम एक शेयर लेना आवश्यक है और उसे अपने नाम के आगे अपने शेयरों की संख्या का निर्देश करना चाहिए। उक्त ज्ञापन-पत्र और कुछ स्थितियों में उसके साथ संस्था का विधान-पत्र संयुक्त-पूंजी (ज्वाइण्ट स्टॉक) की कम्पनियों के रजिस्ट्रार के पास दाखिल किया जाना चाहिए। विधान-पत्र भी छपा हुआ होना चाहिए और उसमें संस्था के प्रबंध के लिए नियमों का उल्लेख होना चाहिए। शेयरों द्वारा परिसीमित दायित्व की कम्पनियों के संबंध में उनके विधान-पत्र का रजिस्ट्रार के पास दाखिल करना आवश्यक नहीं है, किंतु प्राय: वह दाखिल किया जाता है। अधिनियम के परिशिष्ट १ में आदर्श या नमूने के नियम दिये गए हैं जो विधान-पत्र दाखिल करनेवाली किसी भी कम्पनी पर लागू हो सकेंगे। इन पत्रों में नाम देनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को एक गवाह के सामने उस पर हस्ताक्षर करने चाहिए और उस गवाह

को वे हस्ताक्षर प्रमाणीकृत करने चाहिए। ज्ञापन-पत्र और विधान-पत्र (यदि हों तो) के रजिस्ट्रार के पास दाखिल किये जाने के बाद, जब रजिस्ट्रार को यह विश्वास हो जायगा कि वे अधिनियम में विहित व्यवस्था के अनुसार ही है और उनके संबंध में निर्धारित शुल्क भर दिया गया है, वह उन्हे रजिस्टर (रजिस्टर में दर्ज) कर लेगा। तब वह उन्हे कम्पनी के निगमन का प्रमाणपत्र देगा, और तब कम्पनी अपने नाम से अभिज्ञापित उन सब व्यक्तियों की एकीकृत एक संस्था बन जायगी और ज्ञापन-पत्र मे निर्दिष्ट सब कार्य करने में समर्थ होगी। यदि वह सार्वजनिक कम्पनी है तो कार्यारंभ करने से पूर्व उसे कार्यारंभ करने का प्रमाणपत्र लेना पड़ेगा। इस अपेक्षा के अतिरिक्त बैंकिंग और बीमा कंपनियों के लिए अन्य विशेष अपेक्षाएँ भी है।

जबतक कि कोई कम्पनी स्वतंत्र कानून द्वारा निगमित न हो तबतक वह बिना रजिस्ट्री के व्यापार नही कर सकती। बैंक के रूप मे या बैंक का व्यापार करने के लिए दस व्यक्तियों से अधिक की कोई भी बिना-रजिस्टर्ड कम्पनी, संस्था या साझेदारी नही स्थापित की जा सकती और इसी प्रकार कोई भी अन्य व्यापार करने के लिए २० व्यक्तियों से अधिक की कोई कम्पनी, संस्था या साझेदारी नही बनाई जा सकती। कम्पनी का जो सदस्य इस नियम की अवहेलना करता है वह निर्धारित दंडों का भागी बनता है। ऐसा व्यक्ति व्यापार के समस्त दायित्वों और देनदारी के संबंध मे व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा। इसके अतिरिक्त उस पर १००० रुपये का जुर्माना भी किया जा सकेगा। हिंदुओं मे संयुक्त परिवार के सदस्यों से मिलकर बनी फर्म के संबंध मे यह नियम लागू नही होगा। उक्त दंड के अतिरिक्त एक बिना-रजिस्टर्ड कम्पनी अपने नाम से कोई मुकदमा नही कर सकती, उसे प्रवर्तित नही करा सकती, कर्ज नही वसूल कर सकती, या न्यायालय मे मुकदमा या अन्य कानूनी कार्यवाही नही कर सकती।

कम्पनियाँ कई प्रकार की होती है। वे सीमित दायित्व सहित या रहित हो सकती है। पहले प्रकार की कम्पनियों मे अंशधारियो (शेयरहोल्डरो) का दायित्व उनके द्वारा अंशो के संबंध मे दी जानेवाली अवशिष्ट राशि (यदि बकाया हो तो) तक सीमित होता है। अतः यदि अंशधारी के पास चुकता-मूल्य (पेड-अप कैपीटल अर्थात् जिसकी पूरी कीमत चुका दी गई है) के अंश है, तो कम्पनी का कर्ज चुकाने मे योग देने का उसका कोई दायित्व नहीं है। उसे केवल अपने अंश के मूल्य की हानि होती है, उससे अधिक कुछ नही। जरा इसकी एक साधारण साझे या फर्म के सदस्यो कि स्थिति से तुलना कीजिये। प्रत्येक सदस्य पर फर्म का कर्ज चुकाने का उत्तरदायित्व होता है और कर्ज बडा हो तो वह अपने तबाह होने तक की जोखिम उठाता है। सीमित दायित्व की कम्पनी चाहे जितना नुकसान उठाये, किंतु उसमें अंशधारी को अपने अंश के मूल्य से अधिक नुकसान

नही होता। असंख्य व्यक्तियो के लिए यह एक बहुत बडा आकर्षण होता है जिसके कारण असख्य व्यक्ति करोडो की पूजीवाली कम्पनियो में अपना पैसा लगा देते है। इस प्रकार की कम्पनियो के नाम के अत मे 'लिमिटेड' (परिसीमित दायित्व सूचक शब्द) या 'प्रायवेट लिमिटेड' (सार्वजनिक परिसीमित) जुडा रहना चाहिए। परिसीमित दायित्ववाली, किन्तु लाभ के लिए नही, वरन् सार्वजनिक प्रयोजन से शुरू की गई कम्पनियो के नाम के अत में 'लिमिटेड' शब्द का जोडना आवश्यक नही। अधिनियम इस बात की व्यवस्था करता है कि व्यापार, कला, विज्ञान, धर्म, परमार्थ या अन्य किसी उपयोगी कार्य की अभिवृद्धि के लिए बनाई गई या ऐसी सस्था जिसकी आय उक्त कार्यो मे से किसी एक की अभिवृद्धि के लिए विनियोजित हो, केन्द्रीय सरकार के लायसेंस से सीमित दायित्व की कम्पनी के रूप मे उसके साथ परिसीमित (लिमिटेड) शब्द जोडे बिना रजिस्टर की जा सकती है। असीमित दायित्व की कम्पनी का भी निर्माण किया जा सकता है, किंतु ऐसा प्राय. नही होता। यदि उसके ज्ञापन-पत्र मे उसके सदस्य इस बात का दायित्व अपने ऊपर ले ले कि कम्पनी के समापन की स्थिति मे वे उसकी कुल सपत्ति मे अमुक राशि अपनी ओर से मिलायेगे तो एक कम्पनी बीच की स्थिति धारण कर सकती है। ऐसी कम्पनी गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी कहलाती है। कम्पनियो का एक और प्रकार है —प्रायवेट (निजी) और सार्वजनिक रूप मे— विभाजन किया जा सकता है। प्रायवेट कम्पनी का निर्माण उस समय होता है जब दो या अधिक, किंतु ५० से कम, व्यक्ति एक व्यापार शुरू करना और सीमित दायित्व का लाभ उठाना चाहते है। ये व्यक्ति इसकी पूजी की व्यवस्था करते है। प्रायवेट कम्पनी प्रॉस्पेक्टस या प्रविवरण-पत्रिका जारी नही कर सकती और न जनता को अपने अश डिबेंचर (ऋण-पत्र) खरीदने के लिए आमन्त्रित कर सकती है। इसका विधान इसके अशो के हस्तातरण पर प्रतिबन्ध लगाता है। इसके विपरीत सार्वजनिक कम्पनी सात या अधिक सदस्यो से मिलकर बनती है और वह जनता को अपने शेयर खरीदने के लिए आमत्रित कर सकती है। प्रायवेट कम्पनी एक विशेष प्रस्ताव पास कर और अपना विधान-पत्र बदल कर तथा उसे रजिस्ट्रार के पास दाखिल कर अपने को सार्वजनिक कम्पनी के रूप मे बदल सकती है।

अन्य संघ

ऐसी किसी जमायत या संस्था को, जो भारतीय कम्पनी अधिनियम या अन्य किसी अधिनियम के अंतर्गत निगमित न हो या सोसाइटी रजिस्ट्रेशन अधिनियम १८६०, के अतर्गत रजिस्टर्ड न हो, निगमन या रजिस्ट्री द्वारा प्राप्य विशेषाधिकार उपलब्ध नही होते। उसकी उसके सदस्यों से भिन्न कोई सत्ता नही होती और वह अपने नाम से सदाजीवी नही होती। वह कोई संपत्ति धारण नही कर सकती, कोई

संविदा नही कर सकती, न कोई मुकदमा चला सकती है और न उसपर मुकदमा चलाया जा सकता है। ये कार्य सब सदस्यों द्वारा संयुक्त रूप से या सबकी ओर से सबके अधिकार से कुछ व्यक्ति कर सकते है। उदाहरण के लिए एक सामाजिक या राजनैतिक क्लब की, जो उस प्रकार से रजिस्टर्ड न हो, यही स्थिति होगी। यह क्लब सदस्यो का या मालिकाना क्लब हो सकता है। सदस्यो के क्लब मे सभी सदस्य क्लब की संपत्ति के संयुक्त रूप में स्वामी होते है। यदि क्लब का कोई पदाधिकारी या उसका कोई सदस्य क्लब को माल सप्लाई किये जाने के सबध मे संविदा करता है, तो सप्लाई किये गए माल की कीमत चुकाने का दायित्व संविदाकर्त्ता का ही होता है। जिन सदस्यो ने संविदा-विषयक कोई स्वीकृति नही दी, उनके या उनके क्लब के संपत्तिगत हित के विरुद्ध कोई कार्यवाही नही की जा सकती। उनका दायित्व उनकी तरफ निकलने-वाले क्लब के चन्दे तक ही सीमित रहता है। यदि क्लब या संस्था की संपत्ति ट्रस्टियो में अधिष्ठित हो तो ट्रस्टी उसका हस्तातरण कर सकते है, अन्यथा उनके हस्तातरण में सभी सदस्यो का संयुक्त होना आवश्यक है। मालिकाना क्लब मे संपत्ति मालिको की होती है और सदस्यो को उसमे क्लब के नियमो के अनुसार उसके उपभोग की अनुमति के अतिरिक्त और कोई अधिकार नही होता।

सहकारी समाज

सहकारी-समाजो को रजिस्टर कराने और उनके प्रबंध के सबध में एक अलग कानून है जो सहकारी-समाज अधिनियम १९१२ (कोऑपरेटिव सोसाइटीज एक्ट, १९१२) कहलाता है। ऐसे समाज दो प्रकार के होते है—एक, जिसमे रजिस्टर्ड समाज सदस्य के रूप में होते है, और दूसरा, जिसमे अलग-अलग व्यक्ति सदस्य होते है। पहले प्रकार के समाज का दायित्व सीमित होता है। दूसरे प्रकार के समाज का दायित्व, यदि वह कृषि-व्यवसायियों को पैसा उधार देने का है, असीमित होता है। ये समाज, पहले प्रकार के समाज की स्थिति में, रजिस्टर्ड समाजों द्वारा अधिकृत व्यक्तियो के प्रार्थनापत्र देने पर, और दूसरे प्रकार के समाज की स्थिति में, कम-से-कम १० व्यक्तियो द्वारा प्रार्थना-पत्र देने पर, सहकारी समाजों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्टर किये जाते है। समाज की रजिस्ट्री का प्रभाव यह होता है, कि वह एक निगमित संस्थान बन जाता है और उसे अपने नाम से संपत्ति धारण करने, संविदा करने, मुकदमा चलाने या अपने पर मुकदमा चलाये जाने और अपने निर्भाव की पूर्ति के लिए सभी आवश्यक कार्य करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। अधिनियम में समाजों की रजिस्ट्री-संबंधी व्यवस्था के अति-रिक्त समाजो व उनके सदस्यों के अधिकार, कर्त्तव्य और शक्तियों, समाजों को भंग करने और उन्हें परिसमाप्त करने तथा उन पर रजिस्ट्रार के नियंत्रण की व्यवस्था शामिल है।

श्रमिक संघ

श्रमिक संघ अधिनियम, १९२६ (ट्रेड यूनियन्स एक्ट, १९२६) मजदूर संघों (ट्रेड यूनियनों) की रजिस्ट्री की व्यवस्था करता है, अर्थात् ऐसे व्यक्तियों के ऐसे संघ की, जो मालिक और मजदूरों के पारस्परिक संबंधों के, या श्रमिकों और मालिकों के अलग-अलग पारस्परिक संबंधों के, नियमन की व्यवस्था करता है। किसी श्रमिक संघ के सात या अधिक सदस्य उनकी नियमावली के साथ अपने नाम जोड़कर और अधिनियम में निर्दिष्ट औपचारिकता के अनुसार श्रमिक संघों के रजिस्ट्रार के पास प्रार्थना-पत्र दे सकते हैं। किसी भी श्रमिक-संघ या उसके सदस्य या अधिकारी के विरुद्ध उसके द्वारा किसी श्रमिक-मालिक विवाद, जैसे हड़ताल के विचार में या उसे आगे बढ़ाने के संबंध में की गई कार्यवाही के लिए कोई मुकदमा नहीं किया जा सकता, भले ही उसमें भड़काकर मजदूर मालिक के साथ अपना संविदा तोड़ दे और उसमें मालिक को नुकसान हो। रजिस्ट्री का प्रभाव यह होता है कि संघ एक निगमित संस्था बन जाता है और उसे अपने नाम से संपत्ति धारण करने का, संविदा करने का, और मुकदमा चलाने या अपने विरुद्ध मुकदमा चलाये जाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

रजिस्टर्ड समाज

किसी साहित्यिक, वैज्ञानिक या पारमार्थिक कार्य के लिए बनाया गया व्यक्तियों का समाज संयुक्त-पूंजी कम्पनियों के रजिस्ट्रार द्वारा समाज-पंजीयन-अधिनियम १८६० (सोसाइटीज रजिट्रेशन एक्ट, १८६०) के अंतर्गत रजिस्टर्ड किया जा सकता है। उक्त उद्देश्य से एकत्रित कोई सात या अधिक व्यक्ति समाज के ज्ञापन-पत्र और नियम-पत्र की एक प्रतिलिपि अपने हस्ताक्षरों सहित और उनमें से कम-से-कम तीन व्यक्तियों के प्रमाणीकरण सहित संयुक्त-पूंजी-कम्पनियों के रजिस्ट्रार के पास दाखिल कर सकते हैं। तब रजिस्ट्रार इस समाज को रजिस्टर कर लेता है। इसकी रजिस्ट्री से समाज एक निगमित संस्था का रूप नहीं ग्रहण कर लेता, किंतु इसके दो परिणाम होते हैं—(१) इसकी संपत्ति यदि ट्रस्टियों में अधिष्ठित न हो तो वह उसकी प्रबंधकारिणी संस्था में अधिष्ठित समझी जायगी और तमाम कानूनी कार्यवाहियों में उसे समुचित स्वत्व-पत्र द्वारा समाज की प्रबंधकारिणी संस्था की संपत्ति के रूप में बताया जा सकता है। (२) समाज के नियमों के अंतर्गत वह अपने अध्यक्ष या प्रधान मंत्री या न्यासियों (ट्रस्टियों) के नाम से मुकदमा चला सकता है या उस पर मुकदमा चलाया जा सकता है, और यदि ऐसा कोई नियम न हो तो प्रबंधकारिणी संस्था द्वारा इस कार्य के लिए नियुक्त व्यक्ति द्वारा यह कार्य हो सकता है। यदि आवेदन के दिये जाने पर प्रबंधकारिणी संस्था कार्य के लिए कोई व्यक्ति नियुक्त नहीं करती, तो अध्यक्ष या उन पदाधिकारियों पर मुकदमा चलाया जा सकता है। इनमें से किसी भी व्यक्ति के लिए विरुद्ध निर्णय दिये जाने पर वह

निर्णय उस व्यक्ति की सपत्ति के विरुद्ध प्रवर्तित नही किया जाता वरन् समाज की संपत्ति के विरुद्ध प्रवर्तित किया जाता है।

अधिनियम मे रजिस्टर्ड समाजो ओर उनके सदस्यो के अधिकारो ओर दायित्वों तथा समाज को भंग करने के ढग के सबध मे व्यवस्था है। इसमे उन विभिन्न समाजो का निर्देश है जो इस अधिनियम के अतर्गत रजिस्टर किये जा सकते है, जैसे—पारमार्थिक समाज, सैन्य अनाथ कोष या समाज, साहित्य, विज्ञान या कला की अभिवृद्धि के लिए या उपयोगी ज्ञान या राजनीतिक शिक्षा के प्रसार के लिए, या वाचनालय और पुस्तकालयो को चलाने के लिए बनाये गए समाज। सामाजिक और राजनैतिक क्लब प्राय इसी अधिनियम के अतर्गत रजिस्टर किये जाते है, किंतु उन्हे भारतीय कम्पनी अधिनियम के अतर्गत भी रजिस्टर कराया जा सकता है।

कर्मचारी-क्षतिपूर्ति

कर्मचारी-क्षतिपूर्ति-अधिनियम १९२३ (वर्कमेन्स कम्पेसेशन एक्ट, १९२३) कुछ निर्दिष्ट नौकरियो मे होनेवाली कर्मचारियो की शारीरिक क्षति या मृत्यु के बदले क्षतिपूर्ति की व्यवस्था करता है। ऐसी नौकरियो के उदाहरण है—एक ऐसे रेलवे कर्मचारी की नौकरी, जो क्लर्की या प्रशासनिक सेवा मे स्थायी नियुक्ति पर न हो—या उस व्यक्ति की नौकरी जो क्लर्की की नौकरी से भिन्न रूप मे किसी कारखाने, खान, जहाज, घाट, नाव, फिल्म-निर्माण सस्थान या चिड़ियाघर मे नौकरी करता हो। क्षतिपूर्ति का पात्र होने के लिए रेलवे से भिन्न नौकरी मे कर्मचारी का मासिक वेतन ४०० रुपये से अधिक नही होना चाहिए। शारीरिक क्षति या मृत्यु नौकरी के काम से या नौकरी के दौरान मे हुई दुर्घटना से हुई होनी चाहिए। यदि क्षति कर्मचारी के शराब पिये हुए होने, या उसके द्वारा आदेशो की जान-बूझकर अवज्ञा करने अथवा जान-बूझकर सावधानी के नियमो की अवहेलना करने के कारण हुई है और उसके परिणामस्वरूप मृत्यु नही हुई है तो उसे क्षतिपूर्ति नही मिलेगी। विभिन्न प्रकार की क्षतियो के लिए उसे या उसकी मृत्यु होने की दशा में उसके आश्रितो को क्षतिपूर्ति देने के हिसाब का अधिनियम मे उल्लेख है। क्षतिपूर्ति के विवादो का निर्णय कर्मचारियो की क्षतिपूर्ति के लिए राज्य सरकार द्वारा नियुक्त कमिश्नर करता है।

कारखाने (फैक्टरियाँ)

फैक्टरी एक्ट १९४८ यात्रिक शक्ति से चलनेवाले कारखानो में काम करनेवाले कर्मचारियो के स्वास्थ्य, सुरक्षा, काम के घटे और छुट्टियो के लिए व्यवस्था करता है। इसकी व्यवस्था मे अग्रलिखित बाते शामिल है—किसी बालिग कर्मचारी से कारखाने में किसी सप्ताह मे ४८ घंटे और एक दिन में ९ घटे से अधिक काम नही लिया जा सकता और न उसे काम करने की अनुमति दी जायगी। किसी भी बच्चे से, जिसने

१४ वर्ष की आयु पूरी नही की है, कारखाने में काम नही कराया जा सकता, न करने की अनुमति दी जायगी। जिस व्यक्ति ने १४ वर्ष की आयु पूरी कर ली है, किंतु १८ वर्ष से कम है, वह किसी फैक्टरी मे तबतक काम नही कर सकता जबतक कि वह अधिनियम में निर्दिष्ट प्रकार से समर्थता का प्रमाणपत्र प्राप्त न कर ले। १५ वर्ष की आयु से कम के बच्चे से किसी एक दिन में ४॥ घटे से अधिक, और सायकाल के ७ बजे से प्रातःकाल के ६ बजे के बीच, काम नही कराया जायगा। अधिनियम में निरीक्षण करनेवाले अधिकारियो की व्यवस्था है जो यह देखेंगे कि अधिनियम का पालन किया जाता है। अधिनियम मे अधिनियम की व्यवस्था का उल्लंघन करनेवाले मालिको (नौकरी देनेवालो) के लिए दड भी निर्धारित है। बाल-श्रम का निषेध करनेवाले अन्य कानूनो की चर्चा पाँचवे अध्याय मे की जा चुकी है।

एकस्व (पेटेण्ट)

एकस्व किसी आविष्कृत वस्तु के बनाने, प्रयोग करने और बेचने के सबंध मे सरकार से मिला विशिष्ट अधिकार है। आविष्कार से अभिप्राय किसी वस्तु के नव-निर्माण के एक ढंग से है। एकस्व प्रथम आविष्कारक या उसके प्रतिनिधि के या उसके स्वत्वार्पण-ग्रहीता के आवेदन करने पर केन्द्रीय सरकार द्वारा दिया जाता है। यह आवेदन एकस्व-कार्यालय में एकस्व-नियत्रक (कन्ट्रोलर आंव पेटेण्ट्स) को किया जाना चाहिए। इस प्रकार के दो कार्यालय है—एक बबई मे और दूसरा कलकत्ता मे। एकस्व आवेदन की तिथि से १६ वर्ष की अवधि के लिए दिया जाता है, किंतु विशेष आधारो पर यह अवधि १० वर्ष तक के लिए और स्वीकृत की जा सकती है। एकस्व मिलने का फल यह होता है कि एकस्व पानेवाले व्यक्ति को बिना उसकी आज्ञा के एकस्व का प्रयोग करनेवाले या उसकी नकल करनेवाले व्यक्ति पर एकस्व भग करने के लिए जिला या उच्च न्यायालय मे मुकदमा चलाने का अधिकार मिल जाता है। वह प्रतिवादी से हर्जाना वसूल कर सकता है, किंतु यदि प्रतिवादी यह सिद्ध कर दे कि उसे उस आविष्कार के अस्तित्व की बात का पता नही था और न उसे तर्कसंगत रूप से उसका पता हो सकता था, तो वह हर्जाना वसूल नही कर सकता। किंतु भले ही प्रतिवादी को एकस्व का पता हो या न हो, वादी उसे (एकस्व को) और अधिक भंग करनेसे रोकने के संबध में न्यायालय से निषेधाज्ञा जारी करा सकता है। यदि सरकार या उसके अधिकारी केंद्रीय सरकार से आज्ञा लेकर और पेटेण्टधारी को सूचित कर एकस्ववाले आविष्कार का सरकारी प्रयोजन के लिए उपयोग करते है तो उन पर मुकदमा नही चलाया जा सकता। तब एकस्वधारी के पास यही उपाय होता है कि वह सरकार से समझौता करले कि अमुक शर्तों, जैसे—स्वामित्व (रॉयल्टी) आदि—पर वह उसका उपयोग कर सकती है। विवाद की स्थिति मे मामला निर्णयार्थ उच्च न्यायालय को सौपा जाना चाहिए।

रूपाकन (डिजाइन) का अर्थ किसी औद्योगिक प्रक्रिया द्वारा कृत किसी वस्तु की आकृति, रूप, नमूने या सजावट के आकार-प्रकार से है। एक नया डिजाइन एकस्व नियंत्रक के पास रजिस्टर्ड कराया जा सकता है। उसके रजिस्टर्ड होने के बाद उसके स्वामी को पाँच वर्ष की अवधि के लिए उसका प्रतिलिप्याधिकार (कॉपीराइट) मिल जाता है। यह अवधि ५-५ वर्ष के लिए दो बार स्वीकृत की जा सकती है। इन अधिकारों के संबंध में नियम एकस्व और रूपाकन अधिनियम १९११ (पेटेण्ट्स एण्ड डिजाइन्स एक्ट) में दिये गए हैं।

व्यापार-चिह्न

व्यापार-चिह्न चित्रादि के रूप में वह चिह्न होता है जो एक व्यापारी अपने विक्रय के माल पर लगाता है, जिसका उद्देश्य उस माल को उस व्यापारी के माल के रूप में और अन्य व्यापारियों के माल से भिन्न रूप में पहचान करना होता है। व्यापार-चिह्न का स्वामी एकस्व-नियंत्रक के पास, जो व्यापार-चिह्नों का रजिस्ट्रार भी होता है, अपना चिह्न रजिस्टर कराने के लिए आवेदन कर सकता है। जो व्यापार-चिह्न २५ फरवरी १९३७ से पूर्व निरंतर प्रयुक्त होते थे, वे इस नियम का अपवाद हैं। व्यापार-चिह्न तब भंग होता है जब कोई अन्य व्यक्ति उस चिह्न का, या उससे मिलते-जुलते ऐसे चिह्न का उपयोग करता है जिससे धोखे की या व्यापार में भ्रान्ति की संभावना हो। भंग होने की स्थिति में प्रतिकार यह है कि न्यायालय में हर्जाने के लिए दावा, या उसे भंग करनेवाले को रोकने के हेतु निषेधाज्ञा के लिए आवेदन किया जाय। व्यापार-चिह्न-विषयक नियम व्यापार-चिह्न अधिनियम १९४० (ट्रेडमार्क्स एक्ट, १९४०) में निहित हैं।

प्रतिलिप्याधिकार (कॉपीराइट)

प्रतिलिप्याधिकार साहित्य या कला की किसी मूल कृति की प्रतिलिपियाँ तैयार करने का एकाधिकार है। उसमें उसका अनुवाद प्रकाशित करने, उसे ग्रामोफोन या रेकार्ड या सिनेमा-फिल्म के रूप में परिवर्तित करने, उसका सार्वजनिक अभिनय करने और एक उपन्यास का नाटकीय रूपान्तर करने का अधिकार भी शामिल कृति के कर्त्ता को उसके संबंध में प्रतिलिप्याधिकार अपने जीवन-काल में और बाद में मूल के ५० वर्षों तक होता है। वह अपने अधिकार का हस्तांतरण कर सकता है और हस्तातरणग्रहीता को वही अधिकार प्राप्त होगा जो मूल कर्त्ता को था।

छापाखाना (मुद्रणालय)

छापेखाने के उद्योग का महत्त्व और प्रभाव बढ़ रहा है, अत. इससे संबंधित कानूनों में पाठक की रुचि होगी। भारत में मुद्रित प्रत्येक पुस्तक और पत्र पर मुद्रक और मुद्रण स्थान का नाम स्पष्ट रूप से मुद्रित होना चाहिए और यदि पुस्तक या पत्र प्रकाशित किया गया है तो उस पर प्रकाशक और प्रकाशन स्थान का नाम भी मुद्रित होना चाहिए। कोई भी व्यक्ति पुस्तक या पत्र छापने के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष

अपने नाम और मुद्रण स्थान का प्रज्ञापन उपस्थित किये बिना भारत मे छापाखाना नही रख सकता । समाचारपत्र के मुद्रक या प्रकाशक को जिला, प्रेसीडेन्सी या सब-डिविजनल मजिस्ट्रेट—जिसके अधिक्षेत्र मे समाचार-पत्र छपना या प्रकाशित होना हो—के समक्ष स्वयं व्यक्तिगत रूप से या अपने अधिकृत अभिकर्ता के द्वारा उपस्थित होकर ऐसा प्रज्ञापन करना चाहिए । समाचार-पत्र की प्रत्येक प्रतिलिपि पर उसके सपादक का सपादक के रूप मे स्पष्ट नाम मुद्रित होना चाहिए । जो व्यक्ति अभी नाबालिग है वह मुद्रक, प्रकाशक या सपादक नही हो सकता । इन नियमो का उल्लघन करने पर २ हजार रुपये जुर्माना या ६ महीने की सादा कैद का दड दिया जा सकता है । समाचार-पत्र मे दैनिक समाचार-पत्र ही नही, वरन् साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, आदि पत्र-पत्रिकाएँ भी शामिल है । प्रत्येक मुद्रित पुस्तक की प्रतिलिपियाँ मुद्रण के एक वर्ष के भीतर राज्य-सरकार के पास पहुँचानी चाहिएं । हर समाचार-पत्र की दो प्रतियाँ उसके प्रकाशित होते ही इसी प्रकार भेजी जानी चाहिए । इन नियमो के उल्लघन पर ५० रुपये का जुर्माना किया जा सकता है । भारत मे प्रकाशित और मुद्रित वह समाचार-पत्र, जो उक्त व्यवस्था के अनुसार मुद्रित या प्रकाशित न हो, डाक मे रोका जा सकता है और पोस्टमास्टर-जनरल द्वारा अधिकृत डाकखाने का कोई अधिकारी उस समाचार-पत्र को रोक सकता है ।

आधुनिक युग मे प्रेस (समाचार पत्र—छापाखाना) की शक्ति सुविदित है । जहाँ इसका उपयोग जनता के बडे लाभ के लिए किया जा सकता है, वहाँ इसका ऐसा दुरुपयोग भी किया जा सकता है जिससे सार्वजनिक सुरक्षा और कल्याण को भारी खतरा पैदा हो जाय । ऐसे दुरुपयोग को रोकने के लिए संसद ने १९५१ मे प्रेस (आपत्तिजनक सामग्री) अधिनियम, जो आमतौर पर केवल 'प्रेस-एक्ट' कहलाता है, पास किया था । प्रारभ मे यह कानून केवल दो वर्ष के लिए बनाया गया था, किंतु चूंकि जिस खतरे को रोकने के लिए यह बनाया गया था, वह दूर नही हुआ, इसलिए इसकी अवधि बढायी जाती रही है । इस अधिनियम द्वारा राज्य-सरकारे व उनके अधिकारी किसी प्रेस या समाचार-पत्र के आपत्तिजनक सामग्री प्रकाशित करने पर उससे जमानत भरवाने के लिए सैशन्स जज के पास आवेदन कर सकते है । आपत्तिजनक सामग्री वह है, जिससे हिंसात्मक कार्यवाही, सरकार का परिध्वस करने, खाद्यान्न व अन्य परमावश्यक वस्तुओ की सप्लाई में बाधा डालने, प्रतिरक्षा सेनाओ मे अशान्ति पैदा करने और सामाजिक अव्यवस्था को जन्म देने में प्रोत्साहन या उकसाहट मिलने की संभावना हो । यदि जमानत भरने के बाद भी ऐसी सामग्री प्रकाशित की जाय तो उसके लिए दड निर्धारित है, जैसे—जमानत की जब्तगी, बडी जमानत माँगना, उस प्रकाशन का जब्त करना या उसे नष्ट कर देना । एक्ट में इस प्रकार के आदेश देने और उसके

विरुद्ध अपील करने की प्रक्रिया का निर्देश किया गया है।

औद्योगिक विवाद

वाणिज्य और उद्योग के क्षेत्र मे औद्योगिक विवाद अधिनियम, १९४७ (इण्डस्ट्रियल डिस्प्यूट्स एक्ट, १९४७) का बहुत महत्त्व है, क्योंकि उसका उद्देश्य मालिकों और कर्मचारियों के बीच विवादों को रोकना और उनका निपटारा करना है। सबसे पहले अधिनियम मे यह व्यवस्था है कि सबंधित केंद्रीय या राज्य सरकारें मालिक से एक कार्य-समिति (वर्क्स कमेटी) बनाने के लिए कह सकती हैं, जिसमे मालिक और कर्मचारियों, दोनो के प्रतिनिधि हों। यह विवादों को रोकने की व्यवस्था के रूप मे है। किंतु जब विवाद खड़ा ही हो जाता है तब अधिनियम की और व्यवस्थाएँ काम आती हैं। केन्द्रीय या राज्य-सरकार, जो भी मामले से संबंधित हो, निर्णय के लिए समझौता-बोर्ड (बोर्ड ऑव कन्सीलिएशन), जाँच-न्यायालय (कोर्ट ऑव इन्क्वायरी) और अधिकरण (ट्रिब्यूनल) की स्थापना कर सकती हैं। विवाद के पैदा होने पर सरकार निम्नलिखित तीन मार्गों मे से एक अपना सकती है—

(१) वह समझौता-बोर्ड को समझौते के लिए विवाद सौंप सकती है।

(२) वह विवाद से सबंधित कोई मामला रिपोर्ट के लिए जाँच-न्यायालय को सौंप सकती है।

(३) वह निर्णय के लिए विवाद अधिकरण को सौंप सकती है।

यदि विवाद किसी लोकोपयोगी सेवा (पब्लिक यूटीलिटी सर्विस) मे खड़ा हुआ है और उसमें हड़ताल या तालेबंदी का नोटिस दिया जा चुका है, तो सरकार को चाहिए कि वह विवाद अधिकरण को सौंप दे। किंतु यदि वह यह समझती हो कि इस प्रकार का तरीका कार्यसाधक नही होगा, या यह कि नोटिस व्यर्थ और परेशान करने के लिए दिया गया है, तो उसके लिए ऐसा करना आवश्यक नही है। जब समझौता-बोर्ड समझौते का निर्णय दे दे तो दोनो पक्ष उससे बद्ध होंगे। यदि बोर्ड कोई निर्णय नहो देता तो सरकार, यदि चाहे तो, एक अधिकरण को विवाद सौंप सकती है। अधिकरण के निर्णय देने पर सरकार उसे दोनों पक्षो के लिए अवश्य-मान्य प्रज्ञापित करेगी। यदि सरकार स्वयं भी विवाद में शामिल है, जैसा कि रेलवे के विवादो मे होता है, और वह यह समझे कि सार्वजनिक आधार पर निर्णय को अवश्य-मान्य प्रज्ञापित करना अवांछनीय है, तो उसे यह निर्णय राज्य की विधान-सभा या लोक-सभा, जिसका भी उससे संबंध हो, मे प्रस्तुत करना चाहिए और उस पर विचार करने के लिए प्रस्ताव रखना चाहिए। निर्णय को पुष्ट करना, उसमें परिवर्तन करना या उसे अस्वीकार करना लोक-सभा या विधान सभा का काम है। अधिनियम में गैर-कानूनी हड़ताल और तालाबंदी के लिए दंड निर्धारित है। लोकोपयोगी सेवाओं के संबंध में कुछ आवश्यक अपेक्षाओ का अतिक्रमण करके (जैसे दूसरे पक्ष को ६ माह का नोटिस देने की अपेक्षा का)

कर्मचारियो के लिए हडताल करना और मालिक के लिए तालाबंदी करना अवैध है। किसी भी उद्योग के मामले मे हडताल या तालाबदी अवैध है--बशर्ते कि वह समझौते की कार्यवाही के या अधिकरण की कार्यवाही के दौरान में अथवा समझौते या निर्णय के प्रवर्तित हो जाने के उपरात शुरू या घोषित की गई हो। विवाद के समझौता-बोर्ड या अधिकरण को सौपे जाने से पूर्व आरंभ की गई हडताल यदि सौपे जाने के बाद भी चलाई जाय और अधिनियम के अंतर्गत अन्यथा अवैध न हो, तो वह अवैध नही होती। उस व्यवस्था के उल्लंघन में की गई हडताल या तालाबदी दंडनीय होती है (१ महीने की कैदया ५० रुपये का जुर्माना या दोनो)। हडताल या तालाबंदी के लिए उकसाना या उसको आगे बढाने मे पैसा खर्च करना दडनीय है (६ महीने, १ हजार रुपया, या दोनो)। इसी प्रकार का दंड उस मालिक के लिए निर्धारित है, जो समझौते या अधिकरण की कार्यवाही के दौरान मे विवाद-संबधित कर्मचारियो के हित के विपरीत उक्त कार्यवाही शुरू होने से पूर्व उन पर लागू होनेवाली उनकी नौकरी की शर्तें बदलता है या उन्हे बरखास्त या पृथक करता है या दंड देता है। औद्योगिक अधिकरणो के निर्णयों के विरुद्ध अपीलो की सुनवाई के लिए एक श्रमिक-अपीलीय-अधिकरण (लेबर एपेलेट ट्रिब्यूनल) की स्थापना की गई है।

कर (टैक्स)

सरकार द्वारा लगाये जानेवाले करो का स्पष्ट ही जनता के लिए बहुत महत्त्व है। किंतु कुछ करो का वाणिज्य और उद्योग में लगे हुए व्यक्तियो से विशेष संबध होता है। यहाँ ऐसे दो करो का--आयकर (इनकम टैक्स) और अतिरिक्त आयकर (सुपर-टैक्स)--और उनसे सबंधित कानूनो का अवलोकन किया गया है। ये कर प्रत्यक्ष कर होते हैं और भारत सरकार द्वारा लगाये जाते है। परोक्ष करो के उदाहरण हैं--भारत सरकार द्वारा लगाये जानेवाले आगम शुल्क (कस्टम ड्यूटी) और राज्य-सरकारो द्वारा लगाये गए बिक्री-कर। प्रारभ मे समस्त करो पर लागू होनेवाले सिद्धातो का अवलोकन करना उचित होगा। कर केवल कानून की सत्ता द्वारा ही लगाया जा सकता है। कानून संसद् या राज्य विधानमंडल द्वारा केन्द्रीय और राज्य सरकारो के मध्य राजस्वो के विभाजन के अनुसार बनाया जा सकता है। इन सरकारो के मध्य राजस्वो के विभाजन की चर्चा दूसरे अध्याय मे की जा चुकी है। कार्यकारी सरकार कानून द्वारा प्राप्त सत्ता के अंतर्गत ही और उसी कानून के अनुसार कर लगा सकती है। अन्यथा लगाया गया कर अवैध होता है और उससे पीडित व्यक्ति को न्यायालय मे जाने और उसका उचित प्रतिकार प्राप्त करने का अधिकार होता है। कर लगाने के लिए उपस्थित किया गया विधेयक 'वित्त-विधेयक' या मनी-बिल कहलाता है और ऐसे विधेयको के संबंध मे कुछ नियमो की चर्चा दूसरे अध्याय में की जा चुकी है। कर लगानेवाले कानून में

कर लगाने की बात स्पष्ट शब्दों में कही गई होनी चाहिए। कर लगाने की बात अनुमान से नही समझी जा सकती। यदि वह संदिग्ध हो तो उसका अर्थ सरकार के विपक्ष में, और कर लगाई गई जनता के पक्ष मे लगाया जायगा। राज्य-सरकारों द्वारा लगाया जानेवाला भू-राजस्व कर नही समझा जाता, किंतु राज्य के भूमि के सर्वोपरि स्वामी होने के नाते, भूमि से होनेवाली आय में उसका हिस्सा माना जाता है। अत. यह किसी कानून के अंतर्गत नही वसूल किया जाता, बल्कि सरकार के परमाधिकार के अंतर्गत लिया जाता है।

आयकर और अतिरिक्त-आयकर आयकर अधिनियम (इनकमटैक्स एक्ट) के अंतर्गत लगाये जाते है। यह अधिनियम की विशेषता है कि इन करो की दरो का निर्धारण करनेवाले उपबंध इस अधिनियम में नही, वरन् प्रतिवर्ष के वित्त विधेयक मे समाविष्ट रहते है। इसी प्रकार सीमात शुल्क अधिनियम (टैरिफ एक्ट) के अंतर्गत लगाये जानेवाले आगम शुल्को का निर्धारण भी वार्षिक वित्त विधेयक द्वारा किया जाता है। इस प्रकार सरकार प्रतिवर्ष अपनी आवश्यकताओ और अन्य परिस्थितियो के अनुसार कर की व्यवस्था करती है। आयकर व्यापार, पूंजी लगाने के कार्य, वेतन, मकान-जायदाद, व्यवसाय, धन्धे और विधेयक मे छोडे गए साधनो के अतिरिक्त अन्य सभी से होनेवाली आय पर लगाया जाता है। एक महत्त्वपूर्ण छूट कृषि से होनेवाली आय के संबंध में है; एक और छूट धार्मिक या दातव्य ट्रस्टो की संपत्ति से होनेवाली आय के संबंध में है। कर वित्तीय वर्ष (१ अप्रैल से ३१ मार्च तक) के लिए गत वर्ष मे हुई आय पर लगाया जाता है। जिस वर्ष पर कर लगाया जाता है उसके लिए यह गत वित्तीय वर्ष, कलेंडर वर्ष (१ जनवरी से ३१ दिसम्बर तक) या हिसाब का अन्य कोई वर्ष (देसी वर्ष आदि) हो सकता है। यह आय उस वर्ष में भारत मे निकली, पैदा हुई या प्राप्त की गई होनी चाहिए। जिस पर कर लगाया गया है वह व्यक्ति भारत का निवासी है या नही, इस बात से कोई अंतर नही पडता। जो व्यक्ति भारत का निवासी न हो, किंतु भारत मे व्यापार करता और आय प्राप्त करता हो, उसे भी उस आय पर कर देना होगा। यदि वह भारत का निवासी है तो उसे भारत से बाहर पैदा की गई और भारत में लाई गई आय पर भी कर देना पडेगा। एक व्यक्ति, हिंदू अविभक्त परिवार, कम्पनी, बिना-रजिस्टर्ड फर्म, या व्यक्तियो के संघ द्वारा दिये जानेवाले करो का और जितनी न्यूनतम आय पर कर लगना आरंभ होता है, उसका निर्देश वार्षिक वित्त विधेयक द्वारा किया जाता है, जो समय-समय पर बदलता रहता है।

अतिरिक्त आयकर (सुपर टैक्स) आयकर के अतिरिक्त लगाया जाता है। यदि करदाता कम्पनी या स्थानीय शासन संस्था है तो अतिरिक्त कर निर्दिष्ट दरो के अनुसार उसकी समस्त आय पर लगेगा। अन्य करदाताओं की स्थिति में

कर उनकी २५,००० रुपये से ऊपर की आय पर एक क्रमिक दर के अनुसार लगेगा।

प्रत्येक व्यक्ति को, जिस पर आयकर या अतिरिक्त आयकर निर्धारित हुआ है, अपनी आय का लेखा-जोखा, उसके संबंध में हिसाब और वाउचर आदि प्रस्तुत करने संबंधी आयकर विभाग के निर्देशों का पालन करना चाहिए, नहीं तो वह अधिनियम में निश्चित दंड का भागी होगा। यदि उस पर अधिक या अनुचित कर लगा है तो उसके पास उसके प्रतिकार की व्यवस्था है। वह सहायक-अपील कमिश्नर और बाद में आयकर-अपील अधिकरण के समक्ष अपील कर सकता है। उक्त अधिकरण की तथ्य संबंधी जानकारी अंतिम होती है। वह अधिकरण से विधि संबंधी किसी प्रश्न को उच्च न्यायालय के पास निर्णयार्थ भेजने के लिए कह सकता है।

उपर्युक्त कर संपत्ति, व्यवसाय और व्यापार के संबंध में लगाये जानेवाले म्यूनिसिपल या अन्य स्थानीय करों के अतिरिक्त हैं। नगरपालिकाएँ कानून में निर्दिष्ट सीमाओं के भीतर संपत्ति और व्यवसायों पर कर लगा सकती हैं। सरकार विशिष्ट व्यापार को करने के लिए दिये जानेवाले लायसेंसों पर शुल्क भी लगा सकती है।

मृत्यु या संपत्ति-कर पर पंद्रहवें अध्याय में विचार किया गया है।

: १३ :

पारिवारिक कानून

अब हम व्यक्तियों के उन कर्तव्यों और अधिकारों की चर्चा करते हैं जो उनके पारिवारिक संबंधों से उत्पन्न होते हैं। दो व्यक्तियों के वैध विवाह संबंध से परिवार का उदय होता है और उनमें पारस्परिक संबंधों का प्रादुर्भाव होता है। जब उनके बच्चे होते हैं तो उनमें तथा बच्चों में और बच्चों में परस्पर रुधिर-संबंध स्थापित होता है। जब बच्चे बड़े होते हैं, विवाह करते हैं और अपने बच्चों को जन्म देते हैं तो ये सब रुधिर-संबंध से बंध जाते हैं—अर्थात् एक सामान्य पूर्वज से अवतारण के संबंध से। इस प्रकार पारिवारिक संबंधों का विकास बहुत-सी समस्याएँ पैदा करता है, जैसे—वैध-विवाह का ढंग, आश्रित संबंधियों के भरण-पोषण का कर्त्तव्य, नाबालिग बच्चों के शरीर व संपत्ति की रक्षा तथा मृत संबंधी की संपत्ति के उत्तराधिकार का अधिकार। तदनुसार विवाह, भरण-पोषण, अवयस्कता (नाबालिगपन), संरक्षता और उत्तराधिकार आदि विषय ही पारिवारिक कानून के अंग हैं। पारिवारिक कानून के नियम हिंदू, मुस्लिम, पारसी, ईसाई आदि विभिन्न धर्मावलम्बियों के लिए भिन्न-भिन्न हैं। बौद्ध, जैन और सिख अपने कुछ विशेष परिवर्तनों के साथ अधिकांशतः हिंदुओं के नियमों को ही मानते हैं। पहले हम सब पर लागू होनेवाले अथवा उक्त जातियों में से कुछ पर लागू होनेवाले कुछ सामान्य कानूनों की चर्चा करेंगे और बाद में हिंदू, मुस्लिम, पारसी और ईसाई धर्मावलम्बियों के अलग-अलग कानूनों को लेंगे।

परिवार और पारिवारिक कानून

भारत में अधिकांश विवाह एक ही जाति, सम्प्रदाय और धर्म के लोगों में उनकी अपनी प्रथा और रस्म के अनुसार होते हैं। फिर भी सामाजिक एकता के हित में यह महसूस किया जाता था कि लोगों को इन रूढ़ि-बंधनों से बाहर विवाह करने की कानून द्वारा इजाजत दी जाय। इसलिए १८७२ में ऐसे विवाह की इजाजत देने के लिए विशेष विवाह अधिनियम (स्पेशल मैरिजेज एक्ट) पास किया गया। १९५४ में उसकी जगह इसी नाम का एक दूसरा अधिनियम लागू किया गया ताकि विवाह के संबंध में जनता के बदलते हुए विचारों को क्रियान्वित किया जा सके।

पारिवारिक कानून के सामान्य नियम, विवाह

इस अधिनियम के अनुसार कोई भी पुरुष और स्त्री, जो भारत के नागरिक

हैं, राज्य सरकार द्वारा नियुक्त विवाह अधिकारी द्वारा अपना विवाह-संस्कार करा सकते है। इस अधिनियम के अतर्गत विवाह की जो शर्तें है वे इस प्रकार है—(१) किसी पक्ष का, पति या पत्नी का, जीवित नही होना चाहिए। (२) कोई भी पक्ष जड-बुद्धि या पागल न हो। (३) पुरुष की आयु कम-से-कम २१ वर्ष और स्त्री की आयु कम-से-कम १८ वर्ष हो। (४) वे विवाह के प्रतिषिद्ध संबंध-क्रम में न आते हो।

इसके लिए आवश्यक रस्मे ये है—

(१) विवाह के पक्ष उस जिले के विवाह-अधिकारी को, जिसमे कि उनमे से कम-से-कम एक नोटिस देने के कम-से-कम ३१ दिन पूर्व से रह रहा हो, लिखित नोटिस दें।

(२) दोनो पक्ष तीन साथियो के साथ उक्त अधिकारी के सामने उपस्थित होकर उसके सामने प्रज्ञापन पर हस्ताक्षर करे कि उक्त शर्तो का पालन किया गया है। विवाह उस समय पूर्ण हो जाता है जब कि विवाह-अधिकारी और साक्षियो के समक्ष दोनो पक्ष एक दूसरे से यह कहते है कि "मै तुम्हे अपनी वैध पत्नी के रूप में ग्रहण करता हूँ" और "मै तुम्हे अपने वैध पति के रूप में ग्रहण करती हूँ।" तब विवाह-सस्कार पूरा हुआ समझा जाता है और दोनो पक्षो व साक्षियों द्वारा रजिस्ट्रार द्वारा रखी जानेवाली प्रमाणक (सर्टीफिकट) पुस्तिका मे उनके हस्ताक्षर सहित उसका रिकार्ड दर्ज किया जाता है। इस अधिनियम के अतर्गत किये गए विवाह हिदुओं के रूढिगत कानून के अंतर्गत हुए विवाहो से कई महत्त्वपूर्ण बातो में भिन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, यह अधिनियम एक पति या पत्नी के रहते दूसरा विवाह (द्विविवाहकरण) करानेवाले विवाह की आज्ञा नही देता जबकि रूढिगत कानून इसकी आज्ञा देता है। इस कानून के अनुसार विवाह-विच्छेद (तलाक) द्वारा विवाह-विघटन हो सकता है जबकि शास्त्रो के अनुसार हिदू-कानून के अंतर्गत ऐसा नही हो सकता।

इन तथा अन्य बातों के बारे मे अब हिदुओं का विवाह कानून हिन्दू-विवाह अधिनियम, १९५३ (हिदू मैरिजेज एक्ट) के द्वारा बदल दिया गया है और इन बातो के बारे मे दोनो प्रकार के विवाह एक-से ही है। विवाह-विच्छेद (तलाक) की एक बात के बारे मे विशेष विवाह अधिनियम के अतर्गत विवाह की एक खास विशेषता है। दोनो पक्ष आपस में भी विवाह-विच्छेद के लिए राजी हो सकते है और न्यायालय मे उसके लिए संयुक्त प्रार्थना-पत्र दे सकते है। यदि न्यायालय को यह सतोष हो जाय कि दोनो पक्ष सचमुच विवाह-विच्छेद के लिए राजी हो गए हैं, तो वह विवाह-विच्छेद की आज्ञा दे देगा। विवाह-विच्छेद के संबंध में दोनों पक्ष जल्दबाजी या गलत सलाह से काम न ले, इसके लिए यह व्यवस्था की गई है कि उन्हे विवाह-विच्छेद के लिए आज्ञा प्रार्थना-पत्र के १ साल से पहले नही दी जायगी, फिर भी २ वर्ष से पहले दे दी जायगी। इसके अलावा जबतक कोई

खास कठोरता न सिद्ध की जाय तबतक विवाह के बाद तीन वर्ष व्यतीत होने तक कोई प्रार्थना-पत्र नहीं लिया जा सकता। इस अधिनियम के अंतर्गत विवाह की दो और विशेषताएं हैं—(१) हिंदू संयुक्त परिवार का एक सदस्य जो इस प्रकार का विवाह करता है वह परिवार के अन्य सदस्यों से अलग हो जाता है; और (२) इस अधिनियम के अंतर्गत विवाह करनेवाले व्यक्ति के मरने पर उसके उत्तराधिकार का नियमन भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम के द्वारा होता है और वह ईसाइयों के उत्तराधिकार विधान, जिसकी आगे व्यवस्था की गई है, के सदृश होता है।

इस अधिनियम में यह भी व्यवस्था है कि विवाहित व्यक्ति भी अपने आपको इस अधिनियम के अंतर्गत विवाह-अधिकारी के समक्ष रजिस्टर करा सकते हैं। ऐसा करने पर इस अधिनियम के अंतर्गत विवाह-विच्छेद और उत्तराधिकार की जो व्यवस्था है वह उन पर भी लागू हो जाती है। सामान्य रूप में विवाहों के संबंध में लागू होनेवाले नियम इस प्रकार हैं—

यदि किसी के विवाह के संबंध में विवाद पैदा हो तो विवाह सिद्ध करनेवाले का उत्तरदायित्व है कि वह विवाह को प्रमाणीकृत करे। किंतु यदि यह सिद्ध कर दिया जाय कि दो व्यक्ति पति-पत्नी के रूप में रहते थे अथवा लोग ऐसा मानते हैं, तो न्यायालय और अधिक प्रमाण की अपेक्षा किये बिना उन्हें परस्पर विवाहित मान लेगा। फिर विवाह संबंध का निषेध करनेवाले को अपने पक्ष का समर्थन करना पड़ेगा।

यदि किसी विवाहित स्त्री के वैवाहिक जीवन में अथवा विवाह-विच्छेद के २८० दिन के भीतर—उस अवस्था में जबकि उसने दूसरा विवाह न किया हो—बच्चा उत्पन्न हो जाय तो न्यायालय उसे उस स्त्री के पति से समुत्पन्न मानेगा। दूसरे शब्दों में इसका यह अभिप्राय हुआ कि न्यायालय उस बच्चे को जायज मानेगा। जो इसे मिथ्या सिद्ध करना चाहता हो उसे चाहिए कि वह यह प्रमाण उपस्थित करे कि गर्भ-धारण-काल में पति पत्नी के सहवास में नहीं रहा।

१८ वर्ष से कम की आयु के पुरुष और १५ वर्ष की आयु से कम की स्त्री का विवाह करना अपराध है। इस विवाह को संपन्न करनेवाले माता-पिता या संरक्षक तथा पण्डित या अन्य व्यक्ति को इसके लिए ३ महीने तक की सादी कैद और जुर्माने का दंड दिया जा सकता है। उक्त आयु से कम की लड़की के साथ विवाह करनेवाले व्यक्ति को भी इसी प्रकार दंड दिया जा सकता है। किंतु इस प्रकार का विवाह गैर-कानूनी नहीं माना जायगा।

संभरण (गुज़ारा)

अपने-अपने जीवन-स्तर के अनुसार पति का अपनी पत्नी का भरण-पोषण करना व पिता का अपनी संतति का भरण-पोषण करना कर्त्तव्य है। यदि वह ऐसा नहीं करता तो पत्नी या बच्चा न्यायालय में संभरण-प्राप्ति (गुज़ारे) के लिए मुकदमा दायर कर सकता है और न्यायालय उसे १०० रुपया मासिक तक का गुजारा दिये जाने की आज्ञा दे सकता

है। पति का अपनी ऐसी पत्नी का भरण-पोषण करने का कोई कर्त्तव्य नहीं जो पर-पुरुष से संबंध रखती हो अथवा बिना समुचित कारण के पति से अलग रहती हो। पत्नी का अपने पति का भरण-पोषण करने का कोई कर्त्तव्य नहीं है। पिता का भी अपने वयस्क बच्चों के भरण-पोषण का कोई कर्त्तव्य नहीं है।

धर्म-परिवर्तन

धर्म-परिवर्तन मात्र से उन अधिकारों का क्षय नहीं होता जो, उससे पूर्व व्यक्ति को उपलब्ध थे। उदाहरण के लिए ईसाई या मुसलमान होनेवाले हिंदू का संपत्ति-संबंधी उत्तराधिकार बना रहता है। किसी हिंदू, बौद्ध या सिख का अन्य धर्मावलंबी हो जाना उसके विवाह को भंग नहीं करता। किंतु ईसाई हो जाने के बाद होनेवाली घटनाओं के संबंध में विशेष व्यवस्था है। यदि किसी हिंदू, सिख या बौद्ध पति के ईसाई हो जाने के बाद उसकी पत्नी उसे ३ महीने तक छोड़े रखे तो वह उस पर दाम्पतिक सहवास की प्रतिस्थापना के लिए मुकदमा चला सकता है। यदि उस स्थिति में पति के स्थान पर पत्नी हो तो उसे भी वही अधिकार प्राप्त है। यदि दूसरा पक्ष फिर भी सहवास के लिए तैयार न हो और एक वर्ष तक सहवास की प्रतिस्थापना न करे, तो न्यायालय विवाह-विघटन की डिगरी दे देगा। ऐसी डिगरी के बाद दोनों फिर विवाह कर सकते हैं। यदि विवाह-विघटन से पूर्व उनके कोई बच्चे हों तो उन्हें निस्संशय उनकी मृत्यु के बाद उत्तराधिकार का अधिकार होगा। मुस्लिम-कानून में पति का धर्म-परिवर्तन विवाह को स्वतः भंग कर देता है जब कि पत्नी का धर्म-परिवर्तन ऐसा नहीं करता। अपने धर्म-परिवर्तन के बाद जिन परिस्थितियों में मुस्लिम पत्नी अपने पति से तलाक पा सकती है, उनकी चर्चा इस अध्याय में आगे की गई है।

अवयस्कता और संरक्षता

१८ वर्ष की आयु पूरी करने पर व्यक्ति अवयस्क (नाबालिग) न रहकर वयस्क (बालिग) हो जाता है। दो अवस्थाओं में—जिनकी चर्चा तीसरे अध्याय में की जा चुकी है—यह आयु २१ वर्ष तक बढ़ जाती है। अवयस्क होने के दो परिणाम होते हैं। प्रथम यह कि अवयस्क व्यक्ति सम्पत्ति का हस्तांतरण नहीं कर सकता और कोई संविदा नहीं कर सकता। दूसरे, उसकी संपत्ति व शरीर की सुरक्षा का उत्तरदायित्व उसके संरक्षक पर होता है। हिंदुओं और मुसलमानों में कुछ संबंधियों को संरक्षक के रूप में कार्य करने का अधिकार है। ये लोग 'स्वाभाविक संरक्षक' कहलाते हैं। पिता अपनी वसीयत द्वारा अपने बाद अपने अवयस्क पुत्र की संपत्ति के प्रबंध के लिए संरक्षक नियुक्त कर सकता है। ऐसे संरक्षक को 'वसीयती संरक्षक' (टेस्टामेण्टरी गारजियन) कहते हैं।

यदि इन संरक्षकों में से कोई भी उपलब्ध या अभीष्ट न हो, तो जिला न्यायालय और उच्च न्यायालय को अवयस्क व्यक्ति की संपत्ति अथवा उसके शरीर या दोनों

के लिए संरक्षक नियुक्त करने का अधिकार है। संरक्षक चुनने मे न्यायालय केवल अवयस्क की भलाई का ध्यान रखेगा। यदि अवयस्क इतना बडा हो कि सरक्षक के चुनाव मे अपनी इच्छा व्यक्त कर सकता हो, तो न्यायालय उस पर भी विचार करेगा। अवयस्क व्यक्ति का कोई सबधी या मित्र उसके लिए सरक्षक की नियुक्ति की प्रार्थना कर सकता है। उस जिले का कलक्टर भी—जिसमे अवयस्क रहता हो या उसकी संपत्ति हो—उसके लिए सरक्षक की नियुक्ति की प्रार्थना कर सकता है। अवयस्क और विक्षिप्त (पागल) व्यक्ति को छोडकर कोई भी व्यक्ति संरक्षक हो सकता है। बिना इच्छा के किसी व्यक्ति को संरक्षक नही बनाया जा सकता, किन्तु एक बार स्वीकृति प्रदान करने पर वह अवयस्क का ट्रस्टी बन जाता है और अवयस्क के प्रति महत्त्वपूर्ण दायित्व ग्रहण करता है। जब किसी व्यक्ति को अपनी रक्षा न कर सकनेवाले किसी स्त्री या पुरुष का भार सौंपा जाता है तो हर कानून और नैतिक संहिता द्वारा यह आवश्यक समझा जाता है कि वह ईमानदारी, सचाई और सतर्कता के साथ अपने कर्त्तव्य का पालन करेगा। सरक्षक के कर्त्तव्यो का उल्लेख संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम (गार्जियन्स एण्ड वार्ड्स एक्ट) मे किया गया है। ये कर्त्तव्य भारतीय न्यास अधिनियम (इण्डियन ट्रस्ट एक्ट) मे दिये गए कर्त्तव्यो के सदृश है। एक महत्त्वपूर्ण और स्पष्ट कर्त्तव्य यह है कि संरक्षक उस पद पर आरूढ होने के फलस्वरूप अपना कुछ लाभ-साधन न करे। उदाहरण के लिए वह अपने प्रतिपाल्य की सपत्ति स्वय नही खरीद सकता। यदि वह ऐसा करता है तो न्यायालय को उस कार्य को रद्द करने और उस संपत्ति को लौटाने के लिए आदेश देने का अधिकार है। प्रतिपाल्य व्यक्ति के शरीर के सरक्षक का यह कर्त्तव्य है कि वह उसके निर्वाह, स्वास्थ्य और शिक्षा का भी ध्यान रखे। अवयस्क व्यक्ति की संपत्ति के सरक्षक का यह दायित्व है कि उसके संबध मे वह वैसी सावधानी बरते जैसी कोई दूरदर्शी व्यक्ति अपनी सपत्ति के सबध मे बरतता है और उसकी वसूली, सुरक्षा और हित के लिए आवश्यक ध्यान दे। अवयस्क प्रतिपाल्य के वयस्क होने पर अथवा न्यास-भार से मुक्त होने पर उसकी सपत्ति उसे सौंपते समय वह सपत्ति का सही-सही हिसाब दे। यदि उसकी नियुक्ति न्यायालय ने की है तो उसे चाहिए कि न्यायालय की पूर्व स्वीकृति के बिना अपने प्रतिपाल्य की अचल संपत्ति बधक या हस्तातरित न करे, और न उसे, ५ वर्ष से अधिक के लिए या प्रतिपाल्य के वयस्क होने के समय मे से एक वर्ष के ऊपर के लिए किराये पर उठाये। किसी व्यक्ति को संपत्ति का सरक्षक नियुक्त करते समय न्यायालय उससे बंधक पत्र (बॉण्ड) भरने और जमानत देने को कहता है ताकि वह संपत्ति की समुचित व ईमानदारी से व्यवस्था करने और न्यायालय की हिसाब पेश करने व न्यायालय मे पैसा जमा करने सरीखी आज्ञाओ का पालन करने का आश्वासन दे। यदि वह बॉण्ड का उल्लंघन करता है तो उस पर बॉण्ड

की शर्तों का पालन करने और उससे व उसकी जमानत भरनेवालों से जुर्माना वसूल करने के लिए मुकदमा चलाया जा सकता है। न्यायालय संरक्षक को उसकी अयोग्यता, न्यास के दुरुपयोग व अन्य अनाचार के कारण पदच्युत भी कर सकता है। संरक्षक पदत्याग कर सकता है, लेकिन इसके लिए उसे न्यायालय को प्रार्थना-पत्र देना होगा।

उत्तराधिकार

जब कोई व्यक्ति मर जाता है तो उसकी संपत्ति उसके उत्तराधिकारियों को या यदि उसने वसीयत छोड़ी है तो रिक्थभागियों (वसीयत में निर्दिष्ट व्यक्तियों) को मिल जाती है। किंतु ऐसा करने से पूर्व यह आवश्यक हो जाता है कि सम्पत्ति के प्रबंध की, किराये और बाकी रकम वसूल करने की, कर्ज चुकता करने की, चालू व्यापार को चलाने की, और उत्तराधिकारियों व रिक्थभागियों के मध्य उस संपत्ति के विभाजन की व्यवस्था की जाय। यदि मृतक ने वसीयत की है और उस वसीयत को कियान्वित करने के लिए किसी व्यक्ति (जिसे हम निष्पादक कहेंगे) की नियुक्ति की है तो उसकी संपत्ति उस व्यक्ति में अवस्थित होगी। यदि उसने वसीयत नहीं की है अथवा वसीयत में किसी निष्पादक का नामोल्लेख नहीं है, तो न्यायालय किसी उत्तराधिकारी, रिक्थभागी और यहाँ तक कि उसके (मृतक के) ऋणदाता को प्रशासक नियुक्त कर सकता है और उसे प्रशासन-पत्र दे सकता है। ऐसा निष्पादक या प्रशासक मृतक का स्थान व उसके समस्त अधिकार ग्रहण कर लेता है। वसीयत करने के कुछ नियम हैं जो मुसलमानों को छोड़कर अन्य सब पर लागू होते हैं। वसीयत लिखित, वसीयत-कर्ता के हस्ताक्षर-युक्त और दो साक्षियों द्वारा प्रमाणीकृत होनी चाहिए। हस्ताक्षर में वसीयत-कर्ता की निशानी भी शामिल है—वह स्वयं हस्ताक्षर कर सकता है या निशानी लगा सकता है या अन्य किसी को अपने सामने हस्ताक्षर करने के लिए कह सकता है। प्रमाणीकरण का अर्थ यह है कि साक्षियों ने वसीयतकर्त्ता को उस पर अपने हस्ताक्षर करते या निशानी लगाते देखा है अथवा उसके द्वारा वैसा करने के संबंध में स्वीकृति प्राप्त की है। साक्षी के लिए यह आवश्यक है कि वह वसीयत-कर्त्ता के सामने अपने हस्ताक्षर करे। मुसलमान अपनी वसीयत मौखिक या लिखित रूप में कर सकता है। कोई भी व्यक्ति—नाबालिग और विक्षिप्त व्यक्ति को छोड़कर—वसीयत कर सकता है, किंतु हिंदुओं और मुसलमानों के वसीयत करने के अधिकार अपने-अपने निजी कानूनों से नियंत्रित होते हैं। इन जातियों के विशेष कानूनों की चर्चा के समय इनका उल्लेख किया जायगा। ऊपर वसीयत के लिखित और प्रमाणीकृत होने की जो शर्त उल्लिखित है वह युद्ध या किसी मुहिम में संबद्ध सैनिक या हवाबाज तथा समुद्र पर विचरण कर रहे मल्लाह द्वारा की जानेवाली वसीयत पर लागू नहीं होती है। वह अपनी वसीयत लिखित या मौखिक रूप में कर सकता है

और उसमें दिये गए संपत्ति विषयक उसके लिखित या मौखिक आदेश को क्रियान्वित किया जायगा।

मुसलमान को छोड़कर यदि कोई अन्य व्यक्ति पश्चिमी बंगाल या मद्रास व बंबई शहर में, अथवा इन स्थानों से संबंधित अपनी संपत्ति के संबंध में कहीं अन्यत्र, वसीयत करे, तो उस वसीयत के अधीन अधियाचना करनेवाले को वसीयत का अधिप्रमाण (सरकारी सबूत) तथा प्रशासन-पत्र लेने के लिए उपयुक्त न्यायालय में प्रार्थनापत्र देना चाहिए। अधिप्रमाण वसीयत में उल्लिखित निष्पादक के नाम दिया जायगा। यदि वसीयत में निष्पादक (वसीयत को क्रियान्वित करनेवाले) का निर्देश न हो अथवा निर्दिष्ट व्यक्ति निष्पादक के रूप में कार्य न करे, तो अधिप्रमाण मृत व्यक्ति के उत्तराधिकारी अथवा वसीयत के अधीन लाभ-प्राप्ति के अधिकारी को दे दिया जायगा। न्यायालय में उक्त प्रार्थना-पत्र देते समय यह सिद्ध करना आवश्यक है कि वसीयत मृत व्यक्ति ने ही की है और वह वसीयत करने की योग्यता से युक्त था। न्यायालय से अधिप्रमाण या प्रशासन-पत्र लिये बिना वसीयत का निष्पादक या स्थिरभागी वसीयत के अंतर्गत अपना अधिकार सिद्ध नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए वह वसीयत की संपत्ति का अतिक्रमण करनेवाले पर मुकदमा नहीं चला सकता। यदि वसीयत देश के अन्य भागों में, या उसमें स्थित संपत्ति के संबंध में की गई है, तो यह नियम लागू नहीं होता। हां, यदि वह मृत व्यक्ति के कर्ज को उगाहने के लिए मुकदमा चलाता है तो उसे समर्थ न्यायालय से उत्तराधिकार-प्रमाण-पत्र प्राप्त करना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति बिना वसीयत किये ही मर जाता है, तो उस दशा में भी मृत व्यक्ति के कर्ज को उगाहनेवाले के लिए आवश्यक है कि वह उक्त कर्ज के निर्देश के साथ उत्तराधिकार-प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करे। यदि उक्त स्थितियों में किसी व्यक्ति के लिए अधिप्रमाण प्राप्त करना आवश्यक रहा हो और उसने वह प्राप्त कर लिया हो तो उसे उत्तराधिकार-पत्र पेश करने की आवश्यकता नहीं। उत्तराधिकार-प्रमाण-पत्र का नियम सभी पर—मुसलमानों पर भी—लागू होता है। भारत-स्थित ऐसा कोई भी व्यक्ति जो हिंदू, मुसलमान, पारसी या भारतीय ईसाई न हो और जो अपने को किसी ऐसे मृत व्यक्ति की किसी संपत्ति को अपनाने का अधिकारी बताता हो जो बिना वसीयत किये मर गया है, तो उसके लिए न्यायालय से प्रशासन-पत्र ग्रहण करना आवश्यक है। प्रशासन-पत्र प्राप्त करने के बाद उत्तराधिकार-प्रमाण-पत्र प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं। जिन न्यायालयों से अधिप्रमाण, प्रशासन-पत्र या उत्तराधिकार-प्रमाणपत्र प्राप्त किये जा सकते हैं और उन्हें प्राप्त करने की जो प्रक्रिया है, उसका निर्देश भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम (इण्डियन सक्सैशन ऐक्ट) में किया गया है।

जो लोग हिंदू धर्म को मानते हैं वे कानून की दृष्टि में हिंदू हैं। वे हिंदू माता-

पिता से पैदा हुए हो सकते है और यदि अहिदू माता-पिता से पैदा हुए हो तो हिदू धर्म में दीक्षित हुए हो सकते है। जो हिदू अन्य धर्म स्वीकार कर लेता है वह हिदू नही रहता। किंतु वह कुछ विधि-विधानो द्वारा फिर हिदू बन सकता है। न्यायालयो ने उन व्यक्तियो के संबंध मे भी हिदू-कानून को अपनाया है जो हिदू-धर्म के कुछ या सभी सिद्धातो से मतभेद रखते है—जैसे सिख, जाट, जैन, लिंगायत, ब्रह्मसमाजी और आर्यसमाजी।

हिन्दुओं का पारिवारिक कानून

पारिवारिक कानून के क्षेत्र में न्यायालय हिदुओ के आचार (प्रथा, रीति-रिवाज) नियम उनके तीन प्रकार के मामलो में लागू करते है। ये मामले है—(१) विवाह, (२) उत्तराधिकार और (३) उनके सहायक विषय, जैसे संयुक्त परिवार की प्रथा व दत्तकग्रहण (गोद लेना)। ये नियम हिदुओ के निजी कानून कहलाते है और उन पर इसलिए लागू होते है, क्योकि वे हिदू धर्म के माननेवाले है।

इन नियमो मे से कुछ विधानमंडलो द्वारा निर्मित कानूनो द्वारा विवर्तित कर दिये (सुधार दिये) गए है या उनके द्वारा अधिकृत कर दिये गए है। लेकिन अभी हाल तक इस प्रकार के कानून थोडे ही थे। फिर भी लोकमत की माँग पर, और नई आवश्यकताओ और परिस्थितियो का सामना करने के लिए ससद् ने रूढिगत हिदू विवाह कानून मे कई बडे और महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर दिये है और इन परिवर्तनो के साथ ही उत्तराधिकार और दाय कानूनो मे भी परिवर्तन आ गए है।

संयुक्त-परिवार की प्रथा नई परिस्थितियो और आवश्यकताओ के कारण बदल रही है, किंतु फिर भी वह काफी प्रचलित है। इसकी मुख्य विशेषताएँ इसका गठन और इसके सदस्यो के अधिकार है। संयुक्त परिवार एक सामान्य पूर्वज से पुरुष-वंशक्रम में समुत्पन्न व्यक्तियो से मिलकर बनता है और उसमे उनकी पत्नियाँ व पुत्रियाँ भी शामिल होती है। पुत्री शादी होने पर अपने पिता के परिवार की सदस्या नही रहती और अपने पति के परिवार की सदस्या हो जाती है तथा उसी का गोत्र ग्रहण कर लेती है। संयुक्त परिवार के सदस्य एक साथ रहते है, एक चौके में खाते है, एक इष्टदेव की आराधना करते है और सभी का उस परिवार की संयुक्त संपत्ति में से भरण-पोषण होता है। किंतु इस परिवार के कुछ सदस्य ही संपत्ति के स्वामी होते है, अर्थात्, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र—जो उस समय संपत्ति के धारी व्यक्ति के पुरुष से समुत्पन्न हो। वे समाशी (सह-अंशहारी, संपत्ति के भाग को साथ-साथ प्राप्त करनेवाले) कहलाते है और संपत्ति के संयुक्त स्वामी होते है। अत उनमे से कोई भी उसका व्यक्तिगत स्वामी नही होता। प्रत्येक समांशी अपने पिता के साथ बराबर का हिस्सा बँटाता है। परिवार की स्त्री सदस्याएं सह-अंशहारी या सह-स्वामी नही होती, किंतु उन्हें परिवार की संपत्ति

पश्चिमी बंगाल के बाहर संयुक्त-परिवार-कानून

में से भरण-पोषण प्राप्त करने का अधिकार होता है। समाशी को जन्म से ही पैतृक संपत्ति में अधिकार प्राप्त हो जाता है, अर्थात् उस संपत्ति में, जो उसके धारक को अपने पिता, दादा और परदादा द्वारा उत्तराधिकार में प्राप्त हुई हो। उसका ऐसी किसी संपत्ति में अधिकार नहीं होता जो उसके धारक को किसी अन्य व्यक्ति, जैसे अपने भाई या चाचा से उत्तराधिकार में मिली हो। और न उसे उस संपत्ति में अधिकार होता है जो उसके धारक द्वारा अपनी निजी मेहनत या पैसे से और संयुक्त परिवार के कोष की सहायता के बिना प्राप्त की गई है। ऐसा व्यक्ति, जिसकी शिक्षा का खर्च संयुक्त कोष में से दिया गया हो और जो उस शिक्षा के आधार पर किसी व्यवसाय, उद्योग या व्यापार में पैसा कमाये, वह उस पैसे को अपनी निजी संपत्ति समझ सकता है। इस का उदाहरण वह व्यक्ति होगा, जो पैसा कमाने के किसी व्यवसाय की योग्यता के लिए शिक्षा प्राप्त करने विदेश भेजा गया हो। यह परिणाम हिंदू शिक्षा-लाभ अधिनियम १९३० (दि हिंदू गेन्स आव लर्निंग एक्ट १९३०) के अंतर्गत निकलता है जो इस शंका के निर्धारण के लिए पास किया गया था। उसकी प्राप्त (अर्जित) संपत्ति में न परिवार के अन्य सदस्य ही और न उसके अपने पुत्र ही किसी अधिकार का दावा कर सकते हैं। किंतु यदि वह व्यक्ति अपने व्यापार के लिए परिवार के धन का उपयोग करता है तो वे उसकी अर्जित संपत्ति का संयुक्त-परिवार की संपत्ति का भाग होने का दावा कर सकते हैं।

समाशियों को मिलकर उस संपत्ति का उपयोग करने का अधिकार है। प्रायः परिवार का बड़ा सदस्य ही संपत्ति का प्रबंध करता है। वह कोई ऋण तभी ले सकता है या परिवार की संपत्ति तभी हस्तांतरित कर सकता है, जब ऐसा करना आवश्यक हो या परिवार के लाभ के लिए हो। यदि वह अपने अधिकारों का उल्लंघन करता है तो अन्य सह-अंशहारी आपत्ति कर सकते हैं और वे उसके व्यवहार तथा कार्यों से बद्ध नहीं होंगे।

मद्रास, बंबई और मध्यप्रदेश राज्यों में समाशी संयुक्त-परिवार की संपत्ति के अपने हिस्से को बेच सकता है या रहन रख सकता है। अन्य राज्यों में उनके इस अधिकार को मान्यता प्राप्त नहीं है।

समाशियों का एक अन्य अधिकार परिवार की संपत्ति का बंटवारा करवाना है। वे आपसी समझौते द्वारा बटवारा कर सकते हैं। यदि वे आपस में सहमत न हों तो उनमें से कोई न्यायालय से बंटवारा करने के लिए कह सकता है। कोई भी स्थिति हो, समांशी को अपने पिता के बराबर हिस्सा मिलता है और एक-एक हिस्सा पिता, पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र से बनी प्रत्येक शाखा को मिलता है। उदाहरण के लिए यदि एक व्यक्ति के दो पुत्र हैं और उन दोनों से उसे एक-एक पौत्र है, तो संपत्ति के छह हिस्से किये जायँगे, जिनमें से दो हिस्से उसे मिलेंगे और उसके दोनों पुत्र

और पौत्रों को एक-एक हिस्सा मिलेगा। मान लीजिये, उसके दो पुत्र है और दूसरे पुत्र से दो पौत्र है, तो संपत्ति ९ हिस्सो मे बाँटी जायगी, जिसमे से उसे और उसके पहले लडके को ३-३ हिस्से और दूसरे लडके व पोत्रो को एक-एक हिस्सा मिलेगा। अत. बंटवारा प्रति शाखा के अनुपार होता है, न कि प्रति व्यक्ति के अनुसार। बंटवारे के बाद अलग हुआ सदस्य अपनी संपत्ति बेच सकता है, प्रतिग्रह या उपहार के रूप मे दे सकता है या वह अपनी संपत्ति के संबंध मे वसीयत कर सकता है, किंतु तबतक वह परिवार की संपत्ति की कोई चीज दे या बेच नही सकता। यदि वह उसका प्रतिग्रह करना चाहता है या उसके संबंध मे वसीयत करता है तो संयक्त-परिवार का कोई भी सदस्य या वह स्वयं भी उसमे बद्ध नही होगा। यदि वह संपत्ति का कोई भाग बेचता है तो इस संबंध मे व्यवस्था बगाल और उत्तर प्रदेश मे उक्त नियम के अनुपार ही है, किंतु अन्य राज्यो मे उसे खरीदनेवाला व्यक्ति न्यायालय से संपत्ति के बंटवारे के लिए और यदि संभव हो तो उसके द्वारा खरीदे गए भाग को बेचने-वाले के भाग मे डालने के लिए कह सकता है। कोई भी समाजी परिवार से अपनी सदस्यता का विच्छेद कर सकता है, भले ही संपत्ति का भौतिक रूप मे बंट-वारा न हुआ हो। ऐसा वह न्यायालय मे मकदमा दायर कर या अपने साथी सदस्यों को अपनी पृथक् सदस्यता के संबंध मे नोटिस दे कर सकता है। ऐसा करने पर वह परिवार की संपत्ति मे एक निश्चित, किंतु अविभाजित, भाग का स्वामी हो जाता है। वह उसे हस्तान्तरित कर सकता है या उसके संबंध मे वसीयत कर सकता है।

एक समाजी की मृत्यु के बाद वह संपत्ति अन्य समाजियो के पास, उनके उत्तरजीवित्व (बाद मे जीवित रहने) द्वारा, चली जाती है। यदि मृत व्यक्ति ने अपनी शाखा मे पीछे विधवा और पुत्रियाँ छोडी है, तो उन्हे संपत्ति नही मिलती। उन्हे उसमे से केवल गुजारा प्राप्त करने का अधिकार होता है। अविवाहित पुत्री को उस संपत्ति मे से अपना विवाह संपन्न कराने का भी अधिकार होता है। केन्द्रीय विधान सभा के एक कानून—हिंदू स्त्रियो के संपत्ति-अधिकार अधि-नियम १९३७ (हिंदू विमेन्स राइट्स टु प्रॉपर्टी एक्ट)—के द्वारा अब हिंदू विधवा को परिवार की कृषि-भूमि को छोड कर अन्य संपत्ति मे अपने पति का अधिकार मिलेगा। यदि उसके पति ने कोई पुत्र नही छोडा है तो उसे उसका पूरा अधिकार प्राप्त होगा। यदि उसने एक पुत्र छोडा है तो आधा अधिकार पुत्र का और आधा उसका (विधवा का) होगा। क्योंकि राज्यो में कृषि-भूमि के उत्तराधिकार संबंधी कानून पास करने का अधिकार राज्य सरकारो के पास है, न कि केन्द्रीय सरकार के पास, अतः यह राज्यो में विधवाओ को कृषि-भूमि में कोई उत्तराधिकार नही प्रदान करता। इस संबंध मे अधिकार प्रदान करने के लिए राज्य सरकारों के कानून की आवश्यकता है। इस प्रकार के कानून बंबई, मद्रास और उत्तर प्रदेश राज्यो में पास हो गए है। अन्य प्रकार की

संपत्ति, जैसे—घर, धन-दौलत या चल संपत्ति के संबंध में—केन्द्रीय कानून समर्थ है और वह विधवा को उसमें अधिकार प्रदान करता है।

पश्चिमी बंगाल में संयुक्त परिवार कानून

बंगाल में संयुक्त-परिवार का कानून कई महत्त्वपूर्ण विषयों में भिन्न है। पैतृक संपत्ति के धारी व्यक्ति के पुत्र, पौत्र या प्रपौत्र को उस संपत्ति में जन्म से ही अधिकार नहीं मिलता। उसका धारी उसे अपने जीवनकाल में हस्तांतरित कर सकता है। वह उसे उपहार स्वरूप दे सकता है या उसके संबंध में वसीयत कर सकता है। उसके पुत्र और पौत्र संपत्ति-संबंधी उसके व्यवहार तथा कार्य में आपत्ति या उसके बंटवारे की मांग नहीं कर सकते। उसके निःसंतान मरने पर उसकी संपत्ति की उत्तराधिकारिणी उसकी विधवा होगी, न कि परिवार के अन्य पुरुष सदस्य—जैसे भाई, चाचा या भतीजे।

दत्तक-ग्रहण (गोद लेना)

प्रत्येक हिंदू पुरुष, जिसकी कोई पुत्र-संतान न हो, किसी अन्य माता-पिता के पुत्र को गोद ले सकता है। यदि गोद लेते समय उसके अपना या गोद लिया हुआ कोई जीवित पुत्र, पौत्र या प्रपौत्र न हो तो उसे उस समय पुत्र-संतानहीन समझा जायगा। गोद लेने के बाद उसे गोद लेनेवाले पिता से समुत्पन्न मान लिया जाता है। वह अपने स्वाभाविक परिवार का सदस्य भी नहीं रहता। किंतु उसकी सदस्यता का अन्त इस सीमा तक नहीं हो जाता कि वह अपने स्वाभाविक परिवार में उस लड़की से विवाह कर सके जिससे गोद जाने से पूर्व वह विवाह नहीं कर सकता था। उदाहरण के लिए, वह अपनी स्वाभाविक बहन से विवाह नहीं कर सकता। दत्तक-ग्रहण के संबंध में यहाँ तक विधान है कि एक नाबालिग भी, यदि उसने विवेक-बुद्धि की आयु प्राप्त करली है, तो अपने लिए लड़का गोद ले सकता है। गोद लिया हुआ लड़का भी नाबालिग हो सकता है। वह गोद लेनेवाले परिवार के लिए अपरिचित या उसका संबंधी हो सकता है। किंतु उसका संबंध ऐसा नहीं होना चाहिए कि उसकी माँ उसके दत्तक ग्रहण करनेवाले पिता से विवाह न कर सकती हो। उदाहरण के लिए, कोई व्यक्ति अपनी बहन या पुत्री के लड़के को गोद नहीं ले सकता। कई बार स्थानीय प्रथा या पारिवारिक चलन उसे ऐसा करने की अनुमति दे सकते हैं। बंबई को छोड़ कर अन्यत्र विवाहित व्यक्ति गोद नहीं लिया जा सकता। उसे उसी जाति का और स्वभावतः हिंदू होना चाहिए। किसी व्यक्ति की पत्नी पति के जीवन-काल में उसके लिए, बिना उसके सहयोग के, लड़का गोद नहीं ले सकती। यदि उसने अपने जीवन-काल में गोद लेने के लिए पत्नी को अधिकार दिया था तो वह उसकी मृत्यु के बाद गोद ले सकती है। अधिकार मौखिक रूप में दिया गया हो सकता है। यदि वह लिखित हो तो रजिस्टर-शुदा भी होना चाहिए। मिथिला (उत्तरी बिहार) में वह पति की मृत्यु के बाद गोद ले

ही नहीं सकती। मद्रास में वह अपने पति से अधिकार प्राप्त किये बिना गोद ले सकती है, किंतु इसके लिए उसे पति के पुरुष-उत्तराधिकारियों या समांशियों की स्वीकृति लेनी चाहिए। बंबई में उसे गोद लेने की और भी विशद रूपरेखा प्राप्त है।

वैध दत्तक-ग्रहण की आवश्यक शर्तें

वैध रूप में गोद लेने के संबंध में ये बातें आवश्यक हैं—पहली, गोद लिया हुआ लड़का उपके स्वाभाविक माता-पिता द्वारा दिया गया और गोद लेनेवाले माता या पिता द्वारा ग्रहण किया गया होना चाहिए। 'देने' और 'लेने' की रस्म औपचारिक रूप में पूरी होनी चाहिए। दूसरी बात यह है कि तीनों उच्च जातियों द्वारा गोद लिये जाने का कार्य 'दत्त होम' (अग्नि के समक्ष देने) नामक धार्मिक रस्म के साथ संपन्न होना चाहिए। एक ही गोत्र के परिवारों में गोद लेते समय उक्त रस्म की उपेक्षा की जा सकती है। शूद्रों में गोद लेने के समय यह आवश्यक नहीं है। इन बातों के पूरा न होने की स्थिति में दत्तक कार्य वैध नहीं होता और गोद लिये हुए लड़के को एक नये परिवार में अपने कानूनी अधिकार प्राप्त नहीं होते। गोद लेने के बाद यदि गोद लेनेवाले पिता को स्वाभाविक पुत्र की प्राप्ति हो, तो उसकी संपत्ति में गोद लिये गए लड़के का हिस्सा देश के विभिन्न भागों में विभिन्न होता है। पश्चिमी बंगाल में यह एक-तिहाई, बनारस में एक-चौथाई और मद्रास तथा बंबई में पाँचवाँ भाग होता है। मद्रास और पश्चिमी बंगाल के शूद्रों में हिस्सा बराबर का होता है। इन नियमों में भिन्न कुछ स्थानीय प्रथाएँ होती थीं। मिथिला (उत्तरी बिहार) और उसके साथ के जिलों में पुरुष या स्त्री अपने लिए लड़का गोद ले सकती है। इसके लिए किसी रस्म की आवश्यकता नहीं है। गोद लिये गए पुत्र को इस संबंध में अपनी स्वीकृति प्रदान करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त उसके स्वाभाविक परिवार में भी उसके अधिकार बने रहते हैं। मलाबार के नम्बूद्रियों में एक प्रथा यह है कि पुत्रहीन पिता अपनी पुत्री का विवाह दामाद से इस समझ के आधार पर कर सकता है कि उन दोनों का पुत्र उसका अपना पुत्र माना जायगा। इसी प्रकार मद्रास की रेड्डी और कम्मा जातियों में दामाद को अपने परिवार से उसकी संपत्ति में भाग ग्रहण करने के अधिकारी सदस्य के रूप में संबंधित करने की प्रथा है। मद्रास की देवदासी जाति में प्रचलित प्रथा के अनुसार अविवाहित स्त्री को अपने लिए लड़की गोद लेने का अधिकार है और वहाँ लड़की को गोद लेनेवाली माता की संपत्ति का उत्तराधिकार प्राप्त होगा।

विवाह

हिंदू-विवाह अधिनियम, १९५५ में हिंदुओं के हजारों साल पुराने रूढ़िगत विवाह कानूनों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आ गए हैं। इस अधिनियम के अन्तर्गत यदि निम्नलिखित छह शर्तें पूरी हों, तो किन्हीं दो हिंदुओं में शादी हो सकती है।

१. विवाह के समय किसी पक्ष की भार्या या भर्त्ता जीवित न हो। यह

शास्त्रों के अंतर्गत हिंदू कानून में, जो पुरुषों के लिए बहु-विवाह को निषिद्ध नहीं करता, एक बड़ा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाता है। कुछ राज्यों में इसे प्रतिषिद्ध और निरर्थक बनानेवाले कानून पहले ही पास किये जा चुके थे। यह कानून भारत में पुरुषों और स्त्रियों के लिए बहु-विवाह को शून्य कर देता है। शादी के किसी एक पक्ष द्वारा याचिका दिये जाने पर जिला अदालत उसे निरर्थक घोषित कर देगी। यह देखने की बात है कि उपरोक्त शर्त यह है कि कोई भार्या या भर्ता जीवित न हो। अतः ऐसी कोई स्त्री, जो शादी कर चुकी है और जिसका भर्ता मर गया है, फिर विवाह कर सकती है। शास्त्रों में विधवाओं के पुनर्विवाह का निषेध था, किंतु १८५६ के एक अधिनियम द्वारा यह स्वीकृत कर दिया गया था। किंतु पुनर्विवाह के बाद वह अपने पति से अथवा अपने क्रमागत उत्तराधिकारियों—जैसे पुत्र—से दाय में प्राप्त संपत्ति से विच्युत हो जाती थी। किंतु यदि पुत्र की उसके पुनर्विवाह के बाद मृत्यु हो जाय तो वह उसे दाय में प्राप्त संपत्ति को पा सकती है।

२ कोई भी पक्ष विवाह के समय मूढ़ या पागल न हो। यदि ऐसा हो तो याचिका पेश किये जाने पर अदालत विवाह को निरर्थक घोषित कर देगी।

३ विवाह के समय वर १८ वर्ष की और वधू १५ वर्ष की आयु प्राप्त कर चुकी हो। रूढ़िगत हिंदू कानून बाल-विवाह की आज्ञा देता था, किंतु कुछ वर्ष हुए, इसे कानून द्वारा दंडनीय अपराध बना दिया गया था। यदि यह शर्त भंग करदी जाय, तो विवाह तो शून्य नहीं होता, पर कोई भी व्यक्ति जो इस शर्त का उल्लंघन करके अपना विवाह कराता है, वह १५ दिन के साधारण कारावास, अथवा १००० रुपये तक जुर्माना, या दोनों, का भागी हो सकता है।

४ पक्ष निषिद्ध संबंधों की सीमाओं में न आते हों, या उनमें से प्रत्येक का रिवाज इसकी आज्ञा देता हो। अधिनियम में निषिद्ध संबंधों का परिगणन किया गया है। वे ये हैं—क्रमागत पूर्व-पुरुष या वंश-क्रमागत (संतती); भाई, चाचा, ताऊ, फूफा, मामा 'या उनके पिता' की पत्नी, भाई या बहन; चाचा और भतीजी, मामा और भाजी; चाची और भतीजा, मामी और भाजा; भाई और बहन के बालक या भाइयों और बहनों के बालक। इन संबंधों में हुआ विवाह शून्य होगा और अदालत उसे ऐसा घोषित कर देगी। किंतु यदि कोई विवाह प्रथानुसार स्वीकृत हो तो वह मान्य होगा। यह सुविदित है कि भारत के कई भागों में चचेरे-ममेरे भाई-बहनों में, विशेषकर भाई और बहन के बालकों और मामा-भाजी में विवाह आम है।

५ पक्ष एक-दूसरे के सपिंड न हों। सपिंड संबंध मातृ पक्ष में क्रमागत पूर्व-पुरुषों की तीसरे पीढ़ी तक (उसके सहित), और पितृ पक्ष में क्रमागत पूर्व-पुरुषों की पाँचवीं पीढ़ी तक (उसके सहित) होते हैं। ये वंश-संबंध संबंधित व्यक्ति से, जिसे पहली पीढ़ी माना जाता है, गिने जाते हैं। उक्त सीमाओं के

भीतर यदि एक व्यक्ति दूसरे का क्रमागत पूर्व-पुरुष हो, या उनका एक सामान्य क्रमागत पूर्व-पुरुष हो जो उनके सबध में उपरोक्त सीमाओ मे आता हो, तो वे दोनो व्यक्ति एक-दूसरे के सपिड होते है। सपिडो मे विवाह निरर्थक और शून्य होता है और अदालत द्वारा वह ऐसा ही घोषित किया जायगा।

६. छठी और अंतिम शर्त यह है कि यदि वधू १८ वर्ष की आयु पूरी न कर चुकी हो तो विवाह मे संरक्षक की स्वीकृति प्राप्त की जानी है। यदि यह शर्त भंग की जाय तो विवाह तो निरर्थक और शून्य नही हो जाता पर इस शर्त को भग कर विवाह करनेवाला व्यक्ति १००० रुपये तक जुर्माने का भागी हो सकता है।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि इन शर्तो मे यह शर्त नही है कि विवाह के पक्ष एक ही जाति या उप-जाति के हो। फिर भी शास्त्रो द्वारा विहित हिंदू-कानून के अतर्गत यह एक मुख्य शर्त थी। उस कानून के अतर्गत एक शर्त यह भी थी कि वे एक ही गोत्र के न हो। १९५५ का हिंदू विवाह अधिनियम इन रुकावटो को समाप्त कर अलग-अलग जातियो के दो हिंदुओ मे जाति के बाहर, एक ही गोत्र के और यहा तक कि हिंदुओ और सिखो अथवा जैनियो तक मे विवाह स्वीकृत करता है।

इस नियम के अतर्गत विवाह दोनो पक्षो मे से किसी एक पक्ष के रूढिगत सस्कारो द्वारा सपन्न किया जा सकता है। यदि इन सस्कारो मे सप्तपदी (होम या पवित्र अग्नि के सम्मुख वर तथा वधू द्वारा सात पग चलना) हो, तो सातवाँ पग लेने के साथ विवाह पूर्ण तथा बधनकारी हो जाता है। राज्य सरकारो को इसकी छूट है कि वे हिन्दू-विवाह-रजिस्टर रखे और विवाह के पक्षो से अपने विवाह से सबधित ब्यौरा रजिस्टर मे भरवाये।

विवाह-विघटन की व्यवस्था

इस अधिनियम द्वारा लाया गया सबसे बडा सुधार है हिंदू-विवाह के विघटन (समाप्ति) की व्यवस्था। शास्त्रो के अनुसार विवाह धार्मिक सस्कारो को सपादित करने का एक सस्कार या पवित्र सयोग है, अत यह एक स्थायी सयोग है जो दोनो मे से किसी एक पक्ष की मत्यु से ही विघटित हो सकता है। यह अधिनियम विवाह-विच्छेद को स्वीकार करता है। वैसे भी मद्रास, बबई तथा सौराष्ट्र जैसे कुछ राज्यो ने इस उद्देश्य से अधिनियम पास कर इसकी स्वीकृति दे दी थी। अब यह अधिनियम भारत भर में सभी हिंदुओ को इसकी आज्ञा देता है। विवाह-विच्छेद प्राप्त करने का तरीका यह है कि अधिनियम द्वारा विहित आधारो मे से किसी एक आधार पर जिला न्यायालय मे याचिका पेश कर दी जाय। ये आधार गिनती में नौ है—(१) जारकर्म (परस्त्री या पर-पुरुष गमन) मे रहना, (२) अन्य धर्म ग्रहण करना, (३) याचिका के तुरत पूर्व तीन वर्ष से अनवरत मानसिक विकृति; (४) इतने ही काल से कुष्ट रोग ग्रस्त रहना, (५) इतने ही काल मे रतिज (गुप्त) रोग; (६) किसी धार्मिक पथ मे सम्मिलित हो संसार-

त्याग करना; (७) सात वर्ष या अधिक समय से जीवित रहने का पता न चलना; (८) दांपतिक अधिकारों की प्रतिस्थापना की डिगरी के दो वर्ष बाद तक सहवास का पुनरारंभ न कर सकना, (९) इतने ही काल तक ऐसी डिगरी का पालन न कर सकना। पत्नी दो अन्य आधारों पर भी विवाह-विच्छेद के लिए प्रार्थना कर सकती है—(१) यह कि इस अधिनियम के पहले पति ने फिर विवाह कर लिया था या उसके (पत्नी के) विवाह के समय इस अधिनियम के पहले विवाहित दूसरी पत्नी जीवित थी, (२) यह कि विवाह के बाद पति बलात्कार या किसी अप्राकृतिक अपराध का अपराधी हुआ हो। विवाह की तिथि के बाद तीन वर्ष का समय पूरा होने के पहले विवाह-विच्छेद के लिए कोई याचिका पेश नहीं की जा सकती जबतक कि यह न सिद्ध कर दिया जाय कि मामला असाधारण क्लेश या कठिनाई का है या यह कि प्रतिवादी असाधारण दुराचारी है। विवाह विच्छेद की डिगरी पास होने के बाद और उसके इस कारण अन्तिम हो जाने के बाद कि उसकी अपील में पुष्टि कर दी गई है या दिये समय के भीतर कोई अपील नहीं की गई है, दोनों पक्षों में से कोई पक्ष फिर से विवाह कर सकता है। किन्तु जबतक विवाह-विच्छेद के बाद एक वर्ष पूरा न हो जाय, वे ऐसा नहीं कर सकते।

हिन्दू विवाह के कानून में इस अधिनियम द्वारा लाया गया एक और परिवर्तन यह है कि विवाह का कोई भी पक्ष कुछ आधारों पर न्यायालय से न्यायिक वियोजन (जुडीशियल सेपरेशन) की प्रार्थना कर सकता है, जैसे (१) प्रार्थी का दूसरे पक्ष द्वारा कम-से-कम दो वर्ष के समय से लगातार त्याग (इच्छा के विरुद्ध छोड़ देना); (२) निर्दयता, (३) कम-से-कम एक वर्ष से संक्रांत (बिगड़ा हुआ) कुष्ट, (४) संक्रामक (छूत) रोग, (५) कम-से-कम दो वर्ष के काल से पागलपन।

न्यायिक वियोजन की डिगरी के बावजूद दोनों पक्ष साथ रहने का फैसला कर सकते हैं, और यदि पक्षों में से किसी भी पक्ष द्वारा न्यायालय से प्रार्थना की जाय तो वह सदउद्देश्य के लिए डिगरी को निरस्त (समाप्त) कर देगा। नियोजन की की डिगरी की उल्टी है दांपतिक अधिकारों की प्रतिस्थापना की डिगरी। यह इसलिए पास की जाती है कि पति या पत्नी में से किसी को भी, यदि उसने बिना कारण दूसरे के साहचर्य का परित्याग कर दिया है तो उसे दूसरे के साथ रहने के लिए मजबूर किया जाय। यह कोई नया प्रतिकार नहीं है—यह तो अधिनियम के पहले भी उपलब्ध था। किंतु यदि प्रतिवादी यह सिद्ध कर दे कि न्यायिक वियोजन या विवाह की निरर्थकता या विवाह-विच्छेद के आधार मौजूद हैं, तो न्यायालय यह डिगरी पास नहीं करेगा।

हम देख चुके हैं कि इस अधिनियम के अंतर्गत विवाह तभी हो सकता है

कि जब कुछ शर्तें पूरी कर दी जायँ, और कुछ शर्तों को भंग करने का परिणाम यह होगा कि न्यायालय विवाह को निरर्थक घोषित कर देगा। विवाह की निरर्थकता की डिगरी कुछ अन्य हालतों में भी पास की जा सकती है, जैसे—(१) प्रतिवादी की नपुंसकता। (२) वादी या वादी के संरक्षक की स्वीकृति बल-प्रयोग या जालसाजी से ली गई थी। किंतु यदि बल-प्रयोग रुक जाने या जालसाजी का पता लगने के बाद एक वर्ष व्यतीत हो जाय, या वादी पूरी स्वीकृति के साथ दूसरे पक्ष के साथ पति या पत्नी के रूप में रह चुका हो या चुकी हो, तो यह आधार उपलब्ध न होगा और निरर्थकता की डिगरी नहीं पेश की जा सकेगी। (३) निरर्थकता के लिए तीसरा आधार यह है कि विवाह के समय प्रतिवादी किसी अन्य पुरुष द्वारा गर्भवती थी। यह आधार तभी उपलब्ध होता है जबकि विवाह के समय प्रार्थी इस तथ्य से अनभिज्ञ हो। इसके अतिरिक्त यदि इसके बारे में जानने के बाद उसने प्रतिवादी के साथ दांपतिक संभोग किया हो तो भी यह उपलब्ध नहीं होता। किसी भी दशा में इस आधार पर याचिका, यदि विवाह इस अधिनियम के लागू होने की तिथि (१८ मई १९५५) के बाद हुआ हो, तो विवाह के एक वर्ष के भीतर, और विवाह यदि इस तिथि के पहले हुआ हो तो इस तिथि के बाद, एक वर्ष के भीतर पेश की जानी चाहिए। यदि विवाह का विघटन विवाह-विच्छेद की डिगरी के द्वारा हो, तो इस डिगरी के पूर्व उत्पन्न या गर्भ में आया बालक माता-पिता का औरस बालक होगा और वह अपने माता-पिता अथवा अन्य संबंधियों की संपत्ति का दाय पायेगा। यदि दो व्यक्तियों का विवाह निरर्थकता की डिगरी द्वारा निरर्थक तथा शून्य घोषित कर दिया जाय तो वह आरंभ से ही निरर्थक माना जाता है। उनसे उत्पन्न बालकों के बारे में क्या हो? निरर्थकता की डिगरी के पूर्व उत्पन्न बालक को औरस (जायज) माना जायगा और वह अपने माता-पिता तथा अन्य संबंधियों की संपत्ति का दाय पायगा। किंतु यदि आधार ऐसा है जो विवाह कोइस अधिनियम के पूर्व भी निरर्थक बना देता तो वह अन्य संबंधियों की संपत्ति का दाय नहीं पायगा। निषिद्ध संबंधों अथवा सपिंडों में हुए विवाह के मामले में ऐसा ही आधार मौजूद होगा।

इस अधिनियम में बताई जानेवाली अंतिम बात यह है कि प्रतिस्थापना, वियोजन अथवा विवाह-विच्छेद जैसी पहले बताई गई कार्यवाहियों में न्यायालय को प्रतिवादी द्वारा वादी को उसके संभरण (गुजारे) तथा सहायता के लिए धन देने की आज्ञा देने का अधिकार है। शोधन (रुपया चुकाना) अनुकालिक या एक इकट्ठी रकम, दोनों तरह का हो सकता है। यह अस्थायी अथवा स्थायी हो सकता है। किंतु यह जबतक प्रार्थी अविवाहित रहे तभीतक होता है। यह रकम पक्षों की आर्थिक स्थिति, उनके चरित्र तथा परिस्थितियों के अनुकूल निर्धारित की जायगी। परिस्थितियों के साथ यह रकम बदली जा सकती है।

सभरण (गुजारा)

प्रत्येक हिंदू, भले ही उसके पास कोई संपत्ति हो या न हो, अपनी पत्नी, नाबालिग लड़के, अविवाहित पुत्रियों और वृद्ध माता-पिता का भरण-पोषण करने के लिए बद्ध है। अन्य के भरण-पोषण के लिए—जैसे बालिग पुत्र या पौत्र के भरण-पोषण के लिए—वह बद्ध नहीं है। संयुक्त परिवार का प्रबन्धकर्ता उस परिवार की संपत्ति में से उसके पुरुष सदस्यों, उनकी पत्नियों और बच्चों का भरण-पोषण करने के लिए बद्ध है। किंतु यदि परिवार की कोई संपत्ति न हो तो वह बद्ध नहीं है। किसी अन्य की संपत्ति को उत्तराधिकार में पानेवाला व्यक्ति उन व्यक्तियों के भरण-पोषण के लिए बद्ध है जिनके भरण-पोषण के लिए वह अन्य व्यक्ति बद्ध था। यहाँतक कि किसी उत्तराधिकारी के न होने पर जब मृत व्यक्ति की संपत्ति राज्यगामी हो जाती है तब राज्य भी उक्त व्यक्तियों के भरण-पोषण के लिए बद्ध होता है। जो व्यक्ति अपनी शारीरिक या मानसिक अयोग्यता के कारण उत्तराधिकार से वंचित हो जाते हैं, उन्हें भी भरण-पोषण प्राप्त करने का अधिकार होता है। स्थायी रूप में रखी गई उप-स्त्री (रखैल) और उसके जारज (विजात) लड़के को भी भरण-पोषण का अधिकार होता है। शूद्रों में जारज लड़कों को अपने कथित (या अभिज्ञात) पिता की संपत्ति में से हिस्सा प्राप्त करने का भी अधिकार होता है। भरण-पोषण की रकम पक्षों की आर्थिक व अन्य स्थितियों पर निर्भर करेगी। अपने पति को छोड़कर अलग रहनेवाली पत्नी प्राय भरण-पोषण नहीं प्राप्त कर सकती। १९४६ के एक कानून द्वारा अलग रहनेवाली पत्नी को जिन आधारों पर भरण-पोषण का अधिकार दिया गया है, वे ये हैं—पति का निर्दयतापूर्ण व्यवहार, उसके द्वारा परित्याग, उसका अन्य धर्म-परिवर्तन, उसके द्वारा पुनर्विवाह, उसका अपने घर में उप-स्त्री या रखैल का रखना या उसके साथ रहने का अभ्यस्त होना और उसका किसी घृणित बीमारी से पीड़ित होना।

संरक्षता

पिता अपने नाबालिग बच्चे के शरीर व संपत्ति का स्वाभाविक संरक्षक या अभिभावक होता है। उसके बाद माता का स्थान होता है। पिता वसीयत द्वारा अपने बच्चे के लिए किसी अन्य को संरक्षक नियुक्त कर सकता है। यदि नाबालिग लड़की हो और विवाहित हो तो उसका पति उसका संरक्षक बन जाता है। पर्याप्त आधार उपस्थित किये जाने पर न्यायालय नाबालिग लड़की या लड़के को उसके अभिभावक के संरक्षण से हटा सकता है। यदि नाबालिग संयुक्त-परिवार का सदस्य है तो परिवार की संपत्ति जिसमें उसका भी हिस्सा शामिल है, के प्रबंध का अधिकार परिवार के प्रबंधकर्त्ता को होता है। नाबालिग की संपत्ति के संरक्षक को उसका प्रबंध दूरदर्शिता और ईमानदारी से करना चाहिए। वह उसका हस्ता-

तरण केवल नाबालिग की आवश्यकता या लाभ के लिए कर सकता है।

इस अध्याय में अन्य की सपत्ति 'लेने' या 'ग्रहण' करने के शब्दों का प्रयोग उत्तराधिकार द्वारा अन्य की सपत्ति में अधिकार प्राप्त करने के अर्थ में किया गया है।

उत्तराधिकार और दाय[1]

पश्चिमी बगाल से बाहर हिंदू पुरुष की मृत्यु होने पर उसकी संपत्ति के सबध में उत्तराधिकार के दो रूप हो सकते हैं। यदि वह परिवार का संयुक्त सदस्य था तो उसके सह-अशहारी उत्तरजीवित्व द्वारा उसे ग्रहण करेंगे। किंतु यदि वह परिवार से अलग हुआ सदस्य था, या उसकी सपत्ति स्वोपार्जित थी, तो उसके उत्तराधिकारी या उत्तराधिकारियों को दाय द्वारा वह सपत्ति मिलेगी। अत उत्तराधिकार का प्रयोग दाय की अपेक्षा अधिक विशद अर्थ में होता है। दाय के नियम बगाल में और शेष भारत में भिन्न-भिन्न हैं। पुरुष और स्त्री द्वारा छोड़ी गई सपत्तियों के सबध में भी नियम भिन्न-भिन्न हैं। दाय सबंधी हिंदू विधान की एक विशेषता यह है कि उसमें उत्तराधिकारिणी स्त्री को उत्तराधिकारी पुरुष की भाँति सपत्ति निर्बाध रूप में नहीं मिलती, बल्कि उसके व्यवहार के तरीके में सबधित कुछ प्रतिबंधों के साथ मिलती है। इसके अतिरिक्त बंबई राज्य को छोड़कर अन्यत्र पुरुष उत्तराधिकारी की भाँति स्त्री उत्तराधिकारिणी की अपनी उत्तराधिकार-परंपरा नहीं चल सकती। उसकी मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के क्रम की गणना उससे नहीं की जायगी, बल्कि अंतिम पुरुष स्वामी से की जायगी। उस पुरुष का उत्तराधिकारी, न कि उस स्त्री का उत्तराधिकारी, संपत्ति ग्रहण करता है। अब विभिन्न स्थितियों में दाय के नियमों की चर्चा की जायगी।

पश्चिमी बंगाल के अतिरिक्त शेष भारत में हिंदू पुरुष के दाय-ग्रहण के नियम

पश्चिमी बंगाल को छोड़कर शेष भारत में दाय ग्रहण के नियम निम्नलिखित हैं। इस संबंध में मार्गदर्शक सिद्धांत रुधिर-संबंध का सामीप्य है। इसी के अनुसार निम्नलिखित व्यक्ति उत्तराधिकारी होते हैं।

(१) **उत्तराधिकारियों में प्रथम पुत्र, पौत्र, तथा प्रपौत्र होते हैं**—ये एक साथ या सामूहिक रूप में उत्तराधिकार ग्रहण करते हैं। उनके हाथ में मृत व्यक्ति की पृथक सपत्ति उनकी पैतृक या क्रमागत सपत्ति हो जाती है और उनके पुत्र, पौत्र और प्रपौत्रों को जन्म से ही उसमें अधिकार प्राप्त होता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, संपत्ति प्रति शाखा द्वारा ग्रहण की जाती है, न कि प्रति व्यक्ति द्वारा। किंतु निम्नलिखित अन्य उत्तराधिकारियों की स्थिति में एक ही श्रेणी के एक से अधिक

---

१. उत्तराधिकार में प्राप्त की जानेवाली संपत्ति आदि।

उत्तराधिकारी प्रति व्यक्ति बराबर हिस्सा ग्रहण करेंगे। तीनो उच्च जातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य) में जायज बच्चे ही उत्तराधिकारी होते हैं। किंतु शूद्रो मे मृत स्वामी का विजात-पुत्र भी हिस्सा ग्रहण करता है। उसका हिस्सा उसके जायज होने की स्थिति मे उसे प्राप्त होनेवाले हिस्से का आधा होता है। १९३७ के एक कानून द्वारा अंतिम पुरुष स्वामी की विधवा और उसके पूर्वमृत पुत्र और पोत्र की विधवाओं को भी पुत्र, पोत्र और परपोत्र के साथ दाय ग्रहण करने का अधिकार होता है। विधवा को पुत्र के बराबर और पुत्र तथा पोत्र की विधवाओं को क्रमश पुत्र तथा पोत्र के बराबर हिस्सा मिलता है। यह १९३७ का कानून, जैसा कि पहले कहा जा चुका है उन राज्यों को छोड़कर जहां कि वह अपना लिया है, जैसे मद्रास, बंबई और उत्तर प्रदेश मे, अन्यत्र कृषि-भूमि के संबंध मे लागू नही होता।

(२) **विधवा**—१९३७ के पूर्व प्रचलित हिंदू विधान के अनुसार विधवा का स्थान श्रेणी (१) के उत्तराधिकारियों के बाद आता है। यह विधान मद्रास, उत्तर प्रदेश और बंबई राज्यों को छोड़ कर अन्य राज्यों मे कृषि भूमि के संबंध मे अब भी प्रचलित है। किंतु इन तीनों राज्यों को छोड़ कर अन्य राज्यों में कृषि भूमि से भिन्न संपत्ति तथा इन तीनों राज्यों मे सभी प्रकार की संपत्ति के उत्तराधिकार मे विधवा का स्थान श्रेणी (१) के उत्तराधिकारियों के समकक्ष है।

(३) **इसके बाद क्रमानुसार पुत्री, पुत्री के पुत्र, माता और पिता का स्थान आता है**—ये इसी क्रम मे दाय ग्रहण करते है।

(४) **इसके बाद मृत स्वामी के सगोत्रीय उत्तराधिकारी आते हैं, अर्थात पुरुष वंशक्रम मे उससे संबंधित व्यक्ति**—इनमे एक से दूसरे का विशिष्टता देने का यह नियम है कि समीपतर वंशक्रम दूरतर वंशक्रम से पहले आता है। (क) इसके अनुसार सब से पहले तीन पीढ़ियों के पिता के वंशज आते है। ये है—भाई भाई का पुत्र और भाई का पौत्र। (ख) इनके न होने पर उत्तराधिकार दादी और बाद मे दादा तक जाता है। (ग) यहाँ पहुँच कर और इसके सगोत्रीय उत्तराधिकारी आ जाते है, लेकिन १९२९ के बाद मे उस वर्ष के एक कानून द्वारा पुत्र की पुत्री, पुत्री की पुत्री, बहन और बहन का लड़का इसी क्रम से आते है यद्यपि वे अगोत्रीय होते है। (घ) इसके बाद दादा के तीन पीढ़ियों के वंशज आते है। (ङ) उक्त उत्तराधिकारियों के न होने पर दाय-ग्रहण का अधिकार मृत स्वामी के पुरुष वंशक्रम मे तेरहवीं पीढ़ी तक सब से समीप के संबंधी तक चला जाता है।

(५) **सगोत्रीय उत्तराधिकारियों के न होने पर सम्पत्ति अगोत्रीय उत्तराधिकारियों पर चली जाती है जो 'बन्धु' कहलाते हैं**—ये स्त्रीपक्ष द्वारा संबंधित होते है। ये मृत व्यक्ति से या सामान्य पूर्वज से पाँच पीढ़ियों के भीतर होने चाहिए।

इनमें से कुछ को १९२९ के कानून द्वारा इससे ऊँचा स्थान दिया गया है जैसा कि अभी हम देख चुके हैं। शेष में निम्नलिखित व्यक्ति इस क्रम में संपत्ति ग्रहण करते हैं—(क) पुत्र की पुत्री का पुत्र, पुत्री के पुत्र का पुत्र, और पुत्री की पुत्री का पुत्र; (ख) तब उसके पिता के वंशज आते हैं—जैसे भाई की पुत्री का पुत्र; (ग) उसका नाना, (घ) उसका मामा, (ङ) उसके दादा के वंशज—जैसे उसके पिता की बहन का पुत्र, (च) उसके नाना के वंशज। उक्त श्रेणियों के, अर्थात् सगोत्रीय और अगोत्रीय, संबंधियों के न होने पर मृत व्यक्ति की संपत्ति धार्मिक उससे शिक्षण में संबद्ध व्यक्तियों —अर्थात्, उसके गुरु, शिष्य या सहपाठी—के पास चली जायगी। इन व्यक्तियों में से किसी के भी न होने पर संपत्ति राज्यगामी (राज्य सरकार की) हो जायगी।

पश्चिमी बंगाल में हिंदू पुरुष का दाय-ग्रहण

पश्चिमी बंगाल में दाय-ग्रहण करनेवाले उत्तराधिकारियों की श्रेणियों और उनके मध्य क्रम का निश्चय उन नियमों के अनुसार किया जाता है जो उत्तराधिकारियों द्वारा मृत व्यक्ति या उसके पूर्वजों को दिये गए पिंडदान का मूल्यांकन करते हैं। इन उत्तराधिकारियों का क्रम इस प्रकार है—(१) पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र, जो सामूहिक रूप में ग्रहण करते हैं; विधवा भी १९३७ के कानून के अधीन उनके साथ हिस्सा ग्रहण करेगी; किंतु जैसा कि पहले कहा जा चुका है, जबतक उसके द्वारा कृषि भूमि में भी साथ-साथ हिस्सा बटाने के संबंध में राज्य सरकार द्वारा कानून पास नहीं कर दिया जाता, तबतक वह अन्य संपत्ति में ही हिस्सा लेगी। (२) विधवा—कृषि भूमि के संबंध में। (३) पुत्री—पहले अविवाहित पुत्री लेगी और बाद में विवाहित पुत्री, जिसके पास पुत्र संतान है या जिससे पुत्र संतान प्राप्त करने की संभावना है। (४) पुत्री का पुत्र। (५) पिता। (६) माता (७) भाई। (८) भाई का पुत्र। (९) भाई के पुत्र का पुत्र। और (१०) बहन का पुत्र। इसके बाद उत्तराधिकार दादा और परदादा के वंशजों के पास चला जाता है, जिनमें सगोत्रीय और अगोत्रियों को भी स्थान मिलता है। बन्धुओं के न होने पर संपत्ति उपर्युक्त दो पैराग्राफों में दी गई व्यवस्था के अनुसार हस्तांतरित हो जाती है।

बंबई में शेष भारत में मान्य उत्तराधिकारियों के अतिरिक्त कुछ स्त्री-उत्तराधिकारियों को भी मान्यता प्राप्त है। वे हैं—बहन, पिता की बहन और पूर्वमृत सगोत्रीय उत्तराधिकारियों की विधवाएँ—जैसे भाई, भाई के पुत्र या चाचा की विधवा। इनको कुछ सगोत्रीय उत्तराधिकारियों और अगोत्रियों से पहले अधिकार प्राप्त है। उदाहरण के लिए बहन का स्थान दादी के फौरन बाद आता है। सौतेली बहन भी उत्तराधिकारिणी होती है। बंबई के उन भागों में, जहाँ मयूख

विधान प्रचलित है, वहाँ कुछ स्त्री-उत्तराधिकारियो को और भी ऊँचा स्थान प्राप्त है। उदाहरणार्थ, पिता की बहन अगोत्रीय से पहले दाय-ग्रहण करती है।

स्त्री की संपत्ति उसके द्वारा दाय रूप मे या अन्य प्रकार से, जैसे अपने पिता, या अन्य संबधियो से, प्राप्त की गई हो सकती है। उत्तराधिकार मे प्राप्त की गई संपत्ति के संबध मे यह विधान है कि वह संपत्ति उससे पूर्व के अंतिम स्वामी के उत्तराधिकारियो को चली जाती है और वे उत्तराधिकारी उस स्त्री से ग्रहण न कर अंतिम स्वामी से ग्रहण करते है। बबई में कुछ स्थितियो मे उसके अपने उत्तराधिकारी ग्रहण करते है। उत्तराधिकार से भिन्न रूप मे प्राप्त संपत्ति उसकी अपनी संपत्ति होती है और उसे उसके अपने उत्तराधिकारी ग्रहण करते है। यह संपत्ति 'स्त्री-धन' कहलाती है। विभिन्न प्रकार के स्त्री-धन के संबध में उसके उत्तराधिकारी देश के विभिन्न भागो मे विभिन्न होते है। अविवाहित और विवाहित स्त्री द्वारा छोडी गई सपत्ति के सबंध मे भी ये उत्तराधिकारी विभिन्न होते है। अविवाहित स्त्री की संपत्ति के उत्तराधिकारी होते ये है—उसका सहोदर भाई, माता, पिता, पिता के उत्तराधिकारी और माता के उत्तराधिकारी। विवाहित स्त्री द्वारा अपने श्रम से अर्जित सपत्ति उसकी अविवाहित पुत्री, विवाहित पुत्री, पुत्री की पुत्री, पुत्री के पुत्र, पुत्र, पुत्र, के पुत्र को इसी क्रम मे मिलेगी। यदि उसने पीछे कोई संतान नही छोडी है, तो संपत्ति उसके पति और बाद में उसके पति के उत्तराधिकारियो को चली जायगी। किंतु यदि उसके विवाह के समय उसके पिता ने दुलहन-शुल्क प्राप्त किया था तो संपत्ति उसके पति के पास न जाकर उसकी (स्त्री की) माता, उसके पिता और पिता के उत्तराधिकारियो को मिलेगी।

हिंदू-स्त्री का दाय-ग्रहण

हिंदू विधान मे जन्मजात शारीरिक या मानसिक दोष और असाध्य कुष्ठ और पागलपन के कारण व्यक्ति—भले ही वह पुरुष हो या स्त्री—दाय का भाग ग्रहण करने या पारिवारिक संपत्ति के बंटवारे मे हिस्सा बंटाने के अयोग्य हो जाता है। बंगाल मे यह विधान अब भी प्रचलित है। शेष भारत मे १९२८ के कानून द्वारा यह विधान बदल दिया गया है और अब जन्मजात कुष्ट और पागलपन ही दाय से अपवर्जन के आधार रह गए है। इस प्रकार से निर्योग्य ठहराये गए व्यक्तियो को, जिस संपत्ति से वे अपवर्जित किये गए है, उसमे से भरण-पोषण प्राप्त करने का अधिकार रहता है। जो व्यक्ति अंतिम स्वामी के प्राणघात का कारण बनता है, वह अपने अपकार से लाभ नही उठा सकता और उसकी संपत्ति का उत्तराधिकारी नही हो सकता।

दाय से अपवर्जन (वञ्चित करना)

पुरुष उत्तराधिकारी दाय की संपत्ति को पूर्ण अधिकार के साथ प्राप्त करता है। वह उसका पूर्ण स्वामी होता है, अतः उसका हस्तांतरण कर सकता है या उसके

संबंध में कोई भी अन्य व्यवस्था कर सकता है। वह उसे बेच सकता है, उपहार स्वरूप दे सकता है या उसकी वसीयत कर सकता है। किंतु इसका एक अपवाद है।

परहस्तकरण (अन्य को देने) का अधिकार

किसी व्यक्ति की अपनी अलग संपत्ति के ऐसे उत्तराधिकारी द्वारा दाय रूप में ग्रहण करने पर, जो उसका पुत्र या पौत्र हो, वह संपत्ति उस उत्तराधिकारी के पास जाकर पैतृक संपत्ति का रूप धारण कर लेती है और उसके (उत्तराधिकारी के) पुत्र और पौत्र को उसमें सह-स्वामित्व का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस संबंध में पहले चर्चा की जा चुकी है। स्त्री-उत्तराधिकारी की स्थिति पुरुष उत्तराधिकारी से भिन्न होती है। वह उस संपत्ति से होनेवाली आय का स्वेच्छापूर्वक उपभोग कर सकती है और उसके संबंध में जो चाहे व्यवस्था कर सकती है। यदि वह उसे बचा लेती है तो वह उसकी पूर्ण रूप से अपनी संपत्ति होती है। किंतु वह मूल संपत्ति का क्षय नहीं कर सकती। वह संपत्ति उसके द्वारा पूर्व-स्वामी के अगले उत्तराधिकारी को, जो प्राय 'परावर्ती' कहलाता है, दी जानी चाहिए। किंतु वह उसे या उसके आंशिक भाग को किसी आवश्यक या लाभदायक प्रयोजन के लिए बेच सकती है। उदाहरण के लिए, किसी पुरुष, या मान लीजिये, अपने पति से उत्तराधिकार में संपत्ति ग्रहण करनेवाली स्त्री, अपने पति का कर्ज उतारने के लिए, या अपने या अपने बच्चों के गुजारे का खर्च चलाने के लिए, अथवा अपनी लड़की के विवाह के लिए, उस संपत्ति को बेच सकती है। वह अपनी संपत्ति का थोड़ा-सा भाग धार्मिक या दान-कार्यों में भी खर्च कर सकती है या अपनी लड़की को उसके विवाह के अवसर पर दे सकती है। उक्त अवस्थाओं को छोड़कर अन्य में वह उस संपत्ति को न बेच सकती है और न उपहार-स्वरूप किसी को दे सकती है। वह वसीयत नहीं कर सकती। यदि वह अनधिकृत प्रकार से किसी को संपत्ति दे देती है तो परावर्ती उत्तराधिकारी उसके संबंध में आपत्ति कर सकते हैं और न्यायालय द्वारा उसे रद्द करवा सकते हैं। किंतु एक बार उसके संबंध में अपनी स्वीकृति प्रदान करने के बाद वे वैसा नहीं कर सकते। बंबई में स्त्री किसी अन्य स्त्री से, तथा कई अवस्थाओं में पुरुष से भी, दाय संपत्ति पूर्णाधिकार के साथ प्राप्त कर सकती है।

उत्तराधिकारी को, भले ही वह पुरुष हो या स्त्री, मृत व्यक्ति का कर्ज दाय में से चुकाना चाहिए। वह अपनी निजी संपत्ति में से उसका कर्ज चुकाने के लिए

ऋण-शोधन

बद्ध नहीं है। किंतु यदि उत्तराधिकारी मृत व्यक्ति का पुत्र है, तो उसे पारिवारिक संपत्ति के अपने निजी भाग में से भी कर्ज चुकाना चाहिए। अपने पिता से अलग न हुआ पुत्र पिता के जीवन-काल में भी पिता का कर्ज चुकाने के लिए बद्ध है। पिता ऐसे पुत्र के संपत्तिगत भाग को अपना कर्ज चुकाने के लिए बेच सकता है।

कर्जदाता या लेनदार, पिता के विरुद्ध डिगरी लेने के बाद, उक्त पुत्र के भाग की कुर्की करा सकता है और उसे बिकवा सकता है। पुत्र दोनो मे से किसी स्थिति मे आपत्ति नही कर सकता। किंतु यह दिखाकर कि पिता ने यह कर्ज गैर-कानूनी या अनैतिक प्रयोजन के लिए लिया था, वह आपत्ति कर सकता है। बंटवारे के बाद पिता द्वारा किये गए कर्ज को उतारने के लिए वह बद्ध नही है। इस पैराग्राफ मे 'पुत्र' शब्द मे पुरुष-वंशक्रम मे पौत्र और प्रपौत्र भी अभिप्रेत है।

संयुक्त परिवार, उत्तराधिकार, दाय तथा परहस्तकरण के बारे मे पिछले पृष्ठो मे वर्णित कानून महत्त्वपूर्ण बातो मे संसद् द्वारा परिवर्तित किये जाने की स्थिति मे है, और निकट भविष्य मे ही, ३० नवम्बर १९५५ को राज्य सभा द्वारा पास किये गए 'हिंदू उत्तराधिकार विधेयक' पर १९५६ मे लोकसभा द्वारा विचार कर लिये जाने या पास कर दिये जाने के बाद, एक नये कानून के प्रवर्त्तन मे आने की संभावना है। इस नये कानून की कुछ विशेषताएँ ये हो सकती हैं—पश्चिमी बंगाल के बाहर संयुक्त परिवार का सदस्य संयुक्त परिवार की संपत्ति मे अपने अंश के बारे मे वसीयत कर सकता है। यदि वह बिना वसीयत किये मर जाय तो संयुक्त परिवार की संपत्ति मे उसका अंश केवल उसके पुरुष-संमांशियो द्वारा ही नही, अपितु स्त्री-उत्तराधिकारियो द्वारा भी लिया जायगा। ये स्त्री-उत्तराधिकारी हैं—उसकी पुत्री, पूर्वमृत पुत्र या पुत्री की पुत्री, पूर्वमृत पुत्र की विधवा, पूर्वमृत पुत्र के पूर्वमृत पुत्र को विधवा तथा पुत्री। पश्चिमी बंगाल मे किसी हिंदू की मृत्यु होने पर, अथवा पश्चिमी बंगाल के बाहर अपनी पृथक् संपत्ति रखनेवाले हिंदू की मृत्यु होने पर, उसके उत्तराधिकारियो मे निम्नलिखित होंगे—पुत्र, विधवा, पुत्री, पूर्वमृत पुत्र की विधवा; पूर्वमृत पुत्र के पूर्वमृत पुत्र के पुत्र, पुत्री तथा विधवा। पुत्र, विधवा तथा पुत्री मे तीनो बराबर अंश लेंगे और उनमे से किसी के वंशज उस व्यक्ति को मिलनेवाला अंश लेंगे। स्त्री-उत्तराधिकारी अपनी संपत्ति दाय द्वारा तथा पुरुष-उत्तराधिकारियो की भाँति परहस्तकरण के अधिकार सहित पूर्णत लेंगी। बिना वसीयत किये मरनेवाली हिंदू स्त्री की संपत्ति उसके पुत्रो, पुत्रियो तथा पति को मिल जायगी। उपरोक्त उत्तराधिकारियो के अभाव मे किसी पुरुष या स्त्री की संपत्ति नये कानून मे विहित उत्तराधिकारियो को मिल जायगी।

मुस्लिम पारिवारिक कानून

हजरत मुहम्मद द्वारा चलाये गए धर्म, इस्लाम, के अनुयायी मुसलमान कहलाते हैं। इस्लाम का मुख्य सिद्धांत है कि अल्लाह एक है और मुहम्मद उसके पैगम्बर थे जिन्होने उसके धर्म का प्रकाशन किया। 'इस्लाम' का शाब्दिक अर्थ है—सविनय समर्पण—अर्थात् अल्लाह और उसके पैगम्बर के प्रति सविनय समर्पण। इस्लाम केवल धर्म ही नही है—यह आचरण के नियमो की संहिता

भी है, जिसमें कानून, नैतिकता और सामाजिक तथा राजनैतिक गठन के नियम दिये गए है। ये नियम 'शरियत' अर्थात् ईश्वरीय विधान कहलाते है। कानून और धर्म की इस्लामी पद्धति की हज़रत मुहम्मद (५७०-६२० ई०) ने नीव डाली थी। उन्होंने इसकी अरब में स्थापना की और उनकी मृत्यु के बाद उनके अनुयायियो ने दूर-दूर तक—पूर्व मे भारत तथा पश्चिम में स्पेन तक—इसका विस्तार किया। अतः इन प्रदेशों के मुसलमानो मे इस्लामी कानून प्रचलित हुआ। अल्जीरिया, मोरक्को, हिन्देशिया आदि देशो मे, परिवर्तित स्थितियो के अनुसार उसमे कुछ परिवर्तन हो गए है। १९२७ मे तुर्की में इस्लामी कानून खत्म कर दिया गया और उसका स्थान यूरोपीय कानून ने ले लिया। भारत मे १९३७ के शरियत कानून के अनुसार सभी न्यायालयों द्वारा, सभी मुसलमानो पर, निम्नलिखित विषयो के संबंध मे शरियत के नियम लागू करना आवश्यक है—विवाह, महर, तलाक (विवाह-विच्छेद), संरक्षता, उत्तराधिकार, दाय, उपहार,दान, ट्रस्ट, और वक़्फ। ये नियम बंबई के कच्छी मेमन और खोजा मुसलमानो पर भी, जो हिंदुओ की कुछ प्रथाओ को मानते है, लागू किये जाने चाहिए। किंतु अब कृषि भूमि के संबंध में राज्यों में प्रचलित उत्तराधिकार के प्रथात्मक नियम उन पर भी लागू होगे। किंतु कोई भी मुसलमान, मजिस्ट्रेट के सामने प्रज्ञापन द्वारा, तीन अतिरिक्त विषयो—दत्तकग्रहण, वसीयत और विरासत (रिक्थ-उत्तरदान)—के संबंध में भी शरियत का कानून अपना सकता है और इस प्रकार वह इन विषयों के सबंध में शरियत से भिन्न किसी प्रथा को छोड सकता है।

इस्लामी कानून के स्रोत

इस्लामी कानून के स्रोत ये है—कुरान, हादी (स्मृति के आधार पर सुरक्षित पैग़म्बर के परम्परागत उपदेश, कार्य और उक्तियाँ), इज्मा (कानूनी नुक्तो के संबध में मुस्लिम न्यायशास्त्रियो के मत) और क़यास (सादृश्य के आधार पर उक्त स्रोतो से निकाले गए तर्क-सम्मत निष्कर्ष)। इन्ही स्रोतो के आधार पर बगदाद के शाही दरबार के मुस्लिम न्यायशास्त्रियो ने, पैगम्बर के बाद, दो शताब्दियों के भीतर एक विशद-न्याय पद्धति की स्थापना की थी।

मुसलमान—सुन्नी और शिया—इन दोनों फिरकों मे बँटे हुए हैं। उन दोनों पर लागू होनेवाला कानून कई महत्त्वपूर्ण विषयो में भिन्न है। ये फिरके पैग़म्बर की मृत्यु के बाद नेतागिरी के दावों के संबंध में उठे राजनैतिक मतभेदों के कारण पैदा हुए। भारत में अधिकाश मुसलमान, और खासतौर पर 'हनफी' फिरके के माननेवाले मुसलमान, सुन्नी है। मलाबार के मोपला जैसे बहुत से भारतीय मुसलमान सुन्नियों के एक और छोटे फिरके 'शफ़ी' से संबंधित है। शफ़ी और हनफी-कानून सदैव एक जैसे नही होते। पुस्तक में सुन्नी कानून की चर्चा से अभिप्राय हनफी-कानून से ही है। कोई मुसलमान १५ वर्ष की आयु का होने

पर एक फिरका छोडकर दूसरे के नियम अपना सकता है, जैसे एक शिया सुन्नी हो सकता है और सुन्नी शिया, किन्तु दूसरे फिरके में विवाह करने से उसका फिरका नही बदलता ।

विवाह

विवाह या निकाह की जरूरी शर्त यह है कि दोनों में एक पक्ष द्वारा प्रस्ताव रखा गया होना चाहिए और दूसरे द्वारा स्वीकृति प्रदान की गई होनी चाहिए । 'प्रस्ताव' और 'स्वीकृति' एक भेंट में और दो मुसलमान साक्षियों के सामने होने चाहिए । साक्षी दो पुरुष या एक पुरुष तथा दो स्त्रियाँ होनी चाहिए । शियाओं मे किन्ही साक्षियो का होना आवश्यक नही । किन्ही धार्मिक रस्मो के करने की आवश्यकता नही । स्वस्थ मस्तिष्क का हरएक मुसलमान, यौवन (प्यूबर्टी) प्राप्त करने पर (जो विरोधी साक्ष्य के अभाव में १५ वर्ष की अवस्था के पूर्ण होने पर प्राप्त हुआ माना जाता है) विवाह का सविदा कर सकता है । किन्तु अस्वस्थ मस्तिष्क का और यौवन प्राप्त न किया हुआ कोई व्यक्ति ऐसा नही कर सकता; अलबत्ता उसका (लडके या लडकी का) संरक्षक उसे विवाह में दे सकता है । नाबालिग को विवाह में देने का अधिकार क्रमश: (१) पिता; (२) दादा या पुरुष वंशक्रम में ऊपर की पीढी के किसी व्यक्ति; (३) भाई या पितृ पक्ष के अन्य पुरुष संबंधी, और (४) पितृ पक्ष के संबंधियो के न होने पर माता मामा, तथा मामी या मातृ पक्ष के अन्य सम्बन्धियो; का होता है । पिता या पिता के पिता (दादा) से भिन्न किसी संरक्षक द्वारा विवाह में दिये गए नाबालिग को युवावस्था प्राप्त करने पर उस विवाह का प्रत्याख्यान करने का अधिकार होता है । लडकी इन तथ्यों की सिद्धि द्वारा ऐसा कर सकती है कि विवाह संसिद्ध नही हुआ—वह उसके १५ वर्ष की होने से पूर्व किया गया था और उसने १८ वर्ष की होने से पहले उस विवाह का प्रत्याख्यान कर दिया था । वैध विवाह के लिए यह परमावश्यक है कि विवाह करनेवाले पक्ष विवाह के लिए निषिद्ध संबंध-क्रम मे न आते हो (अर्थात् परस्पर उन संबंधों द्वारा संबंधित न हो जिनमें विवाह निषिद्ध है) । कोई पुरुष निम्न-संबंधियों से विवाह नही कर सकता—(१) माता; (२) दादी; (३) पुत्री; (४) बहन—सगी या सहोदरा (एक माँ से किंतु भिन्न पिता से उत्पन्न); (५) भतीजी या भांजी; (६) चाची अथवा मामी । उसके लिए अपनी पत्नी की माता या दादी, पत्नी की पुत्री या पौत्री, अपने पिता या दादा की पत्नी, अपने पुत्र, पुत्र के पुत्र या पुत्री के पुत्र की पत्नी से विवाह करना भी निषिद्ध है । निषिद्ध संबंध-क्रम के अंतर्गत आनेवाले व्यक्तियो के मध्य विवाह शून्य होता है । उनके परस्पर पति-पत्नी के कोई अधिकार नहीं होने और उनकी संतान नाजायज होती है । एक मुसलमान यहूदी या ईसाई स्त्री से विवाह कर सकता है, किन्तु मूर्त्तिपूजक या अग्निपूजक स्त्री से नही । मुसलमान द्वारा हिंदू या पारसी स्त्री से किया गया विवाह शून्य नहीं होता—केवल अनियमित होता है । शिया कानून में वह शून्य होता

है। शिया कानून मे मुसलमान स्त्री द्वारा किसी अन्य धर्म के पुरुष से किया गया विवाह एकदम शून्य होता है, किंतु हनफी कानून में वह केवल अनियमित होता है।

किसी विवाह को शून्य कहने का अर्थ यह होता है कि वह विवाह विवाह नही है और जिन व्यक्तियों ने परस्पर विवाह किया है उन्हें पति-पत्नी के रूप में रहने का कोई अधिकार नही है और उनकी सन्तान नाजायज है। विवाह तब शून्य होता है जब वह किन्ही नियमो को भंग करता है। उदाहरण के लिए विवाह के लिए निषिद्ध संबंध-क्रम मे आनेवाले व्यक्तियो का विवाह शून्य है। इसी प्रकार शिया कानून के अनुसार एक मुसलमान स्त्री और गैर-मुसलमान पुरुष के बीच विवाह शून्य है। जब विवाह शून्य न होकर केवल अनियमित होता है तो परिणाम इतना गंभीर नही होता। अनियमित विवाह को विवाहित पक्षो में से कोई भी व्यक्ति भंग कर सकता है, किंतु उनकी संतान नाजायज नही होती। यदि विवाह संसिद्ध[1] हो चुका है तो पत्नी को महर का अधिकार होता है और वह 'इद्दत' करने के लिए बद्ध होती है (इद्दत के संबंध मे 'तलाक' से संबंधित अश २७६ पृष्ठ पर देखिये) अन्य स्थितियो के अतिरिक्त विवाह इन स्थितियो मे अनियमित होता है—यदि विवाह-संविदा साक्षियो के बिना किया जाय; यदि कोई व्यक्ति अपनी चार पत्नियो के जीवित रहते हुए भी विवाह करे; यदि वह इद्दत काल में स्त्री से विवाह करे; या विवाह एक मुसलमान पुरुष और गैर-मुसलमान स्त्री के बीच हो। विवाह उस समय भी अनियमित होगा जब वह उस स्त्री के साथ विवाह करे जो उसकी जीवित पूर्व-स्त्री के साथ इस रूप में संबधित हो कि यदि दोनो पत्नियो में से एक पुरुष हो तो वे दोनो परस्पर विवाह न कर सके—जैसे बहनें।

शून्य और अनियमित विवाह

'महर' वह धनराशि या अन्य संपत्ति होती है जिसे पत्नी विवाह के प्रतिफल के रूप में प्राप्त करने की अधिकारिणी होती है। यह दुलहिन की कीमत नही होती, बल्कि उसके प्रति आदर-भाव दिखाने के लिए दी जाती है। यह पति को अपनी पत्नी को झटपट तलाक देने से रोकने का काम करती है, क्योंकि जैसा कि हम आगे देखेंगे, यह तलाक देने पर तलाक दी गई पत्नी को तुरत देय हो जाती है। राशि या संपत्ति का निश्चय पति द्वारा किया जा सकता है। यह विवाह से पहले, विवाह के समय, या उसके बाद निश्चित की जा सकती है। यदि पति ने इसका निश्चय नही किया है तो न्यायालय उसका निश्चय करेगा। यदि पत्नी ने विवाह के समय किसी महर की माँग न भी की हो तो भी न्यायालय ऐसा कर सकता है। ऐसा करते

महर

---

१. **पति-पत्नी के प्रथम संभोग के बाद विवाह संसिद्ध माना जाता है।**

समय न्यायालय यह ध्यान रखेगा कि उस (स्त्री) के पिता के परिवार की अन्य महिलाओं के लिए क्या महर निश्चित है। यदि पति द्वारा महर निश्चित हो तो वह उसे फौरन विवाह के समय दे सकता है या आगे विवाह के मत्यु या तलाक द्वारा भंग होने के समय तक के लिए स्थगित कर सकता है। पत्नी को पूर्ण या आंशिक रूप में महर छोड़ने की छूट है। यदि पति ने फौरन महर देने के लिए कहा था और उसने नही दिया, तो पत्नी उसके साथ रहने से इन्कार कर सकती है। यदि विवाह संसिद्ध हो चुका है तो न्यायालय उसे जबतक महर न चुका दिया जाय, साथ रहने के लिए बाध्य नही करेगा। यदि विवाह संसिद्ध नही हुआ है तो न्यायालय पति द्वारा पत्नी के साथ रहने के लिए बाध्य करने के संबंध मे दायर किये गए मुकदमे को खारिज कर देगा। यदि पति महर चुकाये बिना मर जाय तो पत्नी को उसकी संपत्ति में से महर वसूल करने का अधिकार होता है। यदि संपत्ति किसी जोर-जबरदस्ती या धोखे के बिना शांतिपूर्वक उसी की भुक्ति में हो तो वह उसे जबतक उसका महर न चुक जाय तबतक रोके रख सकती है। किन्तु महर वसूल करने के लिए उसे संपत्ति बेचने का अधिकार नही है। उसके पति के उत्तराधिकारी अपने हिस्से में से अनुपातिक ढंग से उसका महर चुका कर वह संपत्ति उससे ले सकते है। संपत्ति रोक रखने का अधिकार विधवा को ही प्राप्त है, सधवा (जिसके पति के साथ विवाह संबंध बने हुए है) को नही।

संभरण (भरण-पोषण)

प्रत्येक मुसलमान अपनी पत्नी और बच्चो का भरण-पोषण करने के लिए बद्ध है। निषिद्ध संबंध-क्रम में आनेवाले संबंधियो के भरण-पोषण के लिए वह तभी बद्ध है जब उसके पास साधन हो। पत्नी के संबंध में यह नियम है कि विवाह कायम रहने के दौरान मे यदि पत्नी पति के साथ रहती हो तो पति के लिए उसका भरण-पोषण करनाआवश्यक है। जहाँ तक बच्चो का संबंध है, पिता पुत्र के बालिग होने तक और पुत्री का विवाह होने तक, उनका भरण-पोषण करने के लिए बद्ध है। कोई व्यक्ति अपनी परित्यक्त (तलाक दी गई) स्त्री और विधवा हुई पुत्रियों के भरण-पोषण के लिए बद्ध नही है। पत्नी और बच्चो के भरण-पोषण के संबंध में कुछ बाते ध्यान देने योग्य हैं। पत्नी के भरण-पोषण के संबंध में पति का उत्तरदायित्व पूरा है—अर्थात् भले ही उसके पास संपत्ति हो या न हो, वह उसके लिए बद्ध है। किंतु यदि बच्चे (लडका या लडकी) के पास भरण-पोषण के अपने साधन हैं तो पिता उनके भरण-पोषण के लिए बद्ध नही है।

तलाक द्वारा विवाह समाप्त किया जा सकता है, किंतु तलाक देने का ढंग विभिन्न स्थितियों में विभिन्न होता है। पति स्वेच्छा से जब चाहे, न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना, विवाह समाप्त कर सकता है। यह कार्य, वह मौखिक रूप से या लिखित पत्र द्वारा—जो 'तलाक़नामा' कहलाता है—कर सकता है। मौखिक

तलाक देने का आम ढंग यह है कि तलाक शब्द का तीन बार उच्चारण किया जाय। इस शब्द का इस अभिप्राय के अन्य शब्दों द्वारा संकेत अपनी पत्नी की ओर होना चाहिए।

तलाक

यह आवश्यक नहीं कि वह इन शब्दों का उच्चारण अपनी पत्नी की उपस्थिति में करे। शिया कानून के अनुसार ये शब्द दो पुरुष साक्षियों के सामने कहे जाने चाहिए। पति न्यायालय में मुकदमा चलाकर भी अपनी पत्नी को तलाक़ दे सकता है। पत्नी पति को उसकी स्वीकृति से ही अथवा न्यायालय के मुकदमे द्वारा तलाक़ दे सकती है। वह न्यायालय में अन्य आधारों के अतिरिक्त निम्न आधारों पर विवाह-विघटन के लिए मुकदमा दायर कर सकती है—४ वर्ष तक पति के ठिकाने का कोई पता मालूम न होना, दो वर्ष तक पति द्वारा भरण-पोषण न करना, पति का सात वर्ष की सजा प्राप्त करना, बिना समुचित कारण पति का उसके साथ न रहना, पति की नपुंसकता, उसका पागल या निर्दयतापूर्ण व्यवहार। एक नाबालिग लड़की, जिसका विवाह उसके संरक्षक द्वारा उसकी १५ वर्ष की आयु से पूर्व किया गया हो, १८ वर्ष की होने पर, और विवाह के संसिद्ध होने से पहले, उसका (विवाह का) प्रत्याख्यान (खंडन) कर सकती है; ऐसी स्थिति में वह विवाह-विघटन के लिए मुकदमा दायर कर सकती है। विवाह-विघटन के पश्चात् पति या पत्नी किसी और से विवाह कर सकते हैं, किंतु पत्नी अन्य पति से विवाह इद्दत-काल के बाद, अर्थात् तीन-मासिक-धर्मों या चन्द्र-मासों के पूरा होने पर, ही कर सकती है। यदि विवाह संसिद्ध नहीं हुआ है तो वह तुरंत दूसरा विवाह कर सकती है। यदि विवाह संसिद्ध हो चुका है तो वह तुरन्त अपना पूरा या शेष महर प्राप्त करने की अधिकारिणी हो जाती है। यदि विवाह संसिद्ध नहीं हुआ है तो वह जो महर तय हुआ है उसमें आधा पाने की अधिकारिणी होती है। यदि कोई महर निर्दिष्ट न हो तो वह केवल पोशाक की तीन चीजें उपहारस्वरूप पाने की अधिकारिणी होती है। तलाक के बाद कोई भी पक्ष एक-दूसरे से दाय ग्रहण नहीं कर सकता। यदि कोई व्यक्ति अपनी पत्नी को जबानी या तलाक शब्द के तीन बार उच्चारण द्वारा तलाक देता है तो वह तबतक उससे फिर विवाह नहीं कर सकता जबतक कि वह किसी और पति से विवाह न कर ले और वह पति उसे तलाक न दे दे, अथवा विवाह के वास्तव में संसिद्ध होने के बाद मर न जाय। इस नियम के विरुद्ध किया गया विवाह शून्य नहीं होता—केवल अनियमित होता है। अन्य सभी दशाओं में तलाक़ द्वारा अलग हुए पक्ष फिर एक-दूसरे से विवाह कर सकते हैं। एक मुसलमान पुरुष द्वारा धर्म परिवर्तन उसका विवाह विघटित कर देता है और उसका प्रभाव वही होता है जो तलाक़ का होता है। किन्तु मुसलमान स्त्री का धर्म परिवर्तन कर लेना ही उसका विवाह भंग नहीं कर देता। वह अपने पति के तलाक के लिए उस पर उक्त आधारों में से किसी आधार पर मुकदमा चला सकती है।

ऐसे विवाह से उत्पन्न बच्चे, जो शून्य न हो, अपने माता-पिता की संपत्ति के उत्तराधिकार के अधिकारी होते हैं। उक्त विवाह वैध या अनियमित भी हो सकता है। बच्चे के पितृत्व की सिद्धि उसके माता-पिता के मध्य विवाह की सिद्धि द्वारा होती है। पिता की स्वीकृति से भी यह सिद्धि हो सकती है। स्वीकृति स्पष्ट या अनुमानित दोनों प्रकार की हो सकती है और यह प्रदर्शित करा सकती है कि पिता पुत्र या पुत्री को अपनी जायज सन्तान मानता था।

पितृत्व

मुस्लिम कानून में एक नाबालिग, युवत्व प्राप्त करने पर बालिग माना जाता है। युवत्व-प्राप्ति उसके द्वारा १५ वर्ष की आयु पूरी करने पर मान ली जाती है, किंतु भारतीय वयस्कता अधिनियम (इण्डियन मेजोरिटी एक्ट) से यह कुछ बदल गया है। इस अधिनियम के अनुसार वयस्कता (बालिगपन) की आयु साधारणतः १८ वर्ष है। यदि न्यायालय किसी संरक्षक की नियुक्ति करता है, या किसी प्रतिपाल्य (वार्ड) की संपत्ति संरक्षक या प्रतिपालन विभाग ने ग्रहण कर ली है, तो यह आयु २१ वर्ष होती है। यह नियम भारत में सभी व्यक्तियों पर लागू होता है जिनमें मुसलमान भी शामिल हैं। किंतु यह किसी व्यक्ति की निम्न कार्य-विषयक समर्थता के संबंध में—अर्थात् विवाह, महर, तलाक़ और दत्तक ग्रहण के संबंध में—लागू नहीं होता। अतः १५ वर्ष की आयु से ऊपर और १८ वर्ष से नीचे कोई भी मुसलमान विवाह कर सकता है या तलाक दे सकता है।

अवयस्कता (नाबालिगपन) और संरक्षता

नाबालिग के शरीर की संरक्षता का अधिकार निम्नलिखित व्यक्तियों को होता है—पहले पिता को; माता को अपने पुत्र के संरक्षण का अधिकार उसके ५ वर्ष का होने तक और अपनी पुत्री के संरक्षण का अधिकार उसके द्वारा युवत्व-प्राप्ति तक होता है। पति (बच्चे के पिता) द्वारा तलाक दिये जाने के बाद भी पत्नी का यह अधिकार क़ायम रहता है। किंतु परिवार के लिए एकदम अपरिचित व्यक्ति से विवाह कर लेने पर उसका यह अधिकार नष्ट हो जाता है। शिया कानून में पत्नी को यह अधिकार पुत्र के २ वर्ष का होने तक और पुत्री के ७ वर्ष की होने तक रहता है। इसके बाद संरक्षता पिता के पास चली जाती है। माता के न होने पर संरक्षता कुछ विशिष्ट स्त्री-संबंधियों के पास निम्न क्रम में रहती है—माता की माता (नानी), पिता की माता (दादी), बहन की मामी, बुआ। माता और उक्त स्त्री-संबंधियों के न होने पर संरक्षत्व पिता और पितृ-पक्ष के संबंधियों के पास रहता है। पुरुष किसी प्रतिपाल्य लड़की के शरीर का तबतक संरक्षक नहीं हो सकता जबतक कि वह निषिद्ध संबंध-क्रम में न हो। निम्न-लिखित व्यक्ति नाबालिग की संपत्ति के संरक्षक बनने के योग्य होते हैं—(१) पिता, (२) पिता की वसीयत द्वारा नियुक्त निष्पादक (कार्यकारक), (३)

पिता का पिता (दादा) और (४) पिता के पिता द्वारा वसीयत के जरिये नियुक्त निष्पादक।

जब कोई मुसलमान निर्वसीयत मर जाता है तो उसकी अंतिम क्रिया के खर्च और कर्ज को चुकाने के बाद बची हुई संपत्ति उसके उत्तराधिकारी प्राप्त करते है।

उत्तराधिकार

यदि उसने वसीयत छोडी है तो उसकी संपत्ति का अधिक-से-अधिक तीसरा भाग रिक्थ (विरासत की संपत्ति) अलग निकाल देना चाहिए। उत्तराधिकारियो को उक्त कार्यो के पूरा होने तक इंतजार करने की आवश्यकता नही है। वे तुरंत वह संपत्ति आपस में बाँट सकते है। ऐसा करने पर वे उक्त कार्यो के लिए अपने-अपने भाग मे से अनुपातिक राशि देने के लिए बद्ध होगे। एक मृत मुसलमान के उत्तराधिकारियो का निश्चय करनेवाले नियमो का उद्देश्य विभिन्न श्रेणियो के उत्तराधिकारियो को उचित और एकदम सही (गणित की शुद्धि लिए हुए) हिस्सा देना है। अतः ये नियम बहुत विस्तृत है और यहाँ पूरी तरह नही दिये जा सकते। इस संबंध में शिया और सुन्नी—दोनो फिरको के नियम भिन्न-भिन्न है, किंतु दो बातो में वे एक है—एक यह कि क्रम में समीपतर उत्तराधिकारी दूरतर उत्तराधिकारी को हटा देता है—जैसे यदि मृत व्यक्ति ने अपने पीछे एक पुत्र और एक पुत्र का पुत्र छोडा है तो पुत्र, पुत्र के पुत्र को मार्ग से हटा देगा और स्वयं समस्त दाय ग्रहण करेगा। दूसरी यह कि पुरुष को स्त्री के हिस्से से दुगना मिलता है। उदाहरण के लिए यदि मृतक ने पीछे एक पुत्र और एक पुत्री छोडे है तो पुत्र को दो-तिहाई और पुत्री को एक-तिहाई हिस्सा मिलेगा।

एक सुन्नी के उत्तराधिकारियो की तीन श्रेणियाँ होती है—(१) भागीदार (२) शेषभागी और (३) बाधव। भागीदार वे होते है जो मृतक की संपत्ति

सुन्नी मुसलमान के उत्तराधिकारी

में से एक निर्दिष्ट भाग लेते है, जैसे पिता, दादा, पति, पत्नी, माता, दादी, पुत्री, पुत्र की पुत्री, सहोदर (एक माता से किन्तु भिन्न पति द्वारा उत्पन्न) भाई या बहन, सगी बहन, और सगोत्रीय बहन (एक पिता किन्तु भिन्न पत्नी द्वारा उत्पन्न)। इन भागीदारो के भागो मे अंतर होता है। भागीदारो के दावो की पूर्ति के बाद संपत्ति का शेष भाग शेषभागियों द्वारा इस क्रम मे ग्रहण किया जायगा—(१) मृतक के अवरोही वंशज (नीचे की पीढी के सगोत्र संबंधी), जैसे—पुत्र, पुत्री और पुत्र का पुत्र; (२) मृतक के अधिरोही वंशज—(ऊपर की पीढी के सगोत्र संबंधी) जैसे—पिता, दादा; (३) मृतक के पिता के अवरोही वंशज, जैसे—भाई, बहन, भाई का पुत्र, (४) मृतक के दादा के अवरोही वंशज। यदि भागीदार या शेष भागी न हों तो संपत्ति इस क्रम से बांधवों—दूर के संबंधियो—के पास चली जाती है—(१) भागीदार

और शेषभागियो को छोडकर मृतक के अवरोही वंशज, जैसे—पुत्री के बच्चे; (२) भागीदार और शेषभागियों को छोड कर मृतक के अधिरोही वंशज, जैसे नाना और नानी; (३) भागीदार और शेषभागियों को छोड कर मृतक के माता-पिता के अवरोही वंशज, जैसे—भाई की पुत्री, भाई के पुत्र की पुत्री; (४) भागीदार और शेषभागियो को छोडकर मृतक के दादा-दादी के अवरोही वंशज—जैसे—चाचा की पुत्री, मामा। भागीदार और शेषभागी—पति और पत्नी को छोड़कर—मृतक के सगोत्र संबंधी होते है, जबकि दूर के बाधवो मे अगोत्र-संबंधी (स्त्री-पक्ष द्वारा संबंधित) होते हैं।

शिया मुसलमान के उत्तराधिकारी

एक मृत शिया के उत्तराधिकारी दो प्रकार के होते है—खून के रिश्ते मे उत्तराधिकारी, जैसे, पिता, पुत्र, और विवाह द्वारा उत्तराधिकारी, जैसे, पति, पत्नी। प्रथम प्रकार की तीन श्रेणियाँ और प्रत्येक श्रेणी की दो उप-श्रेणियाँ है—अर्थात्—(१) (क) माता-पिता (ख) बच्चे और अन्य अवरोही-वशज (२) (क) दादा-दादी और दूर के दादा-दादी, (ख) भाई और बहन तथा उनके अवरोही वंशज (३) (क) मृतक के और उसके माता-पिता दादा-दादी और दूर के अवरोही वंशजो के चाचा-चाची (ख) मृतक के और उसके माता-पिता, दादा-दादी, और दूर के अधिरोही वंशजो के मामा-मामी। एक णी के उत्तराधिकारी दूसरी श्रेणी के उत्तराधिकारियो को मार्ग से हटा देते है, किंतु उस श्रेणी की दोनो उप-श्रेणियो के उत्तराधिकारी एक साथ ग्रहण करते है। मृतक की पति या पत्नी को दाय ग्रहण से कभी अलग नही किया जा सकता, वरन् वे उक्त श्रेणियो के सबसे नजदीकी उत्तराधिकारियो के साथ ग्रहण करते है। यदि परपरागत अवरोही वंशज मौजूद हों तो पति एक-चौथाई और पत्नी आठवाँ हिस्सा, तथा यदि उक्त वंशज मौजूद न हो पति पत्नी आधा और एक-चौथाई हिस्सा ग्रहण करती है। उक्त उत्तराधिकारी दो भागो मे विभक्त होते हैं—भागीदार और शेषभागी। दूर के बाधवो की कोई तीसरी श्रेणी नही होती। शियाओ मे भागीदार और शेष-भागियो में सगोत्रीय और अगोत्रीय दोनो शामिल होते है, किंतु सुन्नियों में ऐसा नही होता। एक और अंतर यह है कि सुन्नियो में एक ही श्रेणी के उत्तराधिकारी संपत्ति का विभाजन प्रति व्यक्ति के हिसाब मे करते हैं जबकि शियाओ में यह विभाजन प्रति-शाखा के हिसाब से किया जाता है। एक उदाहरण है—मृतक के दो पुत्र थे **क** और **ख** जिनकी मृत्यु उससे पहले हो गई और **क** ने दो पुत्र **ग** **घ** छोडे और **ख** ने एक पुत्र **ङ** छोडा। **ग** **घ** और **ङ** यदि सुन्नी हों तो उनमें से प्रत्येक को एक-तिहाई हिस्सा मिलेगा, किंतु यदि शिया हों तो संपत्ति के दो हिस्से होंगे—एक हिस्सा **ग** और **घ** को मिलेगा और दूसरा हिस्सा **ङ** को मिलेगा।

प्रतिग्रह

प्रत्येक मुसलमान जो स्वस्थ मन का और बालिग हो, प्रतिग्रह कर सकता है। इसके लिए दाता की ओर से प्रस्ताव का तथा ग्रहीता की ओर से उसका स्वीकृत होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त दाता को संपत्ति की भुक्ति देनी चाहिए। प्रतिग्रह का लिखित रूप में होना आवश्यक नहीं है। यह नियम अचल संपत्ति के संबंध में भी लागू होता है। दूसरी ओर, किसी अन्य व्यक्ति द्वारा ऐसी संपत्ति का प्रतिग्रह एक रजिस्ट्री-शुदा दस्तावेज़ द्वारा होना चाहिए जिस पर दाता के हस्ताक्षर हों और जो कम-से-कम दो साक्षियों द्वारा प्रमाणित किया गया हो। एक मुसलमान अपनी संपत्ति का प्रतिग्रह कर सकता है, किंतु वसीयत वह केवल उसके तीसरे भाग के संबंध में ही कर सकता है।

वसीयत

एक मुसलमान लिखित या मौखिक रूप में वसीयत कर सकता है। दूसरी तरफ एक हिंदू या ईसाई, अपने हस्ताक्षर सहित तथा कम-से-कम दो साक्षियों द्वारा प्रमाणीकृत लेख द्वारा ही वसीयत कर सकता है। अपने अंतिम क्रिया-कर्म और कर्ज चुकाने के बाद बची हुई संपत्ति के एक-तिहाई भाग से अधिक के संबंध में मुसलमान वसीयत नहीं कर सकता। एक-तिहाई भाग से अधिक के संबंध में वसीयत तबतक न्यायसिद्ध नहीं होगी जबतक कि उसके उत्तराधिकारी, उसकी मृत्यु के बाद, उसके संबंध में अपनी स्वीकृति न दे दें। शिया कानून में यह स्वीकृति मृतक की मृत्यु से पहले या बाद में दी जा सकती है। एक मुसलमान के वसीयत करने के अधिकार पर एक और प्रतिबंध है। वह किसी उत्तराधिकारी को वसीयत द्वारा तबतक कुछ नहीं दे सकता, जबतक कि अन्य उत्तराधिकारी, उसकी मृत्यु के बाद, उसके संबंध में स्वीकृति न प्रदान करें। किंतु शिया कानून में वह किसी भी उत्तराधिकारी को अपनी संपत्ति का अधिक-से-अधिक एक-तिहाई भाग वसीयत द्वारा दे सकता है और उसके लिए अन्य उत्तराधिकारियों की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं।

वक़्फ

किसी धार्मिक, पवित्र या दातव्य प्रयोजन के लिए (जैसे मस्जिद या स्कूल के लिए) संपत्ति प्रतिष्ठित करना या प्रदान करना 'वक़्फ' कहलाता है। एक मुसलमान अपनी सारी संपत्ति वक़्फ रूप में दे सकता है। यह कार्य वह मौखिक या लिखित रूप में, वक़्फ पत्र लिख कर या वसीयत द्वारा कर सकता है। यदि वक़्फ १०० रुपये से ऊपर की अचल संपत्ति के संबंध में हो तो वह रजिस्ट्री-शुदा होनी चाहिए। वक़्फ के लिए यह जरूरी है कि उसके द्वारा संपत्ति का प्रतिष्ठान स्थायी होना चाहिए। किसी सीमित समय—जैसे १० या २० वर्ष—के लिए किया गया वक़्फ न्यायसिद्ध नहीं होता। यदि वक़्फ-कर्ता हनफी है तो वह वक़्फ की संपत्ति

में से, अपने जीवन काल के लिए, अपने गुजारे की रकम तथा निजी कर्ज चुकाने की व्यवस्था कर सकता है। शिया ऐसा नहीं कर सकता, किंतु वह उसमें से अपने परिवार, बच्चों और आश्रितों के गुजारे की व्यवस्था कर सकता है। किंतु आखिरकार दोनों ही स्थितियों में संपत्ति से होनेवाली आय धार्मिक, पवित्र या दातव्य प्रयोजनों के लिए ही सुरक्षित रखी जानी चाहिए। उसके अंतर्गत होनेवाला लाभ दाता के परिवार के समाप्त होने तक स्थगित किया जा सकता है। वक़्फ के बाद, उस संपत्ति में दाता का अधिकार नहीं रहता और सर्व शक्तिमान् (अल्लाह) का अधिकार माना जाता है। दाता वक़्फ की संपत्ति के प्रबंध के लिए स्वयं को या अन्य किसी को प्रबंधक या मुतवल्ली नियुक्त कर सकता है। वह मुतवल्ली के उत्तराधिकारी की भी व्यवस्था कर सकता है। किंतु यदि वह ऐसा नहीं करता तो मुतवल्ली मृत्यु-शय्या पर अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति कर सकता है।

ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी में पैगम्बर जोरोस्तर द्वारा चलाये गए धर्म के अनुयायी पारसी कहलाते हैं। इस धर्म की मुख्य विशेषता अग्नि-पूजा है।

पारसियों का पारिवारिक कानून

पारसी मूलतः फारस के निवासी थे जो अब ईरान कहलाता है और उनका धर्म वहां का राज्य-धर्म था (२११—६४० ई०)। ८वीं शताब्दी में अरबों ने उनका देश जीत लिया और वह देश मुस्लिम बन गया। इस पर कुछ पारसी देश छोड़कर भारत में आ बसे। ये प्रवासी लोग, जिनके वंशज पारसी कहलाते हैं, पहले गुजरात में बसे और फिर भारत में अंग्रेजों के आने के बाद, बंबई में। वे अपने साथ कोई सम्यक् विकसित विधि-संहिता नहीं लाये थे वरन् यहीं विभिन्न स्थानों में प्रचलित प्रथाओं को मानते थे। उनके लिए कुछ विषयों में—विवाह, तलाक और उत्तराधिकार—अलग कानून बनाये गये हैं।

एक वैध पारसी विवाह के लिए इन बातों का होना आवश्यक है—(१) विवाह करनेवाले पक्ष, १९३६ के पारसी विवाह और तलाक अधिनियम की

विवाह

प्रथम अनुसूची में उल्लिखित निषिद्ध संबंध-क्रम के अंतर्गत नहीं होने चाहिए। अनुसूची में ऐसे ३३ संबंध गिनाये गए हैं जैसे क्रमागत अधिरोही वंशज और अवरोही वंशज, पति और पत्नी, भाई और बहन, भाई और बहनों के बच्चे। (२) विवाह पारसियों के विवाह-विधान 'आशीर्वाद' के अनुसार एक पुरोहित द्वारा अन्य दो साक्षियों की उपस्थिति में सम्पन्न होना चाहिए। (३) यदि विवाह करनेवाले दोनों पक्षों में किसी की आयु २१ वर्ष से कम हो तो विवाह के संबंध में कम आयुवाले पक्ष के पिता या संरक्षक द्वारा अनुमति दी गई होनी चाहिए। (४) दोनों में किसी का विवाह के समय पति या पत्नी जीवित नहीं होनी चाहिए। प्रत्येक विवाह विवाह करानेवाले पुरोहित द्वारा प्रमाणीकृत होना चाहिए और प्रमाण-पत्र

पर पुरोहित के, विवाह करनेवाले पक्षों के, या यदि उनमे से कोई २१ वर्ष से कम हो तो उसके पिता या संरक्षक के, और विवाह के समय उपस्थित दो साक्षियों के हस्ताक्षर होने चाहिए। पुरोहित को वह प्रमाण-पत्र, पति द्वारा दिये गए दो रुपये के शुल्क के साथ, विवाह-रजिस्ट्रार के पास भेज देना चाहिए। रजिस्ट्रार उस प्रमाण-पत्र को, इस कार्य के लिए रखे गए रजिस्टर में दर्ज कर देगा। जो पुरोहित इस नियम की अवज्ञा करता है उसे ३ महीने की सादी सजा, या १०० रुपये तक जुर्माना, या दोनों किये जा सकते है।

विवाह संबंधी वाद ?

निरर्थकता—कोई भी पक्ष अपने विवाह को शून्य व निरर्थक प्रज्ञापित कराने के लिए न्यायालय मे वाद प्रस्तुत कर सकता है। यदि प्राकृतिक कारणों के आधार पर विवाह संसिद्ध न हो सकता हो तो न्यायालय उसे शून्य व निरर्थक घोषित कर देगा।

विघटन—यदि विवाहित व्यक्तियों में कोई व्यक्ति दूसरे के पास से ७ वर्ष तक अनुपस्थित रहे और इस अवधि मे उसके जीवित होने की बात न सुनी जाय, तो दूसरा व्यक्ति विवाह-विघटन के लिए न्यायालय मे वाद प्रस्तुत कर सकता है।

तलाक (विवाह-विच्छेद)—उक्त कानून में दिये गए दस आधारों में से किसी एक या अधिक आधारो पर तलाक (विवाह-विच्छेद) के लिए वाद चलाया जा सकता है। उनमे से कुछ हैं—जार-कर्म, निर्दयतापूर्ण व्यवहार, परित्याग (छोड देना और पारसी न रहना।

न्यायिक नियोजन (कानूनन अलग होना)—कोई भी पक्ष दूसरे पर निर्दयता या शारीरिक हिंसा (मार-पीट आदि) अथवा किसी अनुचित आचरण के आधार पर न्यायिक-वियोजन के लिए वाद चला सकता है।

इस प्रकार के वादो में वादी तभी सफल हो सकेगा जबकि न्यायालय को यह विश्वास हो जाय कि वादी ने प्रतिवादी का उक्त आचरण क्षमा नही कर दिया है या दोनों ने मिलकर या जान-बूझकर कोई कुचक्र नही रचा है।

ये समस्त वाद पारसी वैवाहिक-न्यायालयो (पारसी-मैट्रिमोनियल कोर्ट्स) में में सुने जाते है। ऐसा एक-एक न्यायालय कलकत्ता, बंबई और मद्रास नगरों में बना हुआ है और राज्य-सरकार अन्यत्र जहाँ उचित समझे, बना सकती है। उक्त तीन नगरों में से प्रत्येक मे एक पारसी-मुख्य-वैवाहिक-न्यायालय होता है जिसका अध्यक्ष उच्च न्यायालय का मुख्य-न्यायाधीश या उसके द्वारा नियुक्त न्यायाधीश होता है। अन्य स्थानों में बने न्यायालय पारसी-जिला-वैवाहिक-न्यायालय कहलाते है। इन न्यायालयों के न्यायाधीश सात डेलीगेटो[1] की सहायता से वादों पर

---

१. डेलीगेट—किसी की ओर से कार्याधिकार प्राप्त व्यक्ति, प्रतिनिधि।

विचार करते है। डेलीगेट पारसी होने चाहिए। ये राज्य सरकार द्वारा बनाई गई सूची में से चुने जाते है। एक डेलीगेट १० वर्ष की अवधि के लिए नियुक्त किया जाता है और उसे पुर्ननियुक्त किया जा सकता है। विवाह के प्रवर्तन या विघटन के संबंध मे न्यायालय तबतक कोई वाद ग्रहण नही करता जबतक वाद उपस्थित किये जाने के समय पति की आयु १६ वर्ष की और पत्नी की १४ वर्ष की पूर्ण न हो चुकी हो। वाद-काल मे पत्नी अपने भरण-पोषण और वाद के खर्च के लिए पति पर पैसे का दावा कर सकती है। न्यायालय वाद-काल मे पति को, पत्नी के उक्त खर्च के लिए प्रति मास या प्रति सप्ताह अपनी वास्तविक या शुद्ध आय में से अधिक से अधिक पाँचवें भाग तक—जितना उचित समझे—पैसा देने के लिए आदेश दे सकता है। न्यायालय डिगरी देने के बाद भी पति द्वारा पत्नी को स्थायी रूप मे खर्च और गुजारे की रकम (भृत्ति)[1] देने का आदेश दे सकता है। यदि वाद-ग्रस्त कोई पक्ष चाहे तो वैवाहिक वादो के सुनने की कार्यवाही गुप्त रूप से की जा सकती है। न्यायालय से तलाक, विवाह-विघटन, या विवाह के शून्य व निरर्थक प्रज्ञापन के संबंध मे डिगरी होने के बाद दोनो पक्ष उसी प्रकार दूसरा विवाह कर सकते है जैसे वे किसी एक पक्ष की मृत्यु के बाद कर सकते है।

नीचे दिये गए नियम तब लागू होते है जब कोई पारसी निर्वसीयत मर जाता है। यदि वह अपने पीछे विधवा और सन्तान छोड जाता है, तो उनमे उसकी संपत्ति का विभाजन इस प्रकार होगा—प्रत्येक पुत्र और विधवा का हिस्सा प्रत्येक पुत्री के हिस्से से दुगना होगा। यदि उसने पीछे विधवा नही छोडी—केवल बच्चे छोडे है—तो संपत्ति का विभाजन इस प्रकार होगा कि प्रत्येक पुत्र को पुत्री से दुगना हिस्सा मिले। यदि उसने विधवा और बच्चो के अतिरिक्त अपने पीछे अपना पिता, या माता, अथवा दोनो छोडे है, तो पिता को पुत्र के हिस्से का आधा और माता को पुत्री के हिस्से का आधा भाग मिलेगा। यदि स्त्री मर जाती है तो उसकी संपत्ति उसके पति और बच्चो मे इस प्रकार बाँटी जायगी—पति और प्रत्येक बच्चे को बराबर हिस्सा मिलेगा। यदि उसने पीछे पति नही छोड़ा—केवल बच्चे छोडे है—तो सब बच्चो को बराबर हिस्सा मिलेगा। यदि पुरुष या स्त्री अपने पूर्व-मृत पुत्र या पुत्री के द्वारा क्रमागत अवरोही वंशज छोड़ जाते है, तो उन वंशजो को पूर्वमृत पुत्र या पुत्री का वही हिस्सा मिलेगा जो उसे (मृत पुत्र या पुत्री को) मृत व्यक्ति के पीछे जीवित होते हुए मिलता। यदि पूर्वमृतक पुत्र था तो उसकी विधवा और बच्चो को वही हिस्सा मिलेगा जो निर्वसीयत मरनेवाले के बाद

उत्तराधिकार

---

१. **भृति या संभरण—खर्च और गुजारे की वह रकम जो पत्नी को पति से पृथक होने पर प्राप्त होती है।**

उसके मरने पर उन्हें मिलता । यदि पूर्वमृतक पुत्री थी तो उसका हिस्सा उसके बच्चो मे बराबर बाँट दिया जायगा। क्रमागत अवरोही वंशज की विधवा ने यदि निर्वसीयत मरनेवाले के जीवनकाल मे पुनर्विवाह कर लिया हो तो उसे कोई हिस्सा नही मिलेगा। यदि मृतक अपने पीछे विधवा या विधुर तो छोड जाय किंतु कोई क्रमागत अवरोही या उसकी विधवा न छोडे, तो विधुर या विधवा को संपत्ति का आधा भाग मिलेगा। यदि उसने पीछे क्रमागत अवरोही वंशज की विधवा भी छोडी है तो विधुर या विधवा को एक-तिहाई भाग और उक्त वंशज की विधवा को दूसरा एक-तिहाई भाग मिलेगा। यदि क्रमागत अवरोही वंशजो की कई विधवाएँ हो तो वे उक्त तीसरा भाग आपस में बराबर बाँट लेगी। यदि मृतक ने पीछे विधवा या विधुर नही छोडा है—वरन् केवल क्रमागत अवरोही वंशज की विधवा छोडी हो—तो उसे एक-तिहाई हिस्सा मिलेगा, किंतु यदि एक से अधिक ऐसी विधवाएँ हो तो उन्हे दो-तिहाई हिस्सा परस्पर बराबर बाँटने के लिए मिलेगा। इन नियमो के अनुसार आधा या एक-तिहाई भाग दे देने के बाद बचा हुआ भाग भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की अनुसूची २ के भाग २ में निर्दिष्ट विशिष्ट संबंधियो में बाँट दिया जायगा (जैसे—पिता और माता, भाई और बहन—सहोदर भाई और बहन से भिन्न—पूर्वमृत भाई और बहनों के क्रमागत अवरोही वंशज और दादा तथा दादी)। इनमें, एक ही क्रम के संबंधियो में, पुरुष को स्त्री के भाग से दुगना मिलेगा। यदि ऐसे कोई संबंधी न हो तो अवशिष्ट भाग मृतक की विधवा या विधुर या मृत अवरोही वंशज की विधवा—यदि कोई हो तो—के मध्य उन्हे मिलनेवाले उक्त भाग के अनुपात से बाँट दिया जायगा। यदि मृत अपने पीछे विधवा या विधुर या अवरोही वंशज या उसकी विधवा नही छोडता, तो अनुसूची २ के भाग २ मे क्रमानुसार दिये गए सबसे नजदीकी रिश्तेदार उसकी संपत्ति आपस में बाँटने के हकदार होंगे।

ईसाई-पारिवारिक कानून

ईसाई वे लोग हैं जो ईसाई धर्म के प्रवर्तक ईसामसीह के धर्मावलम्बी है। मोटे तौर पर वे दो बडे वर्गो में विभक्त है—कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट। भारत के अधिकाश ईसाई भारतीय ईसाई है—अर्थात् वे व्यक्ति जो धर्म-परिवर्तन द्वारा ईसाई बन गए और उनके अनुवंशज।

विवाह

इस संबंध में कानूनी व्यवस्था १८७२ के ईसाई विवाह अधिनियम (क्रिश्चियन मैरिज एक्ट १८७२) में उपलब्ध है। एक वैध ईसाई विवाह के लिए इन बातो का होना जरूरी है—(१) अधिनियम में उल्लिखित व्यक्ति उसमें उल्लिखित ढंग से विवाह कर सकते हैं। (२) विवाह करनेवालों में से कोई भी व्यक्ति नपुसक, भ्रष्टबुद्धि या जड़बुद्धि नही होना चाहिए। (३) विवाह के समय दोनों में से किसी

का पति या पत्नी जीवित नही होनी चाहिए। (४) किसी पक्ष को निषिद्ध संबंध-क्रम के अंतर्गत नही आना चाहिए—जैसे—क्रमागत अग्रवंशज और अनुवंशज, भाई और बहन, चाचा-और भतीजी (या मामा और भाजी), चाची और भतीजा (या मामी और भाजा)। इसके अतिरिक्त पक्षों को पूर्व पति या पत्नी द्वारा उक्त प्रकार से संबंधित नही होना चाहिए। भारतीय ईसाइयों के बीच विवाह के प्रमाण-पत्रों के संबंध में विशेष व्यवस्था है। दो ईसाइयों में या एक ईसाई और दूसरे अन्य-धर्मावलम्बी व्यक्ति में उक्त रीति से न किया गया विवाह शून्य होता है। अत यदि कोई हिंदू या मुसलमान किसी ईसाई से हिंदू या मुस्लिम विधान के अनुसार विवाह करे तो वह विवाह शून्य होगा।

वैवाहिक वाद

इस संबंध में नियम १८६९ के भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम मे दिये गए है जो केवल ईसाइयो पर लागू होता है। किंतु १८७२ के विशेष विवाह विधेयक के अंतर्गत विवाह करनेवाले अन्य व्यक्तियो के संबंध में भी वे प्रयोज्य है। उदाहरण के लिए उक्त विधेयक के अंतर्गत यदि एक हिंदू दूसरे हिंदू से विवाह करे, तो वह विवाह-विच्छेद के लिए या नीचे उल्लिखित अन्य सहायता या मुक्ति के लिए उस पर मुकदमा चला सकता है।

विवाह-विघटन—पति जिला न्यायालय या उच्च न्यायालय में विवाह-विघटन के लिए इस आधार पर निवेदन कर सकता है कि उसकी पत्नी विवाह के बाद से जारकर्म की दोषी रही है। पत्नी भी अपने पति के विरुद्ध कानून में दिये गए कुछ आधारो पर ऐसा ही निवेदन कर सकती है। आधार ये है—धर्म-परिवर्तन और अन्य स्त्री के साथ विवाह, निषिद्ध संबंध-क्रम में स्त्री-गमन, द्वि-विवाह और जारकर्म बलात्कार, अप्राकृतिक व्यभिचार, जारकर्म और साथ मे निर्दयता, जारकर्म तथा समुचित कारण के बिना दो वर्ष या अधिक समय तक छोडे रखना।

तलाक (विवाह-विच्छेद) के लिए प्रार्थना-पत्र तभी दिया जा सकता है जबकि दोनो विवाहित पक्ष भारत के स्थायी निवासी हो, अर्थात् प्रार्थना-पत्र देने के समय उनका भारत में निश्चित निवास हो। कानून में पति का निवास ही पत्नी का निवास माना जाता है। अतः पति की भारत में स्थायी रूप से रहने की इच्छा होनी चाहिए। गवाही सुनने पर यदि न्यायालय को यह विश्वास हो कि उक्त आरोपो से कोई भी आरोप नही ठहरता, तो वह निवेदन अस्वीकार कर देगा। न्यायालय कुछ अन्य स्थितियों में भी निवेदन अस्वीकार कर देगा, अर्थात् उसे यदि यह मालूम हो कि निवेदक आरोपित आचरण में स्वयं एक साधन या प्रच्छन्न सहायक रहा है, अथवा उसने जारकर्म को बाद के परस्पर संसर्ग द्वारा क्षमा कर दिया है, अथवा दोनों पक्ष तलाक पाने के लिए

कुचक्र कर रहे हैं; अन्यथा, न्यायालय निवेदन स्वीकार कर लेगा और विवाह-विघटन की डिगरी दे देगा। समुचित आधार के होने पर और उपर्युक्त किसी बाधक स्थिति के न होने पर भी न्यायालय निवेदन स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं है—(१) यदि उसे यह ज्ञात हो कि निवेदन-कर्त्ता विवाह-काल में जारकर्म का दोषी रहा है; या (२) निवेदन-कर्त्ता तलाक के लिए निवेदन प्रस्तुत करने में अनुचित विलम्ब का दोषी है; या (३) यदि निवेदन-कर्त्ता दूसरे पक्ष के प्रति निर्दयतापूर्ण व्यवहार का दोषी रहा है; या (४) आरोपित जारकर्म से पूर्व निवेदन-कर्त्ता दूसरे पक्ष को छोड़ने या जान-बूझकर उसकी उपेक्षा करने का दोषी रहा है और बिना किसी समुचित कारण के वह कदाचार या जान-बूझकर की गई ऐसी उपेक्षा का दोषी रहा है जो उस जारकर्म में सहायक हुई है।

तलाक द्वारा विवाह भंग कराने के लिए दी गई याचिका में न्यायालय, तलाक के लिए आवश्यक आधार उपस्थित होने पर, और उत्तरदाता (प्रतिवादी) के कहने पर, तलाक के पक्ष में डिगरी दे सकता है। तलाक के लिए दी गई डिगरी प्रारंभ में अपूर्ण या यद्यात्मक (किसी शर्त के पूरे होने की अपेक्षा करने-वाली) होती है और 'डिगरी निसी' कहलाती है। डिगरी निसी के दिन से ६ महीने व्यतीत हो जाने पर डिगरी को पूर्ण या स्थायी रूप देने के लिए मामले की फिर सुनवाई होती है। इस दौरान में किसी तीसरे व्यक्ति को डिगरी को पूर्णता या स्थायित्व प्रदान करने के विरुद्ध कारण उपस्थित करने की—जैसे दोनों पक्षों का कुचक्र आदि दिखाने की—छूट होती है। ६ महीने व्यतीत हो जाने पर निवेदन-कर्त्ता को डिगरी को पूर्ण और स्थायी करवाने के लिए न्यायालय में फिर आवेदन करना चाहिए। यह डिगरी जिला या उच्च न्यायालय द्वारा दी जा सकती है। यदि डिगरी जिला न्यायालय द्वारा दी जाय तो उच्च न्यायालय द्वारा उसकी पुष्टि आवश्यक है।

विवाह की निरर्थकता—कोई भी पति या पत्नी जिला या उच्च न्यायालय में निवेदन द्वारा अपने विवाह को शून्य व निरर्थक घोषित किये जाने के लिए प्रार्थना कर सकती है। निम्नलिखित में किसी भी आधार पर ऐसी डिगरी दी जा सकती है—प्रतिवादी की विवाह के समय और निवेदन दाखिल करने के समय नपुंसकता, निषिद्ध संबंध-क्रम, किसी भी व्यक्ति का विवाह के समय पागलपन, और पूर्व विवाह की अवस्थिति। न्यायालय तभी डिगरी दे सकता है कि जब विवाह भारत में संपन्न हुआ हो और निवेदन दाखिल करते समय निवेदन-कर्त्ता भारत में रह रहा हो। जिला-न्यायालय की डिगरी उच्च न्यायालय द्वारा पुष्ट की जानी चाहिए, किंतु तलाक के मामले में दी गई डिगरी की भाँति यह डिगरी प्रारंभ में यद्यात्मक या डिगरी निसी नहीं होती। कुछ स्थितियों में, यदि कोई पक्ष उक्त विवाह-संबंध स्थापित करने के लिए समर्थ था तो डिगरी से

पूर्व उत्पन्न उसके बच्चों का डिगरी में निर्देश किया जायगा और वे जायज बच्चों की भाँति अपने पिता या माता की संपत्ति के उत्तराधिकारी होंगे। ऐसी स्थितियाँ ये हैं—(१) जहाँ विवाह इस आधार पर निरर्थक ठहराया जाय कि विवाह के समय पूर्व-पत्नी या पति जीवित था और उक्त विवाह दोनों व्यक्तियों ने सद्भावनापूर्वक और इस विश्वास के साथ किया था कि पूर्व-पति या पत्नी जीवित नहीं है। (२) जहाँ विवाह वृद्धि-भ्रष्ट होने के आधार पर निरर्थक ठहराया जाय।

न्यायिक वियोजन—पति या पत्नी, जारकर्म या निर्दयता अथवा बिना उचित कारण के दो वर्ष या अधिक समय तक छोड़ रखने के आधार पर न्यायिक वियोजन की डिगरी प्राप्त कर सकता है। ऐसी डिगरी जिला या उच्च न्यायालय द्वारा दी जा सकती है। तलाक (विवाह-विच्छेद) और न्यायिक वियोजन में अंतर यह है कि तलाक के बाद दोनों ही पक्ष और विवाह करने के लिए स्वतंत्र होते हैं, किंतु न्यायिक वियोजन में वैवाहिक संबंध कायम रहते हैं और पुनर्विवाह नहीं किया जा सकता। कोई भी पक्ष न्यायिक वियोजन की डिगरी रद्द कराने के लिए प्रार्थना-पत्र उपस्थित कर सकता है और कारण रूप में यह दिखा सकता है कि डिगरी उसकी अनुपस्थिति में दी गई थी और कथित 'छोड़ रखने' के पर्याप्त कारण मौजूद थे। न्यायिक वियोजन के लिए भारत में रहनेवाला व्यक्ति ही वाद प्रस्तुत कर सकता है।

दाम्पत्तिक अधिकारों की प्रतिष्ठापना—यदि प्रतिवादी (पत्नी या पति) अपने को वादी (पति या पत्नी) के सहवास से हटा लेता है, तो वादी अपने दाम्पत्तिक अधिकार की प्रतिस्थापना के लिए प्रतिवादी पर मुकदमा चला सकता है। इस मुकदमे में प्रतिवादी ऐसे आधार उपस्थित कर सकता है जो न्यायिक पृथक्करण या विवाह के शून्य घोषणा में साधक हों, किंतु वह इसके अतिरिक्त अन्य कोई आधार उपस्थित नहीं कर सकता।

जारकर्मी के विरुद्ध हर्जाना—पति द्वारा तलाक या न्यायिक वियोजन के लिए उपस्थित किये गए निवेदन में पति अपनी स्त्री के साथ व्यभिचार करनेवाले से खर्च और हर्जाना माँग सकता है। पति या पत्नी द्वारा उपस्थित ऐसे निवेदनों में पत्नी या पति के साथ व्यभिचार करनेवाला व्यक्ति, यदि मालूम हो तो, प्रतिवादी पक्ष में शामिल किया जाना चाहिए।

भृत्ति—न्यायालय पत्नी को खर्च और गुजारा—अर्थात मुकदमे के दौरान में और विवाह-विघटन या न्यायिक पृथक्करण की डिगरी के बाद स्थायी रूप में भी—खर्च और गुजारे की रकम (भृत्ति) दिला सकता है। वह पति द्वारा इस रकम के प्रति मास या प्रति सप्ताह के हिसाब से दिये जाने का आदेश दे सकता है।

पुनर्विवाह—विवाह-विघटन के लिए दी गई डिगरी के बाद दोनों ही पक्ष वैसे ही पुनर्विवाह कर सकते हैं जैसे वे किसी पक्ष की मृत्यु होने पर विवाह कर

सकते हैं। किंतु दूसरा विवाह विवाह-विघटन की डिगरी के ६ महीने बाद ही किया जा सकता है।

उत्तराधिकार

जिन नियमों की चर्चा नीचे की जायगी, वे भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम में दिये गए हैं और हिंदू, मुस्लिम, सिख, पारसी, बौद्ध और जैनो को छोड कर, निर्वसीयत मरनेवाले भारत के निवासी ईसाई और अन्य व्यक्तियो की संपत्ति के संबंध में उत्तराधिकार का नियमन करते हैं। अतः ये नियम भारत के निवासी (निश्चित वासी) यूरोपियन (भारत में आकर बस गए यूरोप के लोग), एंग्लो-इण्डियन, आर्मीनियन और यहूदियो पर लागू होंगे। ये हिंदू, बौद्ध, सिख और जैनो पर लागू नही होते, किंतु इनमें से ऐसे व्यक्तियों पर लाग होते हैं जो १८७२ के विशेष विवाह विधेयक के अंतर्गत विवाह करते हैं जैसा कि पहले कहा जा चुका है।

जब कोई व्यक्ति पीछे विधवा और क्रमागत अनुवंशज छोडकर मर जाता है तो उसकी संपत्ति का एक-तिहाई भाग विधवा को और दो-तिहाई भाग अनुवंशजों को मिलता है। 'क्रमागत वंशजो' का अर्थ है—बच्चे और बच्चों के अनुवंशज। यदि वे एक ही क्रम के हैं तो वे संपत्ति का भाग परस्पर बराबर बाँट लेंगे। यदि उनमें से कुछ मृत बच्चों के अनुवंशज हैं तो उन्हें वही भाग मिलेगा जो मृत बच्चे को मिलता। दूसरे शब्दो में वे अपना भाग प्रति-व्यक्ति ग्रहण नही करते, वरन् प्रति-शाखा ग्रहण करते हैं।

यदि मृतक ने पीछे विधवा छोडी है और क्रमागत अनुवंशज न छोडकर कुछ अन्य संबंधी—जो बान्धव या नजदीकी (सजातीय या सगोत्रीय) रिश्तेदार हों—छोडे हैं, तो संपत्ति का विभाजन इस प्रकार होगा—विधवा को आधा भाग मिलेगा और शेष आधा भाग बान्धवों को। बान्धव इस रूप के अनुसार दाय ग्रहण करेंगे—यदि मृतक का पिता जीवित है तो वह संपत्ति ग्रहण करेगा। उसके न होने पर ये व्यक्ति वह आधा भाग ग्रहण करेंगे—माता, भाई, बहन और भाई-बहनों के बच्चे। इनको बराबर हिस्सा मिलेगा—मृत भाई-बहनो के बच्चों को अपने माता-पिता का हिस्सा मिलेगा। यदि मृतक ने पीछे कोई जीवित भाई-बहन न छोडे हों तो उनके बच्चो को माता के साथ इसी प्रकार हिस्सा मिलेगा। यदि पीछे कोई जीवित भाई-बहन या उनके अनुवंशज न हों तो बान्धवों को मिलने-वाला आधा हिस्सा माता को मिल जायगा। यदि पीछे माता या पिता न हो, केवल भाई और बहन तथा उनके बच्चे हो, तो वे आपस में उक्त नियम के अनुसार संपत्ति का विभाजन कर लेंगे। यदि ये सब उत्तराधिकारी न हों तो संपत्ति बान्धवों (रुधिर या विवाह से संबंधित संबंधियों) में समीपतम संबंधी के पास चली जायगी। दादा या दादी (नाना या नानी) जो मृतक से ऊपर दूसरे क्रम (पीढ़ी) के हैं, मृतक से तीसरे या चौथे क्रम के चाचा या चाची (मामा-मामी या बुआ-फूफा)

से पहले संपत्ति ग्रहण करेंगे । रुधिर-संबंधियों की क्रमसहित तालिका भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की प्रथम अनुसूची में दी हुई है।

यदि मृतक ने पीछे विधवा छोड़ी है और कोई क्रमागत अनुवंशज या बान्धव नहीं छोड़े हैं, तो सारी संपत्ति विधवा को मिल जायगी। किन्तु यदि विधवा विवाह से पूर्व एक वैध संविदा द्वारा संपत्ति की उत्तराधिकारिणी होने से वंचित कर दी गई है, तो वह उक्त दो नियमों के अंतर्गत संपत्ति का अपना भाग या इस नियम के अंतर्गत पूरी संपत्ति ग्रहण नहीं कर सकेगी।

यदि कोई स्त्री अपने पीछे अन्य उत्तराधिकारियों सहित या रहित पति छोड़ कर मर जाय, तो पति को वही भाग मिलता है जो मृतक की संपत्ति का उत्तराधिकार प्राप्त करनेवाली स्त्री को मिलता है।

भारतीय ईसाइयों से भिन्न ईसाइयों—जैसे यूरोपीय ईसाइयों—के लिए एक विशेष नियम है। यदि मृतक अपने पीछे विधवा और बान्धव—किंतु क्रमागत अनुवंशज नहीं—छोड़ जाता है, और उसकी संपत्ति ५००० रुपये से अधिक की नहीं होती, तो सारी संपत्ति की उत्तराधिकारिणी उसकी विधवा होगी और बान्धवों को कुछ नहीं मिलेगा। यदि संपत्ति ५००० रुपये से अधिक की होगी, तो विधवा उसमें से ५००० रुपये की संपत्ति ग्रहण करेगी और उसके साथ शेष संपत्ति में से भी पूर्वोक्त नियम के अनुसार हिस्सा बंटाने का उसका अधिकार होगा। यदि मृतक ने पीछे कोई क्रमागत अनुवंशज भी छोड़ा है तो यह नियम लागू नहीं होता। यदि मृतक ने अपनी संपत्ति के संबंध में कोई वसीयत की हो तो भी यह नियम लागू नहीं होता।

अधिवास (निश्चित वास)

जिन नियमों की अब चर्चा की जायगी वे उस मृतक की संपत्ति के उत्तराधिकार के संबंध में लागू होते हैं जो हिंदू, मुस्लिम, बौद्ध, सिख या जैन न हो। ये अन्य धर्मावलंबियों के संबंध में (जैसे ईसाई या पारसी) लागू होते हैं। मृतक की अचल संपत्ति के संबंध में उत्तराधिकार का नियमन, मृतक के संबंध में, उसकी मृत्यु के समय के निवास-स्थान में प्रचलित कानून के अनुसार होगा। अतः यदि कोई अंग्रेज या फ्रांसीसी, जो स्थायी रूप से इंगलैण्ड या फ्रांस का निवासी है, भारत में अपना घर या जमीन छोड़कर मर जाय, तो उसके उत्तराधिकारियों का निश्चय उक्त भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम के द्वारा किया जायगा। किंतु उसकी चल संपत्ति—जैसे दिल्ली या बंबई के किसी बैंक में जमा उसका रुपया—के संबंध में उत्तराधिकारियों का निश्चय इंगलैण्ड या फ्रांस में प्रचलित कानून के अनुसार किया जायगा। अतः इन सब स्थितियों में व्यक्ति के अधिवास (स्थायी या निश्चित वास) का ज्ञान होना आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति का निवास-स्थान उसका मूल देश होता है। मूल देश से अभिप्राय उस देश

से है जहाँ उसके जन्म के समय उसके पिता का निवास-स्थान था । यदि उसका जन्म पिता की मृत्यु के बाद हुआ हो, तो यह देश वह होगा जहां मृत्यु के समय उसके पिता का अधिवास था। यदि वह नाजायज सन्तान है तो उसकी माता का अधिवास उसका मूल-निवास होगा । अत यदि उसकी माता या उसके पिता का निवास-स्थान इगलैण्ड है तो उसका मूल स्थान भी इगलैण्ड होगा, भले ही उसका जन्म भारत में या अन्यत्र हो। जबतक कि नया अधिवास न प्राप्त कर लिया जाय तब-तक मूल-निवास ही मान्य होता है। नया अधिवास तब प्राप्त होता है जब एक व्यक्ति अपने मूल-देश से भिन्न स्थान पर निश्चित वास ग्रहण कर लेता है। एक विदेशी जो—मान लीजिये डॉक्टर या व्यापारी के रूप में—भारत में आ कर बस जाता है और आजीवन यही रहना चाहता है, वह भारतीय-अधिवास प्राप्त कर लेता है । किंतु यदि वह यहाँ कई वर्षों के लिए आता है और लौटने का इरादा रखता है, तो उसे भारतीय-अधिवास प्राप्त नहीं होता। एक और तरीके से भारतीय-अधिवास प्राप्त किया जा सकता है । इस तरीके के अनुसार व्यक्ति को राज्य सरकार द्वारा इस कार्य के लिए नियक्त एक अधिकारी के पास अपने उक्त आशय का प्रज्ञापन-पत्र जमा करना होता है। नया अधिवास उस समय तक जारी अथवा मान्य रहता है जबतक कि पूर्व या और दूसरा अधिवास न ग्रहण कर लिया जाय। नाबा-लिग का अधिवास अपने पिता (जिससे उसने अपना अधिवास ग्रहण किया है) के अधिवास का अनुसरण करता है। स्त्री का अधिवास यदि अपने पति के निवास से भिन्न हो तो वह अपने पति का अधिवास ग्रहण कर लेती है और उसका अधिवास तबतक अपने पति के अधिवास के साथ-ही-साथ चलता है जबतक कि वे दोनों एक समर्थ न्यायालय द्वारा एक-दूसरे से पृथक् न हो जायं या उसका पति काले पानी या दूरवास का दंड न भोग रहा हो।

: १४ :

भूमि-कानून

भूमि सदैव एक अमूल्य सम्पत्ति रही है। कई कारणों से यह अन्य संपत्तियों से अधिक मूल्यवान और स्पृहणीय है। यह मनुष्य को उसके लिए लाभदायक अन्य पदार्थों के साथ उसकी प्रधान आवश्यकता—भोजन—प्रदान करती है। यह सम्पत्ति न नष्ट हो सकती है और न खो सकती है और न चुराई जा सकती है। समय के साथ इसका मूल्य बढ़ता जाता है, क्योंकि जहाँ यह विस्तार में पूर्ववत् रहती है, वहाँ बढ़ती हुई जन-संख्या को इससे प्राप्त होनेवाले लाभ में हिस्सा बँटाना होता है। दो वर्गों के व्यक्ति इसके लाभ में हिस्सा बँटाते हैं, अर्थात् भू-स्वामी और काश्तकार। कानूनानुसार भूमि उन लोगों के हाथ में इकट्ठी होने लग जाती है जो उसे अपनी पूर्ण करने की शक्ति, धन या प्रभाव से प्राप्त कर सकते हैं। वे उसके स्वामी होते हैं। चूंकि उनके पास इतनी अधिक जमीन होती है कि वे उसे खुद जोत-बो नहीं सकते, अतः एक वर्ग ऐसे लोगों का होता है जो उनकी जमीन पर मेहनत करते हैं। स्वामी उनसे उनकी आय का एक हिस्सा, जिसे लगान (या किराया) कहते हैं, धन या धान्य (जिन्स) के रूप में लेता है। हम प्रथानुसार स्वामी को भूमिधर या भूस्वामी और जोतनेवाले को रैयत या काश्तकार (आसामी) कहते हैं। इन दो वर्गों के अतिरिक्त एक तीसरा हिस्सेदार भी होता है—अर्थात् सरकार, जिसका हिस्सा जमीन की मालगुजारी या भू-राजस्व कहलाता है। यह हिस्सा स्वामी द्वारा काश्तकार से वसूल किये गए लगान में से अदा किया जाता है। सरकार हिंदू, मुस्लिम और ब्रिटिश शासन-कालों में भी यह हिस्सा लिया करती थी और अब भी लेती है। भू-राजस्व और अन्य राजस्व को यह समस्त प्रजा के लिए या समस्त प्रजा की ओर से खर्च करती है। अतः हम यह कह सकते हैं कि इस भू-राजस्व का हिस्सा समस्त प्रजा या जनता को प्राप्त होता है। भूमि-कानून का उद्देश्य सरकार, स्वामी और काश्तकारों के भूमि संबंधी अधिकारों का निरूपण करना है।

सामान्य परिभाषाएं

भू-राजस्व राज्य सरकारों के राजस्व का महत्त्वपूर्ण अंग है। भूतकाल में दो प्रथाओं द्वारा भू-राजस्व इकट्ठा किया जाता था—एक जमींदारी प्रथा और दूसरी रैयतवाड़ी प्रथा द्वारा। पहली प्रथा के अंतर्गत भू-संपत्ति की मालगुजारी निश्चित थी और भूस्वामी, जो जमींदार कहलाते थे, उसे चुकाते थे,

और स्वयं उसके अलग-अलग हिस्सों को जोतने-बोनेवाले अपने काश्तकारों से लगान के रूप में वसूल करते थे। इस प्रकार की भू-संपत्तियों की दो श्रेणियाँ थी—स्थायी भू-प्रबंध (इस्तमरारी बन्दोबस्त) की और अस्थायी भू-प्रबंध (आरजी बन्दोबस्त) की भू-संपत्ति। पहली श्रेणी की संपत्ति का राजस्व बहुत पहले और सदैव के लिए निश्चित कर दिया गया था। स्थायी भू-प्रबंध (मुस्तकिल बंदोबस्त) बंगाल मे १७८९ से १८९३ के मध्य, और मद्रास के कुछ हिस्सों में १८०२ में किया गया था। इसके अंतर्गत भू-स्वामी को सरकार से एक स्वत्व-पत्र, जो 'सनदे-मिल्कियते-इस्तमरार' (जिसका अर्थ होता है—स्थायी आधिपत्य-पत्र) कहलाता था, मिलता था। भू-स्वामी इसके बदले में सरकार को 'कबूलियत' (स्वीकृति-पत्र) देता था। अस्थायी भू-प्रबध वाली भू-संपत्तियो में सरकार को दिया जानेवाला भू-राजस्व अस्थायी तौर पर निश्चित किया जाता था और सरकार उसे बढा सकती थी। मध्य प्रदेश (बरार को छोड़कर), उत्तर प्रदेश और पंजाब तथा बंगाल के कुछ भागो में अधिकाश भूमि ऐसी ही भू-संपत्तियो के रूप मे थी। यह सर्वविदित है कि अब स्थायी और अस्थायी भू-प्रबंध वाली, दोनों ही, भू-संपत्तियो को अनेक राज्यों (बिहार, बंबई, हैदराबाद, मध्यप्रदेश, मद्रास और उत्तर प्रदेश) मे समाप्त कर दिया गया है। इन संपत्तियो में जमीदारियो के अलावा जागीरे, मुआफियाँ, और इसी प्रकार की दी गई अन्य जमीनें भी है। इन कानूनों के अंतर्गत राज्य-सरकारो ने भू-संपत्तियो का उनके स्वामियो को मुआवज़ा देकर अधिग्रहण कर लिया है और उनके काश्तकार रैयतवाडी प्रथा की भाति उनके पूरे स्वामी और सरकार के काश्तकार हो गए है। पश्चिमी बंगाल में पुरानी प्रथा ही चल रही है किंतु परिवर्तन का विचार किया जा रहा है। पंजाब के कुछ भागों मे जमीन जोतनेवाले किसानो के ग्राम्य समूहो को संयुक्त रूप से स्वामी माना जाता है और वे सारे गाँव की इकट्ठी जमीन पर लगाई गई मालगुजारी देने के जिम्मेदार होते है।

भू-राजस्व एकत्र करने के तरीके

रैयतवाडी प्रथा के अनुसार, सरकार हर खेत के स्वामी या अधिकारी से सीधे मालगुजारी वसूल करती है। इकट्ठी मालगुजारी भरनेवाली कोई जायदादें (भू-संपत्तियाँ) नही है बल्कि हर गाँव की जमीन को खेतो में विभाजित किया हुआ है और हर खेत की मालगुजारी निश्चित है। खेत का मालिक 'रैयत' कहलाता है जिसका अरबी में अर्थ होता है—प्रजा या संरक्षित व्यक्ति। वह अपने खेत की मालगुजारी को बिना किसी मध्यवर्ती के सीधे सरकार को देता है। सरकार कुछ वर्षो के बाद—जैसे मान लीजिये ३० या ४० वर्ष बाद—जमीन की मालगुजारी फिर से निश्चित कर सकती है। भूतकाल में वह

अक्सर अनाज की कीमत बढ़ाने या उसके द्वारा दी गई सिंचाई की सुविधाओ द्वारा जमीन की उपज के बढने आदि आधारों पर मालगुजारी की रकम बढा दिया करती थी। हाल के कुछ वर्षो मे सरकार ने अपने इस अधिकार का प्रयोग नही किया है।

सरकार को दी जानेवाली मालगुजारी में मुख्य रूप से भू-स्वामी या रैयत की भूमि के संबंध में निश्चित की गई लगान की रकम होती है। इसमें स्थानीय आवश्यकताओ, जैसे—सडक, रेलवे, और शिक्षा के लिए लगाये गए कर और पानी इस्तेमाल करने की कीमत भी शामिल होती है। यह राशि हर राजस्व-वर्ष (माली साल) के लिए निश्चित की जाती है और उस वर्ष की समाप्ति से पूर्व देय होती है।

सरकार यदि चाहे तो रैयतवाडी स्वामी की मालगुजारी माफ कर सकती है और सूखा, बाढ़ या अन्य कारणों मे फसल के खराब होने की स्थिति में प्रायः ऐसा करती भी है। किंतु ऐसा करने के लिए सरकार को बाध्य करने के संबंध में कोई न्यायालय अपने यहाँ मुकदमा नही ले सकता।

यदि रैयतवाडी स्वामी मालगुजारी भरने के लिए निश्चित समय में अपनी मालगुजारी नही भरता, तो यह मालगुजारी "बाकी" (अवशेष) हो जाती है और सरकार उसे वसूल करने के लिए रैयत की जमीन या चल संपत्ति की कुर्की कर सकती है और उसे बेच सकती है अथवा स्वामी को गिरफ्तार कर सकती है। मालगुजारी वसूल करने के लिए संपत्ति की कुर्की या बिक्री का ढंग कानून द्वारा नियमित है। यदि कोई व्यक्ति अनुचित बिक्री से संतप्त हो तो वह व्यवहार-न्यायालय मे उसे रद्द करने के लिए दावा कर सकता है। किंतु उसे ऐसा बिक्री के ६ महीने के भीतर करना चाहिए। जमीन की मालगुजारी जमीन पर लिये गए सब ऋणों से पूर्व चुकाई जाती है। अतः जब सरकार मालगुजारी की बाकी वसूल करने के लिए जमीन बेचती है तब वह उसे निर्बन्ध (सब ऋणदारो से मुक्त) रूप में बेचती है और उसका खरीदार उसे निर्बन्ध रूप में ही प्राप्त करता है। उस व्यक्ति को, जिसके पास वह जमीन रहन रखी हुई हो, उस जमीन के विक्रय-मूल्य में से मालगुजारी के चुकता होने के बाद बची हुई रकम के विरुद्ध केवल कार्यवाही करने का ही अधिकार है।

रैयतवाड़ी जमीनो के संबंध में मालिको को अपनी जमीन मे से खनिज पदार्थ निकालने का अधिकार है, किंतु उन्हे इसके लिए जमीन की सतह को जोतने के लिए दी जानेवाली मालगुजारी के अलावा अलग से शुल्क देना चाहिए। यह नियम सभी मूल्यवान खनिज पदार्थो—जैसे सोना या कोयला—के संबंध में लागू है। ये (खनिज पदार्थ) सरकार की संपत्ति समझे जाते है। किंतु यदि स्वामी

रैयतवाड़ी क्षेत्रों में मालिक के अधिकार

अपनी जमीन से मिट्टी या पत्थर-पटियाँ किसी सीमित प्रयोजन के लिए—जैसे अपने खेत में इस्तेमाल करने के लिए, न कि व्यापार के लिए—निकालता है तो यह नियम लागू नहीं होता।

जमीन में उगे हुए पेड़ों पर अधिकार जमीन के स्वामी का होता है, न कि सरकार का। सड़क के किनारे के पेड़ों के संबंध में सरकार को उनकी निरन्तर स्थिति का (बने रहने का) और उनके संरक्षण का अधिकार प्राप्त होता है।

मालाबार को छोड़कर अन्य रैयतवाड़ी क्षेत्रों में समस्त बंजर और अनधिकृत भूमि की मालिक सरकार होती है। वह समुचित शर्तों पर किसी भी प्रार्थी को जमीन दे सकती है। कुछ जमीन गाँववालों के सामूहिक उपयोग के लिए सुरक्षित रखी जाती है, जैसे, तालाब, गलियाँ, कूल या नाले-नालियाँ, दोग (जहाँ अनाज को गाह कर भूसा या छिलके से अलग किया जाता है) की जगह श्मशान-घाट या पशुओं के बाड़े। भू-स्वामित्व की जायदाद में, गाँववालों के सामूहिक उपयोग के लिए सुरक्षित भूमि को छोड़कर अपनी सीमा के अन्दर की समस्त बंजर भूमि का स्वामित्व भू-स्वामी को ही प्राप्त होता है। ऐसी भूमि में, प्रथा के अनुसार रास्ता आदि बनाने, या उसमें से लाग जलाने के लिए ईंधन काटने, या गाड़ी-बाड़ी के औजारों के लिए लकड़ी काटने का अधिकार हो सकता है।

रैयतवाड़ी क्षेत्र में रैयत अपनी जमीन का पूर्ण स्वामी होता है। किन्तु हो सकता है वह खुद भाड़ पर मजदूर लगा कर खेती करे या अपनी जमीन किसी किरायेदार (आसामी) को दे दे। इस प्रकार के किरायेदार का आमतौर पर कोई स्थायी काश्तकारी का, और लटटे के समाप्त होने के बाद उस जमीन पर रहने का, अधिकार नहीं होता। बंगाल में आसामी को 'लगैदार' कहते हैं और इस वर्ग में बहुतेरे लोग हैं।

वे तमाम जमीनें, नदियाँ, नाले और झीलें जो किसी निजी (प्रायवेट) स्वामी की नहीं होतीं, सरकार की होती हैं। कुछ विशिष्ट सड़कें—जैसे फौजी सड़कें और मुख्य सड़कें—सरकार की होती हैं। सड़कों तथा गलियों पर स्थानीय अधिकारियों, जैसे, नगरपालिकाओं और जिला बोर्डों का अधिकार होता है। जहाजरानी के योग्य नदी का मार्ग सरकार का होता है। उसी प्रकार उसका पानी और उसके मछली घाट भी सरकार के ही होते हैं। तट से तीन मील की सीमा तक का समुद्र-प्रदेश[1] और इसी प्रकार गहरे और उथले जल-चिह्नों के बीच की

जमीन, नदी, नाले आदि की मिल्कियत

---

१. यह सीमा सामान्यतः मान्य है। पर कई देश इसे नहीं मानते हैं। सोवियत रूस तथा अन्य पूर्वी यूरोपीय देश तट से १२ मील तक का समुद्र-प्रदेश

जमीन सरकार के अधीन होती है। किंतु इस प्रकार की सपत्तियों मे सरकार के अनुदान द्वारा कोई प्रायवेट (निजी) व्यक्ति किसी प्रकार का अधिकार प्राप्त कर सकता है। यदि वह उस पर, सरकार के अधिकार के प्रतिकूल ६० वर्ष तक अपनी भुक्ति सिद्ध कर सके, तो भी उसे अधिकार मिल सकता है। यदि कोई व्यक्ति सरकार की किसी उक्त सपत्ति का सरकार द्वारा अधिकार या आज्ञा प्राप्त किये बिना, उपभोग करता है, या उसे आक्रात करता है, तो सरकार उसे दंड दे सकती है और उसके राजस्व-अधिकारी (माल-अफसर) उसके विरुद्ध सक्षिप्त कार्यवाही कर उसे वहाँ से निकाल सकते है। यदि वह जमीन पर अपने स्वामित्व का दावा करता है तो वह व्यवहार न्यायालय मे जा सकता है किंतु उसे जमीन पर अपना स्वत्वाधिकार सिद्ध करना होगा।

अपना क्षेत्रीय प्रदेश मानते हैं जबकि कुछ दक्षिणी अमरीकी देशों ने तट से १०० मील तक के समद्र-प्रदेश पर दावा किया है।

: १५ :

सम्पदा-शुल्क

केंद्रीय सरकार पिछले कुछ सालों से, विशेषकर गत महायुद्ध के बाद से, (जिसमें अनेक व्यक्ति विशाल पूंजी के स्वामी बन गए) मृत व्यक्तियों द्वारा छोड़ी गई संपत्ति पर शुल्क लगाने की आवश्यकता पर विचार कर रही थी। संविधान पास करने के बाद इस सवाल पर विचार करना और भी अधिक आवश्यक हो गया है क्योंकि संविधान में यह निर्देश है कि राज्य पूंजी कुछ एक व्यक्तियों के पास एकत्रित होने को रोके। इसके अतिरिक्त जनता की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए पंचवर्षीय योजना को क्रियान्वित करने में अतिरिक्त साधनों की भी जरूरत थी। अतः संसद् ने एक कानून पास किया जिसका नाम सम्पदा-शुल्क अधिनियम, १९५३ (इस्टेट ड्यूटी एक्ट, १९५३) है। यह अधिनियम १५ अक्तूबर १९५३ से लागू हुआ। इसकी कुछ प्रमुख बातें निम्न हैं।

परिभाषा, आवश्यकता तथा उद्देश्य

१५ अक्तूबर १९५३ के बाद मरनेवाले व्यक्ति द्वारा छोड़ी गई तमाम संपत्ति पर निश्चित दरों के अनुसार सम्पदा-शुल्क (मृत्यु कर) लगेगा। किंतु यह संपत्ति कुछ निश्चित सीमाओं से अधिक होनी चाहिए। यदि मृत व्यक्ति मिताक्षरा, मद्दमक्कथयम या अलियसंतान विधि द्वारा शासित संयुक्त हिंदू परिवार का सदस्य है, तो परिवार की संपत्ति में से उस व्यक्ति के हिस्से में आनेवाली संपत्ति का मूल्य ५० हजार रुपये से अधिक होना चाहिए। मिताक्षरा कानून पश्चिमी बंगाल के अतिरिक्त अन्य समस्त राज्यों में, मद्दमक्कथयम विधि मद्रास में मालाबार जिला तथा त्रावणकोर-कोचीन में, और अलियसंतान विधि मद्रास के दक्षिणी कन्नड़ जिला व बंबई के कुछ भागों में प्रचलित है। यदि मृत व्यक्ति उक्त विधियों से शासित किसी एक परिवार का सदस्य नहीं था, तो पारिवारिक संपत्ति में उसके भाग का मूल्य एक लाख रुपये से अधिक होना चाहिए। उदाहरणतः, वह किसी ऐसे हिंदू परिवार का सदस्य हो सकता है जो दायभाग विधि से शासित हो—जिसका प्रचलन पश्चिमी बंगाल में है या वह किसी परिवार का संयुक्त सदस्य हो, किंतु अपनी मृत्यु से पूर्व वह मिताक्षरा विधि द्वारा शासित हिंदू परिवार में विभक्त हो गया हो, अथवा ऐसे किसी परिवार में उसकी निजी संपत्ति हो, जिससे अन्य सदस्यों का कोई सरोकार न हो या वह हिंदू न होकर मुसलमान, ईसाई या पारसी हो।

सम्पदा-शुल्क का निर्धारण

मिताक्षरा, मद्दमक्कथयम या अलियसंतान विधि द्वारा शासित हिंदू परिवार की संयुक्त संपत्ति में एक व्यक्ति की निजी संपत्ति पर संपदा-शुल्क इस प्रकार लगेगा—

क्रमाक	संपत्ति-मूल्य	प्रतिशत शुल्क
१.	प्रथम ५० हजार रुपये की संपत्ति पर	कुछ नही
२.	उसके आगे ५० ,,	५ प्रतिशत
३.	,, ५० ,, ...	७½ ,,
४.	,, ५० ,, ...	१० ,,
५.	,, १ लाख	१२½ ,,
६.	,, २ ,, ...	१५ ,,
७.	,, ५ ,, ...	२० ,,
८.	,, १० ,, ...	२५ ,,
९.	,, १० ,, ...	३० ,,
१०.	,, २० ,, ...	३५ ,,
११.	संपत्ति की मूल कीमत के शेष पर	४० ,,

एक व्यक्ति की ऐसी संपत्ति पर, जिसका उक्त परिवार की सपत्ति से कोई सरोकार नही, सम्पदा-शुल्क की दरे ये होगी—

१. प्रथम १ लाख रुपये की संपत्ति पर कुछ नही
२. उसके आगे के ५० हजार रुपये ७½%

उसके बाद दरों में वृद्धि ऊपर की तालिका में नं० (४) से (१०) तक के अनुसार होगी।

इन उत्तरोत्तर बढ़ती हुई दरो का परिणाम निम्न उदाहरण से आँका जा सकता है। यदि मृत व्यक्ति की संपत्ति संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्ति में सम्मिलित है और उसका मूल्य १ लाख रुपया है, तो उस पर २५०० रुपया सम्पदा-शुल्क होगा। यदि संपत्ति इस प्रकार की नही है तो उस पर सम्पदा-शुल्क नही लगेगा, क्योंकि उसका मूल्य १ लाख रुपये से अधिक नही है। यदि संपत्ति का मूल्य १॥ लाख रुपया है तो पहली स्थिति में सम्पदा-शुल्क ६२५० रुपया तथा दूसरी स्थिति मे ३७५५ रुपया होगा। यदि संपत्ति का मूल्य ३ लाख रुपया है तो पहली स्थिति में सम्पदा-शुल्क २३,७५० रुपया व दूसरी स्थिति मे २१,२५० रुपया होगा।

यदि मृत व्यक्ति हिंदू था और वह संयुक्त पारिवारिक संपत्ति में अपना भाग तथा अपनी निजी संपत्ति भी छोड गया है, तो उसकी संपत्ति पर कितना सम्पदा-शुल्क लगेगा, उसे इस प्रकार निकाला जा सकता है—यदि संयुक्त परिवार की

संपत्ति में उसके हिस्से की संपत्ति का मूल्य १ लाख रुपया है तथा अन्य निजी संपत्ति का मूल्य २ लाख रुपया है, तो कुल संपत्ति का मूल्य ३ लाख रुपया होगा। यदि यह सारी संपत्ति पहले ही प्रकार की हो तो इस पर सम्पदा-शुल्क २३,७५० रुपया होगा। किंतु वास्तव में इसमें उसकी संयुक्त पारिवारिक संपत्ति केवल एक-तिहाई

हिंदु संयुक्त परिवार के मृत सदस्य की सम्पत्ति पर लगनेवाला शुल्क

है, अत सम्पदा-शुल्क उसी अनुपात से ७,९१६ रुपये १० आने ८ पाई होगा। इसी प्रकार यदि उसकी सारी संपत्ति दूसरे प्रकार की (निजी संपत्ति) हो तो उस पर २१,२५० रुपया सम्पदा-शुल्क होगा। किंतु चूंकि वास्तव में इस प्रकार की संपत्ति सारी संपत्ति का केवल दो-तिहाई भाग है, अत शुल्क भी उसी अनुपात से १४,१६६ रु० १० आ० ८ पा० होगा। दोनों रकमों, अर्थात् ७,९१६ रु० १० आ० ८ पा० तथा १४,१६६ रु० १० आ० ८ पा०, का जोड़ २२,०८३ रुपये ५ आने ४ पाई है, जो कि कुल संपत्ति पर दिया जानेवाला सम्पदा-शुल्क होगा।

सम्पदा-शुल्क सभी प्रकार की चल अचल-संपत्ति, नकदी, कम्पनियों में हिस्से, ऋण तथा अन्य व्यवसायों में लगी पूंजी पर लगेगा। किंतु कुछ प्रकार की संपत्ति को इस शुल्क से मुक्त किया गया है। जैसे ढाई हजार तक के मूल्य का घरेलू सामान, ऐसी पुस्तकें जो वकीलों के लिए नहीं हैं तथा पहनने के वस्त्र। सम्पदा-शुल्क उस कृषि-भूमि पर भी लगेगा जो बंबई, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, पंजाब, उत्तरप्रदेश, हैदराबाद, मध्यभारत, राजस्थान, सौराष्ट्र तथा समस्त 'ग' श्रेणी के राज्यों—अजमेर, दिल्ली, व अन्य राज्य जिनका पहले हिस्से के अनुसार से उल्लेख है—में स्थित होगी। इन राज्यों में विधान सभाओं ने केन्द्रीय सरकार को इस प्रकार का कानून बनाने के लिए संवैधानिक प्रावधान करने संबंधी प्रस्ताव पास कर दिये हैं। संविधान के अनुसार कृषि-भूमि पर लगा सम्पदा-शुल्क राज्यों के लिए सुरक्षित है तथा संसद इस संबंध में तभी कानून बना सकती है जब इस प्रकार के प्रस्ताव पास हो गए हों। अगर अन्य राज्यों में भी ऐसे ही प्रस्ताव पास हो जायें तो उनके नाम केन्द्रीय सरकार की एक विज्ञप्ति द्वारा शामिल कर लिया जायेगा। यदि संपत्ति का पूरा भाग या कुछ भाग कृषि-भूमि हो और उसकी कुल कीमत २ लाख रुपये से अधिक न बैठती हो, तो सम्पदा-शुल्क में कुछ छूट दी गई है। यदि संपत्ति का पूरा भाग कृषि-भूमि ही है तो उस पर सम्पदा-शुल्क में से एक-चौथाई छूट दी गई है। किंतु यदि संपत्ति का केवल कुछ भाग ही कृषि-भूमि है तो छूट इस प्रकार आंकी जाती है—पहले समस्त संपत्ति के मूल्य पर कृषि-भूमि के मूल्य का अनुपात निकाल लिया जाय और फिर वह राशि निकाली जाय जिसका अनुपात संपत्ति पर दिये जानेवाले कुल सम्पदा-शुल्क पर भी उपर्युक्त ही हो। इस राशि में से एक-चौथाई की छूट दी गई है। इस प्रकार यदि किसी हिंदू या मुसलमान

की कुल संपत्ति का मूल्य ३ लाख रुपये है, तो उपर ऊपर लिखे अनुसार सम्पदा-शुल्क २१,२५० रुपया होगा। यदि सारी संपत्ति कृषि-भूमि ही है तो इस राशि मे से एक-चौथाई राशि की अर्थात् ५,३१२ रु० ८ आने की छूट दी जायगी। यदि इस संपत्ति मे कृषि-भूमि का मूल्य २ लाख रुपये है तो कुल सम्पदा-शुल्क (२१,२५०रु०) का दो-तिहाई, १४,१६६ रु० १० आने ८ पाई होगा। इस राशि के एक-चौथाई भाग, अर्थात् ३,५४१ रु० १० आने ८ पाई, की छूट दी जायगी।

हस्तांतरित होनेवाली सम्पत्ति पर शुल्क

सम्पदा शुल्क केवल किसी व्यक्ति के मरने पर हस्तांतरित होनेवाली उसकी संपत्ति पर ही लग सकता है। इसका हस्तांतरण तब होगा जब वह इसका पूरा स्वामी हो तथा उसे बेच सकता हो। अत: अगर संपत्ति पर मृतक का जीवन-भर अधिकार रहा हो और उसके बाद दूसरे ने उस संपत्ति पर अधिकार किया हो, तो ऐसी हालत मे भी सम्पदा-शुल्क देना होगा। यदि वह किसी संयुक्त-हिंदू परिवार का सदस्य हो तथा उसकी मृत्यु पर परिवार के अन्य सदस्य उसकी संपत्ति को निगरानी रूप मे ले ले, तो उसकी मृत्यु के बाद उसकी संपत्ति का उन सदस्यों के पास हस्तांतरण हो जायगा। तथापि ऐसा तभी होगा जब मृतक की आयु मरने के समय १८ वर्ष की हो चुकी होगी। यदि उसकी आयु १८ वर्ष की पूरी नहीं हुई है, तो सम्पदा-शुल्क नहीं लगेगा, बशर्ते कि उसका पिता, बाबा, या पितामह अपनी मृत्यु के समय संयुक्त परिवार का सदस्य रहा हो। अन्यथा सम्पदा-शुल्क देना होगा।

संभव है कि सम्पदा-शुल्क से बचने के लिए संपत्ति के मालिक अपने जीवन-काल मे अपनी संपत्ति का कुछ अंश प्रतिग्रह स्वरूप दे दें ताकि वह संपत्ति उनकी मृत्यु के बाद हस्तांतरित न की जा सके। इस संभावना को रोकने के लिए यह नियम बनाया गया है कि यदि कोई प्रतिग्रह या दान सद्भावना से या दाता की मृत्यु के दो वर्ष या अधिक समय पूर्व नहीं किया गया है तो उसे दाता की मृत्यु के बाद हस्तांतरित संपत्ति मे सम्मिलित समझा जायगा। यदि प्रतिग्रह किसी सार्वजनिक धर्मार्थ कार्य के लिए है तो समय की अवधि दो वर्ष की अपेक्षा ६ महीने होगी। ६ महीने की इस अवधि में २५०० रुपये तक के इस प्रकार के प्रतिग्रह के दिये जाने पर छूट है। दाता की मृत्यु के दो वर्ष पहले तक १५०० रुपये तक के अन्य प्रतिग्रहों पर भी छूट है। यदि प्रतिग्रह मृतक ने किसी विवाह के लिए किया है अथवा प्रतिग्रह मृतक के साधारण खर्च के भाग के रूप में किया गया है तो उस पर सम्पदा-शुल्क नहीं लगेगा। किंतु ऐसे उपहार का मूल्य ५ हजार रुपये से अधिक नहीं होना चाहिए। किसी रिश्तेदार लड़की की शादी के लिए तथा निर्भर रहनेवाले व्यक्ति के लिए भी ५ हजार तक की राशि माता-पिता अथवा अभिभावक हस्तांतरित कर सकता है। यह राशि सम्पदा-शुल्क से मुक्त होगी। अत: यदि कोई उपहार या संपत्ति का हस्तांतरण ५ हजार रुपये से अधिक

हो, जैसे—कोई व्यक्ति अपनी लड़की के विवाह में अपने दामाद को १० हजार रुपये दे दे, तो यह संपत्ति उसकी मृत्यु के बाद उसकी हस्तांतरित न होनेवाली संपत्ति मे शामिल समझी जायगी, बशर्ते कि यह राशि उसकी मृत्यु से दो वर्ष पूर्व के समय के भीतर दी गई हो। किंतु यदि संपत्ति दो वर्ष की अवधि से पहले दी गई हो तो वह हस्तांतरित नही समझी जायगी। मृतक द्वारा अपनी मृत्यु से दो वर्ष से पहले भी दिया गया प्रतिग्रह तभी सम्पदा-शुल्क से बच सकेगा कि जब वह पूर्ण रूप मे दे दिया गया होगा और उसने मृतक का कोई सरोकार न रहा होगा। प्रतिग्रह मृतक की किसी बीमे की पॉलिसी के रूप में भी हो सकता है जिस पर वह प्रीमियम देता रहा हो व जिसे उसने किसी अन्य के लाभ के लिए बना रखाये हो। ऐसी पॉलिसी को उसकी संपत्ति का भाग समझा जायगा और उस पर सम्पदा-शुल्क लगेगा। यह तब भी होगा जब प्रीमियम मृतक द्वारा न दिये जाकर उस संपत्ति में से दिये गए हों जो उसने इस उद्देश्य के लिए रखी हो। किंतु कुछ पॉलिसियाँ इससे मुक्त है तथा उन्हे मृतक की संपत्ति नहीं माना जायगा और उन पर शुल्क नहीं देना होगा। उदाहरणतः मृतक के जीवन की ५ हजार रुपये तक की बीमा पॉलिसी, माता-पिता या अभिभावक द्वारा किसी रिश्तेदार लडकी की शादी के लिए या निर्भर व्यक्ति के लिए बीमा पॉलिसी के रूप मे निकाली गई ५ हजार रुपये तक की रकम, ५० हजार रुपये तक का सम्पदा-शुल्क चुकाने के लिए मृतक द्वारा जारी की गई बीमा पॉलिसियाँ। यदि कोई व्यक्ति किसी ऐसी कम्पनी को संपत्ति हस्तांतरित करता है जिसमें केवल पाँच या कम व्यक्ति अधिकांश प्रचलित अंश (शेयर) पूंजी के मालिक हो तथा उसकी मृत्यु से तीन वर्ष पूर्व तक कम्पनी मे लाभ लेते रहे हों, तो कम्पनी की पूंजी उस अनुपात मे उस व्यक्ति की संपत्ति समझी जायगी जो उसे प्राप्त लाभों व उस समय में हुई कम्पनी की आय में बैठता हो। सम्पदा-शुल्क उसी पर लगेगा।

अब तक दिये गए उदाहरण ऐसी संपत्ति के बारे में हैं जो सम्पदा-शुल्क के लिए मृतक की संपत्ति समझी जायगी। अब कुछ ऐसी संपत्ति के उदाहरण दिये जायंगे जो ऐसी नहीं समझी जायगी। मृतक व्यक्ति द्वारा किसी दूसरे के लाभ के लिए ट्रस्टी के रूप में रखी गई संपत्ति निम्न दो अवस्थाओं में उसकी संपत्ति नहीं मानी जायगी—पहली यदि वह किसी तीसरे व्यक्ति से हस्तांतरित हुई संपत्ति का ट्रस्टी बना हो। दूसरी, यदि उसने स्वयं को ट्रस्टी रूप में संपत्ति हस्तांतरित की हो तथा मृत्यु से दो वर्ष पूर्व उस व्यक्ति ने, जिसके लाभ के लिए वह ट्रस्टी बना था, संपत्ति पर समुचित अधिकार कर लिया हो व उसे उसका लाभ प्राप्त होता रहा हो, तथा मृतक को अपनी मृत्यु तक उस संपत्ति से कोई लाभ प्राप्त न हुआ हो। यदि १५ अक्तूबर १९५३ से पूर्व पति या पत्नी ने संपत्ति की ऐसी व्यवस्था

मृतक की न मानी जानेवाली संपत्ति

की हो कि उनमें से एक या दोनों संपत्ति की आय के अधिकारी हों किंतु स्वयं संपत्ति के न हों, तो उनमें से एक की मृत्यु के बाद सम्पदा-शुल्क नहीं लग सकता। सम्पदा-शुल्क दोनों की मृत्यु के बाद ही लगेगा। यदि एक की मृत्यु पर सम्पदा-शुल्क चुका दिया गया है, तो दूसरे की मृत्यु पर वह तबतक नहीं लग सकता जबतक वह दूसरा व्यक्ति (पुरुष या स्त्री) अपनी मृत्यु के समय या उसके पूर्व किसी समय उस प्राप्त संपत्ति के हस्तांतरण का अधिकारी न रहा हो।

यदि किसी परिवार में मृत्यु जल्दी-जल्दी हो तो, सम्पदा-शुल्क बार-बार देना पड़ेगा और इससे कष्ट होगा। अतः इस प्रकार के कष्ट को रोकने के लिए कुछ व्यवस्था की गई है। पहली, यदि एक व्यक्ति की मृत्यु के बाद उसकी संपत्ति पर सम्पदा-शुल्क चुका दिया गया है तो उस सम्पत्ति पर उस हालत में फिर सम्पदा-शुल्क नहीं लगेगा जबकि संपत्ति का उत्तराधिकारी व्यक्ति पहले व्यक्ति की मृत्यु के तीन महीने के भीतर ही मर जाय। दूसरे, यदि यह दूसरी मृत्यु पहली मृत्यु के तीन महीने बाद और पाँच साल से पूर्व हुई है, तो दूसरी मृत्यु पर सम्पदा-शुल्क की दर में इस प्रकार कमी होगी--यदि दूसरी मृत्यु एक वर्ष के भीतर हुई है तो ५० प्रतिशत दो वर्ष के भीतर हुई है तो ४० प्रतिशत, तीन वर्ष के भीतर हुई है तो ३० प्रतिशत, चार वर्ष के भीतर हुई है तो २० प्रतिशत और यदि पाँच वर्ष के भीतर हुई है तो १० प्रतिशत। तीसरे, यदि किसी ऐसे हिंदू की मृत्यु के बाद जिसकी संपत्ति उसकी विधवा स्त्री को मिली है, सम्पदा-शुल्क दिया गया है तथा उसकी मृत्यु के सात साल के भीतर उक्त विधवा स्त्री की मृत्यु हो गई हो, तो उस संपत्ति पर उसे वापस उत्तराधिकार में प्राप्त करनेवाला व्यक्ति सम्पदा-शुल्क नहीं देगा।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, संभव है कि किसी की संपत्ति में कुछ ऐसा भाग हो जो सम्पदा-शुल्क से मुक्त हो, जैसे घरेलू सामान, पहनने के कपड़े तथा किताबें आदि, जिनके कारण संपत्ति का मूल्य घट जायगा। किंतु संपदा-शुल्क के निर्धारण के लिए कुल संपत्ति का मूल्यांकन करना होगा, अर्थात् उस संपत्ति में वह संपत्ति भी जोड़ी जायगी जिस पर छूट दी गई है। जैसे उस किसी राज्य में, जो ऊपर उल्लिखित नहीं, कृषि भूमि तथा ऊपर लिखे अनुसार सम्पदा-शुल्क से मुक्त उपहार व बीमे की पॉलिसियाँ। इस प्रकार यदि कोई व्यक्ति ५० हजार रुपया नकद व १ लाख रुपये के मूल्य की कृषि भूमि मद्रास राज्य में छोड़कर मरता है, तो उसकी संपत्ति का मूल्यांकन १॥ लाख रुपया होगा और उस पर सम्पदा-शुल्क लगाया जायगा। अन्यथा उसकी नकद संपत्ति तो शुल्क की न्यूनतम सीमा (१ लाख रुपये) से भी कम होगी। यदि उसकी नकद संपत्ति २ लाख रुपये होती और मद्रास में उसकी कृषि भूमि एक लाख रुपये की होती तो सम्पदा-शुल्क तीन लाख रुपये की संपत्ति की दर, १२½% से लगता, दो लाख रुपये की संपत्ति की दर, १०%, से नहीं। किंतु सम्पदा-शुल्क समस्त संपत्ति पर नहीं देना होगा। इसका केवल वही अनुपात

देय होगा जो सम्पदा-शुल्कवाली संपत्ति व कुल संपत्ति के अनुपात के बराबर होगा। ऊपर दिये गए दूसरे उदाहरण में ३ लाख की कुल संपत्ति पर सम्पदा-शुल्क २१,२५० रुपया होगा, किंतु वास्तव में जितना शुल्क देना होगा वह दो-तिहाई, अर्थात् १४,१६६ रु० १० आ० ८ पा०, ही होगा।

किसी संपत्ति का मूल्याकन करते समय उसमे से चुकाये जानेवाले ऋणों की राशि कम करदी जायगी। पर ये ऋण मृत व्यक्ति द्वारा सद्भावनापूर्वक पूरी कीमत के बदले लिये गए होने चाहिएँ। क्रिया-कर्म का खर्च भी, जो १००० रुपये से अधिक नही होना चाहिए, कम कर दिया जायगा। क्रिया-कर्म के खर्च में मृत्यु के बाद एक साल के भीतर श्राद्ध आदि के रूप मे किया जानेवाला खर्च भी शामिल है।

संपत्ति के मूल्याकन तथा सपदा-शुल्क लगाने का काम आय-कर विभाग करेगा। राज्यों के आय-कर आयुक्त (इनकम टैक्स कमिश्नर) सम्पदा-शुल्क नियंत्रक (कण्ट्रोलर ऑव इस्टेट ड्यूटी) कहलायेंगे और उनके नीचे उप-नियंत्रक होंगे। नियंत्रक द्वारा संपत्ति के मूल्याकन, सम्पदा-शुल्क के निर्धारण तथा अन्य संबंधित मामलों पर किये गए निर्णय के विरुद्ध केन्द्रीय राजस्व बोर्ड (सैण्ट्रल रेवेन्यू बोर्ड), दिल्ली मे अपील की जा सकती है। पीड़ित पक्ष किसी कानून के प्रश्न पर हाई कोर्ट की राय लेने के लिए बोर्ड से प्रार्थना कर सकता है। मृतक की संपत्ति पर सम्पदा-शुल्क चुकाने का उत्तरदायित्व उस व्यक्ति पर होगा जो मृतक का कानूनी प्रतिनिधि हो, या जो मृतक की संपत्ति का उत्तराधिकारी हो, या जिसे संपत्ति हस्तांतरित होकर मिली हो तथा जिसने संपत्ति पर अधिकार कर लिया हो, या उस पर अधिकार कर सकता हो। वह उस संपत्ति पर शुल्क नही देगा जो उसके नाम मे अन्य व्यक्ति के अधिकार में है। सम्पदा-शुल्क भरने के लिए उत्तरदायी व्यक्ति को मृतक की संपत्ति का हिसाब उसकी मृत्यु के ६ महीने के भीतर नियंत्रक (कण्ट्रोलर) को भेज देना चाहिए। ऐसा न करने पर उस पर १ हजार रुपये तक का, या सम्पदा-शुल्क की राशि से दुगना, जुर्माना जो भी नियंत्रक आदेश दे—हो सकता है।

यदि नियंत्रक चाहे तो ऐसी अवस्था मे, जब भारी नुकसान के बिना तुरत सम्पदा-शुल्क वसूल करना संभव न हो, उसकी वसूली स्थगित कर सकता है। इसके लिए वह संपत्ति पर ४% या इससे ऊपर सूद ले सकता है। सम्पदा-शुल्क अदा करने के लिए उत्तरदायी व्यक्ति शुल्क की अदायगी के लिए उस संपत्ति को, जिस पर शुल्क लगना है बेच या बंधक रख सकता है किंतु संपत्ति के खरीदार या अपने यहाँ बंधक रखनेवाले की यह इच्छा पर निर्भर है कि वह इस प्रकार उठनेवाली कीमत को सीधा नियंत्रक को दे दे तथा संपत्ति के विक्रेता या अपने यहाँ बंधक रखनेवाले को न दे। अदा न कर सकने पर सम्पदा-शुल्क बकाया मालगुजारी वसूल करने के संबंध मे उल्लिखित तरीके से वसूल किया जायगा

: १६ :

व्यवहार-न्यायालयों की प्रक्रिया

जब कोई व्यक्ति किसी के विरुद्ध अपनी अधियाचना (दावा) प्रवर्तित कराना चाहता है तब वह व्यवहार-न्यायालय (दीवानी अदालत) में जाता है। दावा प्राय संपत्ति या पैसा वसूल करने के लिए होता है। किंतु यह किसी अन्य सहायता या मुक्ति (छुटकारा) के लिए भी हो सकता है, जैसे आज्ञप्ति (किसी कार्य को करने या न करने का आदेश), संपत्ति का विभाजन, या कम्पनी को समाप्त करने के लिए। जनसंख्या, व्यापार और उद्योग के प्रसार के साथ-साथ व्यवहार वादों की संख्या बढ़ती दीखती है और अनेकों व्यक्ति उनसे संबंधित होते हैं। साधारण व्यवहार-न्यायालयों की प्रक्रिया व्यवहार-प्रक्रिया-संहिता (सिविल प्रोसीजर कोड) द्वारा शासित होती है। व्यवहार-प्रक्रिया-संहिता को, संक्षेप के लिए, इस अध्याय में संहिता कहा गया है। इसके अतिरिक्त उच्च न्यायालयों द्वारा बनाये गए बहुत से व्यवहार के नियम होते हैं, जिन्हें वे संहिता द्वारा मिले अपने नियम-निर्माण के अधिकार के अंतर्गत बनाते हैं। राजस्व-न्यायालय (रेवेन्यू कोर्ट) सरीखे विशेष-न्यायालयों की प्रक्रिया उनका निर्माण करनेवाले कानूनों द्वारा शासित होती है। किंतु ऐसे कानून संहिता के नियमों को भी उन पर लागू कर सकते हैं।

मुकदमा, निवेदन तथा प्रारंभिक निवेदन

व्यवहार-न्यायालय में की जानेवाली सामान्य कार्यवाही 'वाद' (मुकदमा) कहलाती है। विशेष दशाओं में कार्यवाही 'निवेदन' (पेटीशन) कहलाती है, जैसे कंपनी को समाप्त करने के लिए या नाबालिग का संरक्षक नियुक्त करने के लिए निवेदन। इसे 'मौलिक' या 'प्रारंभिक निवेदन' (ओरीजिनल पेटीशन) कहते हैं। यह 'प्रारंभिक' इसलिए कहलाता है कि वाद के मध्य में किये गए निवेदन से इसकी भिन्नता ज्ञात हो सके। दूसरे प्रकार का निवेदन (वाद के मध्य में किया जानेवाला) 'मध्यवर्ती-निवेदन' (इंटरलोक्यूटरी पेटीशन) कहलाता है—जैसे किसी वाद में झगड़ेवाली संपत्ति के लिए प्रतिगृहीता (किसी झगड़ेवाली संपत्ति को झगड़े के निर्णय तक धरोहर या ट्रस्ट के रूप में अन्य के लिए ग्रहण करनेवाला व्यक्ति) की नियुक्ति के लिए निवेदन। निवेदन को प्राय 'प्रार्थना' (एप्लीकेशन) भी कहा जाता है। किसी वाद या निवेदन को न्यायालय तभी ग्रहण करता है कि जब उसमें निवेदित मुक्ति या सहायता प्रदान करने का वह कानून के अंतर्गत अधिकारी हो। यह चीज भले ही स्पष्ट प्रतीत होती हो, किंतु कई बार यह

बात भुला दी जाती है। उदाहरणार्थ उस समय, जबकि हिंदुओं के धार्मिक संप्रदायों के बीच झगड़े के दौरान में मंदिर के क्रियाकांड, चढ़ावे और प्रतिष्ठा के संबंध में दावा हो। इस प्रकार के दावे कई बार किये गए हैं पर वे अस्वीकार कर दिये गए हैं। किंतु कोई व्यक्ति किसी धार्मिक पदाधिकारी के रूप में अपने को मिलनेवाले किसी सम्मान या चढ़ावे को प्राप्त करने के लिए व्यवहार-न्यायालय में दावा कर सकता है—जैसे पूजा के समय धर्म-ग्रंथ पढ़ने का पदाधिकारी व्यक्ति। यदि कोई व्यक्ति किसी के पूजा के अधिकार से इन्कार करे या उसमें बाधा पहुँचाये, तो पीड़ित व्यक्ति अपने अधिकार के संबंध में न्यायालय की आज्ञा के लिए दावा कर सकता है।

अब हम वाद की आदि से अन्त तक प्रगति पर विचार करेंगे।

वाद की स्थापना उस पर विचार करने के लिए उपयुक्त न्यायालय में 'वाद-पत्र' (प्लेंट) के उपस्थित किये जाने पर होती है। न्यायालयों की उपयुक्तता या उनके विचाराधिकार अथवा क्षेत्राधिकार (ज्यूरिस्डिक्शन) के संबंध में कुछ नियम हैं। न्यायालय, एक तो वाद के मूल्य के संबंध में उपयुक्त होना चाहिए और, दूसरे वाद चलाने के स्थान के संबंध में। हम यह देख चुके हैं कि वादों की मूल्य-सीमा के संबंध में व्यवहार-न्यायालयों की अलग-अलग श्रेणियाँ होती हैं। वाद सबसे नीचे के उपयुक्त न्यायालय में उपस्थित किया जाना चाहिए। अतः १ हजार रुपये मूल्य का वाद केवल मुंसिफ के न्यायालय में पेश किया जा सकता है। इसके ऊपर का न्यायालय, जैसे जिला न्यायालय, यदि चाहे तो, इस वाद पर विचार करने के लिए उपयुक्त है और वह उसे मुंसिफ के न्यायालय से बदलवाकर अपने यहाँ ले सकता है। किंतु वह प्रारंभ में ही उस न्यायालय में नहीं चलाया जाना चाहिए। सम्पत्ति संबंधी वाद चलाने के लिए, स्थान के बारे में नियम यह है कि वाद उसी न्यायालय में चलाया जा सकता है जिसके क्षेत्र में वह अचल संपत्ति स्थित हो। चल सम्पत्ति या किसी धन-राशि को प्राप्त करने के संबंध में वाद निम्नलिखित में से किसी स्थान में चलाया जा सकता है—प्रति-पक्षी या प्रतिवादी के रहने का स्थान, उसके व्यापार करने का स्थान या जहाँ पर वह स्वयं अपने लाभ के लिए कार्य करता हो, और वह स्थान जहाँ वाद को खड़ा करनेवाले कारण पूर्ण या आंशिक रूप में पैदा हुए हों। उदाहरण के लिए **क** ने **ख** को मद्रास में माल देने के लिए बंबई में संविदा किया था। अब संविदा भंग किये जाने की दशा में वाद-जनक कारण आंशिक रूप में बंबई में हुआ, जहाँ संविदा किया गया था, और आंशिक रूप में मद्रास में, जहाँ कि वह पूरा किया जाना था। अतः **ख** बंबई या मद्रास में से किसी जगह में भी वाद चला सकता है। यदि **क** दिल्ली का रहनेवाला है तो **ख** उस पर दिल्ली में वाद चला सकता है।

क्षेत्राधिकार के नियम

क जो बंबई में रहता है, **ख** पर पूना में आक्रमण करता है। **ख** **क** पर बंबई या पूना में वाद चला सकता है। यदि प्रतिवादी एक से अधिक हों, तो वाद उसी न्यायालय में चलाया जा सकता है, जिसके क्षेत्र के अंतर्गत उनमें से कोई एक व्यक्ति रहता हो। किंतु ऐसा केवल न्यायालय की आज्ञा और प्रतिवादियों की स्वीकृति द्वारा किया जा सकता है। यदि मुकदमा गलत न्यायालय में किया जाय तो उसे सही न्यायालय में उपस्थित करने के लिए लौटा दिया जायगा। वाद-पक्ष ऊपर के न्यायालय, जैसे जिला न्यायालय या उच्च न्यायालय में, उनके अधीनस्थ उसी प्रकार के किसी अन्य न्यायालय में अपना मुकदमा बदलवाने के लिए प्रार्थना-पत्र दे सकते हैं।

मुकदमा दायर करने से पहले वादी को न केवल यह निश्चय कर लेना चाहिए कि कानून के अंतर्गत उसे वैसा दावा करने का अधिकार है, बल्कि यह भी देख लेना चाहिए कि कहीं उसका दावा पाय-सीमा द्वारा वर्जित तो नहीं है। इसके अतिरिक्त मुकदमा दायर करने से पहले की आवश्यक शर्तों के पालन का भी उसे ध्यान रखना चाहिए। उदाहरण के लिए, सरकार पर मुकदमा करने से पहले सरकार को दो महीने का नोटिस दिया जाना आवश्यक है। यदि भारत सरकार पर मुकदमा करना है, तो नोटिस उसके एक सचिव (सेक्रेटरी) को दिया जाना आवश्यक है। राज्य-सरकार पर मुकदमा करने की भी यही प्रक्रिया है। सरकार के किसी अधिकारी के विरुद्ध, उसके द्वारा अधिकारी के रूप में किसी काम को किये जाने के संबंध में, मुकदमा चलाने के लिए भी नोटिस देना आवश्यक है। नोटिस संहिता में निर्दिष्ट आज्ञाओं के अनुसार होना चाहिए। किसी सार्वजनिक ट्रस्ट के ट्रस्टी को हटाने के संबंध में, या उस ट्रस्ट के लिए किसी प्रबंध-योजना के संबंध में, मुकदमा चलाने के लिए एडवोकेट-जनरल या जिला-कलक्टर की स्वीकृति आवश्यक है। इन शर्तों में से किसी एक का भी पालन न करना मुकदमे के लिए घातक होता। संविधान के अंतर्गत कुछ स्थितियों में राष्ट्रपति या गवर्नर या राज्य के राजप्रमुख को अपने विरुद्ध व्यवहार-वाद (दीवानी मुकदमा) चलाये जाने से जो उन्मुक्ति प्राप्त है और अन्य स्थितियों में व्यवहार वाद के लिए उन्हें जो दो महीने का नोटिस देने का विधान है, उसकी चर्चा पहले अध्याय में की जा चुकी है।

आमतौर पर वादी का वकील वाद-पत्र तैयार करता है, किंतु वादी के लिए उस पर हस्ताक्षर करना और उसकी सत्यता का निर्देशन करना आवश्यक है। सत्यता-निर्देशन वह वाद-पत्र के अंत में यह कहकर करता है कि वाद-पत्र में दिये गए तथ्य उसकी श्रेष्ठतम जानकारी या श्रेष्ठतम ज्ञान और विश्वास के अनुसार सत्य हैं। इस प्रकार वाद-पत्र में दिये गए तथ्यों की सत्यता का उत्तरदायित्व वह अपने ऊपर लेता है।

इन्कार करे, तो आदेश-वाहक को चाहिए कि वह प्रतिवादी के निवास स्थान के बाहरी दरवाजे पर या अन्य किसी स्पष्ट दिखाई देनेवाले स्थान पर सम्मन लगा दे और मूल-सम्मन न्यायालय को लौटा दे। न्यायालय आदेश-वाहक की परीक्षा करने के बाद यह घोषित कर सकता है कि सम्मन की ठीक तामील हो गई है, या वह फिर से सम्मन की तामील का आदेश देता है। यदि न्यायालय यह समझे कि प्रतिवादी सम्मन लेने से दुराव कर रहा है, या उसकी तामील से बचना फिरता है, तो न्यायालय एक सम्मन न्यायालय के बाहर, और एक उसके घर पर (यदि उसका कोई घर हो तो), लगवा कर या अन्य किसी ढंग द्वारा (जैसे समाचार पत्र में विज्ञापन द्वारा) सम्मन की तामीली का आदेश दे सकता है। इस तरह तामीली के बाद न्यायालय यह मान कर कि प्रतिवादी को व्यक्तिगत रूप से सम्मन मिल चुका है, आगे कार्यवाही कर सकता है।

प्रतिवादी को भेजे गए सम्मन में निश्चित तारीख को वादी और प्रतिवादी से व्यक्तिगत रूप से या अपने-अपने एडवोकेटों द्वारा न्यायालय में उपस्थित होने की अपेक्षा की जाती है, और उस दिन प्रतिवादी वाद-पत्र के उत्तर में लिखित प्रतिवाद-पत्र उपस्थित कर सकता है, या यदि उसे ऐसा करने के लिए कहा गया है तो उसे वह उपस्थित करना पड़ेगा। ऐसा करने की, या वादी के दावे को स्वीकार कर अपने विरुद्ध डिगरी पास करवाने की, उसे छूट है। यदि वह लिखित रूप में अपना वक्तव्य देता है, तो न्यायालय वाद की सुनवाई की ओर अग्रसर हो सकता है, या उसे आगे की तारीख के लिए स्थगित कर देता है। यदि प्रतिवादी को भेजे गए सम्मन में उस तारीख को पहली सुनवाई की बात लिखी गई थी, तो वह उस दिन पहली सुनवाई कर सकता है। सुनवाई के पहले दिन ही दोनों पक्षों को चाहिए कि वे उस वाद के संबंध में जितने कागजात का सहारा लेना चाहते हों और जो उनके कब्जे में हों, उन सबको न्यायालय में पेश कर दें। उस दिन न्यायालय वाद और प्रतिवाद पत्रों का परीक्षण करता है और दोनों पक्षों के बीच विवादास्पद विचारणीय प्रश्न निर्धारित करता है। इस प्रकार किसी बॉण्ड पर दिये गए रुपये वसूल करने के लिए किये गए मुकदमे में, यदि प्रतिवादी इस बात से इन्कार करे कि उसने बॉण्ड भरा था, तो विचारणीय प्रश्न यह होगा कि 'क्या प्रतिवादी ने वह बॉण्ड भरा था?' यदि वह इस बात से इन्कार करे कि बॉण्ड का उसे कुछ प्रतिफल (बदले में प्राप्त लाभ) मिला था तो विचारणीय प्रश्न होगा—'क्या बॉण्ड के पीछे कोई प्रतिफल था?' किंतु यदि मुकदमा किसी परक्राम्य आलेख (हुण्डी, चैक या प्रोनोट) के आधार पर (जैसे किसी प्रोनोट के आधार पर) हो, तो प्रतिफल का अभाव सिद्ध करने का भार प्रतिवादी पर होगा और उस समय विचारणीय प्रश्न यह होगा—'क्या प्रोनोट के पीछे कोई प्रतिफल नहीं था?' अतः विचारणीय प्रश्नों का निर्धारण इसलिए किया जाता है कि दोनों पक्ष अपने

अभिमत के प्रतिपादन के लिए आवश्यक बातों का स्पष्टीकरण कर सकें। विचारणीय प्रश्नों के निर्धारण के बाद मुकदमे पर विचार करने के लिए कोई और तारीख डाल दी जाती है। न्यायालय का प्रथम सुनवाई के दिन ही मुकदमा निबटाने की छूट है, किंतु ऐसा बहुत ही कम होता है। दोनों पक्षों को अपने-अपने गवाहों के नाम सम्मन जारी कराने के लिए न्यायालय के समक्ष अग्रिम आवेदन करना चाहिए और बाद के विचार के लिए निश्चित तारीख को गवाहों के साथ हाजिर रहना चाहिए।

विचार

जब मुकदमे पर विचार आरंभ होता है तो पहले वादी को वाद आरंभ करने का अधिकार होता है। किंतु यदि प्रतिवादी यह तर्क उपस्थित करे कि यदि वादी का दावा सत्य स्वीकार भी कर लिया जाय तो भी वह अमुक कारण से नहीं चल सकता, तो वाद आरंभ करने का अधिकार प्रतिवादी को होता है। जिस पक्ष को वाद आरंभ करने का अधिकार होता है, उसकी ओर से उपस्थित होनेवाला वकील अपना वाद प्रस्तुत करता है और अपने पक्ष द्वारा साध्य, विचारणीय-प्रश्नों की सिद्धि के लिए अपने कागजात पेश करने और गवाहों का अनुयोग[1] करने के लिए उद्यत होता है। सुविधा के लिए यह सभी विचारणीय प्रश्नों के संबंध में गवाहों को पेश कर सकता है ताकि अनिष्ट प्रश्नों के लिए उन्हें फिर न बुलाना पड़े। इसके बाद विपक्ष का वकील अपना मामला रखता है और कागजात पेश करता तथा गवाहों का अनुयोग करता है। गवाहों का अनुयोग प्रायः खुले न्यायालय में किया जाता है। विशेष कारणों से उनका अनुयोग उस कार्य के लिए न्यायालय द्वारा विनियुक्त आयुक्त (कमिश्नर) द्वारा भी किया जाता है। गवाहों का अनुयोग एक पक्ष द्वारा और प्रत्यनुयोग (क्रॉस एक्जामिनेशन) दूसरे पक्ष द्वारा किया जाता है। गवाहियां न्यायालय की भाषा में लिख कर ली जाती हैं और अंत में गवाहों को पढ़कर सुना दी जाती हैं और यदि आवश्यक हो तो उनका अर्थ खुलासा कर दिया जाता है। विचार-कार्य समाप्त होने के बाद प्रायः दोनों ओर के वकील अपने-अपने तर्क उपस्थित करते हैं। जो पक्ष आरंभ करता है वह बाद में समापे वाद के संबंध में उत्तर दे सकता है। तब वाद समाप्त हो जाता है और न्यायाधीश स्वयं न्यायालय में उसी समय या अन्य किसी दिन अपना निर्णय सुनाता है। निर्णय में, प्रत्येक विचारणीय प्रश्न के संबंध में कारणों सहित निर्णय दिया हुआ होना चाहिए और अंत में पूरे वाद के संबंध में निर्णय होना चाहिए। तब निर्णय के अनुसार डिगरी तैयार की जाती है और उस पर निर्णय की तारीख ही पड़ी होती है। इसमें जो छुटकारा, मुक्ति, उच्चार या सहायता प्रदान की

---

१. अनुयोग (एक्ज़ामिनेशन)—पूछ-ताछ, न्यायिक कार्यवाही के दौरान में परीक्षण।

गई है या जिस किसी अन्य ढंग से मुकदमे की समाप्ति की गई है, उसका उल्लेख होता है। इसमें एक पक्ष द्वारा दूसरे को दी जानेवाली मुकदमे के खर्च की रकम भी दी गई होती है। तब वह मुकदमा समाप्त हो जाता है। वाद की प्रगति में जो विभिन्न अवस्थाएँ होती है—जिनकी चर्चा ऊपर की गई है—जैसे लिखित वक्तव्य का दिया जाना, विचारणीय प्रश्नों का निर्धारण, गवाही का दिया जाना, और वाद पर विचार—वे प्राय. समय-समय पर स्थगित कर दी जाती है क्योंकि कभी तो पक्ष तैयार नहीं होते और कभी न्यायालय को और दूसरा काम हो जाता है। व्यवहार वादों में विलंब होने के यही कारण है।

मुकदमे के दौरान में किसी भी पक्ष द्वारा विभिन्न प्रयोजनों के लिए निवेदन या प्रार्थना की जा सकती है—जैसे निर्णय से पूर्व प्रतिवादी की संपत्ति की कुर्की के लिए, अस्थायी आज्ञप्ति (किसी कार्य के करने या उसका निषेध के संबंध में आज्ञा) के लिए, विवादास्पद संपत्ति के प्रतिग्रहीता की नियुक्ति के लिए, किसी गवाह के अनुयोग के लिए आयोगादेश (विनियोगादेश—विशेष कार्य को करने के संबंध में किसी की नियुक्ति का आदेश) जारी करने के लिए, या वाद को स्थगित करने के लिए। ये निवेदन या प्रार्थनाएँ मध्यवर्ती-निवेदन या प्रार्थनाएँ कहलाती है। इन निवेदनों के संबंध में न्यायालय का निर्णय 'आदेश' (ऑर्डर) कहलाता है—जबकि न्यायालय का पूरे मुकदमे का निर्णय 'डिगरी' कहलाता है।

सम्मन जारी होने के बाद मुकदमे की समाप्ति तक उनमें जो तारीखें पड़ती है, उन पर वादी और प्रतिवादी को स्वयं या अपने वकीलों द्वारा उपस्थित होना चाहिए। यदि वादी उपस्थित नहीं होता, तो उसका मुकदमा खारिज हो जायगा और उसे प्रतिवादी को खर्च देना पड़ेगा। यदि वादी उपस्थित हो और प्रतिवादी न हो, तो न्यायालय प्रतिवादी की अनुपस्थिति में ही मुकदमे की सुनवाई करेगा और उसके विरुद्ध इकतरफा डिगरी दे देगा। वादी और प्रतिवादी को क्रमशः अपनी अनुपस्थिति का पर्याप्त कारण बताकर मुकदमे को खारिज करने संबंधी आदेश को, और इकतरफा डिगरी को रद्द करने के लिए प्रार्थना पत्र देने की छूट है। यदि उक्त प्रार्थना-पत्र स्वीकार कर लिया जाय तो मुकदमा जारी रहेगा। यदि वादी उपस्थित न हुआ हो और प्रतिवादी उपस्थित हो तथा मुकदमा खारिज कर दिया गया हो, तो खारिज होने के बाद, वादी उसी वाद के कारण के आधार पर और मुकदमा दायर नहीं कर सकता। यदि दोनों ही पक्ष अनुपस्थित हो और मुकदमा खारिज हो जाय, तो नया मुकदमा दायर किया जा सकता है। प्रतिवादी के विरुद्ध इकतरफा डिगरी उसी तरह लागू की जा सकती है जिस तरह दोनों ओर से मुकदमा लड़ने के बाद की गई डिगरी। अतः किसी पक्ष द्वारा उपस्थित होने में चूक करना बहुत बड़ा खतरा मोल लेना है।

जब मुकदमे के पक्ष अपने विवाद के संबंध में किसी समझौते पर पहुँच

जाते हैं तब वे उस संबंध मे न्यायालय को सूचना दे सकते हैं और न्यायालय मे समझौते की शर्तों के अनुसार डिगरी पास करने के लिए कह सकते हैं। यदि दोनों पक्षों मे से एक पक्ष नाबालिग हो, तो उसके वकील के लिए यह प्रमाण-पत्र देना आवश्यक है कि समझौता नाबालिग के लिए है और उसके लिए न्यायालय की स्वीकृति ले ली गई है। नाबालिग को धोखे से बचाने के लिए इस व्यवस्था का अत्यधिक महत्त्व है। यदि विवाद के संबंध मे कुछ व्यक्तियों ने ही समझौता किया हो तो शेष के संबंध में मुकदमा जारी रहेगा।

वाद (मुकदमे) का समझौता

न्यायालय मे मुकदमा लडने से बचने का एक और तरीका यह है कि वादग्रस्त पक्ष विवाद को पच-फैसले (आरबीट्रेशन) के लिए सौंपने को सहमत हो। पक्ष न्यायालय मे जाने और मुकदमा दायर करने से पहले या मुकदमे के दौरान मे इसके लिए सहमत हो सकते है। किंतु प्रत्येक दशा मे वाद मे संबंधित सभी व्यक्तियों को इस बात के लिए सहमत होना चाहिए कि उनके वाद का फैसला एक या अधिक पच करे। एक बार पच-फैसले के लिए राजी होने के बाद उनमे से कोई पीछे नही हट सकता। इस करार को क्रियान्वित करने के लिए वे न्यायालय मे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, यदि वाद-पक्ष अपने वाद के संबंध मे पंच-फैसले के लिए राजी हो गए है, तो उनमे से कोई उस करार को तोडकर उस वाद के विषय मे न्यायालय में मुकदमा दायर नही कर सकता। यदि वह ऐसा करता है, तो दूसरे पक्ष को न्यायालय मे कार्यवाही रोकने के लिए आवेदन करने की छूट है। पच-फैसले के लिए राजी पक्ष न्यायालय मे इस बात के लिए भी कह सकता है कि वह उस झगडे को पक्षो द्वारा नियुक्त पंचो का सौंपदे, या यदि पक्षो ने किन्ही पंचो की नियुक्ति नही की है तो वह उसे न्यायालय द्वारा नियुक्त पंचो को सौंप दे। यदि करार मे पचो के नामो का निर्देश है तो वे उसे झगडे का फैसला करेंगे। यदि इनकी संख्या सम है तो उन्हे चाहिए कि वे अपनी नियुक्ति के एक महीने के भीतर अपना एक अम्पायर (निर्णायक-प्रधान) चुन ले। यदि करार में पंचो के नाम और उनकी संख्या का निर्देश नही है, तो न्यायालय केवल एक पंच नियुक्त करेगा। किंतु पक्ष एक से अधिक की मांग कर सकते है। पक्षो द्वारा, एक बार अपने पच या पंचो का नाम निर्देश करने के बाद, उनकी नियुक्ति रद्द नही की जा सकती। किंतु वे इस आधार पर उनकी नियुक्ति रद्द करने के लिए न्यायालय से प्रार्थना कर सकते है कि पंच ने उचित शीघ्रता के साथ कार्य नही किया है, या उसका ठीक संचालन नही किया है। यदि न्यायालय उसे हटाता है तो वह उसके स्थान पर अन्य व्यक्ति नियुक्त कर सकता है। पंच का यह कर्त्तव्य है कि वह यथेष्ठ शीघ्रता के साथ अपने कर्त्तव्य का पालन करे और अपना फैसला दे। पक्ष पंच से यह कह सकता

पंच-फैसला

है कि वह अपना फैसला न्यायालय को दे। यदि न्यायालय इस फैसले की शर्तों के अनुसार डिगरी देता है, तो वह डिगरी अन्य डिगरियों की भांति ही क्रियान्वित की जा सकती है। कोई पक्ष किसी विशिष्ट आधारों, जैसे पंच द्वारा अधिकार का दुरुपयोग, पर न्यायालय को पंच के फैसले को रद्द करने के लिए प्रार्थना-पत्र दे सकता है। पंच-फैसले के संबंध में नियमों का उल्लेख १९४० के पंच-फैसला अधिनियम (आरबिट्रेशन एक्ट, १९४०) में किया गया है।

अपील (पुनर्विचार), पुनरीक्षण और पुनरावलोकन

वाद के संबंध में निर्णय और डिगरी होने के बाद असफल पक्ष को साधारणतया अपील-न्यायालय में अपील करने का अधिकार होता है। किंतु यदि न्यायालय ने डिगरी दोनों पक्षों की स्वीकृति से दी हो, तो उसके विरुद्ध कोई अपील नहीं हो सकती। जिला न्यायालय मुंसिफ के न्यायालय के विरुद्ध, और उच्च न्यायालय जिला न्यायालय के विरुद्ध अपीलें सुनता है। जिला-न्यायालय ५ हजार या उसके नीचे के मूल्य के वादों में सब-जज के न्यायालय के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें सुनता है। उच्च न्यायालय अधीनस्थ न्यायालयों के विरुद्ध अन्य मामलों में संक्षिप्त अपीलें सुनता है। मुंसिफ के न्यायालय के विरुद्ध अपीलें जिला न्यायालयों द्वारा, या उसके संबंध में अधिकृत अन्य अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा, सुनी जाती हैं। अपील उसे लेने के अधिकार प्राप्त न्यायालय के अधिकारी को अपील का ज्ञापन-पत्र (मेमोरेण्डम) दिये जाने के द्वारा दाखिल की जाती है। दरिद्र के रूप में अपील करने का आवेदन करने के विषय में वही नियम लागू होते हैं जो दरिद्र द्वारा किये गए मुकदमे के संबंध में लागू होते हैं। अपील के ज्ञापन-पत्र के साथ ये कागजात दाखिल किये जाने चाहिए—जिस निर्णय और डिगरी के विरुद्ध अपील की गई हो, उसकी प्रमाणित प्रतिलिपियां; उत्तरवादी (अपील में प्रतिवादी के रूप में आनेवाला व्यक्ति) के नाम आदेश जारी करने के लिए प्रार्थना-पत्र; और अपील-कर्ता के वकील के पक्ष में वकालतनामा (उस की नियुक्ति का सूचक-पत्र); उस पर आवश्यक न्यायालय-शुल्क का मुद्रांक भी लगा होना चाहिए।

न्यायालय में अपील दाखिल होने के बाद उत्तरवादी को उसके संबंध में नोटिस जारी किया जायगा और उसमें सुनवाई की तारीख निश्चित की जायगी। अपील-न्यायालय उस अपील की सूचना नीचे के न्यायालय को भी भेजेगा, जिस पर नीचे का न्यायालय उस मुकदमे में संबंधित समस्त आवश्यक कागजात अपील-न्यायालय में भेज देगा। सुनवाई के लिए निश्चित तारीख को, या अन्य किसी स्थगित तारीख को, अपीलकर्ता का वकील मुकदमे के संबंध में अपने तर्क उपस्थित करेगा और उसके बाद उत्तरवादी का वकील उनका जवाब देगा। अपीलकर्ता के वकील को उत्तरवादी पक्ष के तर्कों का जवाब देने का अवसर मिलेगा।

उसके बाद न्यायालय अपना निर्णय घोषित करेगा। निर्णय में नीचे के न्यायालय की डिगरी की पुष्टि की जा सकती है या उसे बदला या उलटा जा सकता है। निर्णय के अनुसार डिगरी तैयार की जायगी। अपील न्यायालय को और भी कई विशिष्ट अधिकार प्राप्त है। मुकदमे के संबंध में अंतिम निर्णय करने की बजाय वह मामले को निचली अदालत में निबटाने के लिए लौटा सकता है। ऐसा वह तब करता है, कि जब वाद की कुछ बातें निम्न न्यायालय द्वारा और अधिक गवाही लेने के बाद निर्णय के लिए बाकी रह जाती हैं। अपील-न्यायालय उस अपील को अपने पास भी रख सकता है और उस संबंध में कुछ विचारणीय प्रश्नों को नीचे के न्यायालय द्वारा विचार करने के लिए भेज सकता है तथा उस न्यायालय को उन प्रश्नों के संबंध में अपनी मालूमात उसे भेजने के लिए कह सकता है। ऐसी स्थिति में अपील-न्यायालय अपील का अंतिम फैसला नीचे की अदालत की मालूमात आ जाने पर करेगा और तब निर्णय व डिगरी देगा। आमतौर पर अपील न्यायालय नीचे के न्यायालय द्वारा ली गई गवाही के आधार पर ही अपना निर्णय देगा। वह पक्षों को और गवाही पेश करने की आज्ञा नहीं देगा, किंतु विशेष मामलों में उसे ऐसा करने का अधिकार है। अपील की सुनवाई के दिन अपीलकर्त्ता की अनुपस्थिति का फल यह हो सकता है कि उसकी अपील खारिज कर दी जाय। यदि सुनवाई के दिन उत्तरवादी उपस्थित नहीं होता तो, न्यायालय उसकी अनुपस्थिति में अपील की सुनवाई करेगा। अपील के दोनों पक्ष समझौते द्वारा अपने झगड़े का निबटारा कर सकते हैं और अपील-न्यायालय को समझौते की शर्तों के अनुसार डिगरी पास करने के लिए कहा जा सकते हैं। जब किसी अपील का निर्णय जिला न्यायालय या किसी अधीनस्थ न्यायालय द्वारा किया जाता है, तो असफल पक्ष उच्च न्यायालय में अपील कर सकता है, बशर्ते कि जिस निर्णय के विरुद्ध अपील की जाती हो, उसमें कोई कानूनी गलती (भूल) रह गई हो। उसे इस आधार पर अपील का अधिकार नहीं कि निर्णय उचित नहीं लगता है कि उसमें गवाही को ठीक तरह से नहीं आँका गया। उच्च न्यायालय उत्तरवादी को नोटिस देने से पहले आमतौर पर यह निश्चय कर लेता है कि उक्त कसौटी के अनुसार इसकी अपील हो सकती है या नहीं। अपीलकर्ता की सुनवाई के बाद यदि उच्च न्यायालय को यह निश्चय हो जाय कि अपील किसी कानूनी चूक के आधार पर की गई है, तो अपील ले ली जायगी अन्यथा वह नहीं ली जायगी। इस दूसरी अपील की सुनवाई की प्रक्रिया पहली अपील जैसी ही होती है। उच्च न्यायालय के निर्णय से असंतुष्ट व्यक्ति सर्वोच्च न्यायालय में अपील कर सकता है। सर्वोच्च न्यायालय में जिन स्थितियों में अपील की जा सकती है, उनका उल्लेख पहले किया जा चुका है (अध्याय ४)।

जब किसी मुकदमे या अपील का अंतिम निर्णय हो जाता है, तो वह डिगरी

के रूप में समाप्त होता है। किंतु मुकदमे या अपील के दौरान में कई प्रकार के आदेश जारी किये जा सकते हैं। डिगरी और आदेश में एक खास अंतर यह है कि जहाँ कुछ खास निर्दिष्ट स्थितियों को छोड़कर प्रत्येक डिगरी के विरुद्ध अपील की जा सकती है, वहाँ आदेश के विरुद्ध कुछ खास स्थितियों को छोड़कर अपील नहीं की जा सकती।

उच्च न्यायालय को अपनी प्रेरणा पर, या किसी पक्ष के कथन पर, अधीनस्थ न्यायालय द्वारा दिये गए किसी ऐसे आदेश या डिगरी के, जिसके विरुद्ध अपील नहीं की जा सकती, पुनरीक्षण (फिर से देखने और जाँच करने) का अधिकार है। यह अपने इस अधिकार का प्रयोग कुछ विशेष स्थितियों में ही करेगा—जैसे अधीनस्थ न्यायालय द्वारा आदेश जारी करने संबंधी अधिकार का अभाव। किसी आदेश में वह केवल इसी कारण पर हस्तक्षेप नहीं करेगा कि वह किसी तथ्य या कानून संबंधी गलती पर आधारित है।

न्यायालय को अपनी डिगरी या आदेश के पुनरावलोकन का अधिकार है। ऐसा वह अपने-आप अभिलेख (रेकार्ड) में अंकित किसी प्रत्यक्ष भूल को सुधारने के लिए कर सकता है। यदि प्रार्थी पुनरावलोकन के लिए कुछ आधार प्रस्तुत कर सके—वह अपने निर्णय से संतप्त पक्ष की प्रार्थना पर भी ऐसा कर सकता है. उदाहरणार्थ कोई प्रत्यक्ष भूल या चूक, किसी नये और महत्त्वपूर्ण साक्ष्य का मालूम होना—जिसे वह पहले अपने प्रयत्न के अभाव के बिना भी प्रस्तुत नहीं कर सका। वह केवल इस आधार पर कि डिगरी या आदेश गलत है (भूलयुक्त) है, पुनरावलोकन के लिए प्रार्थना नहीं कर सकता।

मुकदमे या अपील के अंतिम निर्णय के बाद दोनों पक्ष निर्णय को मानने के लिए बाध्य होते हैं। कोई न्यायालय उस मुकदमे के प्रश्नों पर फिर से विचार नहीं कर सकता। अतः कोई पक्ष किसी बाद के मुकदमे में वही प्रश्न फिर से नहीं उठा सकता। उस पर इस संबंध में 'प्राइ. न्याय' (पूर्व निर्णय) का बंधन होता है। एक उदाहरण से यह स्पष्ट हो जायगा : **क ख** पर, उसके द्वारा भरे गए २००० रुपये के बॉण्ड के आधार पर निकलनेवाले ३०० रुपये की ब्याज की बाकी वसूल करने के लिए (अभी मूलधन देय नहीं हुआ है) दावा करता है और **ख** इस बात से इन्कार करता है कि उसने वह बॉण्ड भरा था। न्यायालय **ख** के विरुद्ध निर्णय करता है और **क** के पक्ष में डिगरी दे देता है। यदि बाद में उस बॉण्ड का मूलधन वसूल करने के लिए **क ख** पर दावा करे, तो **ख** फिर यह बचाव नहीं उपस्थित कर सकता कि उसने वह बॉण्ड नहीं भरा था। किंतु अंतिमता की जो यह रोक या बाधा है, वह कुछ शर्तों के पूरा होने पर निर्भर करती है। बाद के मुकदमे के दोनों पक्ष पहले के मुकदमे के पक्ष या उनके प्रतिनिधि ही

निर्णय की अंतिमता

होने चाहिए। जिस न्यायालय ने पहले मुकदमे का फैसला किया, उसे दूसरे मुकदमे के फैसले का भी अधिकार होना चाहिए। उदाहरण के लिए ऊपर दिये गए दृष्टांत में स्थिति ऐसी थी कि दोनों मुकदमों में एक मुंसिफ द्वारा विचार किया जा सकता था। किंतु यदि मूलधन की रकम ५ हजार रुपया हो, तो उसे वसूल करने के लिए मुकदमा मुंसिफ के क्षेत्राधिकार से बाहर होगा और **ख** सब-जज के न्यायालय में या जिला-न्यायालय में अपना वह बचाव पेश कर सकेगा जो मुंसिफ के सामने सफल नहीं हुआ। एक और आवश्यक शर्त यह है कि जो प्रश्न बाद के मुकदमे में उठता है, वह पहले के मुकदमे में भी उठा हुआ होना चाहिए। केवल तभी ऐसे प्रश्न के संबंध में बाद के न्यायालय द्वारा किये गए निर्णय पर रोक है। यह स्पष्ट है कि इस अतिभता के नियम बिना मुकदमेबाजी का कोई अंत नहीं होगा।

व्यय

साधारणतः व्यवहार-वाद में सफल पक्ष को प्रतिपक्षी से उसका व्यय (कॉस्ट) मिलता है, अर्थात् वह व्यय जो उसने वाद या निवेदन में किया होता है। किंतु विशेष कारणों से न्यायालय उसे यह व्यय देने से इन्कार कर सकता है। वकील की फीस और गवाहों को दिये जानेवाले भत्ते आदि के संबंध में व्यय निर्धारित करने के नियमों का क्रिया-प्रणाली के नियमों (रूल्ज आव प्रैक्टिस) में निर्देश है।

वादों की विशेष श्रेणियां

विशेष न्यायालयों या विशेष श्रेणियों के वादों में प्रक्रिया भिन्न होती है। लघु-वाद न्यायालय (स्मॉल कॉजेज कोर्ट) में 'विचारणीय प्रश्न' नहीं तैयार किये जाते, बल्कि निर्णय में निर्णय (जिनके संबंध में निर्णय किया जाना है) बिन्दु रखे जाते हैं। गवाहों की गवाही सविस्तार या विशद रूप से अंकित नहीं की जाती, केवल उसका संक्षिप्त सार ले लिया जाता है। कलकत्ता, बंबई और मद्रास के अन्य न्यायालयों द्वारा प्रारंभिक विचार के लिए संहिता में दी गई प्रक्रिया के अतिरिक्त या उसमें कुछ फेर-बदल करनेवाले विशेष नियम होते हैं।

पक्षों की मृत्यु

मुकदमे के दौरान में वादी की मृत्यु हो जाने पर उसके कानूनी प्रतिनिधि या उत्तराधिकारी को मुकदमे को जारी रखने के लिए न्यायालय के रेकॉर्ड (अभिलेख) में अपना नाम लिखा लेना चाहिए। प्रतिवादी की मृत्यु होने पर वादी को प्रतिवादी के कानूनी प्रतिनिधि का नाम रेकॉर्ड में अंकित कराने के लिए आवेदन करना चाहिए। आवेदन मृत्यु के बाद तीन महीने के भीतर करना चाहिए। यदि इस प्रकार आवेदन नहीं किया जायगा तो मुकदमे की समाप्ति हो जायगी। समाप्ति का अर्थ यह होता है कि मुकदमे के उसी कारण के आधार पर फिर मुक-

दमा नहीं चलाया जा सकता। यदि न्यायालय को यह संतोष हो जाय कि समय पर आवेदन न करने के पर्याप्त कारण थे, तो वह उक्त समाप्ति को रद्द कर सकता है। यदि किसी पक्ष की मृत्यु के बाद मुकदमा करने या अपने प्रति मुकदमा किये जाने का अधिकार नष्ट हो जाता है, तो मुकदमा फिर जारी नहीं रखा जा सकता। यह अधिकार किस प्रकार नष्ट हो जाता है इस संबंध में हम दृष्टांत देख चुके हैं —जैसे मानहानि के संबंध में दावे का अधिकार (अध्याय ८)। यही नियम, यथा संभव, अपील या निवेदन के संबंध पक्षों की मृत्यु के संबंध में लागू होते हैं।

दावे का नियोजन (प्रतिहरतांकन)

जब मुकदमे के दौरान में वादी या प्रतिवादी अपना दावा दूसरे के नाम कर देता है, अर्थात अपना अधिकार या दायित्व किसी अन्य को हस्तांतरित कर देता है, तो वह व्यक्ति हस्तांतरणकर्ता का स्थान ग्रहण कर लेता है, और उसके द्वारा या उसके विरुद्ध, न्यायालय से इस संबंध में आवेदन द्वारा, मुकदमा जारी रखा जा सकता है। जब किसी मुकदमे या वाद में कोई पक्ष परिक्षीण या अपना ऋण उतारने में असमर्थ हो जाता है, तो मुकदमा उसके सरकारी प्रतिनिधि (जिसके नाम परिक्षीण व्यक्ति के दायित्व और अधिकार, सरकारी तौर पर, दिये गए हों) या सरकारी प्रतिग्रहीता (परिक्षीण व्यक्ति की ओर से उसकी संपत्ति ग्रहण करने के लिए नियुक्त व्यक्ति)—जैसी भी स्थिति हो—के द्वारा या उसके विरुद्ध जारी रखा जा सकता है। जहाँ अपना दावा दूसरे के नाम पर नहीं किया जा सकता है वहाँ ये नियम लागू नहीं होते, जैसे मानहानि या अभ्याघात (आक्रमण) के लिए हर्जाने का दावा।

डिगरी का निष्पादन (क्रियान्वयन)

डिगरी प्राप्त करने के साथ वादी के कष्टों का अंत नहीं हो जाता। वास्तव में तो वह उसके कष्टों की आदि होती है क्योंकि अपने कर्जदार द्वारा डिगरी के निष्पादन में खड़ी की गई बाधा या उससे बचने-फिरने के उसके प्रयत्न पर विजय प्राप्त करने के लिए और अपनी डिगरी का फल प्राप्त करने के लिए उसे न्यायालय की फिर सहायता लेनी पड़ती है। वह डिगरी को क्रियान्वित करने के लिए प्रार्थना-पत्र देकर न्यायालय की सहायता मांगता है। यदि वादी का मुकदमा खारिज हो गया हो तो कोई डिगरी क्रियान्वित करने के लिए नहीं होती। प्रतिवादी वादी से मुकदमे के खर्च को वसूल करने के लिए उस संबंध में मिली डिगरी के निष्पादन के लिए प्रार्थना कर सकता है। वादी डिगरी के निष्पादन के लिए तभी आवेदन कर सकता है कि जब उसका निष्पादन किसी प्रकारसे किया जाना हो—जैसे पैसे का दिया जाना या संपत्ति का अभिदान। यदि वह केवल उसके अधिकार की घोषणा करती है तो उसका कोई निष्पादन नहीं होता। निष्पादन के लिए प्रार्थना-पत्र उस न्यायालय में दिया जाना चाहिए जिसने वह डिगरी पास की हो।

यदि डिगरी अपील-न्यायालय से मिली हो, तो उसे आवेदन अपील-न्यायालय में करना चाहिए। जिस न्यायालय में निष्पादन के लिए आवेदन किया जाय, वह उस डिगरी को निष्पादन के लिए किसी अन्य न्यायालय के पास भेज सकता है, जिसके कई कारण हो सकते हैं, जैसे उस अन्य न्यायालय के स्थानीय क्षेत्र के अंतर्गत प्रतिवादी की उपस्थिति, या उसमें उसकी संपत्ति का स्थित होना। डिगरी के निष्पादन के लिए आवेदन डिगरी के पास होने के या उसके निष्पादन के लिए किये गए पूर्व आवेदन के संबंध में दिये गए अंतिम आदेश के तीन वर्ष के भीतर किया जाना चाहिए। डिगरी पास होने के १२ वर्ष के बाद आवेदन नहीं किया जा सकता। यदि इस १२ वर्ष के समय में निर्णीत ऋणी (फैसलशुदा कर्जदार) धोखे या बल प्रयोग द्वारा निष्पादन-कार्य में बाधा पहुँचाये, तो यह समय बढ़ाया जा सकता है। यदि निर्णीत-ऋणी के विरुद्ध प्राप्त डिगरी के, या उसके निष्पादन के लिए दिये गए पूर्व आदेश के एक वर्ष के भीतर आवेदन किया जाय, तो निष्पादन का तुरत आदेश दे दिया जायगा; अन्यथा वह केवल निर्णीत ऋणी को नोटिस दिये जाने के बाद ही जारी किया जायगा। डिगरी का निष्पादन करनेवाले न्यायालय का कर्त्तव्य है कि वह डिगरी की शर्तों के अनुसार ही उसका निष्पादन करे। न्यायालय को उसमें परिवर्तन करने या उसके सही या वैध होने के संबंध में प्रश्न करने का अधिकार नहीं है। डिगरी के निष्पादन का ढंग इसकी शर्तों पर निर्भर करेगा। यदि यह पैसे की वसूली के संबंध में है, तो उसका निष्पादन ऋणी की गिरफ्तारी और उसकी जेल में नजरबन्दी, या उसकी संपत्ति की कुर्की या दोनों के द्वारा हो सकता है। यदि वह किसी निर्दिष्ट वस्तु या माल के अभिदान के संबंध में है, तो न्यायालय अपने आदेश-द्वारा को उस वस्तु को हथियाने और उसे डिगरीदार को दे देने की आज्ञा देगा। यदि यह संभव न हो तो न्यायालय गिरफ्तारी कुर्की, या दोनों की आज्ञा देगा। यदि कुर्की हुए ६ महीने हो गए हो और निर्णीत ऋणी फिर भी डिगरी का पालन न कर रहा हो, तो कुर्क की गई संपत्ति बेच दी जा सकती है। इसकी बिक्री से प्राप्त रुपये में से डिगरीदार को उसकी संपत्ति की हानि के बदले मुआवजा मिल जायगा और बाकी पैसा निर्णीत-ऋणी को दे दिया जायगा। यदि डिगरी अचल संपत्ति के अभिदान के संबंध में है, तो न्यायालय निर्णीत-ऋणी द्वारा उसे खाली करने या छोड़ने से इन्कार करने पर, उसे संपत्ति से हटाने और उस संपत्ति का अभिदान डिगरीदार को देने का आदेश देगा। यदि संपत्ति, उसके संबंध में उपभोग का अधिकार-प्राप्त किसी किरायेदार के पास हो, तो डिगरीदार का उसका अभिदान प्राप्त करनेवाला वारण्ट (अधिपत्र) संपत्ति के किसी स्पष्ट दिखाई देनेवाले भाग पर लगा दिया जायगा और किरायेदार को उसकी सूचना मुनादी द्वारा या अन्य प्रकार से दे दी जायगी। इसके बाद किरायेदार का यह कर्त्तव्य हो जायगा कि वह डिगरीदार को उस संपत्ति का स्वामी समझे

और उसे किराया दे। यदि डिगरी संविदे के किसी निर्दिष्ट पालन के लिए या आज्ञप्ति के संबंध मे हो, और निर्णीत ऋणी उसकी अवमानना करे तो न्यायालय उसकी गिरफ्तारी या उसकी संपत्ति की कुर्की अथवा दोनों के द्वारा उस डिगरी को प्रवर्तित कर सकता है। यदि कुर्की एक वर्ष तक चालू रहे और फिर भी निर्णीत ऋणी डिगरी की अवमानना करे तो संपत्ति बेच दी जा सकती है। डिगरी को क्रियान्वित करने के संबंध मे डिगरीदार या न्यायालय से नियुक्त व्यक्ति द्वारा किये जानेवाले किसी काम को निर्णीत ऋणी के खर्च पर करने के लिए न्यायालय आदेश दे सकता है। अतः यदि डिगरी के अंतर्गत किसी दीवार को गिराया जाना है तो उसे न्यायालय के उक्त आदेश के अंतर्गत गिराया जायगा।

बन्दीकरण (गिरफ्तारी) तथा निरोध (नजरबन्दी)

पैसे के संबंध मे हुई डिगरी का पैसा अदा न करने पर स्त्री को गिरफ्तार नही किया जा सकता। अन्य डिगरियों की अवमानना के लिए उसे गिरफ्तार किया जा सकता है। यदि डिगरी ५० रुपये से अधिक की रकम का चुकाने के संबंध मे हो तो, किसी व्यक्ति को असैनिक (सिविल) जेल मे अधिकतम ६ महीने तक रखा जा सकता है और किसी अन्य स्थिति मे ६ सप्ताह तक। यदि वह अपना कर्ज चुका दे, या डिगरी पूरी करदे, तो उसकी नजरबंदी उस समय से पहले ही समाप्त हो जायगी। किसी व्यक्ति को कर्ज न अदा करने के संबंध में तबतक गिरफ्तार नही किया जा सकता कि जबतक उसे नोटिस देने के बाद न्यायालय को कुछ विशिष्ट बातों के संबंध में निश्चय न हो जाय—जैसे इस बात के संबंध मे कि संभवतः वह भाग जायगा या डिगरीदार को धोखा देने के लिए उसने अपनी संपत्ति हस्तांतरित कर दी है या साधन होते हुए भी वह पैसा नही चुकायगा। जबतक कि डिगरीदार निर्धारित नियमो के अनुसार निर्णीत ऋणी के लिए गुजारे की रकम न्यायालय मे जमा न करवाये, तबतक उसकी गिरफ्तारी या नजरबंदी का आदेश नही दिया जा सकता।

संपत्ति की कुर्की और बिक्री

किसी भी चल या अचल संपत्ति की कुर्की की जा सकती है पर इसके कुछ अपवाद हैं—जैसे पहनने के लिए आवश्यक कपडे, खाना बनाने के बर्तन, ऋणी या उसकी पत्नी या बच्चे के बिस्तरे और चारपाई, निजी गहने—जिन्हे धार्मिक चलन के अनुसार किसी स्त्री से अलग नही किया जा सकता, कारीगरों के औजार, किसान के औजार, पशु और बोने के लिए आवश्यक बीज, किसान द्वारा अधिकृत कर, हिसाब की किताबें (बहीखाते), अवकाश-प्राप्त सरकारी कर्मचारियो को मिलनेवाली पेंशन और ग्रेच्युटी (सेवा के बदले परितुष्टि के रूप में दी जानेवाली राशि), मजदूरों और घरेलू नौकरों के वेतन, पहले १०० रुपये और शेष के आधे भाग तक का वेतन तथा सैनिकों के भत्ते और वेतन।

निर्णीत ऋणी के अधिकार में रही हुई चल-संपत्ति की कुर्की न्यायालय के अधिकारी द्वारा उसे वस्तुत. ग्रहण कर न्यायालय में लाने द्वारा की जाती है। यदि कुर्की खेत की पैदावार है, तो वह जिस स्थान पर फसल रखी हुई हो वहाँ, या उस जगह जहाँ वह उगती हुई फसल के रूप में खड़ी है, कुर्की के वारंट के लगाये जाने द्वारा की जाती है। अचल संपत्ति की कुर्की एक आदेश द्वारा की जाती है जिसमें निर्णीत ऋणी को उसके हस्तांतरण या उस पर भारारोपण या दायित्वारोपण (उस पर रुपया लेने) आदि के संबंध में निषेध होता है और अन्य सब व्यक्तियों को उसके हस्तांतरण या भारारोपण के अंतर्गत किसी लाभ को प्राप्त करने के संबंध में निषेध होता है। आदेश की घोषणा मुनादी द्वारा या अन्य किसी उचित प्रकार से की जायगी और उसकी एक नकल संपत्ति के किसी स्पष्ट दिखाई देनेवाले भाग पर और एक न्यायालय में लगा दी जायगी। निर्णीत ऋणी के प्रति निकलनेवाले किसी ऐसे कर्ज की, जो किसी हुंडी या प्रोनोट द्वारा सुरक्षित न हो, कुर्की एक आदेश द्वारा की जाती है, जिसमें निर्णीत ऋणी को उसे अपने कर्जदार से वसूल करने और कर्जदार को उसे वसूल करने के संबंध में निषेध किया जाता है। कुर्की के बाद यदि संपत्ति बेची जानी हो तो न्यायालय उसके बेचने का आदेश देगा। उसकी बिक्री से प्राप्त पैसे से डिगरीदार की तरफ निकलनेवाला कर्ज चुका दिया जायगा और यदि बचेगा तो वह निर्णीत ऋणी को लौटा दिया जायगा। न्यायालय द्वारा की जानेवाली बिक्री उचित घोषणा के बाद सार्वजनिक नीलामी द्वारा की जाती है। डिगरीदार न्यायालय की स्पष्ट आज्ञा के बिना उसमें बोली नहीं बोल सकता। न्यायालय का कोई अधिकारी या कानूनी पेशे का कोई व्यक्ति (वकील आदि) उसमें न कतई बोली बोल सकते हैं और न बेची जानेवाली संपत्ति में कोई लाभ प्राप्त कर सकते हैं और न कोई लाभ प्राप्त करने की कोशिश कर सकते हैं। खरीदार, यदि संपत्ति चल हुई तो, उस पर उसे स्वत्वाधिकार प्रदान करनेवाला आदेश-पत्र, और यदि संपत्ति अचल हुई तो, उसकी बिक्री का प्रमाण-पत्र प्राप्त करेगा।

न्यायालय-शुल्क (कोर्ट-फीस)

न्यायालय-शुल्क अधिनियम (कोर्ट फीज एक्ट) न्यायालय में जमा किये जानेवाले कागजातों पर—जैसे वाद-पत्र, अपील-पत्र या प्रार्थना-पत्र—दिये जानेवाले न्यायालय-शुल्क का निर्धारण करता है। ऐसा कोई कागज जबतक समुचित न्यायालय-शुल्क मुद्राक से युक्त नहीं होगा तबतक वह स्वीकार नहीं किया जायगा। यदि वह उस मुद्राक के बिना दाखिल किया जायगा तो उसे अस्वीकार किया जा सकता है। पैसे या संपत्ति की वसूली के मुकदमों में उक्त संपत्ति के मूल्य के आधार पर एक क्रमिक दर के अनुसार न्यायालय-शुल्क लगाया जायगा। डिगरियों के विरुद्ध अपीलों में भी न्यायालय-शुल्क का हिसाब इसी तरह लगाया जाता है। कुछ विशिष्ट श्रेणियों के वादों और अपीलों के लिए

एक निश्चित शुल्क निर्धारित है।

न्यायालय मे कार्यवाही शुरू करने के संबंध में अनुचित विलंब होने देना वाछनीय नही है। इससे तथ्य संबंधी व साक्ष्य के लुप्त होने की संभावना है।

काल-सीमन की बाधा

इससे वाद-संबंधित पक्षो को मुकदमे की संभावना के संबंध मे अनिश्चितता और अरक्षा बनी रहती है। इसी उद्देश्य से निर्मित भारतीय काल-सीमन-अधिनियम, १९०८ (इण्डियन लिमिटेशन एक्ट, १९०८) मे निहित सीमा-कानून न्यायालय मे की जानेवाली विभिन्न कार्यवाहियो के संबंध मे समय की सीमा या अवधि निर्धारित करता है। किसी मुकदमे के लिए निर्धारित काल-सीमा के बाद यदि उसे न्यायालय मे दायर किया जायगा, तो न्यायालय उस मुकदमे को नही लेगा, भले ही प्रतिपक्षी उसके संबंध में काल-बाधा की बात न उठाये। समय निकल जाने का परिणाम यह होता है कि किसी पक्ष का न्यायालय मे जाकर उपचार या प्रतिकार प्राप्त करने का अधिकार सदैव के लिए नष्ट हो जाता है। यदि वह अपनी जमीन से बेदखल कर दिये जाने के बाद १२ वर्ष के भीतर उसकी मुक्ति लेने के लिए दावा दायर नही करता, तो उसके बाद वह दावा नही कर सकता। उपचार प्राप्त करने की उसे जो हानि होती है उससे संपत्ति मे उसका अधिकार समाप्त हो जाता है और तब प्रतिपक्षी को उसका पूरा अधिकार (स्वत्व) मिल जाता है। यह परिणाम तभी होता है कि जब व्यक्ति अपनी संपत्ति के कब्जे के लिए निर्धारित समय के भीतर दावा करने मे चूक करे। किसी ऋण के प्रतिदेय हो जाने के ३ वर्ष के भीतर यदि उसकी वसूली के लिए दावा नही किया जाता तो उसके बाद दावा नही किया सकता। किंतु इससे ऋणदाता का अपने निकलनेवाले पैसे के संबंध में अधिकार नष्ट नही होता। यदि कर्जदार का पैसा बाद मे उसके हाथ लग जाय, तो वह उसका विनियोग ऋण चुकाने मे कर सकता है। अपील या निर्णय के पुनरावलोकन के लिए, या अपील करने की इजाजत मांगने के लिए प्रार्थना-पत्र निर्धारित समय निकल जाने के बाद भी दिया जा सकता है, किंतु तभी जबकि विलंब के लिए पर्याप्त कारण दिखाया जा सके। लेकिन समय निकल जाने के बाद डिगरी के निष्पादन के लिए प्रार्थना-पत्र या वाद उपस्थित नही किया जा सकता। निर्योग्यता या असमर्थता के अधीन व्यक्ति, जैसे, नाबालिग या पागल, अपनी निर्योग्यता (अर्थात् नाबालिगी या पागलपन) समाप्त होने के तीन वर्ष के भीतर दावा कर सकता है, बशर्ते कि सीमन-काल आरंभ होने पर उसकी निर्योग्यता बनी हुई थी। उदाहरणार्थ, ५ वर्ष की आयु के नाबालिग **क** को **ख** ने उसकी जमीन से १० जनवरी १९४० को बेदखल कर दिया। यदि **क** बालिग हो, तो उसे इस तारीख के बाद १२ वर्ष के भीतर मुकदमा दायर करना चाहिए, लेकिन क्योंकि **क** उस समय नाबालिग था और वह १८वाँ वर्ष पूरा करने के बाद—मान लीजिए

कि १९५३ में बालिग होगा, तो वह इस तारीख के तीन वर्ष के भीतर, अर्थात् सन् १९५६ तक, दावा दायर कर सकता है। दूसरी तरफ यदि क १० जनवरी १९४० के दिन बालिग हो और १९४२ में मर जाय, तो उसके नाबालिग लड़के को उसकी (क की) बेदखली के १२ वर्ष भीतर, अर्थात् १० जनवरी १९५२ के अंदर, मुकदमा दायर करना चाहिए। यह इसलिए है क्योंकि किसी व्यक्ति की निर्योग्यता एक बार आरंभ हुए सीमन-काल में रुकावट नहीं डाल सकती।

काल-सीमन-बाधा ट्रस्टी से ट्रस्ट का संपत्ति वसूल करने में रुकावट नहीं डालती; ऐसा मुकदमा कितना भी समय गुजर जाने के बाद दायर किया जा सकता है। किंतु यदि ट्रस्टी ने किसी मूल्य के बदले ऐसे व्यक्ति को वह संपत्ति दे दी है जो उसके ट्रस्ट-संपत्ति होने की बात नहीं जानता, तो उस व्यक्ति के विरुद्ध मुकदमे में यह छूट नहीं है और मुकदमा निर्धारित समय के भीतर ही दायर किया जाना चाहिए।

विभिन्न वादों और कार्यवाहियों के बाधक-कालों का और उनके आरंभ होने के बिंदुओं का निर्देश भारतीय-काल सीमन अधिनियम के परिशिष्ट में दिया हुआ है। बाधक-कालों की अवधि ६ महीने से ६० वर्ष तक है। कुछ सुपरिचित वाद और उनके बाधक-काल निम्न हैं। घरेलू नौकर का वेतन—१ वर्ष; अभ्याघात, मानहानि और किसी व्यक्ति का प्रागधान करने के बदले हर्जाना—१ वर्ष; संविदा प्रवर्तित कराना—३ वर्ष, और यदि संविदा रजिस्टर्ड हो तो—६ वर्ष; बेचे गए माल की कीमत—३ वर्ष; संपत्ति की वसूली—यदि संपत्ति चल हो तो, ३ वर्ष और यदि संपत्ति अचल हो तो, १२ वर्ष, सरकार द्वारा अपनी संपत्ति की वसूली—६० वर्ष। बाधक-काल की अवधि की गणना प्रत्येक स्थिति में उसके प्रारंभ होने के बिंदु से की जाती है। यदि अवधि का अंतिम दिन छुट्टी का दिन है, तो मुकदमा उससे अगले न्यायालय के कार्य के दिन दायर किया जा सकता है। कुछ घटनाओं की स्थिति में बाधक-काल की अवधि बढ़ाई भी जा सकती है, जैसे, उसकी गणना करते समय प्रतिवादी की भारत से अनुपस्थिति का काल इसमें से निकाल दिया जायगा। यदि कर्जदार मूलधन या ब्याज के हिसाब में कुछ रकम अदा करता है, तो बाधक-काल की अवधि की गणना फिर से उसे चुकाने के दिन से की जायगी, किंतु यह अदायगी अदा करनेवाले व्यक्ति के अपने हाथ की लिखावट में या उसके हस्ताक्षरयुक्त होनी चाहिए। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति, जिसके विरुद्ध किसी अधिकार का दावा हो, उस अधिकार को लिखित रूप में स्वीकार करले तो उस स्वीकृति के समय से बाधक-काल की नई गणना की जायगी। इस अदायगी या स्वीकृति का यह असर तभी होगा कि जब वह दावे के काल-बाधित होने से पहले की या दी गई होगी। किसी डिगरी या आदेश के विरुद्ध अपील उसके लिए निर्धारित काल—जिसमें उस डिगरी या आदेश की प्रमाणित प्रतिलिपियाँ तैयार कराने का समय शामिल नहीं है—के भीतर ही की जानी चाहिए।

: १७ :

आपातकालीन कानून

यद्यपि कानून सभी मानवीय व्यवस्थाओं की भाँति परिवर्तनशील होते हैं, फिर भी जिन कानूनों की अबतक चर्चा की गई है वे स्थायी कानूनों के रूप में ग्रहीत हैं। किंतु ऐसे भी कानून होते हैं जो अस्थायी काल के लिए होते हैं और केवल आकस्मिक स्थिति या आपात् में चलते हैं। इस प्रकार दोनों विश्व युद्धों में से प्रत्येक के समय भारत में भारत-रक्षा कानून (डिफेन्स आव इण्डिया एक्ट) प्रचलित थे जिनके द्वारा युद्धों को सफलतापूर्वक चलाने के लिए की गई कार्यवाही के मध्य व्यक्तिगत कार्य-स्वतन्त्रता पर अनेक प्रतिबंध लगाये गए थे। दूसरे विश्व-युद्ध के समय इन प्रतिबंधों का क्षेत्र बहुत विस्तृत था। उक्त कानूनों और उनके अंतर्गत नियमों के द्वारा, राज्य की कार्यकारी सत्ता को विभिन्न वस्तुओं के क्रय, विक्रय और उत्पादन को, और युद्ध के सफलतापूर्वक चलाये जाने के काम में बाधा पहुँचाने की संभावना से युक्त व्यक्तियों के कार्य-कलाप को, नियंत्रित करने का अधिकार दिया गया था। यद्यपि युद्ध की समाप्ति के साथ इन कानूनों की और नियमों की भी समाप्ति हो गई, किंतु युद्ध के बाद पैदा हुई असामान्य स्थिति का सामना करने के लिए इसी प्रकार के कई अन्य कानून बनाये गए। अब इनमें से बहुत से आपात्-कानून खत्म हो चुके हैं। इसका सबसे प्रसिद्ध उदाहरण है—खाद्य सामग्री, कपड़े और अन्य आवश्यक सामग्रियों पर लगाये गए व्यापक नियंत्रण का अंत। कई राज्यों में इन नियंत्रणों की समाप्ति के साथ ऐसे कानून भी अब नहीं रहे हैं।

परिभाषा तथा स्थायी कानून से भेद

किंतु अब भी ऐसे कुछ आकस्मिक स्थिति संबंधी कानून हैं जो चल रहे हैं। यहाँ हम उनमें से तीन की चर्चा करेंगे। इनमें पहला है—इमारतों के पट्टे और किराये पर नियंत्रण लगानेवाला कानून। यह कानून मकानों की कमी के कारण आवश्यक हुआ है। दूसरा है—निवारक नजरबन्दी कानून, जो सरकार को सार्वजनिक हित के विरुद्ध आचरण करने की संभावना से युक्त व्यक्तियों को बिना मुकदमा चलाये नजरबंद करने का अधिकार देता है। तीसरा कानून सरकार को प्रेस (समाचार-पत्रों) द्वारा अपनी स्वतन्त्रता के अधिकार के दुरुपयोग के निवारण की सामर्थ्य प्रदान करता है। अंतिम दो कानून देश में चल रही अनिश्चित स्थिति के कारण और सार्वजनिक शान्ति और सुरक्षा की रक्षा के दृष्टिकोण

से आवश्यक हो गए है।

इमारतों के पट्टे और किराये पर नियत्रण लगानेवाल कानून कई राज्यों में प्रचलित हैं। मद्रास में प्रचलित कानून १९४९ मे बनाया गया था और ३० सितम्बर १९५० तक प्रचलित था, किंतु बाद मे समय-समय पर उसकी अवधि बढा दी गई है। इस कानून की कुछ मुख्य विशेषताएँ ये है कि इसके अतर्गत सरकार के एक अधिकारी को—जिसे नियंत्रक (कण्ट्रोलर) कहते हैं—समुचित किराया निश्चित करने का अधिकार है और मकान या इमारतों को किराये पर देने या उनमे से किरायेदारो को निकालने के लिए इसकी आज्ञा लेना आवश्यक है। किरायेदार को निकालने की आज्ञा कानून में दिये गए विशिष्ट आधारो के होने पर ही माँगी जा सकती है। यदि वे आधार उपस्थित नही है तो मकान मालिक की मर्जी के खिलाफ भी किरायेदार मकान मे रहता रहेगा।

कुछ विशिष्ट आपात्-विधियाँ

निवारक नजरबदी कानून संसद् द्वारा १९५० मे बनाया गया था और एक वर्ष तक चलना था। किंतु बाद मे अन्य अधिनियमों द्वारा उसकी अवधि १९५६ के अंत तक के लिए बढा दी गई है। इसमें यह व्यवस्था की गई है कि भारत या किसी राज्य सरकार को यदि यह निश्चय हो जाय कि अमुक व्यक्ति की नजरबदी उसे (१) भारत की रक्षा, भारत के विदेशी राज्यों से संबध या भारत की सुरक्षा; अथवा (२) राज्य की सुरक्षा या सार्वजनिक शाति व्यवस्था; या फिर (३) सामूहिक हित में आवश्यक सेवा या प्रदाय (सप्लाई) की व्यवस्था; के हित के विरुद्ध कार्यवाही करने से रोकने के लिए आवश्यक है, तो उसे नजरबंद करने का आदेश दे सकती है। कोई भी सरकार किसी विदेशी को कार्यवाही को भारत में नियमित करने या भारत से उसके निष्कासन की व्यवस्था करने के लिए उक्त आदेश दे सकती है। इन अधिकारों का प्रयोग कोई भी सरकार या कुछ अधिकारी—जैसे जिला मजिस्ट्रेट या सब-डिवीजनल (उपभागीय) मजिस्ट्रट या प्रेसीडेन्सी नगरों में पुलिस कमिश्नर कर सकता है। जब इनमें से कोई भी अधिकारी ऐसा आदेश देता है, तो उसे चाहिए कि वह फौरन इस संबंध में ऐसा करने के लिए आवश्यक कारणों सहित, जिस राज्य सरकार के वह अधीन हो उसे सूचना दे। उसका आदेश १२ दिन से अधिक जारी नही रहेगा, बशर्ते कि इस बीच राज्य सरकार उसके संबंध में अपनी स्वीकृति न दे दे। इस व्यवस्था का प्रभाव यह है कि इसके अनुसार सरकार और उसके अधिकारियो को अपने विवेक द्वारा यह निर्णय करने का पूर्ण अधिकार है कि उक्त कारणो में से किसी के आधार पर अमुक व्यक्ति नजरबंद किया जाना चाहिए या नही। उनके इस संबंध में किये गए निर्णय को न्यायालय में चुनौती नही दी जा सकती। किंतु सरकार इस संबंध में अपनी शक्ति का दम-

निवारक नजरबंदी कानून

नात्मक रूप में प्रयोग न कर सके, इसके लिए संविधान की शर्तों के अनुसार कानून में कुछ संरक्षणों की व्यवस्था है (अध्याय २)। नजरबंदी का आदेश देनेवाले अधिकारी को चाहिए कि वह नजरबंदी के दिन से ५ दिन के भीतर नजरबंद किये गए व्यक्ति को उसकी नजरबंदी के आधारों की सूचना दे और उसे आदेश के विरुद्ध अपनी बात कहने का शीघ्रातिशीघ्र अवसर प्रदान करे। किंतु अधिकारी उन तथ्यों को बताने के लिए बाध्य नहीं है जिनको बताना वह सार्वजनिक हित के विरुद्ध समझता हो। ऊपर खण्ड ३ के अंतर्गत की गई प्रत्येक नजरबंदी के संबंध में सरकार को चाहिए कि वह उस मामले को नजरबंदी के ३० दिन के भीतर एक परामर्शदात्री परिषद् (एडवाइजरी बोर्ड) को सौंप दे और उस मामले के संबंध में सभी सामग्री उसके सामने रख दे। परिषद् को सामग्री पर विचार करना चाहिए और नजरबंदी के १० सप्ताह के भीतर अपनी रिपोर्ट देनी चाहिए। यदि परिषद् यह राय दे कि नजरबंदी के पर्याप्त कारण है, तो सरकार नजरबंदी पर अपनी मुहर लगा सकती है और जबतक उचित समझे, उसे जारी रख सकती है। इसका अर्थ यह है कि यदि परिषद् अन्यथा समझे तो नजरबंदी समाप्त हो जायगी। परिषद् में ऐसे तीन व्यक्ति होंगे जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश रह चुके हों या बनने की योग्यता रखते हों। किसी व्यक्ति की नजरबंदी का अधिक-से-अधिक समय १२ महीने हो सकता है। नजरबंदी की समाप्ति के बाद उसे फिर नजरबंद किया जा सकता है, बशर्ते कि उसके बाद और नये तथ्य सामने आये हों जो ऐसा करने को न्यायसंगत सिद्ध करें।

निवारक नजरबंदी कानून के अंतर्गत नजरबंद किया गया व्यक्ति उच्च-न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय में इस आधार पर, कि उसकी नजरबंदी कानून के अनुसार नहीं है और इसलिए गैर-कानूनी है, बन्दी प्रत्यक्षीकरण लेख (रिट आव हेबियस कॉरपस—बन्दी को न्यायालय में उपस्थित करने के विषय में न्यायालय का आदेश) के लिए आवेदन कर सकता है। न्यायालय नजरबंदी का आदेश देनेवाले अधिकारी से यह सिद्ध करने के लिए कह सकता है कि नजरबंदी कानून के अनुसार है। यदि अधिकारी वैसा नहीं कर सकता, तो न्यायालय नजरबंद व्यक्ति को मुक्त कर देने का आदेश दे देगा। यदि न्यायालय को यह मालूम हो कि नजरबंदी का आदेश कानून की शर्तों का पालन नहीं करता, तो उसका यह कर्त्तव्य है कि वह उस आदेश को रद्द कर दे—भले ही उस आदेश को देनेवाला प्राधिकारी या सत्ता कितनी ही ऊँची क्यों न हो। न्यायालय नजरबंदी का अधिकार प्रदान करनेवाले कानून की शर्तों का अक्षरशः पालन किये जाने पर जोर देगा। उदाहरण के लिए यदि आदेश देखने में नियमित न मालूम पड़े या कानून के अनुसार वह प्रमाणित किया हुआ न हो, तो वह उसे हटा देगा। मद्रास राज्य में एक जिला मजिस्ट्रेट ने एक व्यक्ति की नजरबंदी का इस आधार पर आदेश दिया कि उसका भूतपूर्व आचरण उसकी

नजरबंदी की आवश्यकता सिद्ध करना था। किंतु उसका वह आदेश अवैध घोषित कर दिया गया, क्योंकि नजरबंदी तो केवल इस आधार पर की जा सकती थी कि वह इस प्रकार कार्य कर रहा था या उसके द्वारा इस प्रकार कार्य किये जाने की संभावना थी कि उससे सार्वजनिक सुरक्षा के हित को हानि पहुँच सकती थी और उसे ऐसा करने से रोकने के लिए उसकी नजरबंदी जरूरी थी। कोई व्यक्ति केवल इस आधार पर नजरबंदी के आदेश को चुनौती नहीं दे सकता कि वह आदेश गलत या भूलयुक्त था, या आदेश देनेवाले व्यक्ति ने गलत काम किया। किंतु वह यह सिद्ध कर सकता है कि अधिकारियों ने दुर्भावना से कार्य किया और अपने आदेश को न्याय-संगत सिद्ध करने में उन्होंने जो आधार उपस्थित किये, दर-असल उनमें उनका विश्वास नहीं था। नजरबंदी के आदेश को जिन अन्य आधारों पर चुनौती दी जा सकती है वे हैं—कि आदेश में नजरबंद व्यक्ति के संबंध में संकेत नहीं है, या वह अन्य किसी व्यक्ति का संकेत करता है, अथवा यह कि नजरबंद किये गए व्यक्ति को उसकी नजरबंदी का जो आधार बताया गया है वह अस्पष्ट और अनिश्चित है। यह स्पष्ट है कि यह प्रार्थना-पत्र (बंदी प्रत्यक्षीकरण लेख के लिए), जिसके संबंध में हम आजकल बहुत सुनते हैं, व्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा का एक महत्व-पूर्ण उपाय है। गैर-कानूनी तौर पर कैद किये गए व्यक्ति के पास प्रायः उस कैद के लिए जिम्मेदार व्यक्ति पर हर्जाने के लिए दावा करने का प्रतिकार होता है। किंतु निवारक नजरबंदी कानून में उसका यह अधिकार छीन लिया गया है क्योंकि कानून के अंतर्गत सद्भावना से काम करनेवाले व्यक्ति को अपने विरुद्ध कानूनी कार्यवाही से उन्मुक्ति प्राप्त है। उसके विरुद्ध कोई मुकदमा, अभियोजन (अभियोग चलाने का कार्य) या कानूनी कार्यवाही नहीं हो सकती।

प्रेस अधिनियम

प्रेस (आपत्तिजनक सामग्री) अधिनियम, १९५१, अथवा जैसा कि यह प्रायः कहलाता है—प्रेस अधिनियम (प्रेस एक्ट)—संसद द्वारा १९५१ में २ वर्ष के लिए पास किया गया था और दो वर्ष के लिए प्रवर्तनीय था। १९५४ के बजट अधिवेशन में इसकी अवधि दो वर्ष के लिए और बढा दी गई। इसके अंतर्गत मैजिस्ट्रेट जज को प्रिंटिंग प्रेस (छापाखाना) या समाचार पत्र को जमानत आदि भरने संबंधी आदेश देने का अधिकार है, बशर्ते कि उसे यह विश्वास हो जाय कि अमुक प्रेस या समाचार पत्र का ऐसी सामग्री के प्रकाशनार्थ उपयोग हो रहता है जो आपत्तिजनक है—जैसे, हिंसात्मक कार्यवाही के लिए उभारना या खाद्य सामग्री अथवा अन्य आवश्यक वस्तुओं की सप्लाई के संबंध में हस्तक्षेप करना, या साम्प्रदायिक घृणा पैदा करना। इसी प्रकार का अपराध बाद में फिर करने पर जज जमानत जब्त करने का आदेश दे सकता है। जज के समक्ष कार्यवाही राज्य सरकार के इस संबंध में अधिकार-प्राप्त अधिकारी द्वारा शिकायत करने या आरोप लगाने पर

आरभ होती है । यदि जिस व्यक्ति पर आरोप लगाया गया है, वह जूरी की माँग करे, तो उसके लिए पत्रकारिता के अनुभव से युक्त व्यक्तियों से छाटे हुए ५ सदस्यो की जूरी की व्यवस्था की जा सकती है। यदि जज का जूरी मे मत-भेद हो तो उसे मामला उच्च न्यायालय को सौपना पडता है। सैशन्स जज के निर्णय के विरुद्ध अपील उच्च न्यायालय में की जा सकती है। अधिनियम में आदेशों की अवमामना और अपराधों की पुनरावृत्ति के लिए कठोर दड की व्यवस्था है । कई स्थितियों में प्रेस-का-प्रेस और पुस्तको या समाचारपत्रो की प्रतियाँ जब्त भी की जा सकती है । ऐसी प्रतियाँ डाक द्वारा नही भेजी जा सकती और डाक अधिकारियों से उन प्रतियों को सरकार को सौपने के लिए कहा जा सकता है। इसके अति-रक्त अपराध करनेवाले प्रकाशक को कैद और उस पर जुर्माना भी किया जा सकता है ।

: १८ :

अन्तर्राष्ट्रीय कानून

अंतर्राष्ट्रीय कानून और राष्ट्रों के कानून से तात्पर्य उन नियमों से है, जिनसे राष्ट्र अपने को पारस्परिक व्यवहार के विषय में बद्ध समझते हैं। अबतक विधान के जिन नियमों की हमने चर्चा की है उनसे ये नियम एक खास बात में भिन्न है। उन्हें राष्ट्रों या राज्यों पर इस प्रकार से लागू नहीं किया जा सकता जैसे राज्य के भीतर लोगों पर कानून लागू किये जाते हैं। इसका कारण यह है कि राज्य प्रभु-सत्ताधारी राज्य होते हैं और उन्हें संसार की किसी शक्ति के अधीन नहीं समझा जाता। तब फिर हम अंतर्राष्ट्रीय कानून की बात क्यों करते हैं? वह इसलिए कि अन्य सब कानूनों की भाँति उनका उद्देश्य भी मानव के आचरण को नियमित करना है। यहाँ यह कानून अंतर्राष्ट्रीय, अर्थात् राष्ट्रों के बीच, न कि उनके ऊपर, होता है। अबतक ऐसी कोई सत्ता अस्तित्व में नहीं आई जो उसके पालन के लिए राष्ट्रों को बाध्य कर सके। इसका अर्थ यह हुआ कि राष्ट्रों के बीच लगातार लड़ाइयाँ हुई हैं। उनसे मानव जाति को जन, धन, सुख और शांति की जो हानि उठानी पड़ी है उसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता और न उसका वर्णन किया जा सकता है। प्रथम विश्व-युद्ध के बाद जिनेवा में राष्ट्र-संघ (लीग आव नेशन्स) की स्थापना की गई थी, किंतु संयुक्त राज्य अमरीका उसमें अलग रहा। इस संस्था ने अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ावा देकर कुछ उपयोगी कार्य किये। किंतु युद्ध-निवारण के अपने मुख्य उद्देश्य में वह असफल रही। दूसरे विश्व-युद्ध के बाद इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ (यूनाइटेड नेशन्स आर्गेनाइजेशन) की स्थापना की गई।

परिभाषा तथा क्षेत्र

चूंकि अंतर्राष्ट्रीय कानून साधारण अर्थ के वाचक विधान से भिन्न है, अतः उसके नियमों पर यहाँ विचार नहीं किया गया है। किंतु यह जान लेना आवश्यक है कि इसके कुछ नियमों को कानून के रूप में भारत ने मान्यता प्रदान की है और वे भारतीय कानून का अंग बन गए हैं। उदाहरण के लिए अंतर्राष्ट्रीय कानून का यह नियम है कि किसी एक राज्य के शासक या कूटनीतिक प्रतिनिधि को अन्य राज्य के न्यायालयों में मुकदमे से छूट प्राप्त होती है। यह नियम भारतीय कानून में स्वीकार किया गया है और उसे व्यवहार विधि-संहिता (सिविल प्रोसीजर कोड) में माना गया है। अतः भारत का कोई न्यायालय भारत-स्थित किसी विदेशी शासक

या किसी अन्य राज्य के राजदूत के विरुद्ध मुकदमा ग्रहण नहीं करेगा। अंतर्राष्ट्रीय कानून का एक और नियम यह है कि कोई शत्रु-अन्यदेशीय अर्थात् किसी उस राज्य का नागरिक, जिसके साथ उसके वर्तमान अधिवास के राज्य की लड़ाई है, अपने वर्तमान अधिवास के राज्य के किसी न्यायालय में बिना उस राज्य की आज्ञा के मुकदमा नहीं चला सकता। यह नियम भी भारतीय कानून का अंग है और व्यवहार विधि-संहिता में विहित है। इसके अतिरिक्त अंतर्राष्ट्रीय कानून का नियम यह है कि किसी तटवर्ती राज्य का प्रदेश उसके उथले जलवाले तट से तीन मील समुद्र-पर्यंत होता है। अतः यदि कोई विदेशी जहाज, जो किसी और देश का जंगी जहाज (युद्धपोत) नहीं है, तट से तीन मील की सीमा में हो, तो वह संबंधित तटवर्ती राज्य के प्रदेश में समझा जाता है। अतः उस जहाज पर सवार किसी विदेशी ने यदि कोई अपराध किया हो, तो उसके संबंध में उक्त राज्य के न्यायालयों में मुकदमा चलाया जा सकता है। कई बार राज्य के न्यायालयों को उस राज्य के साथ हुई किसी अन्य राज्य की संधि को ध्यान में रखना पड़ता है। उदाहरण के लिए संभव है कि एक राज्य ने दूसरे राज्य से यह संधि कर ली हो कि वह दूसरे राज्य से अपनी सीमा में भागकर आये हुए अपराधी का समर्पण कर देगा। ऐसी स्थिति में उस दूसरे राज्य के न्यायालय उस राज्य में किये गए अपराधों के संबंध में उक्त व्यक्ति पर मुकदमा चला सकते हैं। किंतु किसी राजनीतिक अपराध, जैसे देशद्रोह या राज्य-द्रोह, के अपराधी का समर्पण किया जाता है।

परिशिष्ट

: १ :

कानून में नवीन परिवर्तन एवं संशोधन

पुस्तक की छपाई हो जाने बाद भारत के कानून में निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण परिवर्तन तथा संशोधन हुए है :

पृष्ठ ६८ पृष्ठ ६८ तथा आगे आनेवाले अन्य पृष्ठों पर प्रयुक्त शब्द 'कालापानी' के स्थान पर 'आजन्म कारावास' कर लीजिये । जैसा कि आगे पृष्ठ ८०-८१ पर बताया गया है, कालेपानी का दंड बंदी को अंडमान भेजकर दिया जाता था, जो अब बंद कर दिया गया है।

पृष्ठ ६८ सहायक सैशन्स जज की कारावास का दड देने की अवधि-संबंधी शक्तियाँ बढा दी गई है और अब वह सात के स्थान पर दस वर्ष तक के कारावास का दड दे सकता है।

पृष्ठ ६८ मजिस्ट्रेटो की जुर्माना करने की शक्ति इस प्रकार बदल दी गई है—(१) प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रट तथा प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट की अधिकतम जुर्माने की सीमा १००० रुपए से २००० रुपए कर दी गई है; (२) द्वितीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट की अधिकतम जुर्माने की शक्ति-सीमा २०० रुपए से ५०० रुपए कर दी गई है; और (३) तृतीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट की सीमा ५० रुपए से १०० रुपए कर दी गई है।

पृष्ठ ६९ ऑनरेरी मजिस्ट्रेटों (अवैतनिक दंडनायको) की नियुक्ति में राज्य-सरकार को उन्हें ऐसे लोगो में से चुनना चाहिए जो किसी न्यायिक पद पर आसीन हों, या रह चुके हों, या जो उच्च न्यायालय की सम्मति के अनुकूल सरकारी गजट मे उल्लिखित अर्हताओ (योग्यताओ) से युक्त हो।

पृष्ठ ६९ द्वितीय या तृतीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट के निर्णय के विरुद्ध अपील सैशन्स अदालत में जानी चाहिए । किसी शिकायत के आधार पर दायर किये गए दावे में जब दोषमुक्ति आदेश (आर्डर ऑव एक्वीटल) दे दिया जाता है तो प्रार्थी उच्च न्यायालय की विशेष आज्ञा से उच्च न्यायालय में अपील पेश कर सकता है।

पृष्ठ ६९-७० मद्रास में उच्च न्यायालय ने शहर की सीमाओं में उठनेवाले ५०,००० रुपए तक के मूल्य के वादों को स्वीकार करना बंद कर दिया है। ये वाद अब नगर में नगर-व्यवहार-न्यायालय (सिटी सिविल कोर्ट) मे जाते है। यह परिवर्तन पृष्ठ ११४ पर भी कर लीजिए। इसके अतिरिक्त उच्च-न्यायालय ने नगर-सीमाओं के भीतर हुए अपराधों पर विचार करना भी छोड दिया है। अब इनकी सुनवाई एक सैशन्स जज करता है।

पृष्ठ ७० सैशन्स न्यायालयों म दोपाकनकर्त्ताओं (असैसरों) की प्रथा समाप्त कर दी गई है। इन न्यायालयों में अब न्यायाधीश स्वय या जूरी की सहायता से मुकदमे की सुनवाई करता है।

पृष्ठ ८० कोडे लगान का दड समाप्त कर दिया गया है। अब न्यायालय अपराधियो को यह दंड नही दे सकते।

पृष्ठ ११४ वारण्ट व्यवहार के अपराधो में दिये जानेवाले आजन्म कालेपानी या ६ मास से अधिक अवधि के कालेपानी के स्थान पर आजन्म कारावास या एक वर्ष से अधिक कारावास का दण्ड दिया जाने लगा है। जिन मामलों म उपरोक्त से कम दंड दिया जाता है वे अब सम्मन-व्यवहार कहलाते है।

पृष्ठ ११५ मद्रास मे उच्च न्यायालय अब दंड-वादों पर विचार नहीं करता (देखिये पृष्ठ ६९-७० में किया गया परिवर्त्तन)।

पृष्ठ ११५ अब राष्ट्रपति या उप-राष्ट्रपति, या किसी राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख, राज्य या केन्द्रीय सरकार के किसी मंत्री या अन्य किसी सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध निन्दा-वादों में (अर्थात् मुद्रित अथवा लिखित, किन्तु मौखिक नहीं, मानहानि के मामलो में) अब एक विशेष प्रक्रिया अपनाई जाती है। लोक-अभियोक्ता (पब्लिक प्रोसीक्यूटर) किसी सैशन्स अदालत मे शिकायत पेश कर सकता है और न्यायालय या मजिस्ट्रेट की सामान्य प्रक्रिया का (जिसमें वह केवल जांच करके मामला सैशन्स के पास भेज देता था) अवलम्बन किये बिना मामले की सुनवाई कर सकता है। किंतु शिकायत घटना के ६ मास के भीतर और इस प्रयोजन के लिए अधिकृत सरकार के सचिव की पूर्व स्वीकृति से, और सरकारी कर्मचारी की मान हानि के मामले में संबंधित सरकार की पूर्व-स्वीकृति से ही दाखिल की जानी चाहिए।

पृष्ठ ११९ सैशन्स न्यायालय में न्यायाधीश स्वयं या जूरियों की सहायता से—और दोषांकनकर्त्ताओं के बिना—मुकदमे की सुनवाई करत

है। जूरी में सात व्यक्ति होते हैं—पाँच नहीं और जब अभियुक्त पर मृत्यु द्वारा दंडनीय अपराध लगाया जाता है तो जूरी में, यदि संभव हो तो, ९ व्यक्ति होने चाहिए।

पृष्ठ २४० अब जीवन-बीमा-व्यवसाय करनेवाली बीमा-कंपनियाँ निजी प्रबंध तथा स्वामित्व से मुक्त कर सरकार द्वारा ले ली गई हैं।

: २ :

'राज्य पुनर्गठन विधेयक'

१६ मार्च, १९५६ को संसद् के दोनों सदनों में पेश किये गए 'राज्य पुनर्गठन विधेयक' के अनुसार भारत १५ राज्यों तथा ७ केंद्र-प्रशासित क्षेत्रों में बांटा जायगा। विधेयक की प्रतियां राज्य सरकारों को भेज दी गई हैं। १५ राज्यों के नाम इस प्रकार हैं: आन्ध्र-तेलंगाना, असम, बिहार, गुजरात, केरल, मध्यप्रदेश, मद्रास, महाराष्ट्र, मैसूर, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, और जम्मू व काश्मीर।

७ केन्द्र-प्रशासित क्षेत्रों के नाम इस प्रकार हैं: दिल्ली बम्बई, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा, अंदमान व निकोबार और लकदीव, मिनिकाय और अमीनदीव।

उच्च न्यायालय—विधेयक के अनुसार महाराष्ट्र, गुजरात और केन्द्र-प्रशासित राज्य बम्बई तीनों के लिए एक ही उच्च न्यायालय रहेगा। बम्बई का वर्तमान उच्च न्यायालय इन तीनों के लिए उच्च न्यायालय होगा।

नागपुर का वर्तमान उच्च न्यायालय नए मध्यप्रदेश का उच्च न्यायालय होगा, पंजाब का उच्च न्यायालय पंजाब का, त्रावणकोर-कोचीन का उच्च न्यायालय केरल का, मैसूर का उच्च न्यायालय मैसूर का तथा आंध्र का उच्च न्यायालय आंध्र-तेलंगाना का उच्च न्यायालय होगा। मध्यभारत, पटियाला राज्य संघ, हैदराबाद, सौराष्ट्र के उच्च न्यायालय तोड़ दिये जायंगे। इसी तरह अजमेर, भोपाल, कच्छ तथा विंध्यप्रदेश के जुडीशियल कमिश्नर के न्यायालय बंद कर दिये जायंगे।

केरल का जो उच्च न्यायालय बनेगा उसका अधिकार-क्षेत्र लकदीव, मिनिकाय और अमीनदीव द्वीपों के केन्द्र-प्रशासित प्रदेश पर भी होगा।

विधेयक में कहा गया है कि यदि आवश्यकता हुई तो केन्द्रीय सरकार स्थानीय सीमाओं में मामूली हेरफेर करने की जांच करने के लिए बाद में एक सीमा-आयोग नियुक्त करेगी। यह हेरफेर विशेषतः प्रशासनिक दृष्टि से किया जायगा।

नया पंजाब—नए पंजाब में 'फिलहाल' पंजाब का वर्तमान हिस्सा और पटियाला राज्य संघ शामिल किया गया है।

हिमाचल प्रदेश के संबंध में विधेयक की व्याख्यात्मक टिप्पणी में कहा गया है, "सरकार इस निर्णय पर पहुंची है कि अंत में हिमाचल पंजाब का एक अंग होगा, लेकिन फिलहाल वह केन्द्र-प्रशासित क्षेत्र होगा।"

विधेयक में कहीं भी केन्द्र-प्रशासित क्षेत्रों की रूपरेखा की चर्चा नहीं है। दिल्ली और बंबई के संबंध में भी विधेयक में कोई बात नहीं कही गई है। उसमें इतना ही कहा गया है कि चूँकि वे केन्द्र के अधीन होंगे, इसलिए विधेयक में उल्लेख करना आवश्यक नहीं है। केन्द्रीय सरकार इन क्षेत्रों के संबंध में बाद में नियम बनायगी।

इसमें आंध्र के साथ हैदराबाद का शेष हिस्सा (तेलंगाना) मिला दिया गया है। नाम विशालांध्र नहीं दिया गया है, किन्तु बात वही है।

बेल्लारी जिले के कुछ हिस्सों के संबंध में विधेयक में कहा गया है कि उसे मैसूर से निकालकर आंध्र को दिलाने की आवश्यकता नहीं है।

इस विधेयक में १२१ वाक्य और ६ अनुसूचियां हैं। इनमें विस्तार से बताया गया है कि हरेक राज्य की सीमा कौन-सी होगी और केन्द्र-प्रशासित क्षेत्रों की सीमा कहांतक रहेगी। इस पुनर्गठन के फलस्वरूप जो राजस्व-सम्बन्धी परिवर्तन होंगे, उनका भी मसविदे में उल्लेख है।

पाँच क्षेत्रों की व्यवस्था—विधेयक में ५ क्षेत्रों का विधान है। एक उत्तरी क्षेत्र जिसमें पंजाब, राजस्थान, जम्मू व काश्मीर, दिल्ली तथा हिमाचल प्रदेश होंगे। दूसरा केन्द्रीय क्षेत्र, जिसमें उत्तर प्रदेश, और मध्यप्रदेश होंगे, तीसरा पूर्वी क्षेत्र, जिसमें बिहार, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, असम, मणिपुर तथा त्रिपुरा होंगे। चौथा पश्चिमी क्षेत्र जिसमें महाराष्ट्र, गुजरात और केन्द्र-शासित बम्बई होंगे। और पाँचवां दक्षिणी क्षेत्र, जिसमें आन्ध्र-तेलंगाना, मद्रास, मैसूर और केरल होंगे।

प्रत्येक क्षेत्र के लिए एक स्थायी क्षेत्रीय परिषद् होगी। प्रत्येक परिषद् का अपने क्षेत्र में एक स्थायी सचिवालय होगा। परिषद् सिर्फ परामर्श दे सकेगी। वह उन सब बातों पर विचार कर सकेगी, जिनमें सदस्य-राज्यों तथा केन्द्रीय सरकार की दिलचस्पी हो और सम्बन्धित सरकारों को अपनी सलाह दे सकेगी।

क्षेत्रीय परिषदों की रचना—प्रत्येक परिषद् में (१) राष्ट्रपति द्वारा नामजद एक केन्द्रीय मंत्री, (२) घटक राज्यों के मुख्य मंत्री तथा राज्यपाल द्वारा नामजद दो-दो अन्य मंत्री, (३) जिन प्रदेशों पर केन्द्र का शासन हो, उनमें राष्ट्रपति द्वारा नामजद एक सदस्य तथा (४) पूर्वी क्षेत्र की परिषदों में असम सरकार का कबायली मामलों का सलाहकार शामिल होगा।

प्रत्येक क्षेत्रीय परिषद् का प्रधान केन्द्रीय मंत्री होगा।

प्रत्येक क्षेत्र में शामिल राज्यों के मुख्य मंत्री बारी-बारी से एक वर्ष के लिए क्षेत्रीय परिषद् के उप-प्रधान होंगे और इसी तरह राज्यों के सचिव बारी-बारी से परिषद् के सचिव।

परिषद् सब निर्णय बहुमत से करेगी।

परिषदों का कार्यक्षेत्र—प्रत्येक क्षेत्रीय परिषद् में निम्नलिखित व्यक्ति सलाहकार की हैसियत से—जिन्हें राय देने का हक होगा, लेकिन मत देने का नहीं—लिये

जायंगे : (१) योजना-आयोग द्वारा नामजद एक व्यक्ति ; (२) क्षेत्र में शामिल राज्यों में विकास आयुक्तों के पद पर नियुक्त व्यक्ति, और (३) राज्यों के मुख्य सचिव ।

परिषदो का सारा व्यय केन्द्रीय सरकार देगी । परिषदें किसी विषय पर, जिसका सम्बन्ध राज्यो या राज्यो और संघ से हो, विचार कर सकेगी । लेकिन सीमा-सम्बन्धी विवाद, सामाजिक तथा आर्थिक आयोजन और भाषाई अल्पमतों की समस्याओ पर विशेष रूप से वे विचार कर सकेगी ।

सदस्य—एक अनुसूची में यह निर्धारित कर दिया गया है कि प्रत्येक पुनर्गठित राज्य और केन्द्र-प्रशासित क्षेत्र के लोक सभा मे कितने सदस्य चुने जाने है तथा प्रत्येक राज्य की विधानसभा में कुल सदस्य कितने होगे ।

उपरोक्त अनुसूची के अनुसार लोक सभा की सदस्य की संख्या अधिक-से-अधिक ५२० होगी जिनमे ५०० प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा व शेष २० केन्द्रीय सरकार द्वारा केन्द्र-शासित प्रदेशों के लिए निश्चित प्रणाली के अनुसार चुने जायगे । राज्य सरकारों के विधान-मडलो मे सदस्यों की सख्या कम-से-कम ६० व अधिक-से-अधिक ५०० होगी । सदस्य प्राय: एक से मतक्षेत्रो द्वारा चुने जायगे ।

विधान परिषद—मध्यप्रदेश मे नये चुनाव के पश्चात् ७२ सदस्यों की एक विधान-परिषद् होगी । इनमे २४, ६ व ६, विभिन्न मतदाता-मण्डलो द्वारा चुने जायगे और २४ विधान-सभा द्वारा चुने जायंगे । राज्यपाल १२ सदस्य मनोनीत कर सकेगे । पजाब में ४८ सदस्यों की एक विधान-परिषद् होगी । इसमें १६ सदस्य पेप्सू विधान-सभा के सदस्यों द्वारा चुने जायंगे । नए चुनाव में १६, ४ व ४, सदस्य विभिन्न मतदातामण्डलो द्वारा चुने जायगे । १६ विधान-सभा द्वारा व ८ सदस्य राज्यपाल द्वारा मनोनीत होगे ।

अन्त:कालीन विधानमण्डल—इसके अतिरिक्त राज्यों के अन्त:कालीन विधानमण्डलो के निर्माण की व्यवस्था भी की गई है । इसका कारण यह है कि इस वर्ष की समाप्ति के समय से पूर्व आम चुनावो की व्यवस्था कर सकना सम्भव नही होगा ।

ये अन्त.कालीन विधानमण्डल आम चुनाव खत्म होने तक और नये विधान-मण्डलो का अधिवेशन बुलाये जाने तक काम रहेगे ।

इन विधानमण्डलो के फिलहाल जो सदस्य है वे ही अन्त:कालीन विधान-मण्डलों के सदस्य रहेगे और जो राज्य अन्य राज्यो में विलीन हो जायंगे, उनकी विधानमण्डलो के सदस्य उन राज्यों के विधानमण्डल के सदस्य हो जायंगे, जिनमें वे विलीन होगे ।

कुर्ग, अजमेर, विंध्यप्रदेश व भोपाल की विधानसभाओं के सदस्य अपने आप उन राज्यों की अन्तरिम विधान-सभाओं के सदस्य हो जायंगे, जिनमें वे सम्मि-

लित होगे।

विधेयक के २८वे वाक्य मे नए राज्यो की अन्तरिम विधान-सभाओं तथा आंध्र और मद्रास की वर्तमान विधान-सभाओ का कार्य-काल निश्चित किया गया है। त्रावणकोर-कोचीन, पेप्सू और आंध्र की विधानसभाओ का चुनाव हाल मे ही हुआ था और उनकी पंचवर्षीय अवधि क्रमश. निम्नलिखित तिथियो पर आरम्भ हुई—२१ मार्च, १९५४, २६ मार्च १९५४ तथा २१ अप्रैल १९५५। केरल के नए प्रस्तावित राज्य की अन्तरिम विधान-सभा मे त्रावणकोर-कोचीन की जनता के प्रतिनिधित्व मे और मालाबार की जनता के प्रतिनिधित्व मे काफी असमानता रहेगी। इसी तरह पंजाब के नए राज्य मे पेप्सू क्षेत्र का वर्तमान पजाब क्षेत्र की अपेक्षा अनुपात की दृष्टि से कही अधिक प्रतिनिधित्व रहेगा। इसलिए इन नए दो राज्यो की अन्तरिम विधान-सभाओ को वर्तमान त्रावणकोर-कोचीन और पेप्सू विधान-सभाओ की पूरी अवधि तक जारी रखना अनुचित होगा, अतः उनकी अवधि क्रमश. मद्रास और पज ब की विधान-सभाओ के समकालिक होगी। इसका अर्थ यह हुआ कि त्रावणकोर-कोचीन व पेप्सू की विधान-सभाओ के सदस्यो का कार्यकाल मालाबार व पंजाब के सदस्यो के बराबर होगा यानी व १ अगले वर्ष बारा चुनाव होगे। वर्तमान आंध्र-क्षेत्र मे नया चुनाव न होगा, किन्तु तेलंगाना के विधान-सभाई सदस्यो का एक अर्द्ध पचवर्षीय चुनाव लोकसभा के चुनावो के साथ होगा।

एक व्याख्यात्मक पैरे मे कहा गया है कि आम चुनाव १९५७ के आरम्भ में हो सकें और पुनर्गठित राज्यो की विधान-सभाओ की रचना ठीक तरह हो सके, इसके लिए जहा आवश्यक हो, निर्वाचन-क्षेत्रो के अविलम्ब पुनः-परिसीमन की विशेष व्यवस्था करनी होगी।

विधेयक मे भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा के उन सभी राज्यीय दलो की पुनर्रचना की व्यवस्था की गई है, जो राज्य-पुनर्गठन से प्रभावित होगे। प्रस्ताव किया गया है कि सभी श्रेणी के राज्यो के सेवादल तथा बम्बई, मध्यप्रदेश, पजाब और विध्य प्रदेश के सेवादल भग कर दिय जायं तथा उनके सदस्यो को केन्द्र के आदेश से उन दलो मे मिला दिया जाय, जो नए राज्यो के बने अथवा अन्य वर्तमान राज्यो के हो।

संविधान मे संशोधन—प्रादेशिक सीमाओ मे हेर-फेर, राज-प्रमुख-पद की समाप्ति तथा देने-लेने के बंटवारे के लिए विधेयक में कहा गया है कि संविधान के विभिन्न अनुच्छेदो मे सशोधन करना पडेगा।

इन अनुच्छेदो में सशोधन का विधेयक 'राज्य पुनर्गठन विधेयक' के साथ ही संसद् में प्रस्तुत किया जायगा।

संविधान के ८व हिस्से के स्थान पर, जो ग राज्यों के प्रशासन से सम्बन्धित

हैं, नई धाराएँ रखी जायंगी, जो सम्भवतः यह होगी कि केन्द्रीय प्रदेश का शासन राष्ट्रपति एक मुख्य आयुक्त या अन्य अधिकारी के जरिये किया करेंगे।

३५०वें अनुच्छेद में संशोधन कर यह व्यवस्था की जायगी कि प्रत्येक राज्य सरकार और स्थानीय निकायों का कर्त्तव्य होगा कि वे भाषा की दृष्टि से अल्पसंख्यक लोगों के बच्चों को प्राइमरी शिक्षा उनकी मातृभाषा में देने की व्यवस्था करें। उन्हें इस प्रकार की सुविधाएँ दिलाने के लिए राष्ट्रपति राज्यों को आवश्यक हिदायतें दे सकेंगे।

एक अन्य अनुच्छेद का संशोधन कर यह व्यवस्था की जायगी कि राष्ट्रपति किसी राज्य विधान सभा की प्रादेशिक समिति बना सकते हैं और उनका कार्य निर्धारित कर सकते हैं।

पंजाब की प्रादेशिक समिति की, जिसके निर्माण का अधिकार राष्ट्रपति को दिया गया है, सरकारी काम-काज के नियमों तथा अन्य आदेशों के अनुसार काम सौंपे जायंगे। इनमें विभिन्न प्रदेशों के विधान सभाई सदस्य व मंत्री होंगे, परन्तु मुख्यमंत्री न होंगे।

इन पुनर्गठित राज्यों के १ अक्तूबर १९५६ को अस्तित्व में आने की संभावना है।

●

: ३ :

पारिभाषिक शब्दावली

अग्रिम	Advance
अचल संपत्ति	Immovable Property
अर्जन करना	Acquire
अतिक्रमण	Violation, Trespass
अतिरिक्त आयकर	Super Tax
अधिकतम दंड	Extreme Penalty
अधिकरण	Tribunal
अधिकरण, श्रमिक अपीलीय	Labour Appellate Tribunal
अधिकरणित	Enacted
अधिकार	Right
अधिकार, पूर्व-प्राप्ति	Lien
अधिकार, प्राप्त	Easement
अधिकार, राजनैतिक	Political Right
अधिकार सामान्य	General Right
अधिकार, मूल	Fundamental Rights
अधिकार, धर्म-स्वातंत्र्य का	Right to Freedom of Religion
अधिकार, शोषण के विरुद्ध	Right Against Exploitation
अधिकार, समता	Right to Equality
अधिकार, स्वातंत्र्य	Right to Freedom
अधिकार, संपत्ति का	Right to property
अधिकार, संवैधानिक प्रतिकारों का	Right to Constitutional Remedies
अधिकार, संस्कृति और शिक्षा-संबंधी	Cultural and Educational Rights

अधिकार, स्वाभाविक	Natural Rights
अधिकार, हस्तातरण-पत्र	Conveyance
अधिकारी	Official
अधिकृत	Authorised
अधिग्रहण	Acquisition
अधिनियम	Act
अधिनियम, अस्त्र	Arms Act
अधिनियम, आयकर	Income-Tax Act
अधिनियम, ईसाई विवाह	Christian Marriage Act
अधिनियम, एकस्व और रूपाकन	Patents and Designs Act
अधिनियम, औद्योगिक विवाद	Industrial Disputes Act
अधिनियम, कारखाना (फैक्टरी)	Factory Act
अधिनियम, कारागार	Prison Act
अधिनियम, घातक दुर्घटना	Fatal Accidents Act
अधिनियम, जन-प्रतिनिधान	Representation of Peoples Act
अधिनियम, नगरपालिका	Municipal Act
अधिनियम, निवारक नजरबदी	Preventive Detention Act
अधिनियम, निश्चित प्रतिकार	Specific Relief Act
अधिनियम, न्यायालय शुल्क	Court Fees Act
अधिनियम, परक्राम्य आलेख	Negotiable Instruments Act
अधिनियम, पारसी विवाह और तलाक	Parsi Marriage and Divorce Act
अधिनियम, पंच-फैसला	Arbitration Act
अधिनियम, प्रातीय परिक्षीणता	Provincial Insolvency Act
अधिनियम, प्रेस (आपत्तिजनक सामग्री)	Press (Objectionable Matter) Act
अधिनियम, प्रेसीडेंसी नगर परिक्षीणता	Presidency Towns Insolvency Act
अधिनियम, बीमा	Insurance Act
अधिनियम, भारतीय उत्तराधिकार	Indian Succession Act
अधिनियम, भारतीय कालसीमन	Indian Limitations Act

अधिनियम, भारतीय कंपनी	Indian Companies Act
अधिनियम, भारतीय मुद्राक	Indian Stamps Act
अधिनियम, भारतीय रजिस्ट्री	Indian Registration Act
अधिनियम, भारतीय वयस्कता	Indian Majority Act
अधिनियम, भारतीय वायुमार्ग-वहन	Indian carriers by Air Act
अधिनियम, भारतीय वायुयान	Indian Aircraft Act
अधिनियम, भारतीय वाहक	Indian Carriers Act
अधिनियम, भारतीय विवाह-विच्छेद	Indian Divorce Act
अधिनियम, भारतीय साक्ष्य	Indian Evidence Act
अधिनियम, भारतीय संविदा	Indian Contract Act
अधिनियम, भारतीय स्वतत्रता	Indian Independence Act
अधिनियम, भूमि अधिग्रहण	Land Acquisition Act
अधिनियम, माल-विक्रय	Sales of Goods Act
अधिनियम, मोटरगाड़ी	Motor Vehicles Act
अधिनियम, रेलवे	Railways Act
अधिनियम, विशेष-विवाह	Special Marriages Act
अधिनियम, व्यापार-चिह्न	Trade Marks Act
अधिनियम, श्रमिक-सघ	Trade Unions Act
अधिनियम, श्रमिक-क्षतिपूर्ति	Workmen's Compensation Act
अधिनियम, समाज-पंजीयन	Societies Registration Act
अधिनियम, सहकारी-समाज	Co-operative Societies Act
अधिनियम, साझा	Partnership Act
अधिनियम, सीमात-शुल्क	Tariff Act
अधिनियम, सेना	Army Act
अधिनियम, संपदा-शुल्क	Estate Duty Act
अधिनियम, संरक्षक और प्रतिपालक	Guardians and Wards Act
अधिनियम, हिन्दू-विवाह	Hindu Marriages Act
अधिनियम, हिन्दू शिक्षा-लाभ	Hindu Gains of Learning Act

अधिनियम, हिन्दू स्त्रियों के संपत्ति-अधिकार	Hindu Womens' Rights to Property Act
अधिनियमन	Enactment
अधिनियमित	Enact, Enacted
अधिपत्र	Warrant
अधिप्रमाण	Probate
अधिप्रमाणित वसीयत	Probate Will
अधिराज	Suzerain
अधिवक्ता	Advocate
अधिवास	Residence, Domicile
अधिशासक	Dominant
अधिशासकभूमि	Dominant Land
अधिशासक स्वामी	Dominant Owner
अधिशासित	Servient
अधिशासित भूमि	Servient Land
अधिशासित स्वामी	Servient Owner
अधिसूचना	Notice, Notification
अधिक्षेत्र	Jurisdiction
अधीनस्थ न्यायालय	Subordinate Court
अधीक्षक	Superintendent
अध्यक्ष	Speaker
अध्यादेश	Ordinance
अनधिकार प्रवेश	Trespass
अनधिनियमित	Unenacted
अनर्हता	Disqualification
अनाचार	Misconduct
अनादर	Insult, Dismissal
अनिग्रहणीय	Non-Cognizable
अनिग्रहणीय अपराध	Non-Cognizable Offence
अनुचित	Wrongful
अनुचित बर्खास्तगी	Wrongful Dismissal
अनुच्छेद	Article
अनुदान	Demand
अनुदान की मांग	Demand for Grant

अनुबंध	Contract
अनुमति	Consent
अनुमान	Estimate
अनुमोदन	Approval
अनुयोग	Examination
अनुसूचित आदिमजाति	Scheduled Tribe
अनुसूचित जाति	Scheduled Caste
अनुसूची	Schedule
अनुसन्धान	Investigation
अनुज्ञप्ति	Sanction
अनुज्ञा	Licence, Permit
अन्यदेशीय	Alien
अन्यत्र होने की युक्ति	Alibi
अपकार	Wrong
अपकारकर्त्ता	Wrongdoer
अपकारी	Wrongful
अपकारी पदच्युति	Wrongful Dismissal
अपकारी बंदीकरण	Wrongful Imprisonment
अपचार	Misconduct
अपरक्राम्य	Non-Negotiable
अपराध	Crime, Offence
अपराध-निग्रहण	Cognizance of Offence
अपमानजनक	Defamatory
अपवर्जन	Exclusion
अपवर्जित करना	Exclude
अपवाद	Exception, Slander
अपहरण	Abduction
अपात्र	Ineligible
अपील न्यायालय	Court of Appeal
अपेक्षा	Requirement
अपंजीबद्ध	Unregistered
अप्रतिभाव्य	Non-Bailable
अप्राकृतिक अपराध	Unnatural Offence
अप्राकृतिक विषयभोग	Carnal Intercourse

अभिकर्त्ता	Agent
अभिकरण	Agency
अभिकरण-न्यायालय	Agency court
अभिकरण-संविदा	Contract of Agency
अभिदान	Delivery
अभिपक्ष (अभियोक्ता पक्ष)	Prosecution
अभिभावक	Guardian
अभियोक्ता	Prosecutor, Complainant
अभियोग	Case, Charge
अभियोग-कार्यवाही	Prosecution
अभियोग-डायरी	Case Diary
अभियोग, द्वेषमूलक	Malicious Prosecution
अभियोग-विचार	Trial
अभियोजन	Prosecution
अभियोज्य	Actionable
अभियोज्य दोष	Actionable Wrong
अभिरक्षा	Custody
अभिलिखित	Recorded
अभिसमय	Convention
अभिहरण	Kidnapping
अभ्याघात	Assault
अयोग्यता	Disqualification
अर्थसीमा	Limit of Value
अर्हत	Qualified
अर्हता	Qualification
अवकृत्य	Omission
अवतारण	Descent
अवमानना	Contempt
अवयस्क	Minor
अवयस्कता	Minority
अवरोध	Obstruction, Restraint
अवस्था	Age, Period
अवियोज्य	Inseparable
अवैध	Illegal, Invalid

अवैध आचरण	Illegal Practice
अवैध कृत्य	Illegal Act
अवैध तुष्टि	Illegal Gratification
असम्मानित करना	Dishonour
असीमित धनाधिक्षेत्र	Unlimited Pecuniary Jurisdiction
असैनिक	Civil
असैनिक ऋण	Civil Debt
असैनिक जेल	Civil Jail
असैनिक शक्ति	Civil Power
असैनिक सेवा	Civil Service
आकस्मिकता	Contingency
आकस्मिकता कोष	Contingency Fund
आक्रमण	Assault
आगजनी	Arson
आगम प्रमाण	Evidence of Title
आगम शुल्क	Custom Duty
आग्नेयास्त्र	Fire Arms
आघात	Hurt
आचार	Custom
आजीवन कारावास	Transportation for Life
आर्थिक हानि	Pecuniary Loss
आदाता	Payee
आदाता चैक	Order cheque
आदिम जाति	Tribe
आदेश	Order
आदेश-वाहक	Process-Server
आधमन	Hypothecation
आधान	Pledge
आधिकर्त्ता	Pledger
आधिग्राही	Pledgee
आनुपातिक प्रतिनिधान	Proportional Representation

आपराधिक	Criminal
आपराधिक अतिक्रमण	Criminal Trespass
आपराधिक अभियोग	Criminal Charge
आपराधिक कार्य (कृत्य)	Criminal Act
आपराधिक दुर्विनियोग	Criminal Misappropriation
आपराधिक षड्यंत्र	Criminal Conspiracy
आपात्	Emergency
आपात् की घोषणा	Proclamation of Emergency
आबकारी	Excise
आभार	Obligation
आमद	Proceeds
आमुक्ति	Easement
आय-कर	Income-Tax
आयकर-अधिकरण	Income-Tax Tribunal
आयकर-मूल्याकन	Assessment of Income-Tax
आयकर-विभाग	Income-Tax Department
आयुक्त	Commissioner
आयुक्ताधिकारी	Commissioned Officer
आयोग	Commission
आरजी बंदोबस्त	Temporary Settlement
आलेख	Instrument
आवश्यक	Expedient
आवागमन	Intercourse
आवारा	Vagrant
आस्तियाँ	Assets
आहार-पुष्टि-स्तर	Nutrition
उकसाना	Instigate
उकसाहट	Instigation
उत्पादन-शुल्क (कर)	Excise duty
उत्तरकर्त्ता उत्तरवादी	Respondent

उत्तरजीवित्व	Survivorship
उत्तराधिकार	Succession
उत्तराधिकार-कानून	Law of Succession
उत्तराधिकार-प्रमाणपत्र	Succession Certificate
उत्तराधिकारी	Heir, Successor
उत्तेजना	Provocation
उद्वेग	Nuisance
उन्मुक्ति	Immunity
उन्मूलन	Abolition
उप-अधीक्षक	Deputy Superintendent
उपकरण	Intrument, Easement
उपक्रम	Undertaking
उपचार	Relief
उपजाप	Sedition
उपद्रव	Disturbance, Rioting
उप-निरीक्षक	Deputy-Inspector
उपबंध	Provision
उपभोग बंधक	Usufructuary Mortgage
उपयुक्त	Competent
उपयुक्त न्यायालय	Comptent Court
उपयुक्तता	Competency
उप-राष्ट्रपति	Vice-President
उपलब्धियाँ	Emoluments
उप-विधि	By-Law
उपवेशन	Session
उपवेशी न्यायालय	Sessions Court
उपस्त्री	Concubine
उपाध्यक्ष	Deputy Speaker
एकस्व	Patent
एकस्व-कार्यालय	Patents Office
एकस्वधारी	Patentee
एकस्व-नियंत्रक	Controller of Patents
एकात्मक	Unitary

एकांत कारावास	Solitary Confinement
एकांत-निजत्व	Privacy
ऋण	Debt
ऋण-पत्र	Debenture
ऋणदाता	Creditor
ऋण-भार	Debt-Charges
ऋण-शोधन	Payment of Debt
ऋणी, मुख्य	Principal Debtor
औद्योगिक	Industrial
औद्योगिक-प्रशिक्षण	Industrial Training
औद्योगिक-विवाद	Industrial Dispute
औपचारिक	Formal
औपचारिकता	Formality
औरस	Legitimate
अंगक्षति	Loss of Limb
अंग-हानि	Disablement
अंतर्राष्ट्रीय वाहक	International Carriers
अंश	Share
अंश बाजार	Share Market
अंशधारी	Share Holder
अंश हस्तांतरण	Transfer of Shares
आतरिक वायुवाहक	Internal Air Carriers
कब्जा	Possession
कटौती	Remission
कदाचार	Misbehaviour, Misconduct
कर	Tax
करार	Agreement, Promise
करारोपण	Imposition of Tax
कर्त्ता	Executant, Drawer

कागजात	Documents, Records
कानूनी आदेश	Lawful Order
कानूनी कर्त्तव्य	Legal Duty
कानूनी कार्यवाही	Legal Proceeding
कानूनी नुक्ता	Point of Law
कानूनी व्यवसाय	Legal Practice
कानूनी संरक्षक	Legal Guardian
कार्यकारी	Executive
कार्यकारी शक्ति	Executive Power
कार्यकाल	Term, Tenure
कार्यणीय	Actionable
कार्यणीय दावा	Actionable Claim
कार्याङ्ग	Executive
कालापानी	Transportation
कालावरुद्ध	Timebarred
किशोर अपराधी	Juvenile Offender
कूट साक्ष्य	Perjury
कृषि आय	Agricultural Income
कृषि भूमि	Agricultural Land
कोरा नामाकन	Indorsed in Blank
कोष	Fund
कंटक	Nuisance
खनिज अधिकार	Mineral Rights
गठन	Constitution
गणपूर्ति	Quorum
गर्भपात	Miscarriage
गर्भपात कराना	Causing Miscarriage
गहन	Lien
गारंटी का संविदा	Contract of Guarantee
गारटीदाता	Guarantor, Surety
गेरवी	Pledge
गेरवीदार	Pledgee

गुजारा	Maintenance
गुप्त-पर्ची	Secret Ballot
गैर-सरकारी	Private
गोद लेना	Adopt
घराबंदी	Fencing
घोषणा	Proclamation
घोषित अपराधी	Proclaimed Offender
चलन	Custom
चल-संपत्ति	Movable Property
चलार्थ	Currency
चुनाव-विवाद	Election Dispute
चुंगी	Custom Duty, Terminal Tax
चोट	Hurt, Injury, Harm
चोट, आकस्मिक	Accidental Injury
चोट, दारुण	Grievous Hurt
चोट, शारीरिक	Bodily Harm
छल	Deceit, Deception
छानबीन	Investigation
छुटकारा	Relief
छूट	Immunity
छोड़ देना	Discharge
जनता के निम्नवर्ग	Weaker Sections of the People
जमानत	Bail
जमानत के अयोग्य	Non-bailable
जमानत के योग्य	Bailable
जमानतनामा	Bail-Bond
जलकपाट	Sluice
जहाजरानी	Shipping

जामिन	Surety
जायज	Legitimate
जारकर्म	Adultery
जारकर्मी	Adulterer
जारज	Illegitimate
जालसाजी	Forgery, Fraud
जाली	Forged
जाच न्यायालय	Court of Inquiry
जिरह	Cross-examination
जिला-अदालत (न्यायालय)	District Court
जिद्म	Torts
जोखिम-पत्रक	Risk Note
जोर-जवरदस्ती	Criminal Force
टकण	Coinage
डाक और तार	Posts and Telegraph
डिगरी	Decree
डिगरी का भुगतान	Execution of Decree
डोमीनियन	Dominion
तत्त्व	Element
तथ्य	Fact
तटाध्यक्ष	Wharfinger
तलाक	Divorce
तारण	Indemnity
तारण-संविदा	Contract of Indemnity
तालाबंदी	Lock-out
तृष्टि	Gratification
तेजी	Rashness
दत्तकग्रहण	Adoption
द्रव्य	Money
दस्ता	Detachment

दस्तावेज	Document
दाता	Creditor, Donor
दान	Gift
दाय, दायग्रहण	Inheritance
दायित्व	Liability
दारुण चोट	Grievous Hurt
दावा	Claim, Suit
दावेदार	Claimant
दिवालिया	Bankrupt, Insolvent
दिवालिया, अविमुक्त	Undischarged Insolvent
दिवालियापन	Bankruptcy, Insolvency
द्वितीय अपील	Second Appeal
द्विविवाह	Bigamy
दीवानी	Civil
दुधारू पशु	Milch Cattle
दुरभिसंधि	Conspiracy
दुर्ग निवेश	Garrison
दुर्घटना	Accident
दुर्विनियोग	Misappropriation
दुर्विनियोग, आपराधिक	Criminal Misappropriation
दुरुपयोग	Abuse, Misuse
दुलहिन-शुल्क	Bride Price
देय	Payable
द्वेष	Malice
द्वेषमूलक अभियोग	Malicious Prosecution
दोष	Guilt, Wrong, Crime
दोष, अभियोज्य	Actionable Wrong
दोषमुक्त करना	Acquit, Discharge
दोष-सिद्धि	Conviction, Proof of Crim
दोषण	Champerty
दोषाकनकर्त्ता	Assessor
दोषारोपण	Incriminate, Preference of Charge

दंड	Criminal, Punishment
दंडनायक	Magistrate
दंडनीय अपराध	Punishable Offence
दंडनीय प्राणघात	Culpable Homicide
दंडनीय प्राणघात, जो हत्या-तुल्य न हो	Culpable Homicide not amounting to murder
दंड-विधि-संग्रह	Criminal Procedure Code
दापतिक अधिकार	Conjugal Rights
दापतिक अधिकारों की प्रतिस्थापना	Restitution of Conjugal Rights
दापतिक सहवास	Conjugal Society
दांपतिक संभोग	Marital Intercourse
धनाधिक्षेत्र	Pecuniary Jurisdiction
धमकीपूर्ण प्रदर्शन	Menacing Gesture
धर्म-परिवर्तन	Change of Religion
धर्म-स्वातंत्र्य का अधिकार	Right to Freedom of Religion
धारक (धारी)	Holder, Bearer
धारक, साधारण प्रकार का	Holder in due Course
धार्मिक अनुज्ञप्ति	Religious Sanction
धार्मिक पंथ	Religious Order
नकारात्मक (निष्क्रिय) आचरण	Inaction, Negative Conduct
नगर-आयुक्त	Municipal Commissioner
नगरपालिका	Municipality
नगर-व्यवहार-न्यायालय	City Civil Court
नजीर	Case Law
नागरिक	Citizen
नागरिकता	Citizenship
नाजायज	Illegal, Illegitimate, Wrongful
नाजायज गिरफ्तारी	Illegal Arrest

नाजायज बालक	Illegitimate Child
नाजिर	Bailiff
नामजद करना	Nominate
नामजदगी (नाम-निर्देशन)	Nomination
नामाकन	Endorsement
नामाकनकर्त्ता	Endorsee
नामाकन, कोरा	Indorsement in Blank
नामाकन, पूरा (पूर्ण)	Indorsement in full
नामाकित	Endorsed
निकाय	Body
निकाह्	Marriage
निगम	Corporation
निगम-कर	Corporation Tax
निगमित	Incorporated
निगमित संस्था	Body Corporate
निग्रहण	Cognizance
निग्रहणीय	Cognizable
निग्रहणीय अपराध	Cognizable Offence
निधि	Fund
नियम	Rule, Law
नियमन	Regulation
नियमित सेना	Regular Army
नियोजन	Alienation
निरर्थक	Null, Useless
निरर्थक तथा शून्य	Null and Void
निरर्थकता	Nullity
निरस्त	Rescind
निराकरण करना	Abrogate
निराकृत	Abrogated
निरीक्षक	Inspector
निरीक्षक मंडल	Board of Visitors
निरोध	Detention
निरोधक अधिकारी	Detaining Authority
निरोधाज्ञा	Injunction

निवारक नजरबंदी	Preventive Detention
निवारण	Prevention
निवेदक	Petitioner
निवेदन	Petition
निवेदन, मध्यवर्ती	Interlocutory Petition
निषेध	Prohibition
निषेधाज्ञा	Injunction
निष्कर्ष	Conclusion
निष्कारण	Gratuitously
निष्कासन	Expulsion
निष्ठा	Allegiance
निष्ठाहीनता	Disloyalty
निष्पादक	Executioner
निष्पादन	Execution
निशानी	Mark
निस्तारण शुल्क	Salvage
निहित	Vested
निक्षेप	Bailment
निक्षेपक	Bailer
निक्षेपग्रहीता	Bailee
निक्षेप-संविदा	Contract of Bailment
निक्षिप्त	Bailed
निर्णायक मत	Casting Vote
निर्णीत परिक्षीण	Adjusted Insolvent
निर्णेय तथ्य	Facts in Issue
निर्दयता	Cruelty
निर्देश	Order, Direction
निर्देशक	Director
निर्देशक सिद्धात	Directive Principles
निर्देशनाधिकारी	Commanding Officer
निर्धारित	Prescribed
निर्बंधन करना	Restrict
निर्बंधित	Restricted
निर्बाध	Absolute, Unqualified

निर्यात शुल्क	Export Duty
निर्योग्यता	Disqualification, Disability
निर्वहन	Discharge
निर्वाचक गण	Electoral College
निर्वाचक समूह	Electorate
निर्वाचक सूची	Electoral Rolls
निर्वाचन	Election
निर्वाचन आयोग	Election Commission
निर्वाचन न्यायाधिकरण	Election Tribunal
निर्वाचन क्षेत्र	Constituency
निर्वाहिका	Living Wage
निर्व्याज	Bonafide
निंदा लेख	Libel
नीलाम	Auction
नीलामकर्त्ता	Auctioneer
नीलामी बिक्री	Auction Sale
नेक इरादे से	In good Faith
नौकरी का संविदा	Contract of Service
न्यायपति	Justice (Judge)
न्यायपालिका (न्यायाग)	Judiciary
न्यायपीठिका	Bench
न्याय-प्रशासन	Administration of Justice
न्याय, समन्याय और सद्विवेक	Justice, Equity and Good Conscience
न्यायालय शुल्क	Court Fee
न्यायालय शुल्क मुद्रांक	Court Fees Stamp
न्यायिक	Judicial
न्यायिक अनुज्ञप्ति	Judicial Sanction
न्यायिक कृत्य	Judicial Act
न्यायिक निर्णय	Judicial Decision
न्यायिक नियोजन	Judicial Separation
न्यायिकेतर मुद्रांक	Nonjudicial Stamp
न्यास	Trust
न्यासी	Trustee

पर्ची	Ballot
पट्टा	Lease
पट्टादाता	Lessor
पट्टेदार	Lessee
पण्य	Traffic
पद	Office
पदमुक्त करना	Dismiss, Remove
पद-शपथ	Oath of Office
पदेन	Ex Officio
परक्राम्य	Negotiable
परक्राम्य आलेख	Negotiable Instrument
परमाधिकार	Privilege, Prerogative
परहस्तकरण	Alienation
परावर्तित करना	Commute
परावर्त्ती	Reversioner
परित्यक्त	Divorced
परित्याग	Abandonment
परिणाम	Consequence, effect
परिपक्व होने पर	On Maturity
परिपालन	Discharge
परिभोक्ता	Occupier
परिभोग	Occupation
परिभोगी	Occupier
परिरक्षण	Preservation
परिवर्त्त	Premium
परिवर्त्तन	Conversion
परिवहन	Transport, Transportation
परिवीक्षा	Probation
पारिश्रमिक	Remuneration
परिषद्	Council
परिसमाप्त करना	Wind up
परिसीमन	Limitation
परिसीमन-विधि	Law of Limitation

परिसीमित	Limited
परिक्षीण, अविमुक्त	Undischarged, Insolvent
परिक्षीण	Insolvent
परिक्षीणता	Insolvency
परित्राण	Safeguard, Remedy
परिज्ञान	Knowledge
परीक्षा, परीक्षण	Examination
परीक्षण, मौखिक	Oral Examination
पशुपालन	Animal Husbandry
पत्र, ऋण	Debenture
पत्र, प्रत्यय	Letter of Credit
पत्र, बीमा	Policy of Insurance
पत्र, लदाव	Bill of Lading
पत्र, वचन	Promissory Note
पत्र, विनिमय	Letter of Exchange
पत्रक	Bill, Note
पागलपन	Lunacy
पागल व्यक्ति	Lunatic
पारमार्थिक	Charitable
पारिवारिक कानून	Family Law
पात्र	Eligible
पात्रता	Eligibility
पिछडे वर्ग	Backward Classes
पितृत्व	Paternity
पीठिका	Bench
पुनरावलोकन	Review
पुनरीक्षण	Revision
पुनर्विचार	Appeal
पुष्टि (पुष्टिकरण)	Confirmation
पूर्ण नामांकन	Indorsement in full
पूर्ण प्राप्ति अधिकार	Lien
पूर्वाचरण	Antecedents
पंच-फैसला	Arbitration
पंजीवद्ध	Registered

पंजीयन	Registration
प्रक्रिया	Procedure
प्रक्रिया विधि	Law of Procedure
प्रग्रह	Custody, Lock-up
प्रचलित करना	Enforce
प्रचालित करना	Move
प्रतिकर	Solatium
प्रतिकार	Remedy
प्रतिकूल भोग	Adverse Possession
प्रतिग्रह	Gift
प्रतिग्रहीता	Receiver
प्रतिदेय	Payable
प्रतिधारक	Assignee
प्रतिनिधान	Representation
प्रतिनिधान का अधिकार	Power of Attorney
प्रतिनिधि	Representative
प्रति-परीक्षण	Cross Examination
प्रतिपादन	Assertion
प्रतिपालन विभाग	Court of Wards
प्रतिपाल्य	Ward
प्रतिप्रार्थी	Respondent
प्रतिफल	Consideration, Recompense, Return
प्रतिबंध	Limit, Restriction
प्रतिभाव्य	Bailable
प्रतिभूति	Bail, Security
प्रतिमोचन	Relief
प्रतिरक्षा	Defence
प्रतिरक्षा बल	Defence Forces
प्रतिरक्षा सेवाएँ	Defence Services
प्रतिरक्षा सेनाएँ	Defence Forces
प्रतिलिप्याधिकार	Copyright
प्रतिवाद	Defence
प्रतिवादी	Defendant

प्रतिव्यक्ति कर	Capitation Tax
प्रतिषिद्ध	Prohibited
प्रतिषिद्ध-संबंधक्रम	Prohibited Regress of Relationship
प्रतिसमाधान	Redress
प्रतिस्थापना	Restitution
प्रतिक्षति	Damages
प्रत्यक्ष	Direct
प्रत्याखान	Repudiation
प्रत्यानुयोग	Cross Examination
प्रत्याभूतलेनदार	Secured Creditor
प्रत्याभूति	Guarantee, Security
प्रत्यावेदक	Respondent
प्रथात्मक	Customary
प्रदाय	Supply
प्रदेश	Territory
प्रधानमंत्री	Prime Minister
प्रन्यासी	Trustee
प्रबंध-अभिकर्त्ता	Managing Agent
प्रबध-पत्र	Letter of Administration
प्रभुसत्ता	Sovereignty
प्रभुत्वसंपन्न	Sovereign
प्रमाण	Proof, Evidence
प्रमाणक, प्रमाण-पत्र	Certificate
प्रमाणित	Attested, Certified
प्रमाद	Negligence
प्रमादी आचरण	Negligent Conduct
प्रमुख (व्यक्ति)	Principal
प्रलोभित करना	Induce
प्रवर समिति	Select Committee
प्रवर्तित करना	Enforce
प्रवास करना	Migrate
प्रविवरण-पत्रिका	Prospectus
प्रशासन	Administration

प्रशासन-पत्र	Letter of Administration
प्रशासनिक	Administrative
प्रसाद पर्यन्त	During the Pleasure of
प्रस्ताव	Proposal, Resolution
प्रस्तावक	Proposer
प्रस्तावना	Preamble
प्रहार	Battery
प्राणघात	Homicide
प्राथमिक विचाराधिकार	Original Jurisdiction
प्रादेशिक	Territorial
प्राधिकारी	Authority
प्रापक	Payee
प्राप्त-अधिकार	Easement
प्राभिककर्त्ता	Attorney
प्रार्थी	Petitioner
प्रारंभिक निवेदन	Original Petition
प्रोनोट	Promissory Note
फरार	Absconding
फायदा	Benefit
फुसलाना	Seduce, Seduction
फेडरल	Federal
फेडरेशन	Federation
फौजदारी	Criminal
फौजदारी अदालत (न्यायालय)	Criminal Court
फौजदारी प्रक्रिया	Criminal Procedure
फौजदारी मुकदमा	Criminal Case
फौजी ताकत	Armed Force
फांसी द्वारा मृत्यु	Death by Hanging
बचाव	Defence
बल, प्रतिरक्षा	Defence Forces
बल, सशस्त्र	Armed Forces
बलात्कार	Rape

बहुमत	Majority
बहु-विवाह	Polygamy
बाधा	Obstruction
बाल-श्रम	Child Labour
बालिग	Adult
बालिग मताधिकार	Adult Franchise
बिक्रीकर	Sales Tax
बीमा	Insurance
बीमा अधिनियम	Insurance Act
बीमा-पत्र	Policy of Insurance
बीमा-संविदा	Contract of Insurance
बोली (नीलाम)	Bid
बंदीकरण	Confinement
बंदीकरण, सायकार	Wrongful Confinement
बंधक	Mortgage
बधककर्त्ता	Mortgager
बंधकग्रहीता	Mortgagee
बंधनपत्र	Bond
भागीदार	Sharer
भारत का एकीकृत कोष	Consolidated Fund of India
भारतीय कंपनी अधिनियम	Indian Companies Act
भारतीय दंड संहिता	Indian Penal Code
भारयुक्त बंधक	Charged Mortgage
भारित व्यय	Charged Expenditure
भार्या (भर्ता)	Spouse
भावना	Intention
भावी माल	Future Goods
भुगतानक	Drawee
भुक्ति	Possession
भुक्ति-अधिकार	Right of Possession
भुक्तिवान्स्वामी	Owner in Possession
भू-राजस्व	Land Revenue
भृति	Maintenance

भोक्ता	Person in Possession
भोग, प्रतिकूल	Adverse Possession
भोग-बधक	Usufructuary Mortgage
भंग करना	Dissolve
भेंट	Present
मछली क्षेत्र	Fisheries
मजदूर संघ	Trade Union
मताधिकार	Franchise
मद्यनिषेध	Prohibition
मध्यस्थ	Arbitrator
मसविदा	Draft
महर	Dower, Mahr
महाजन	Banker
महाधिवक्ता	Advocate General
महा-निरीक्षक	Inspector General
महाभियोग	Impeachment
मादक पेय	Intoxicating Drink
मानव का पण्य	Traffic in Human Beings
मानव-शरीर के प्रति अपराध	Offences Against Human Body
मानहानि	Defamation
माफी	Pardon
मार्गकर	Tolls
माल	Goods
मालगुजारी	Revenue, Land Revenue
मालमत्ता	Liability
मिथ्या-निरूपण	Misrepresentation
मुआवजा	Compensation
मुक्त करना	Acquit, Release
मुक्ति-आदेश	Order of Release
मुख्तारनामा	Power of Attorney
मुख्य न्यायपति	Chief Justice
मुख्य-परीक्षण	Examination-in-chief
मुख्यायुक्त	Chief Commissioner

मुतवल्ली	Mutwalli, Manager
मुद्दई	Plaintiff
मुद्दालेह	Defendant
मुद्राक	Stamp
मुद्राक शुल्क	Stamp Duty
मुल्तवी करना	Suspend
मुवक्किल	Client
मुस्तकिल बंदोबस्त	Permanent Settlement
मूलधन	Capital
मूल्य	Value
मूल्याकन	Assessment
मोचन	Redeem
मोटरगाडी अधिनियम	Motor Vehicles Act
मोटर परिवहन	Motor Transport
मंजूरी	Sanction
मंत्रणा-परिषद्	Advisory Board
मंत्रिपरिषद्	Council of Ministers
याचक	Petitioner
याचिका	Petition
यातायात	Transport
युद्धक्षेत्र-दड	Field Punishment
युवत्व	Puberty
योग	Accession
रचक	Maker
रचना	Composition
रजिस्ट्री	Registeration
रजिस्ट्रीशुदा	Registered
रजित रोग	Veneral Disease
रहन	Mortgage
रक्षण	Protection
राजनैतिक अधिकर्त्ता	Political Agent
राजभक्ति	Allegiance

राजसाक्षी	Approver
राजस्व मुद्रांक	Revenue Stamp
राजस्व न्यायालय	Revenue Court
राजहुण्डी	Treasury Bill
राज्य-अभियोक्ता	State Prosecutor
राज्यकोष	State Fund
राज्यगामी होना	Escheat to the State
राज्यद्रोह	Sedition
राज्यनीति के निर्देशक सिद्धांत	Directive Principles of State Policy
राज्य लेखक	Clerk of the State
राज्याधिकारी	State Authority
रिक्तता	Vacancy
रिक्थभागी	Legatee
रिश्वत	Bribe
रुक्का	Pro-Note
रुधिर संबंध	Relationship of Blood
रूपांकन	Design
रूपांतर	Translation
रेखांकित	Crossed
रेलवे-वाहक	Carriers by Railway
लगान	Revenue
लगाव	Adherence
लघु अर्थ न्यायालय	Small Causes Court
लागू करना	Enforce
लाभ	Benefit
लाभग्राही	Beneficiary
लाभ-पद	Office of Profit
लेख	Writ, Document
लेख, अधिकार पृच्छा	Writ of quo Warrant
लेख, उत्प्रेषण	Writ of Certiorari
लेख, परमादेश	Writ of Mandamus
लेख, प्रतिशोध	Writ of Prohibition

लेख, बंदी-प्रत्यक्षीकरण	Writ of Habeas Corpus
लेनदार	Creditor
लेनदारी	Assets
लोक ऋण	Public Debt
लोक-कल्याण	Public Welfare
लोक-परिसीमित	Public limited
लोक-सेवा-आयोग	Public Service Commission
लोक-सेवाएँ	Public Services
लोक-स्वास्थ्य	Public Health
लोकोपयोगी सेवा	Public Utility Service
वकील समाज	Bar
वकील समाज परिषद्	Bar Council
वचन	Promise
वचनग्रहीता	Promisee
वचनदाता	Promisor
वचनपत्र	Promissory Note
वध	Slaughter, Murder
वयस्क	Adult, Major
वयस्कता	Majority
वयस्कता-आयु	Age of Majority
वयस्कमताधिकार	Adult Franchise
वरिष्ठ	Superior
वर्ग	Category, Class
वर्ण	Caste
वर्णनात्मकरूप	Narrative Post
वसीयतकर्त्ता	Testator
वसीयत संरक्षक	Testamentary Guardian
वहन करना	Transit
वाचन	Reading
वाद	Case, Suit
वाद-पत्र	Plaint
वाद-विधि	Case, Law

वादी	Plaintiff
वायदा-बाजार	Future Market
वायुमार्ग-वाहक	Carriers by Air
वायु-सेना	Air Force
वारंट-व्यवहार	Warrant Case
वार्षिक-वित्त-विवरण	Annual Financial Statement
वाहक	Carriers
वाहक ढोर	Draught Cattle
वाही	Bearer
विकलांग	Disabled
विक्रय-पत्र	Sale Deed
विघटन	Dissolution
विघटित करना	Dissolve
विचार	Consideration
विजात	Illegitimate
वितरण	Distribution
वित्त	Finance
वित्त-विधेयक	Money Bill
वित्तायोग	Finance Commission
वित्तीय-आभार	Financial Obligation
विद्रोह	Mutiny, Revolt
विधान	Legislation, Law
विधान-परिषद्	Legislative Council
विधान-मंडल	Legislature
विधान-सभा	Legislative Assembly
विधानांग	Legislative
विधायिनी	Legislative
विधि	Law
विधिकारी	Legislative
विधि-निर्माण	Law Making
विधि-वृत्ति	Legal Profession
विधेयक	Bill
विनिमय	Exchange

विनियम	Regulation
विनियोग	Appropriation
विनियोग-विधेयक	Appropriations Bill
विपरीत-मत	Prejudice
विपरीत संविदा	Contract to the Con trary
विभेद	Discrimination
वियोजन	Separation
विरासत	Legacy
विरोध	Protest
विलंबन	Suspension
विलंबित करना	Suspend
विवाचन	Arbitration
विवाद	Dispute, Litigation
विवादार्थी	Litigant
विवाह-विच्छेद	Divorce
विवाह-संविदा	Contract of Marriage
विवेक	Discretion
विवेक-बुद्धि-आयु	Age of Discretion
विशेष जूरी	Special Jury
विशेष-संविदा	Special contract
विश्वासघात	Breach of Trust
विहापन	Extortion
विहित	Prescribed
वैध	Legal, Lawful
वैवाहिक न्यायालय	Matrimonial Court
वृत्ति	Profession
वंचित करना	Deprive
वंचना	Cheating
व्यक्तिगत स्वाधीनता	Personal Liberty
व्यवहार	Civil Case
व्यवहार-प्रक्रिया-संहिता	Civil Procedure Code
व्यवहार न्यायालय	Civil Court
व्यवहारवाद	Civil Case

व्यापार-चिह्न	Trade Mark
शहादत	Evidence
शासन	Government, Rule
शिविर-क्षेत्र	Lines
शिष्ट जीवन-स्तर	Decent Standard of Life
शुल्क	Duty, Tax
शुल्क, उत्तराधिकार	Succession Duty
शुल्क, निर्यात	Export Duty
शुल्क, निस्तारण	Salvage
शुल्क, मुद्राक	Stamp Duty
शुल्क, सीमा	Custom Duty
शुल्क-सपदा	Estate Duty
शून्य	Void
शेषभागी	Residuary
शोधन	Payment
श्रम बंधक रखना	Pledging Labour
श्रमिक	Worker
श्रेणी	Category
सचिव	Secretary
सजा	Sentence
सतर्क	Vigilant
सत्ता	Authority
सदन	House
सदोष प्राणघात	Culpable Homicide
सफाई	Defence
सबूत	Evidence, Proof
सभापति	Chairman
सभ्य	Juror
सभ्या	Jury
सभ्या प्रकोष्ठ	Jury Box
समझौता बोर्ड	Board of Conciliation
समर्थ	Competent, Fit

समवर्ती सूची	Concurrent List
समादेश	Writ
समादेश अधिकारी	Commanding Officer
समाप्ति	Abolition
समावेदन	Address
समाशी	Coparceners
समिति	Committee
समुदाय	Association
समुद्र-मार्ग-वाहक	Carriers by sea
समुद्र-यात्रा योग्य	Sea-worthy
समुद्री जहाजरानी	Maritime Shiping
समुद्री बीमा	Marine Insurance
समुद्री यातायात	Navigation
सम्मन व्यवहार	Warrant Case
सरकारी प्रतिग्रहीता	Official Receiver
सर्वोच्च न्यायालय	Supreme Court
सहकारी समाज	Co-operative Society
सहवास	Access, Co-habition
सहायता	Assistance, Relief
सहायता, प्रसूती	Maternity Relief
साख	Credit
साधारण प्रकार का धारक	Holder in due Course
साझा (साझेदारी)	Partnership
साझा अधिनियम	Partnership Act
साझेदार	Partner
साझेदारी का संविदा	Contract of Partnership
सापकार	Wrongful
सामान्य जूरी	Common Jury
सामान्य बधक	Simple Mortgage
सार्वजनिक	Public
सार्वभौम	Paramount
साहूकारी	Money Lending
साहचर्य	Association
साक्ष्य	Evidence

सिद्ध कदाचार	Proved Misconduct
सीमा	Boundary, Limit, Limitation
सीमाकर (सीमांतकर)	Terminal Tax
सीमा शुल्क	Custom Duty
सीमोल्लंघन	Trespass
सैनिक कानून	Martial Law
सैनिक न्यायालय	Court Martial
सुधारशाला	Reformatory School
सुनिश्चित करना	Ensure
सुनी-सुनाई गवाही	Hearsay Evidence
सुविधा-अधिकार	Easement
सूचना	Notice, Notification
संगत तथ्य	Relevant Fact
संघ	Association, Union
सघ सूची	Union List
संचार साधन	Means of Communication
संचित निधि	Consolidated Fund
संदेह का लाभ	Benefit of Doubt
संपत्ति चिह्न	Property Mark
संपदा साधन	Material Resources
संबंध क्रम	Degrees of Relationship
संभरण	Maintenance, Supply
संयुक्त परिवार	Joint Family
संयुक्त वचन-ग्रहीता	Joint Promisee
संयुक्त वचनदाता	Joint Promisor
संयोजक	Convener
संविदा	Contract
संविदा-विधि	Law of Contract
संविधि	Statute, Statute Law
संसिद्ध करना	Consummate
संहिता	Code
संक्षिप्त क्रियाविधि	Summary Way
सांकेतिक प्रश्न	Leading Question

स्थायी भू-प्रबंध	Permanent Settlement
स्पष्टिकृत	Declared
स्वत्व पत्र	Title Deed
स्वामित्व	Ownership, Royalty
स्वामित्व का अधिकार	Right of Ownership
स्वामित्व का हस्तांतरण	Transfer of Ownership
स्वीकृति पत्र	Letter of Acceptance
हथियाना	Extortion
हरजाना	Damages, Reparation
हस्तातरण	Transfer
हस्तातरणकर्त्ता	Transferer
हस्तातरणग्रहीता	Transferee
हानि	Loss
हानिकारक झूठ	Injurious Falsehood
हित	Interest
हिरासत	Custody
हुंडी	Bill of Exchange
हुंडीकार	Drawer, Drawer of the Bill
क्षति-निवारण	Indemnity
क्षति-निवारण सविदा	Contract of Indemnity
क्षतिपूर्ति	Compensation
क्षमताहीनता	Incapacity
क्षमा	Pardon
क्षेत्राधिकार	Jurisdiction
ज्ञापन-पत्र	Memorandum